दिल्ली की खोज

ब्रजकिशन चांदीवाला

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

वैसाख—1887

मूल्यः 5 रुपए

निदेशक, प्रकाशन-विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली-6 द्वारा प्रकाशित
तथा प्रबन्धक, भारत-सरकार-मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित।

समर्पण

ओ३म् संगच्छध्वं, संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे, संजानाना उपासते ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।[1]

'दिल्ली की खोज' नाम की इस पुस्तक को, जिसमें धर्मराज युधिष्ठिर की दिल्ली से लगा कर स्वराज्य काल की दिल्ली तक की बनती बिगड़ती अठारह दिल्लियों की एक झांकी दिखाई गई है, मैं अपने पिता श्री बनारसीदासजी चांदीवाला को समर्पित करना चाहता था, जो शाहजहां की मौजूदा दिल्ली के असल बाशिंदे थे और पुस्तक की प्रस्तावना लिखवाना चाहता था श्रद्धेय पण्डित जवाहरलाल नेहरू जी से, जिनका स्नेह मुझे सदा प्राप्त था। मगर मेरा और इस पुस्तक का इतना सौभाग्य कहां कि उनकी कलम से लिखे चन्द शब्द देखने को मिल पाते।

मैं अन्तिम बार उनसे उनके भुवनेश्वर जाने से पूर्व मिला था, उनकी बीमारी के समय उन तक पहुंच न सका। जब वह ठीक हुए तो 28 अप्रैल की सुबह 9 बजे मैं यह पुस्तक लेकर उनके पास जा रहा था, इतने में फोन आया कि वह समय किसी दूसरे को दे दिया है, फिर आना। किसे मालूम था कि वह 'फिर' कभी नहीं आएगा। 27 मई को ठीक एक मास पश्चात् जब मैं उनके निवास स्थान पर पहुंचा तो, वह वह समय था, जब हमारे भाग्य का सितारा डूब रहा था और वह भगवान बुद्ध की

---

[1]हे मनुष्यो ! तुम सब एक होकर प्रगति करो। एक-दूसरे से मिल कर अच्छी प्रकार बोलो। तुम सबके मन उत्तम संस्कारों से युक्त हों तथा पूर्वकालीन उत्तम ज्ञानी और व्यवहार-चतुर लोग जिस प्रकार अपने कर्त्तव्य का भाग करते आए हैं, उसी प्रकार तुम भी अपना कर्त्तव्य करते जाओ।

तुम सबका विचार एक हो, तुम सबकी सभा एक जैसी हो, तुम सबके मन एक विचार से युक्त हों, इन सबका चित्त भी सबके साथ ही हो।

तुम सबका ध्येय समान हो, तुम सबके हृदय समान हों, तुम सबका मन समान हो, जिससे तुम सबका व्यवहार समान होवे।

तरह निर्मम, निर्मोही और निरासक्त बन कर इस संसार से कूच करने की तयारी में लगे थे और सब कोई सकते की हालत में खड़े देख रहे थे। देखते-देखते हमारा कोहनूर हमसे सदा के लिए छिन गया और हम सब बिलखते रह गए।

अब यह पुस्तक मैं अपने श्रद्धा और स्नेह के भाजन उन्हीं पण्डित जवाहरलाल नेहरू जी के चरण कमलों में एक तुच्छ श्रद्धांजलि स्वरूप भेंट करना चाहता हूं, जिन्होंने पूज्य गांधी जी के पश्चात् 16 वर्ष तक अपना वृहद हस्त मेरे सर पर रखा और जो सदा ही मुझे अपने प्यार और अनुकम्पा से विभोर करते रहे।

"उन सम को उदार जग माहीं"

—ब्रजकिशन चांदीवाला

भूमिका

दिल्ली से मेरा विशेष सम्बन्ध है। मेरे पिता के पूर्वज कोई 150 वर्ष पहले कश्मीर से दिल्ली आए, क्योंकि उस जमाने में बादशाह को उनकी शायरी पसन्द आई थी। दिल्ली में नहर के किनारे रहने के कारण वे कौल से नेहरू कहलाने लगे। सन् 1857 के स्वतन्त्रता संघर्ष में उनको दिल्ली छोड़नी पड़ी। दिल्ली से दोबारा रिश्ता तब जुड़ा, जब मेरे पिता बारात लेकर दिल्ली आए। मेरी माता के पूर्वज भी बहुत वर्षों से दिल्ली में बसे थे। आजादी के बाद बराबर हमारा दिल्ली में रहना हुआ—दिल्ली की जनता ने हमको अपनाया और हमारे दिल में भी उसकी एक विशेष जगह बनी।

दिल्ली बहुत पुरानी नगरी है और इसका इतिहास खूब रोचक है। अतीत में श्रुति और स्मृति का तरीका प्रचलित होने के कारण लिखा हुआ वर्णन उपलब्ध नहीं है, किन्तु अतीत बहुत से अमिट रूपों में समय पर अपनी छाप छोड़ जाता है। इन छापों को सजीव करना और बहुत-सी गलत प्रचलित बातों की सही तस्वीर प्रस्तुत करना आज के इतिहासकार का बड़ा काम है।

दिल्ली के चारों ओर बहुत ही निशानियां हैं, जो इसके सदियों पुराने इतिहास की झलक देती हैं। हजारों वर्ष से यह देश की राजधानी है और इसने कई सल्तनतों को और अपने आपको बनते बिगड़ते देखा है। स्वतन्त्र भारत में दिल्ली का अपना ही महत्त्व है। देश-विदेश की आंखें दिल्ली पर लगी रहती हैं। स्वाभाविक है कि ऐसी दिल्ली के इतिहास के प्रति हमारी जिज्ञासा बढ़े। प्रस्तुत पुस्तक उसी का परिणाम है।

'दिल्ली की खोज' में श्री ब्रजकिशन चांदीवाला ने बड़ी लगन और श्रम से दिल्ली का इतिहास हमारे सामने रखा है। पूरी पुस्तक पढ़ने का समय मुझे अभी नहीं मिला, फिर भी मैंने उसे जहां से भी उठाया वह रोचक लगी। चांदीवाला जी इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए बधाई के पात्र हैं।

इन्दिरा गांधी

सूचना और प्रसारण मंत्री,
भारत
नई दिल्ली।
दिनांक : 1-10-1964

विषय-सूची

हिन्दू युग

सूरजकुंड, लौह स्तम्भ तथा कुवते इस्लाम मस्जिद, मस्जिद कुवते इस्लाम महरौली, किला इन्द्र प्रस्थ या पुराना किला।

पठान युग

कुतुब मीनार, महरौली, सुल्तान गारी की कब्र का अन्तरंग दृश्य और मकबरा रुकमुद्दीन फीरोजशाह, दरगाह ख्वाजा कुतुबुद्दीन काकी, मकबरा अल्तमश,

हौज खास इलाके का दृश्य, अलाई दरवाजा महरौली, अलाई मीनार, तुगलकाबाद गढ़, गियासुद्दीन तुगलक का मकबरा, दरगाह शरीफ हजरत निजामुद्दीन, मकबरा अमीर खुसरो, मस्जिद निजामुद्दीन, मस्जिद कोटला फीरोजशाह, विजय मंडल, अशोक स्तम्भ, फीरोजशाह कोटला, रिज पर अशोक स्तम्भ, दरगाह हजरत रोशन चिराग, मकबरा शाह आलम फकीर, कदम शरीफ, कलां मस्जिद, मस्जिद बेगमपुर, मकबरा फीरोजशाह, मकबरा मुहम्मद शाह सैयद, वजीर मिया मोइयन द्वारा निर्मित मस्जिद, मकबरा इमाम जामनि, सिकन्दरशाह लोदी की कब्र, मकबरा कमाली जमाली, मकबरा कमाली जमाली की भीतरी छत ।

मुगल युग

मस्जिद किला कोहना, मस्जिद ईसाखान, मकबरा ईसाखान, आदमखान की कब्र, हुमायूं की कब्र, मकबरा अजीज ककुल ताश या चौंसठ खम्भा, अब्दुल रहीम खानखाना का मकबरा, लाल किला, नक्कारखाना या नौबत खाना, लाल किला का दीवान-ए-आम, बुर्ज किला या मुसम्मन बुर्ज या खास महल लाल किला, दीवान-ए-खास और मोती मस्जिद, लाल किला दिल्ली का हमाम, लाल किले का शाह बुर्ज, जामा मस्जिद, कश्मीरी दरवाजा, फतेहपुरी मस्जिद का भीतरी हिस्सा, बारहदरी रोशनआरा बाग, शालिमार बाग, शीशमहल के भीतर का शिल्प कार्य, गुरुद्वारा शीशगंज, गुरुद्वारा रकाबगंज, जीनतुलनिसा मस्जिद, मोती मस्जिद और शाह आलम सानी अकबर शाह और बहादुर शाह जफ़र की कब्र, सुनहरी मस्जिद चांदनी चौक, जन्तर मन्तर, सुनहरी मस्जिद दरियागंज, मकबरा सफदरजंग ।

ब्रिटिश युग

सेंट जेम्स गिरजा, दिल्ली का टाउन हाल, चांदनी चौक का घंटाघर, मकबरा मिर्जा गालिब, ओखला नहर, 1911 का शाही दरबार, केन्द्रीय सचिवालय, राष्ट्रपति भवन, राष्ट्रपति भवन का मुगल उद्यान, संसद् भवन, नगर निगम कार्यालय नई दिल्ली इण्डिया गेट, लक्ष्मी नारायण मन्दिर, पोलिटेकनिक कश्मीरी दरवाजा, हरिजन निवास, हरिजन निवास का प्रार्थना मन्दिर ।

स्वराज्य युग

वाल्मीकि मन्दिर, गांधीजी की बलिदान स्थली, राजघाट के दो चित्र, गांधी स्मारक संग्रहालय, नई कचहरी, भारत का सर्वोच्च न्यायालय, अशोक होटल, राष्ट्रीय संग्रहालय, विज्ञान भवन, रामकृष्ण मिशन, बुद्ध जयन्ती पार्क,

राजपूताना राइफल मन्दिर छावनी, लद्दाख बुद्ध विहार मन्दिर, स्वास्थ्य सदन का एक दृश्य, जानकी देवी कालेज, सप्रू भवन, तीन मूर्ति भवन, आकाशवानी भवन, सफ़दरजंग हवाई अड्डा, ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली का रेलवे स्टेशन, नेशनल फ़िज़ीकल लेबोरेटरी, मौलाना आजाद मेडिकल कालेज, मौलाना आजाद की समाधि, आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ़ मेडिकल साइंस, इण्डिया इन्टरनेशनल सेन्टर, शान्ति वन।
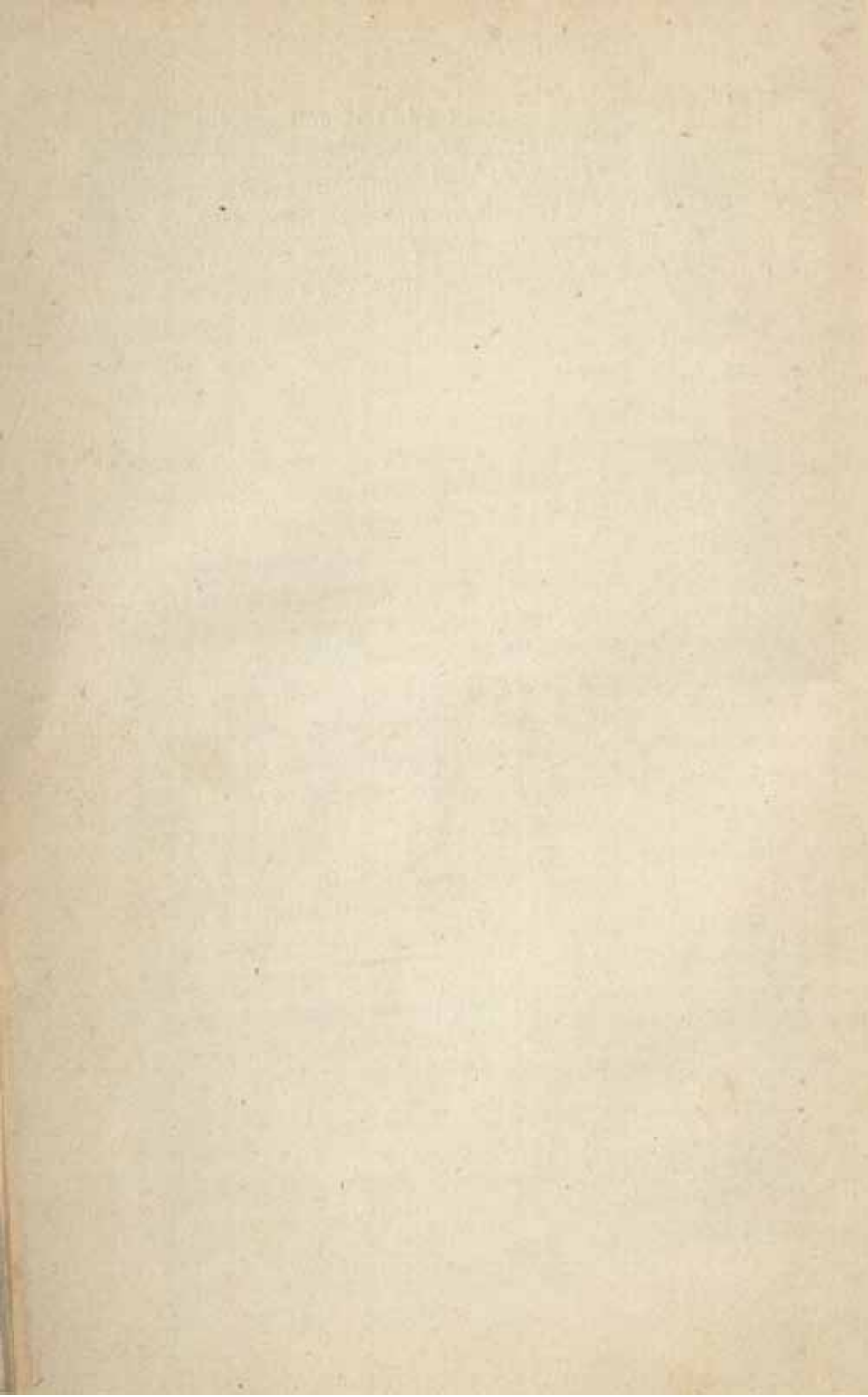
प्राक्कथन

दिल्ली शब्द में न मालूम क्या आकर्षण भरा हुआ है कि जैसे ही यह सुनाई पड़ता है, कान एकदम खड़े हो जाते हैं और दिल उसकी बात सुनने को लालायित हो उठता है। शायद दिल्ली का असल नाम दिल्ली न होकर दिलही रहा हो और वास्तविकता भी यही है कि दिल्ली भारत का दिल कहलाने का गौरव रखती है। यों तो हिन्दुस्तान में अनेक ऐतिहासिक स्थान, तीर्थ एवं वाणिज्य केन्द्र हैं जो अपनी-अपनी जगह अपना गौरव रखते हैं, मगर दिल्ली की बात जुदा ही है। सबसे पहले इसे किसने और कहां आबाद किया, यह सदा ही इतिहासकारों की खोज का विषय रहेगा, मगर जो कुछ भी इतिहास के पन्नों से और रिवायात से पता चलता है, चंद नगरों को छोड़कर, जिनका जिक्र रामायण और महाभारत में आता है, दिल्ली से पुराना और कोई नगर नहीं है। यदि दिल्ली का प्रारम्भ महाभारत-काल से मानें जब पांडवों ने खांडव वन दहन करके इंद्रप्रस्थ के नाम से इसे बसाया, तब भी इस बात को पांच हजार वर्ष व्यतीत हो गए। पांडवों ने भी न मालूम किस सायत में इसकी नींव रखी थी कि यहां की जमीन ने किसी को चैन से बैठने नहीं दिया। जो भी यहां का शासक बना, सुख की नींद सो न सका। यहां का तख्त सदा डगमगाता ही रहा। पुराने जमाने की बात को यदि जाने भी दें मगर अंग्रेजों जैसी शक्तिशाली सल्तनत भी, जिसमें सूरज कभी अस्त नहीं होता था, पूरे पैंतीस वर्ष भी यहां टिक न सकी। इस धरती की सिफत ही यह है कि

> "जिनके महलों में हजारों रंग के फानूस थे
> खाक उनकी कब्र पर है और निशां कुछ भी नहीं।"

बनना और बिगड़ जाना ही यहां का शेवा रहा है। क्या-क्या भयंकर जुल्म और गारतगरी के नजारे न देखे इस खत्ते जमीन ने जिनकी दास्तान सुनाने के लिए यहां के 11 मील लम्बे और 5 मील चौड़े क्षेत्र में फैले हुए खंडहर आज भी बेताब दिखाई देते हैं। न मालूम कितने लाख बेकस और बेजुबान लोगों के खून से यहां की जमीन तर हुई है और उनके सर धड़ से जुदा किए गए हैं।

इस दिल्ली की गुजरी दास्तान को जानने के लिए किसका दिल लालायित न होगा जिसमें एक बार नहीं सतरह बार उलट-फेर हुए और अब गणतंत्र राज्य की यह अठारहवीं दिल्ली है। तीन बार दिल्ली हिन्दू-काल में पलटी, बारह बार मुस्लिम काल में और दो बार ब्रिटिश काल में। दिल्ली की इस उलट-फेर पर अंग्रेजी भाषा में बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं; उर्दू में भी कई पुस्तकें मौजूद हैं, मगर हिन्दी में अभी तक कोई ऐसी पुस्तक देखने में नहीं आई जिससे यहां की यादगारों

का पता लग सके। इस कमी को पूरा करने के लिए 'दिल्ली की खोज' नाम की यह पुस्तक दिल्ली में रहने वालों और आने वालों के हाथों में पेश की जा रही है ताकि इसके पन्नों पर एक निगाह डालकर यहां की गुजरी दास्तान की कुछ वाकफियत हासिल की जा सके।

इस पुस्तक को पांच भागों में बांटा गया है: 1. हिन्दू काल, 2. पठान काल, 3. मुगल काल, 4. ब्रिटिश काल, 5. स्वराज्य काल।

कार स्टीफन के कथनानुसार अब से करीब पैंतीस सौ वर्ष पूर्व महाराज युधिष्ठिर ने यमुना के पश्चिमी किनारे पर पांडव राज्य की नींव डाली थी और इंद्रप्रस्थ इसका नाम रखा था। महाराज युधिष्ठिर के तीस वंशजों ने इंद्रप्रस्थ पर राज्य किया। तत्पश्चात् राजद्रोही मंत्री विस्रवा ने राज्य पर कब्जा कर लिया। उसके वंशज पांच सौ वर्ष राज्य करते रहे। उसके बाद गौतम वंश ने राज्य किया जिनमें से सरूपदत्त ने, जो शायद कन्नौज राज्य का लेफ्टिनेंट था, एक शहर बसाया जिसे उसने अपने राजा डेलू के नाम पर दिल्ली नाम दिया। गौतम वंश के पश्चात धर्मधज या धरिधर के वंशजों ने राज्य किया जिसके अंतिम राजा को राजा कोल ही ने परास्त किया और वह उज्जैन के राजा से परास्त हुआ। उज्जैन के राजा से राज्य जोगियों के हाथ में चला गया जिसका राजा समुद्रपाल था। जोगियों के बाद अवध के राजा भैराइच आए और उनके पश्चात फकीर वंश वाले। फकीर वंश से राज्य बेलावल सेन को मिला जिसे सिवालक के राजा देवसिंह कोल ही ने परास्त किया। देवसिंह को अनंगपाल प्रथम ने परास्त करके दिल्ली पर कब्जा कर लिया और तोमर वंश की बुनियाद डाली। अनंगपाल प्रथम ने 731 ई० में दिल्ली को फिर से बसाया। उसके वंशज अनंगपाल द्वितीय ने 1052 ई० में दिल्ली को फिर से आबाद किया। करीब 792 वर्ष तक दिल्ली उत्तरी भारत की राजधानी नहीं रही। यह काल उज्जैन के राजा विक्रमादित्य से लेकर, जिसने कहा जाता है कि दिल्ली पर कब्जा किया था, अनंगपाल द्वितीय के काल तक आता है।

चौहानों ने तोमर वंश के अंतिम राजा को 1151 ई० में परास्त किया और जब चौहानों का अंतिम राजा पृथ्वीराज, जिसे रायपिथौरा भी कहते हैं, उत्तर भारत का सर्वशक्तिशाली राजा बना तो उसने महरौली में रायपिथौरा का किला बनाया। आखिर 1191 ई० में दिल्ली को मुसलमानों ने कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा फतह कर लिया और हिन्दुओं का राज्य सदा के लिए समाप्त हो गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक के बाद खानदाने गुलामा के आठ बादशाह किला रायपिथौरा में हकूमत करते रहे। लेकिन बलबन के पोते कैकबाद ने, जो दसवां बादशाह था, किलोखड़ी को राजधानी बनाया जिसका नाम नया शहर पड़ा। जलालउद्दीन खिलजी के भतीजे अलाउद्दीन खिलजी ने, जो अपने चचा की जगह दिल्ली के तख्त पर बैठा,

कुछ अर्से किला रायपिथौरा में राज्य करके सीरी में एक किला बनाया और सीरी राजधानी बन गई। गयासुद्दीन तुगलक राजधानी को सीरी से हटा कर तुगलकाबाद ले गया। उसके लड़के ने आदिलाबाद आबाद किया और किला रायपिथौरा तथा सीरी को एक करके शहर का नाम जहांपनाह रखा। उसके बाद फीरोजशाह तुगलक ने फीरोजाबाद आबाद किया और उसे राजधानी बनाया। उसके बाद खानदाने सैयद आया। इसके पहले बादशाह ने खिजराबाद आबाद किया और उसके लड़के ने मुबारकाबाद। इसके बाद लोदी खानदान आया। बहलोल लोदी ने सीरी में हकूमत की मगर उसका लड़का सिकन्दर लोदी राजधानी को दिल्ली से आगरे ले गया। बाबर ने इसे परास्त किया और हुमायूं ने पुराने किले को दीनपनाह नाम देकर अपनी राजधानी बनाया। हुमायूं को शेरशाह सूरी ने परास्त किया और 14 वर्ष तक उसे हिन्दुस्तान में आने नहीं दिया। शेरशाह ने शेरगढ़ बनाया और दिल्ली का नाम शेरशाही रखा। 1546 ई० में उसके लड़के सलीम शाह ने यमुना के टापू पर सलीमगढ़ का किला बनाया और इसी नाम से राजधानी बनाई।

1555 ई० में हुमायूं ने पठानों को पराजित किया मगर छः मास बाद दीनपनाह में उसकी मृत्यु हो गई। हुमायूं के बाद अकबर प्रथम आया। उसने आगरे को राजधानी बनाया। उसके लड़के जहांगीर ने भी आगरे को राजधानी रखा। उसकी मृत्यु के बाद शाहजहां तख्त पर बैठा। उसने दिल्ली को राजधानी बनाया जो अंग्रेजों के आने तक मुगलों की राजधानी रही। 11 सितम्बर, 1803 को अंग्रेजों ने दिल्ली फतह कर ली। अंग्रेजों ने पहले कलकत्ता को राजधानी बनाया मगर 1911 ई० से दिल्ली फिर से राजधानी बनी जहां अंग्रेज 15 अगस्त, 1947 तक राज्य करते रहे। 15 अगस्त से दिल्ली स्वतंत्र भारत की राजधानी बन गई।

अभी हाल में कांगड़ी भाषा में लिखित एक राजावली नामक हस्तलिखित पुस्तक मिली है जिसमें महाभारत-काल के पश्चात दिल्ली पर जितने राज्य-वंशों ने राज्य किया, उनका वर्णन दिया है। उसके अनुसार महाराज युधिष्ठिर के पश्चात उनके तीस वंशजों ने 1,745 वर्ष 2 मास और 2 दिन राज्य किया। इसके पश्चात मंत्री विस्रवा के चौदह वंशजों ने पांच सौ वर्ष पांच मास छः दिन राज्य किया। इसके पश्चात वीरबाहू के 16 वंशजों ने 420 वर्ष 10 मास 14 दिन राज्य किया। इसके पश्चात ढुंडाहराय के नौ वंशजों ने 360 वर्ष 11 मास 13 दिन राज्य किया। इसके पश्चात समुद्रपाल राजा हुआ। इसके 16 वंशजों ने 405 वर्ष 5 मास 19 दिन राज्य किया। इसके पश्चात तलोकचंद राजा बना। इसके दस वंशजों ने 119 वर्ष 10 मास 29 दिन राज्य किया। फिर हरतप्रेम राजा बना जिसके चार वंशजों ने 49 वर्ष 11 मास 10 दिन राज्य किया।

हरतप्रेम वंश के अन्त पर बहीसेन राजा बना जिसके 12 वंशजों ने 158 वर्ष 9 मास 7 दिन राज्य किया। इसके पश्चात दीपसिंह आया जिसके छः वंशजों ने 104 वर्ष 6 मास 24 दिन राज्य किया।

दिल्ली पर अंतिम हिंदू राजपरिवार रायपिथौरा का था जिसे पृथ्वीराज कहते थे। वह अपने खानदान का अंतिम राजा था। पिथौरा वंश के पांच राजाओं ने 85 वर्ष 8 मास 23 दिन राज्य किया। इसके पीछे दिल्ली में मुसलमानों का राज्य आ गया जिनके 51 राजाओं ने 778 वर्ष 2 मास 11 दिन राज्य किया। 11 सितम्बर, 1803 से 14 अगस्त, 1947 तक अंग्रेजों ने राज्य किया।

इतिहास की दृष्टि से दिल्ली में अट्ठारह बार परिवर्तन हुए जो निम्न प्रकार हैं :—

हिन्दू काल की तीन दिल्ली

(1) पांडवों की दिल्ली—इंद्रप्रस्थ।
(2) राजा अनंगपाल की दिल्ली—अनंगपुर अथवा अड़गपुर।
(3) रायपिथौरा की दिल्ली—महरौली।

मुस्लिम काल की बारह दिल्ली

(1) किला रायपिथौरा (महरौली)—गुलाम बादशाहों की दिल्ली।
(2) किलोखड़ी या नया शहर—कैकवाद की दिल्ली।
(3) सीरी—अलाउद्दीन खिलजी की दिल्ली।
(4) तुगलकाबाद—गयासुद्दीन तुगलक की दिल्ली।
(5) जहांपनाह—मोहम्मद आदिलशाह की दिल्ली।
(6) फीरोजाबाद—फीरोजशाह तुगलक की दिल्ली।
(7) खिजराबाद—खिजरखां की दिल्ली।
(8) मुबारकाबाद अथवा कोटला मुबारकपुर—मुबारकशाह की दिल्ली।
(9) दीनपनाह—मुगल बादशाह हुमायूं की दिल्ली।
(10) शेरगढ़—शेरशाह सूरी की दिल्ली।
(11) सलीमगढ़—सलीमशाह सूरी की दिल्ली।
(12) शाहजहांबाद अथवा दिल्ली—मुगल सम्राट शाहजहां की दिल्ली।

ब्रिटिश काल की दो दिल्ली

(1) सिविल लाइन्स—कश्मीरी गेट से निकल कर जो इलाका आजादपुर तक चला गया है।
(2) नई दिल्ली।

स्वराज्य काल की दिल्ली
अंग्रेजों की बसाई नई दिल्ली।

हिन्दू काल की दिल्ली की वाकफियत कम-से-कम है। जो कुछ भी वाकफियत इतिहास और रिवायात से प्राप्त है, उसके अनुसार सबसे पहली दिल्ली वह है जिसे पांडवों ने खांडव बन जला कर इंद्रप्रस्थ नाम से बसाई।

एक जमाना ऐसा भी आया कि हजार या आठ सौ वर्ष तक दिल्ली का नाम इतिहास के पन्नों से ही उड़ गया। इंद्रप्रस्थ के बाद दिल्ली की बाबत जब सुनने में आया तो वह राजपूतों की दूसरी दिल्ली थी। दिल्ली का असल इतिहास शुरू होता है पृथ्वीराज चौहान के काल से जब हिन्दुओं की तीसरी और आखरी दिल्ली बनी। यह बात 1200 ई० के करीब की है।

इसके बाद जब पृथ्वीराज को मोहम्मद गोरी ने परास्त कर दिया तो पठान काल शुरू हो जाता है। पठानों ने सवा तीन सौ वर्ष दिल्ली पर राज्य किया और आठ बार दिल्ली बसाई। ये सदा एक दिल्ली को तोड़कर दूसरी बसाते रहे। इसलिए इन्होंने जो इमारतें बनाईं, उनमें अधिक सामग्री एक दिल्ली की दूसरी में लगती रही।

सोलहवीं सदी के शुरू में हिन्दुस्तान में मुगल आए। हुमायूं ने लोदियों को शिकस्त देकर दिल्ली अपने कब्जे में कर ली और एक नई दिल्ली की बुनियाद डाली जो मुगलों की पहली दिल्ली थी, मगर पठानों के सूरी खानदान ने फिर जोर पकड़ा और कुछ अर्से के लिए हुमायूं को हिन्दुस्तान से बाहर निकालकर पठानों की दो और दिल्लियों का इजाफा कर दिया। मगर ये बहुत अर्से टिक न सके और हुमायूं ने इन्हें शिकस्त देकर फिर से दिल्ली पर अपना कब्जा कर लिया।

हुमायूं के बाद अकबर और जहांगीर दो बड़े मुगल सम्राट हुए जिन्होंने मुगलिय सल्तनत को हिन्दुस्तान में फैलाया। ये आगरे में राज्य करते रहे, लेकिन जहांगीर के बाद जब शाहजहां गद्दी पर बैठा तो उसने दिल्ली को फिर से राजधानी बना लिया और मौजूदा पुरानी दिल्ली को बसाया जो मुगलों की दूसरी दिल्ली थी। इसे सवा तीन सौ वर्ष हो गए।

मुगलों की हकूमत 1857 ई० के गदर तक चली। चली तो वह असल में औरंगजेब के लड़के बहादुरशाह प्रथम के जमाने तक; क्योंकि उसके बाद तो मुगलों का जवाल ही शुरू हो गया और मोहम्मदशाह के जमाने में नादिरशाह के आक्रमण से तो ऐसा कड़ा धक्का लगा कि फिर मुगल पनप न पाए। 1757 ई० और 1857 ई० के बीच मुगलों की सल्तनत नाममात्र की ही रह गई थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपना पूरा अधिकार कायम कर लिया था। मसल मशहूर थी—"सल्तनत शाहआलम, अज दिल्ली ता पालम" अर्थात् आठ दस मील के घेरे में शाहआलम की सल्तनत

रह गई थी। आखिर 1857 ई० के गदर में मुगल सल्तनत का खात्मा हुआ और ईस्ट इंडिया कम्पनी की जगह अंग्रेजों की हुकमत कायम हो गई।

1803 ई० से 1947 ई० तक करीब एक सौ चवालीस वर्ष अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान पर पूरे जोर-शोर के साथ हुकूमत की, मगर 1911 ई० में दिल्ली को राजधानी बना कर वह भी सुख की नींद सो न सके और दो दिल्लियों को बना कर वह भी हिंद से सदा के लिए बिदा हो गए।

1947 ई० से स्वराज्य काल शुरू होता है। गणतंत्र राज्य की दिल्ली अंग्रेजों की बसाई नई दिल्ली में ही कायम हुई है, मगर यह कहलाएगी अठारहवीं दिल्ली।

1911 ई० से, जब अंग्रेजों ने दिल्ली को राजधानी बनाया, अब तक इन बावन वर्षों में दिल्ली में क्या-क्या तबदीलियां हुईं, इस पर एक निगाह डाल लेना दिलचस्पी से कुछ खाली न होगा।

दिल्ली का जिला सबसे पहले 1819 ई० में बना था। इसमें उत्तर और दक्षिण के दो परगने थे। उस वक्त तहसील सोनीपत जिला पानीपत का भाग थी और बल्लभगढ़ का बेशतर हिस्सा एक खुद मुखतार रियासत थी। गदर के कोई दस वर्ष पूर्व यमुना के पश्चिमी किनारे के करीब 160 गांवों को दिल्ली जिले में शामिल करके उसे पश्चिमी परगना बनाया गया था। लेकिन गदर के बाद उन्हें फिर से उत्तर प्रदेश में मिला दिया गया जिसका नाम उस वक्त उत्तर पश्चिम सूबा था। 1861 ई० के बाद इसमें दो तहसीलें रहीं—बल्लभगढ़ और सोनीपत, लेकिन 1912 ई० में जब दिल्ली का अलहदा सूबा बनाया गया तो सोनीपत को रोहतक जिले में मिला दिया गया और बल्लभगढ़ तहसील का बड़ा भाग गुड़गांव जिले में मिला दिया गया। 1915 ई० में गाजियाबाद तहसील के 65 गांव दिल्ली में शामिल किए गए।

इस जिले की सबसे मुख्य वस्तु यहां की पहाड़ी है जो अरावली पर्वत का अंतिम सिलसिला है। यह सिलसिला वजीराबाद में जाकर समाप्त होता है जो यमुना नदी के किनारे है। यह दरिया के साथ-साथ शाहजहांबाद को घेरता हुआ चला गया है और नई दिल्ली के पश्चिमी छोर तक पहुंच गया है जिसके एक ओर सरकारी दफ्तर और राष्ट्रपति भवन बने हुए हैं। यहां से यह सिलसिला महरौली तक चला गया है जहां जाकर उसकी अनेक शाखाएं हो गई हैं जिनमें से कुछ गुड़गांव को चली गई हैं और कुछ दरिया के पश्चिम तक पहुंच जाती हैं। उनमें से एक पर तुगलकाबाद का किला बना हुआ है। इस प्रकार दरिया और पहाड़ी के बीच एक त्रिकोण बना हुआ है जिसका एक कोण वजीराबाद, दूसरा तुगलकाबाद और तीसरा महरौली है। इसी त्रिकोण के बीच के क्षेत्र में विभिन्न दिल्लियों के बेशुमार भग्नावशेष दिखाई देते हैं जिन्हें खंडहरात कहा जाता है। महरौली और तुगलकाबाद के

इलाके को कोही, यमुना के साथ वाले इलाके को खादर, नहरी इलाके को बांगर और नजफगढ़ झील के इलाके को डाबर कहकर पुकारते हैं। नजफगढ़ झील का पानी एक नाले के द्वारा यमुना नदी में जाकर मिल जाता है।

दिल्ली भारत के सबसे छोटे सूबों में से है जिसकी अधिक-से-अधिक लम्बाई 33 मील और अधिक-से-अधिक चौड़ाई 30 मील है। इसका कुल क्षेत्रफल केवल 573 वर्गमील है।

गदर के बाद से 1912 ई० तक, जब दिल्ली का एक अलग सूबा बना, और उसके भी बहुत अर्से बाद तक इसका न तो कोई खास राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास हो पाया और न ही यहां की आबादी बहुत बढ़ पाई।

सियासी लिहाज से पहली बार 1905-6 ई० में बंग-विच्छेद के कारण यहां देशभक्ति की एक लहर उठी और स्वदेशी की तहरीक ने कुछ ज़ोर पकड़ा, मगर वैसे गदर के बाद यहां के लोग कुछ ऐसे सहम गए थे कि अधिकतर अंग्रेजों की खुशनूदी हासिल करने में ही लगे रहते थे। यही कारण है कि दिल्ली कोई मार्के के नेता पैदा न कर सकी, खासकर हिन्दुओं में। ले देकर दिल्ली ने दो ही नेता पैदा किए—एक हकीम अजमल खां साहब और दूसरे आसफ अली साहब। वरना और तो जितने थे, बाहर वाले थे। गदर के बाद शुरू-शुरू में तो अंग्रेज हिन्दुओं को बढ़ावा देते रहे और मुसलमानों को उन्होंने दबाकर रखना चाहा। मगर वह सदा बरतते थे फूट डालकर राज्य करने की नीति, इसलिए जब हिन्दुओं में कुछ जागृति आती दिखाई दी तो उन्होंने मुसलमानों को बढ़ावा देना शुरू कर दिया। इस फूट का ज़ाहिर रूप दिखाई देता था कौमी दंगों की शक्ल में जो दिल्ली में रामलीला और ईद के मौकों पर अक्सर होते थे।

मगर यह बात नहीं है कि दिल्ली में आज़ादी का जज़बा बिल्कुल रहा ही न हो। उसका पहला प्रदर्शन हुआ 1912 ई० में जब लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। मगर यह काम था क्रांतिकारियों का। इसलिए आम जनता इससे उभर न सकी। दिल्ली में सियासी तहरीक का असल आगाज हुआ 1914 ई० में युद्ध प्रारम्भ होने के बाद। होम रूल आन्दोलन से और फिर 1919 ई० के गांधीजी के रौलेट कानून के विरुद्ध आन्दोलन से उस वक्त से जो लहर चलनी शुरू हुई, वह 1947 ई० में स्वराज्य लेकर ही बंद हुई। दिल्ली फिर सियासी मैदान में किसी अन्य प्रान्त से पीछे न रही।

रही बात आर्थिक विकास की। सदियों से विभिन्न हकूमतों की राजधानी रहने के कारण यहां दस्तकार और नौकरी पेशा लोग ही अधिक रहते आए हैं। इसलिए दिल्ली तिजारत का कोई बड़ा केन्द्र नहीं रही। बेशक यह अर्से से कपड़े की एक बड़ी मंडी रही है और पंजाब तथा उत्तर प्रदेश की कपड़े की ज़रूरत को पूरा करती रही है। यहां कपड़े के दो-तीन कारखाने भी लगे, मगर शुरू में यहां कोई बड़े कल

कारखाने न थे। मुकामी ज़रूरियात को पूरा करने के लिए यहां अनाज और किराने का काम भी अच्छे पैमाने पर होता था। मगर यहां के मुसलमान अधिकतर कारीगर पेशा थे और हिन्दू अधिकतर तिजारत पेशा या नौकरी पेशा। शुरू में सरकारी मुलाज़मत में मुसलमानों को कम लिया जाता था। उन पर विश्वास कम था इसलिए हिन्दू अधिक रखे जाते थे। तिजारत तो हिन्दुओं के हाथ में थी ही। यह मुसलमानों के हाथों में तब बढ़ी जब पंजाबी मुसलमान दिल्ली में आए और सदर बाजार को उन्होंने अपनी मंडी बनाया। वरना दिल्ली का मुसलमान तो अधिकतर कारीगर-दस्तकार ही रहता आया है। यहां की बाजवाज दस्तकारियां बहुत मशहूर थीं, मसलन गोटे-किनारी का काम, जरदोज़ी का काम, कसीदाकशी और छपाई का काम। हाथसिले कुरतों और अंगरखों तथा टोपियों पर बड़ी बारीक कढ़ाई का काम यहां आम था। फिर ठप्पागीरी, कंदलाकशी, सोने-चांदी के ज़ेवर और बरतन व वर्क बनाने का काम, सादेकारी, मीनाकारी, मुलम्मेसाज़ी, पटवागीरी, यह दसियों किस्म की दस्तकारियां यहां थीं। ज़ेवरात ने इतनी तरक्की की थी कि शरीर के हर भाग के लिए कई-कई किस्म के अलग-अलग ज़ेवर होते थे, मसलन अंगुलियों में अंगूठी, छल्ले, आर्सी, पंचांगला; कलाई पर चूड़ी, कड़े, पछेली, दस्तबंद नौगरी, पहुंची, कंगन, कंगना, छन; बाजुओं पर भुजबंद, जौशन; गले में गोप हंसली, जंजीर, कंठी, दुलडा, तिलड़ा, पंचलड़ा, सतलड़ा, नौलड़ा, हारजौं, हार पटड़ी, हारलोंग, हार नौलखा, गुलुबंद, तोड़ा, हैंकल, बद्दी, टिकड़ा, माला, सीतारामी चंद्रकला, चौरीतांसु, टीप; कानों में बाली, पत्ते, करनफूल, झुमके, कांटे, मगर चौगानी, लोंग, बाले; सिर पर शीशफूल, बिन्दी बेना, झूमर, चोटी, बोलड़ा; कमर में तगड़ी; पैरों में पायजेब, झाझंन, रमझोले, चूड़ी, कड़े, तोड़े, लच्छे, सूत, पायल टांक; पैर की उंगलियों में बिछवे, चुटकी, छल्ले; नाक में भोगली, लोंग, नथ और न जाने क्या-क्या सैकड़ों ही किस्में थीं गहनों की जो हज़ारों लोगों की रोज़ी का ज़रिया था। मर्द भी गहने पहना करते थे और देवता भी। कई मर्द बाले, जंजीर, गोप, कंठा, जौशन, आदि अक्सर पहनते थे। तांबे, कांसा और पीतल के बरतन भी यहां बनते थे। काठ और हाथीदांत का काम यहां का मशहूर था। फिर नक्काशी का काम, चित्रकारी का काम भी होता था। इत्र और तेल फुलेल, सुरमा भी यहां की खास चीज़ें थीं। सलीमशाही जूता तो यहां की खास दस्तकारी थी ही। मगर उन दिनों आपा-धापी न थी। लोग थोड़े पर ही कनाअत करते थे। यहां का रिवाज था—'दिये जले और मर्द मानस घर भले'। दिये जले से बाजार बंद हो जाता था और लोग घर चले जाते थे। व्यापारी थोड़े नफे से ही संतुष्ट रहते थे। उसी कमाई में तीज-त्योहार, लेन-देन, ब्याह-शादी, घर बनाना, दान-पुण्य सब हो जाता था। नौकरियां उन दिनों अधिकतर कमेटी और कचहरी की, रेल और तारघर की या दफ्तरों की हुआ करती थीं। राजधानी बनी तो सरकारी दफ्तरों में शुरू में अधिकतर बंगाली

थे जो कलकत्ता से आए थे। उनके लिए तिमारपुर में कौलोनी बनी थी। मगर वह अधिक समय तक यहां न रह सके। यहां जो-कुछ आर्थिक उन्नति हुई है, वह 1914ई० के युद्ध के बाद से या फिर देश-विभाजन के बाद से।

सांस्कृतिक लिहाज से दिल्ली सदा ही एक तहज़ीब और तमद्दुन का मरकज रही है जिस पर इसको नाज था। यही बात यहां की ज़ुबान के लिए भी है। भाषा यहां की उर्दू थी जो दिल्ली की पैदायश मानी जाती है और जिसका अर्थ है लशकरी। फौजों में हर प्रान्त और सूबे के सिपाही भरती होते थे और अरब भी उसमें थे। यहां की प्राचीन भाषा ब्रज भाषा (खड़ी बोली) थी। फारसी और ब्रज भाषा के संयोग से उर्दू बन गई जिसमें दीगर ज़ुबानों के अलफाज भी शामिल हो गए। यह मुस्लिम भाषा कैसे कही जाती है, समझ में नहीं आता। बेशक मुस्लिम काल की ईजाद यह ज़रूर है। ज़ुबान यहां की निहायत शुस्ता और सलीस थी। लखनऊ और दिल्ली में इस पर सदा होड़ रहती थी। कुछ अंशों में लखनऊ फोकियत ले जाता था तो कुछ में दिल्ली। इसमें हिन्दू-मुस्लिम का कोई ख्याल था ही नहीं। हिन्दू भी उर्दू ही पढ़ते थे। हिन्दी का अधिक रिवाज हुआ आर्यसमाजियों के आने से। मुगलों की भाषा फारसी थी, मगर उन्होंने भी उर्दू को अपनाया और शेर ओ सुखन को उर्दू में बढ़ावा दिया। ग़ालिब को कौन नहीं जानता। ज़ौक, मीर, तकी ये सब दिल्ली वाले ही थे। अक्सर अदबी मजलिसें हुआ करती थीं। बड़े-बड़े मुशायरे होते थे। गाने-बजाने का भी यहां अच्छा शौक था, मगर बाज़ारू गाने नहीं। शादियों पर महफिलें हुआ करती थीं और बारात के सामने मुजरे। मगर सब बातें कायदे-करीने के साथ होती थीं। अदब और लिहाज का ख्याल रखा जाता था। सदियों से मंझते-मंझते दिल्ली की एक खास तहज़ीब बन गई थी। दिल्ली वालों का रहन-सहन, अदब-आदाब, नशिस्त ओ बरखास्त, बोल-चाल, तीज-त्योहार, मेले-ठेले और तमाशा, इन सब में कुछ ऐसा सलीका और करीना था कि दिल्ली की तहज़ीब एक मिसाल, एक नमूना समझी जाती थी। सब में मोहब्बत थी, खलूस था, भाईचारा था। हिन्दू-मुसलमान का चोली-दामन का साथ है, यह कहावत आम थी। एक दूसरे के सुख-दुःख में, शादी-गमीं में, मेलों और त्योहारों में शरीक होते थे। यह आपस की फूट और कट्टरपन तो बहुत बाद का है जो अधिकतर सियासतदानों की देन है। लोग मोहल्लों में रहते थे। मुशतर्का खानदान तो उन दिनों होते ही थे, मगर मोहल्ला भर एक खानदान की तरह रहता था। मोहल्ले की बहू-बेटी सबकी बहू-बेटी मानी जाती थी। हर मोहल्ले का कोई-न-कोई बुज़ुर्ग चौधरी होता था जिसका सब को अदब होता था। उम्र में बाप से बड़े सब ताऊ कहलाते थे और छोटे चाचा। फिर औरतों में ताई, चाची, भाभी, बुआ, मौसी कहकर पुकारा जाता था। कोई किसी का नाम तो लेता ही न था। यहां तक कि भंगन, नायन, कहारी को भी रिश्ते के नाम से पुकारते थे। मोहल्ले में जो भी बात करनी हुई, वह चौधरी साहब से पूछ

कर की जाती थी। मोहल्ले भर की रक्षा और इज्जत की जिम्मेदारी चौधरी साहब की होती थी। क्या मजाल जो कोई बहू बिना परदे के घर से निकल सके। वरना उसके मियां को डांट पड़ती थी और मियां की क्या मजाल जो बुजुर्ग का सामना कर सके। क्या मजाल जो कोई नौजवान गलत रास्ते चल सके। उसका मोहल्ले में रहना दूभर हो जाए। सबको अपने मोहल्ले की इज्जत और हुरमत का ख्याल था। क्या ज़माना था वह!

दिल्ली का लिबास भी जुदा ही था। मलमल और लट्ठे का कुर्ता, अक्सर कढ़ा हुआ और सलवट पड़ी हुई। धोती या मोरी और चूड़ीदार पायजामा, अंगरखा और दुपलड़ी टोपी, बगल में दुपट्टा या कंधे पर रूमाल, सलीमशाही जूता—यह थी अवाम की पोशाक। नंगे सिर, नंगे पैर घर से निकलना मायूब समझा जाता था। पगड़ी और साफे का भी रिवाज था और चोगा पहनने का भी। जौह-रियों की पगड़ी छज्जेदार होती थी। यहां के हज्जाम भी पगड़ी लगाते थे और कानमैलिये भी जिनकी पगड़ी लाल होती थी। हर बात में एक वजादारी थी। दुपलड़ी टोपी का स्थान लिया फैल्ट कैप ने और मुसलमान पहनने लगे फुंदनेदार टरकी टोपी। गोटे के कपड़े भी पहने जाते थे। किम्खाब के अंगरखे और चोगे बनते थे। फिर अचकन और कोटों का रिवाज़ हुआ। कोट पतलून और टाई कौलर का रिवाज तो बहुत देर से जाकर हुआ, वह भी वकीलों और डाक्टरों में अधिक था। लिबास में भी एक खास वजादारी थी।

खान-पान का भी एक ढंग था। बाज़ार में खाने का रिवाज कम था। चलते-फिरते खाना, दुकान पर खड़े होकर खाना अच्छा नहीं समझा जाता था। गोश्त की दुकानों को ढक कर रखते थे। हिन्दुओं के अहसास का ख्याल रखा जाता था। यहां की मिठाई और नमकीन भी खास थे। नगौरी पूरी और बेड़मी, हलवा यहां का मशहूर था। इसी तरह घंटेवाले का कलाकंद और सोहन हलवा खास था। यहां बीसियों किस्म की मिठाई बनती थीं, मसलन लड्डू, पेड़ा, इमरती, घेबर, फेनी, अंदरसे की गोली, मोती पाग आदि बहादुरशाही सेब बादशाहपसंद मिठाई थी। दो चीज़ यहां की और खास होती थीं—गजक और दौलत की चाट। बरसात में तिलंगनी भी खास होती थी।

दिल्ली में सौदा सुलफ बेचने में भी शायस्तगी बरती जाती थी। खोंचेवाला बड़े मीठे सुर में आवाज़ लगाकर सौदा बेचता था। उसकी तरह-तरह की बोलियां होती थीं। बरसात का मौसम है। रात का समय है। खजूर बेचनेवाला रात को सुरीली आवाज में कहेगा—'शीदी गौहर के बाग का मेवा बना'। हर चीज के लिए कोई लच्छेदार बोली जरूर होती थी। चीज को उसके नाम से न पुकारकर

दूसरी ही तरह उसे पुकारा जाता था जिसे समझने वाला ही समझ सके। मशक का पानी कटोरा बजा कर पिलाया जाता था।

दिल्ली की सवारियां भी जुदा ही थीं। हवादार पालकी, नालकी, तामझाम बादशाही जमाने की सवारियां थीं। पहले परदा न केवल होता था मुसलमानों में, बल्कि हिन्दुओं में भी परदे का रिवाज था। औरतें एक जगह से दूसरी जगह परदा डालकर डोली में जाती थीं जिसे कहार उठाते थे। फिन्नस और तामझाम भी चलते थे। इन्हें भी कहार उठाते थे। सवारी में बैल की मझोली थी या घोड़े का इक्का चलता था। तांगे तो 1911 ई० के दरबार के समय दिल्ली आए। रईसों के यहां तरह-तरह की सवारियां होती थीं। घोड़े रखने का बहुत रिवाज था। आम तौर से एक घोड़े की सवारी में फिटन, पालकी, बैगनेट, दुपहैया आदि होती थीं। जोड़ी सवारी में पालकी, फिटन और लेंडो चलती थी। एक-दो रईस चौकड़ी भी रखते थे। शहर में हाथी आने की इजाजत नहीं थी। छः घोड़ों की गाड़ी के लिए इजाजत लेनी पड़ती थी। सबसे पहली मोटर श्री कृष्णदास गुड़वालों के यहां आई थी जो बहुत ऊंची और खुली हुई थी। धूम मच गई थी उसे देखने को! अब तो शायद दो चार के यहां ही अपना गाड़ी-घोड़ा होगा।

यहां के रस्मों रिवाज भी जुदा ही किस्म के थे। शादियां यहां पंद्रह-पंद्रह दिन तक होती रहती थीं। कई-कई दिन तक दावतें और महफिलें चलती थीं। अब शादी होती है चंद घंटों में, खड़ा खेल फर्रुखाबादी।

यहां के मेले भी अपनी किस्म के जुदा थे। दिल्ली में मेलों की भरमार रहती थी। चैत्र आया कि शुरू में माता पूजी गई। बुढो माता का मेला और बराहियों का मेला होता था। फिर आए नौरात्रे और देवी की मान्यता होने लगी। गणगौर पुजने लगी। कालकाजी पर शहरी और देहातियों का भारी मेला होता था। सप्तमी-अष्टमी को गांववालों का और नौमी को शहरियों का जो ओखले में यमुना का स्नान करके आते थे। रामनौमी को राम का जन्मोत्सव मनाया जाता था।

बैसाख में बैसाखी नहान तो होता ही था, और भी कई मेले होते थे। दिल्ली का जेठ का दशहरा मशहूर था। हजारों जाट-जाटनी अपने-अपने लठ लिए यमुना स्नान को आते थे। अब तो यह बंद ही हो गया। एकादशी के दिन खरबूजों के ढेर लगे रहते थे। पंखे और चीनी के चंदे-बताशे खूब बिकते थे।

आषाढ़ की शुक्ला दूज को रथयात्रा का मेला बड़ी धूमधाम से होता था। जगन्नाथजी की सवारी निकलती थी। फूलहार खूब बिकते थे। फिर पूर्णिमा को गुरु की पूजा तो होती ही थी। शाम को झंडेवालों पर पवन परीक्षा का मेला होता था। इसी महीने परेड के मैदान में नरसिंह चौदस का मेला लगता था।

श्रावण में तीजों का मेला झंडेवालों पर फिर लगता था। खूब झूले झूले जाते थे। फूलवालों की सैर की नफीरी जब बजती थी तो कुतुब की सैर की तैयारियां होने लगती थीं। दरगाह और योगमाया पर पंखे चढ़ते थे। पूर्णिमा के दिन श्रावणी का मेला होता था।

भादों में जन्माष्टमी दो दिन बड़ी धूमधाम के साथ मनाई जाती थी। फिर गणेश चौथ की बारी आती थी जिसमें गणेशजी की पूजा की जाती थी। डंडे खेले जाते थे जिसे चौकन्नी कहते थे। आम के पापड़, चम्पे दाना जैसी खास चीजें बिकती थीं। फिर अनन्त चौदस का मेला और कई मेले इस महीने में जैनियों के होते थे—अठैया, धूप दसमी आदि। अनन्त चौदस को जौहरी अपने बहुमूल्य जेवरात पहनकर पानी भरने जाते थे।

आसौज में सांझियां और झांकियां निकलती थीं और फिर 11 दिन रामलीला का जोर रहता था। दसहरे के दिन बड़ी धूमधाम रहती थी। पूर्णमासी को शरत मनाई जाती थी।

कार्तिक में दीवाली की तैयारी होती थी। एकादशी से ही मिट्टी के खिलौने निकलने शुरू हो जाते थे। मिट्टी के छोटे-बड़े दीये रोशनी करने को खांड के खिलौने और खील की बिक्री खूब होती थी। धनतेरस को बरतन बिकते थे। फिर छोटी दीवाली, बड़ी दीवाली, अन्नकूट और भाईदूज मनाते थे। इससे निपट कर गढ़मुक्तेश्वर गंगा स्नान को चल दिए। वह भी एक अजीब नजारा होता था। सैकड़ों छकड़े, मझोली, रथ गांववालों के जाते थे। तांते लग जाते थे, फिर इक्के-गाड़ी वगैरा।

मंगसिर और पौस के महीने ज़रा शान्ति के रहते थे, मगर माघ में मकर संक्रांति खूब धूम से होती थी और फिर फागुन आया कि फाग की तैयारियां हुईं। ढोलक बजने लगी। रातों को स्वांग होते थे। धुलहंडी के दिन कम्पनीबाग में बड़ा भारी मेला भरता था। उस दिन आम के बौर को हाथ में मलने से सांप नहीं काटता, यह रिवायत थी।

हिन्दुओं की तो 'आठ वार और नौ त्योहार' की पुरानी मसल है ही, मुसलमानों की भी ईद होती थी और ताजिये बड़ी धूमधाम से निकलते थे।

जैनियों और सिखों के मेलों का जोर धीरे-धीरे बढ़ा और ईसाइयों के त्यौहार तो अभी हाल में मनाए जाने लगे हैं। बेसक बड़े दिन और नए साल का जोर अंग्रेजों के जमाने में खूब रहता था। बुद्धपुर्णिमा भी कुछ वर्षों से शुरू हुई है।

लोगों को इमारतें बनाने का बहुत शौक था। अधिकतर मकान इकमंजिला बनते थे क्योंकि दिल्ली में उन दिनों जमीन की तंगी तो थी नहीं और मकान भी

निहायत कुशादा और हवादार होते थे। मुसलमानों में परदा अधिक होने के कारण जनाना मरदाना मकान अलहदा रहता था। हर मकान में महल, सराय हमाम, तहखाना और बैठने को बैठक होती थी।

मुगलों को बाग लगाने का भी बहुत शौक था। चुनांचे हर मकान के सहन में छोटा-मोटा बगीचा भी रहता था। वैसे दिल्ली में बड़े-बड़े आलीशान बाग थे। यहां की सब्जीमंडी का इलाका तो बागों से भरा,पड़ा था। आबपाशी के लिए नहर थी। पुरानी दिल्ली में शालामार बाग कड़ेखां, महलदार खां, शीदीपुरा, करौलबाग, गुलाबी बाग, नई दिल्ली में सुनहरी बाग, तालकटोरा बाग यह सब उसी जमाने की यादगार हैं। हर मकबरे के साथ एक बड़ा बाग, पानी की नहर और फव्वारे लगाना यह चीजें आम थीं। शाहजहां रोड पर जो लोदी बाग है वह लोदियों के मकबरे का ही हिस्सा है। ऐसे ही हुमायूं के मकबरे में और सफदरजंग मकबरे में बड़े-बड़े बाग हैं। चांदनी चौक में, जहां अब भागीरथ पैलेस है, पहले शमरू की बेगम का बाग था। महरौली में कई बाग थे जहां गर्मियों में बादशाह जाकर रहा करते थे। लाल किले के सामने बाग ही बाग थे। गर्ज दिल्ली बागों से भरी पड़ी थी। चारों ओर खूब सायदार वृक्ष लगे हुए थे और खूब वर्षा होती थी। दिल्ली में गर्मी तो खूब पड़ती ही थी, लू भी खूब चलती थी। इनसे निजात इन बागों के ही सहारे मिलती थी। सारे चांदनी चौक में 1912 ई० से पहले बीच में बड़े-बड़े सायदार वृक्ष लगे हुए थे और बीच की नहर को बद करके पटड़ी बना दी थी। 1912 ई० में डिप्टी कमिश्नर बीडन ने तमाम वृक्ष कटवा दिए, पटड़ी निकलवा दी और एक सड़क बनवा दी।

दिल्ली में सब्जी और फल भी बहुत कसरत से पैदा होते थे। महरौली की खिरनी और शीदी गोहर के बाग की खजूर मशहूर थी, लोकाट और शहतूत बहुतातायत से होता था। जामुन, बेर, गोंदनी, फालसे, कमरख, अमरूद और सरौली के आम जो कम्पनी बाग में खास कर लगते थे, काफी मिकदार में होते थे। देशी खरबूज और तरबूज, जो जमना की रेती में होते थे, खासे मशहूर थे, वैसे ही खीरे और ककड़ी। ककड़ी जितनी पतली हो, अच्छी मानी जाती थी। चुनांचे पतली ककड़ी की मुशाहबत लैला की उंगलियों से दी जाती थी। वह लौंग ककड़ी कहलाती थी।

यद्यपि दिल्ली राजधानी बन गई थी, मगर सरकारी दफ्तर यहां जाड़े के दिनों में ही रहते थे। गर्मी वे गुजारते थे शिमले में, इसलिए यहां की आबादी तेजी से बढ़ नहीं पाती थी। वह आने-जाने वाली बनी रहती थी। नई दिल्ली में शुरू-शुरू में पुरानी दिल्लीवाले अपने मकान बनाना पसंद ही नहीं करते थे क्योंकि बरसों तक वहां न कोई आबादी थी, न व्यापार। यही कारण है कि दिल्ली के शहरियों की बहुत कम जायदाद नई दिल्ली में बन सकी।

दिल्ली की आबादी बढ़ने लगी 1914 ई० से जब यूरोप का पहला युद्ध शुरू हुआ। उस जमाने में यहां की तिजारत बहुत बढ़ गई और लोग इधर-उधर से आकर यहां रहने लगे। आबादी के साथ-साथ यहां के मकान भी बढ़ने लगे, मगर किराया और महंगाई इतनी नहीं थी जो कंट्रोल लगाने की जरूरत पड़ती।

आबादी बढ़ने का अधिक जोर हुआ जब से सरकार ने शिमला जाना बंद कर दिया और सरकारी मुलाजिमों के लिए यहां उपनगर बनने लगे। उधर 1939 ई० का विश्व-युद्ध आ गया जिसने यहां की तिजारत और धंधों को बहुत बढ़ा दिया। साथ ही दिल्ली में इमारतें बनाने का काम भी बहुत बढ़ गया और कल-कारखाने भी बढ़ने लगे। मजदूरों की बस्तियां बनने लगीं। 1947 ई० के देश-विभाजन के बाद तो दिल्ली में आदमियों का टिड्डी दल ही आ गया। यहां की आबादी देखते-देखते दुगनी-तिगनी हो गई। न केवल शरणार्थी आए, बल्कि देश के हर हिस्से के लोग आकर यहां रहने लगे। नौबत यह पहुंची कि लोगों को जब रहने को मकान नहीं मिले तो हजारों की संख्या में उन्होंने झोपड़ियां खड़ी कर लीं। खोखे और सर ढकने को जो भी सामान मिला, उससे साया खड़ा कर लिया। वह भी न मिला तो पटड़ियों पर खुले में ही सोने लगे। सैकड़ों नई बस्तियां बन गईं और लाखों नए मकान जिनमें न कोई प्लैनिंग की बात थी, न नक्शे पास कराने की बात और न जमीन की मिल्कियत की बात रही। बस एक ही बात रही—

'सबै भूमि गोपाल की इसमें अटक कहां।
जाके मन में अटक है, वही अटक रहा।'

यहां की आबादी किस प्रकार बढ़ी, इसका अंदाजा नीचे के मरदुमशुमारी के आंकड़ों से लग सकेगा।

गदर के बाद यहां की आबादी मुश्किल से लाख-डेढ़ लाख थी।

ई० 1881 में म्यु० इलाके की	1.7 लाख		
„ 1891 „ „	2.0 लाख		
„ 1901 „ „	2.09 लाख	4.06	सारी दिल्ली की
„ 1911 „ „	2.25 लाख	4.44	„
„ 1921 „ „	2.48 लाख	4.88	„
„ 1931 „ „	3.48 लाख	6.36	„
„ 1941 „ „	5.22 लाख	9.18	„
„ 1951 „ „	9.15 लाख	17.44	„
„ 1961 „ „	20.61 लाख	26,58,606	

„ 1961 की आबादी के चार भाग हैं—20,61,752 नगर निगम की;

2,61,545 नई दिल्ली की; 36,105 दिल्ली छावनी की और 2,99,204 दिल्ली के 320 देहातों की। इन आंकड़ों को देखने से पता लगता है कि 1901 ई० और 1931 ई० के तीस वर्ष में जहां आबादी डेढ़ गुनी से कुछ अधिक बढ़ी, वहां 1931 ई० और 1961 ई० के तीस वर्ष में वह चौगुनी से भी अधिक हो गई। इसका कारण यही है कि सत्तर हजार प्रति वर्ष तो वैसे ही लोग बाहर से नए यहां आ जाते हैं और पच्चीस प्रतिशत के करीब आबादी स्वाभाविक बढ़ जाती है। अभी जो मास्टर प्लान बनकर तैयार हुआ है, उसके अनुसार तो अनुमान है कि यहां की आबादी अगले बीस वर्ष में पचास लाख को भी पार कर जाएगी।

इस बढ़ती आबादी ने दिल्ली की एक प्रकार से नहीं, अनेक प्रकार से काया ही बदल डाली है और आज इसे पहचानना कठिन हो गया है। इसका असर न केवल लोगों के रहन-सहन के तरीकों पर पड़ा है, बल्कि खान-पान, बोल-चाल लिबास और भाषा, वाणिज्य-व्यापार, रस्मों-रिवाज, मेलों और खेलों, तहजीब और तमद्दन सभी पर पड़ा है। गर्ज जिन्दगी का कोई शोबा ऐसा बाकी नहीं बचा है जिस पर इसका असर न पड़ा हो। जो यहां का पचास-साठ वर्ष पहले का रहने वाला है वह अपने को खोया-खोया-सा पाता है। वह समझ ही नहीं पाता कि वह अपनी पैदायशी जगह पर है या किसी दूसरी जगह पहुंच गया है। उसे तो सब कुछ एक सपना-सा दिखाई देता है। दिल्ली के पुराने बाशिंदे तो अब मुश्किल से दो तीन लाख ही होंगे, वरना अधिक आबादी अब नई है।

इस पुस्तक में जितना मसाला है, वह अधिकतर अंग्रेजी और उर्दू पुस्तकों से लेकर दिया गया है। मेरा कहने को इसमें नाममात्र ही है। जिन पुस्तकों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है उनके नाम ये हैं :—

(1) Notes on the Administration of the Delhi Province, (2) Census Report—1931, (3) Delhi Guide, (4) Delhi, (5) The Archeology & Monumental remains of Delhi by Carr Stephen, (6) Delhi—Past and present by H. C. Fanshawe, (7) वाकयातदार उलहकूमत, दिल्ली (लेखक—बशीरउद्दीन अहमद देहलवी—तीन भाग), (8) दिल्ली टाउन डायरेक्टरी और (9) Sikh shrines in Delhi.

इनके लेखकों का मैं आभारी हूं, जिनकी मदद से मैं हिन्दी में यह पुस्तक तैयार कर सका।

मैं श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार और श्री शोभालाल गुप्त, भूतपूर्व सहायक संपादक, हिन्दुस्तान का भी आभार प्रकट करना चाहता हूं जिन्होंने इसकी पांडुलिपि

दिल्ली की आबादी बढ़ने लगी 1914 ई० से जब यूरोप का पहला युद्ध शुरू हुआ। उस जमाने में यहां की तिजारत बहुत बढ़ गई और लोग इधर-उधर से आकर यहां रहने लगे। आबादी के साथ-साथ यहां के मकान भी बढ़ने लगे, मगर किराया और महंगाई इतनी नहीं थी जो कंट्रोल लगाने की जरूरत पड़ती।

आबादी बढ़ने का अधिक जोर हुआ जब से सरकार ने शिमला जाना बंद कर दिया और सरकारी मुलाज़िमों के लिए यहां उपनगर बनने लगे। उधर 1939 ई० का विश्व-युद्ध आ गया जिसने यहां की तिजारत और धंधों को बहुत बढ़ा दिया। साथ ही दिल्ली में इमारतें बनाने का काम भी बहुत बढ़ गया और कल-कारखाने भी बढ़ने लगे। मजदूरों की बस्तियां बनने लगीं। 1947 ई० के देश-विभाजन के बाद तो दिल्ली में आदमियों का टिड्डी दल ही आ गया। यहां की आबादी देखते-देखते दुगनी-तिगनी हो गई। न केवल शरणार्थी आए, बल्कि देश के हर हिस्से के लोग आकर यहां रहने लगे। नौबत यह पहुंची कि लोगों को जब रहने को मकान नहीं मिले तो हजारों की संख्या में उन्होंने झोपड़ियां खड़ी कर लीं। खोखे और सर ढकने को जो भी सामान मिला, उससे साया खड़ा कर लिया। वह भी न मिला तो पटड़ियों पर खुले में ही सोने लगे। सैकड़ों नई बस्तियां बन गईं और लाखों नए मकान जिनमें न कोई प्लैनिंग की बात थी, न नक्शे पास कराने की बात और न ज़मीन की मिल्कियत की बात रही। बस एक ही बात रही—

'सबै भूमि गोपाल की इसमें अटक कहां।
जाके मन में अटक है, वही अटक रहा।'

यहां की आबादी किस प्रकार बढ़ी, इसका अंदाजा नीचे के मरदुमशुमारी के आंकड़ों से लग सकेगा।

गदर के बाद यहां की आबादी मुश्किल से लाख-डेढ़ लाख थी।

ई० 1881 में	म्यु० इलाके की	1.7 लाख			
,, 1891	,,	,,	2.0 लाख		
,, 1901	,,	,,	2.09 लाख	4.06	सारी दिल्ली की
,, 1911	,,	,,	2.25 लाख	4.44	,,
,, 1921	,,	,,	2.48 लाख	4.88	,,
,, 1931	,,	,,	3.48 लाख	6.36	,,
,, 1941	,,	,,	5.22 लाख	9.18	,,
,, 1951	,,	,,	9.15 लाख	17.44	,,
,, 1961	,,	,,	20.61 लाख	26,58,606	

,, 1961 की आबादी के चार भाग हैं—20,61,752 नगर निगम की;

2,61,545 नई दिल्ली की; 36,105 दिल्ली छावनी की और 2,99,204 दिल्ली के 320 देहातों की। इन आंकड़ों को देखने से पता लगता है कि 1901 ई० और 1931 ई० के तीस वर्ष में जहां आबादी डेढ़ गुनी से कुछ अधिक बढ़ी, वहां 1931 ई० और 1961 ई० के तीस वर्ष में वह चौगुनी से भी अधिक हो गई। इसका कारण यही है कि सत्तर हजार प्रति वर्ष तो वैसे ही लोग बाहर से नए यहां आ जाते हैं और पच्चीस प्रतिशत के करीब आबादी स्वाभाविक बढ़ जाती है। अभी जो मास्टर प्लान बनकर तैयार हुआ है, उसके अनुसार तो अनुमान है कि यहां की आबादी अगले बीस वर्ष में पचास लाख को भी पार कर जाएगी।

इस बढ़ती आबादी ने दिल्ली की एक प्रकार से नहीं, अनेक प्रकार से काया ही बदल डाली है और आज इसे पहचानना कठिन हो गया है। इसका असर न केवल लोगों के रहन-सहन के तरीकों पर पड़ा है, बल्कि खान-पान, बोल-चाल लिबास और भाषा, वाणिज्य-व्यापार, रस्मों-रिवाज, मेलों और खेलों, तहजीब और तमद्दन सभी पर पड़ा है। गर्ज जिन्दगी का कोई शोबा ऐसा बाकी नहीं बचा है जिस पर इसका असर न पड़ा हो। जो यहां का पचास-साठ वर्ष पहले का रहने वाला है वह अपने को खोया-खोया-सा पाता है। वह समझ ही नहीं पाता कि वह अपनी पैदायशी जगह पर है या किसी दूसरी जगह पहुंच गया है। उसे तो सब कुछ एक सपना-सा दिखाई देता है। दिल्ली के पुराने बाशिंदे तो अब मुश्किल से दो तीन लाख ही होंगे, वरना अधिक आबादी अब नई है।

इस पुस्तक में जितना मसाला है, वह अधिकतर अंग्रेजी और उर्दू पुस्तकों से लेकर दिया गया है। मेरा कहने को इसमें नाममात्र ही है। जिन पुस्तकों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है उनके नाम ये हैं :—

(1) Notes on the Administration of the Delhi Province, (2) Census Report—1931, (3) Delhi Guide, (4) Delhi, (5) The Archeology & Monumental remains of Delhi by Carr Stephen, (6) Delhi—Past and present by H. C. Fanshawe, (7) वाकयातदार उलहकूमत, दिल्ली (लेखक—बशीरउद्दीन अहमद देहलवी—तीन भाग), (8) दिल्ली टाउन डायरेक्टरी और (9) Sikh shrines in Delhi.

इनके लेखकों का मैं आभारी हूं, जिनकी मदद से मैं हिन्दी में यह पुस्तक तैयार कर सका।

मैं श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार और श्री शोभालाल गुप्त, भूतपूर्व सहायक संपादक, हिन्दुस्तान का भी आभार प्रकट करना चाहता हूं जिन्होंने इसकी पांडुलिपि

देखकर इसे दुरुस्त किया है और श्री पी० सरनजी (इतिहासकार) का जिन्होंने इस पुस्तक के तारीखी पहलू की जांच की।

पाठकगण, यदि आपके पास इस मसरूफ जिन्दगी में इस बदलती और नापायदार दिल्ली की आप बीती को सुनने के लिए कुछ क्षण हों, तो आइए और इस पुस्तक का सहारा लेकर यहां की नई-पुरानी यादगारों पर एक निगाह डाल लीजिए।

28-5-63 ब्रजकृष्ण चांदीवाला

1–हिन्दू काल की दिल्ली

दिल्ली एक ऐसा ऐतिहासिक शहर है जहां का चप्पा-चप्पा अपने सीने में गुजरे जमाने की न जाने कौन-कौन सी यादें लिए खड़ा है। काल के परिवर्तन के साथ-साथ न जाने इसने कैसी-कैसी करवटें बदली हैं। शायद ही कोई दूसरा ऐसा शहर हो जो इतनी बार बसा और उजड़ा हो। जिधर भी निकल जाइए, कोई-न-कोई खंडहर, मालूम होता है, आकाश की ओर अपना सर किए, गुजरे जमाने की दास्तां सुनाने को बेताब खड़ा है। काश कोई ऐसा आला होता जो इनकी दर्दभरी कहानी सुन सकता। हर दरो-दीवार पर न मालूम किस-किसके खून के दाग जमे हुए हैं।

मुख्य प्रश्न यह है कि सर्वप्रथम दिल्ली को किसने और कहां बसाया ?

दिल्ली का इतिहास-काल पांच भागों में बांटा जा सकता है—1. हिन्दू काल, 2. मुस्लिम (पठान) काल, 3. मुगल काल, 4. ब्रिटिश काल, 5. स्वराज्य अथवा आधुनिक काल। हिन्दू काल के बारे में जानकारी कम-से-कम उपलब्ध है। अन्तिम काल बहुत संक्षिप्त है जो स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात से ही प्रारम्भ हुआ है।

दिल्ली को भारतवर्ष का रोम कह कर पुकारा गया है क्योंकि रोम की सात विख्यात पहाड़ियों की दिल्ली की सात उजड़ी हुई बस्तियों से तुलना की गई है। यहां के शानदार किले, महल, मकबरे, मन्दिर, मस्जिद और अनगिनत दूसरी इमारतें यमुना नदी और अरावली पर्वत की पहाड़ी के बीच के हिस्से में फैली हुई दिखाई देती हैं। तुगलकाबाद, महरौली, चंद्रावल और यमुना नदी का पश्चिमी किनारा इसकी सीमाएं बनाती हैं। करीब 55 वर्गमील का घेरा इन्हीं इमारतों के खंडहरों से भरा पड़ा है। इन 11 मील लम्बे और 5 मील चौड़े क्षेत्र में फैले हुए खंडहरों को बनते और उजड़ते कई हजार वर्ष का समय व्यतीत हुआ है। कुछ चिह्नों की जांच करने पर भी यह पता नहीं चलता कि वे किस काल के हैं। अतः इस बात की खोज के लिए कि सर्वप्रथम दिल्ली कब और कहां बसी हमें पहले हिन्दू काल के इतिहास की जांच करनी पड़ेगी जिसका आधार कुछ किंव-दन्तियां तथा पुराणों और महाभारत की कथाएं हैं। अनुमान बेशक लगा लिया जाए, पर वास्तव में ईसा की दसवीं सदी से पूर्व की दिल्ली का न तो कोई सही इतिहास मिलता है और न कोई यादगार।

प्राचीन हिन्दू नगरियां सात मानी जाती हैं और वे ये हैं* : 1. अयोध्या, 2. मथुरा, 3. मायापुरी अर्थात् हरिद्वार, 4. काशी, 5. कांची अथवा कांजीवरम (दक्षिण में), 6. अवन्तिकापुरी अर्थात उज्जैन, 7. द्वारावती अथवा द्वारका। इन सातों में दिल्ली का कोई जिक्र नहीं है। दिल्ली का सर्वप्रथम नाम महाभारत में आया है जब पांडवों ने खांडव वन में एक नगरी बसाई और उसका नाम इन्द्रप्रस्थ रखा। यह इन्द्रप्रस्थ ही सर्वप्रथम नगरी थी जो कालान्तर में दिल्ली कहलाई। एक बार दिल्ली इससे भी पहले बस चुकी थी। उसकी कथा पुराणों में आती है। उसमें लिखा है कि पूर्वकाल में यमुना के किनारे यहां एक महान वन था जिसे खांडव वन या इन्द्र वन कहते थे। इस वन को कटवा कर चन्द्रवंशी राजा सुदर्शन ने खांडवी नाम की एक बहुत सुन्दर पुरी बसाई जो 100 योजन लम्बी और 32 योजन चौड़ी थी।

एक समय राजा इन्द्र ने यज्ञ करने का विचार किया और अपने गुरु वृहस्पति से ऐसा स्थान बताने का निवेदन किया जहां यह पवित्र कार्य सिद्ध हो सके। वृहस्पति ने खांडव वन का पता दिया और तदनुसार इन्द्र ने यमुना के किनारे यज्ञ करने की तैयारी शुरू कर दी। सब देवताओं और ऋषियों को निमन्त्रण दिया गया। यज्ञ की समाप्ति पर चार स्थानों को पवित्र स्थान घोषित किया गया।

पहला पवित्र स्थान निगमबोधय मुना के किनारे था। कहते हैं कि एक बार संसार से वेदों का ज्ञान लुप्त हो गया था। ब्रह्माजी उन्हें भूल गए थे, मगर जब ब्रह्माजी ने यमुना नदी में डुबकी मारी तो उन्हें भूले हुए समस्त वेदों का तुरन्त स्मरण हो आया। इसीसे इस स्थान का नाम निगमबोध (वेदों का ज्ञान) पड़ गया। यह भी कहते हैं कि महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर ने निगमबोध घाट पर यज्ञ किया था। उस समय यमुना कहां बहती थी और घाट कहां था, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि महाभारत को हुए हजारों वर्ष हो चुके हैं, मगर मौजूदा निगमबोध घाट शाहजहां की बनवाई पूर्वी शहरपनाह के बाहर निगमबोध दरवाजे से आगे बेला रोड पर बना हुआ है। दरवाजे के बाएं हाथ फसील के साथ घाटनुमा पत्थर की एक पुरानी बारहदरी खड़ी है जिसके पांच दर दक्षिण की ओर हैं और इतने ही उत्तर की ओर, शेष एक-एक पूर्व और पश्चिम में हैं। यह फसील से करीब दो-तीन गज हट कर बनी हुई है। बारहदरी के दाएं-बाएं दो सहन भी हैं जिनमें दरवाजे बीच में और एक-एक उत्तर और दक्षिण में हैं। आगे की ओर गोलाकार है। इन्हें देखने से अनुमान होता है कि जब शाहजहां के वक्त में यहां यमुना फसीलों के साथ बहती थी तो यही निगमबोध घाट रहा होगा। इस ओर की चारदीवारी में तीन दरवाजे हुआ करते थे। बेला घाट तो वहां था

---

* अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिकाः ॥

जहां कश्मीरी दरवाजे की सड़क पोस्ट आफिस के पास से निकलकर बेला रोड पर जाती है। फिर **निगमबोध** घाट था और फिर कलकत्ती दरवाजा। घाट के नाम से ही पता चलता है कि यहां घाट रहे होंगे। बेला घाट और निगमबोध घाट के बीच के हिस्से में और कलकत्ती दरवाजे तक, जो गदर के बाद तोड़ दिया गया, नदी के किनारे घाट बने हुए थे। शाहजहां के बाद 1737 ई० में हिन्दुओं को इन घाटों को बनाने की इजाजत मिली बताते हैं। घाटों पर छोटे-छोटे पुख्ता संगीन मंडप बने हुए थे जिनके दो तरफ दीवारें थीं और दरिया की तरफ सीढ़ियां। अब से कोई पचास वर्ष पहले तक ये घाट बने हुए थे और यमुना चढ़ कर वहां तक आ जाया करती थी। मगर धीरे-धीरे यमुना का रुख बदलता गया। वह दक्षिण की ओर हटती गई और ये पुख्ता घाट भी कालान्तर में तोड़ डाले गए।

देखा जाए तो बस यही एक घाट बाकी बचा है। इसकी बारहदरी के साथ हनुमानजी का एक मन्दिर है जो बहुत प्राचीन मालूम होता है।

दूसरा पवित्र स्थान **राजघाट** घोषित किया गया था। उस वक्त वह कहां था, इसका तो कोई अनुमान नहीं है, मगर शाहजहां के समय में जब मौजूदा दिल्ली बसी तो पूर्व की चारदीवारी में दरियागंज की ओर इस नाम का दरवाजा बनाया गया था। यह लाल किले के दक्षिण में पड़ता है। गदर के बाद इस दरवाज़े को ऊंचा करके गाड़ी-घोड़ों के आने-जाने के लिए बंद कर दिया गया था। सड़क की जगह ज़ीना बना दिया गया था। अभी हाल में इधर की फसील और दरवाजा तोड़ कर फिर से सड़क निकाल दी गई है। इस दरवाज़े के बाहर भी यमुना स्नान करने के लिए घाट होगा। गदर से पहले यहां किश्तियों का पुल था जिससे यमुना पार जाते थे। अब घाट का तो कोई चिह्न नहीं है, अलबत्ता एक **मन्दिर जगन्नाथजी** का है। वह कब बना, इसका पता नहीं। फसील के साथ लगा हुआ यह छोटा-सा मन्दिर है और इसकी इमारत बहुत पुरानी नहीं है। मन्दिर में जगन्नाथजी, बलदेव-जी और उनकी बहन सुभद्रा की मूर्तियां हैं। एक हनुमान का मन्दिर और एक शिवाला भी इस मन्दिर में है। फसील के पास ही शिवजी का एक और भी मन्दिर है जिसकी पिंडी जमीन की सतह से तीन चार फुट नीचे है। जब यहां यमुना बहती थी तो बे मन्दिर रहे होंगे। जगन्नाथजी के दिल्ली में दो मन्दिर हैं—बड़ा मन्दिर परेड के मैदान के साथ एस्लेनेड रोड पर है। आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को रथयात्रा का मेला लगता है। छोटे मन्दिर से मूर्तियां रथ में बैठाकर बड़े मन्दिर ले जाई जाती हैं जहां से दोनों मन्दिरों की मूर्तियां रथों में बैठाकर शहर भर में घुमाई जाती हैं। दिन भर बड़ा उत्सव रहता है।

अब पुराने राजघाट का तो नाम ही रह गया है। नया राजघाट तो वह स्थान है जहां 31 जनवरी, 1948 की सायंकाल के पांच बजे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के

शव का दाह-संस्कार हुआ था। गांधीजी की समाधि दिल्ली दरवाज़े के बाहर बाएं हाथ जाकर बेला रोड पर बहुत बड़े बाग में बनी है जहां हर रोज हजारों की संख्या में दर्शनार्थी सुबह से रात तक आते रहते हैं। यहां हर शुक्रवार को सायंकाल के समय प्रार्थना होती है। 2 अक्तूबर को गांधीजी के जन्मदिन पर और 30 जनवरी को, जो उनका निधन दिवस है, यहां बड़ा भारी मेला भरता है, प्रार्थना होती है और समाधि पर फूल चढ़ाए जाते हैं।

तीसरा स्थान था **विद्यापुरी**। जहां अब चांदनी चौक में कटरा नील है वहां यह स्थान बताया जाता है। कहते हैं कि पंडित बांकेराय के पास शाहजहां का एक फरमान था। उसमें इस स्थान को बनारस की तरह पवित्र और एक विद्यापीठ बताया गया है। यहां एक पुराना शिव मन्दिर है जिसे **विश्वेश्वर** का मन्दिर कहते थे।

चौथा स्थान है **बुराड़ी** जो दिल्ली के उत्तरी भाग में चार-पांच मील दूर यमुना के किनारे पर एक गांव है। इसका असल नाम **बरमुरारी** बताते हैं। महाभारत में ज़िक्र है कि यहां भगवान कृष्ण का कालिन्दी से विवाह हुआ था। यहां भी महादेव का मन्दिर था जो **खण्डेश्वर** के नाम से मशहूर था। इस मन्दिर के इर्द-गिर्द अब भी पुरानी इमारत के कुछ भाग ज़मीन में दबे पड़े हैं।

दिल्ली का यदि पुराना नक्शा देखें तो पूर्व में इसके यमुना नदी बहती है, पश्चिम में अरावली पर्वत का सिलसिला चला गया है जो घूमता हुआ दक्षिण में जा पहुंचा है और उत्तर में फिर यमुना नदी आ जाती है। उस समय पूर्व में तो यमुना बहती ही होगी, मगर प्रतीत होता है कि यमुना की कई धाराएं और भी थीं जो इस भूखण्ड के भिन्न-भिन्न भागों में बहा करती थीं। एक धारा यमुना से बारहपुला, निज़ामुद्दीन के पास से होती हुई जन्तर-मन्तर के पास से निकलकर तुर्कमान दरवाज़े तक पहुंचती थी और शायद उससे आगे सीधी चांदनी चौक से दरीबे के पास से होती हुई निगमबोध घाट के पास यमुना में मिल जाती थी। प्रतीत होता है कि नगर बसाने के लिए यही टुकड़ा चुना गया होगा। बारहपुले का पुल तो आज भी है। यह भी उल्लेख है कि निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह यमुना के किनारे बनाई गई थी और तुर्कमान दरवाज़े के पास तुर्कमानशाह और रज़िया बेगम की जो कब्रें हैं, वे भी यमुना के किनारे बनाई गई थीं। यह भी कहा जाता है कि चांदनी चौक में जहां कोतवाली है, यमुना का बहाव इस कदर तेज़ था कि भंवर में नाव डूब जाया करती थी। शायद मोहल्ला बल्लीमारान में किश्ती चलाने वाले रहते थे। निगमबोध घाट तो महाभारत-काल से भी प्राचीन स्थान गिना जाता था। इन सबको देखकर यदि यह अनुमान कर लें कि इन्द्रप्रस्थ यमुना की दो धाराओं के बीच बसाया गया होगा तो कुछ गलत नहीं होगा और यह भी सम्भव है कि बाकी

का भाग खांडव वन से घिरा हुआ हो क्योंकि उस खण्ड के बड़े भाग में आज भी पहाड़ और जंगल विद्यमान हैं।

दिल्ली में आठ स्थान ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध पांडवों से जोड़ा जाता है–1. हनुमान का मन्दिर, 2. नीली छतरी, 3. योगमाया का मन्दिर, 4. कालका देवी का मन्दिर, 5. किलकारी भैरव का मन्दिर, 6. दूधिया भैरव का मन्दिर, 7. बाल भैरों का मन्दिर, और 8. पुराना किला। जहां तक वर्तमान नीली छतरी का सम्बन्ध है, उसको देखने से यह नहीं कहा जा सकता कि वह पांडव काल की बनी होगी क्योंकि यह इमारत पांच हज़ार वर्ष पुरानी प्रतीत नहीं होती। रहा प्रश्न छः मन्दिरों का। इस सम्बन्ध में यह तो निश्चित है कि जो मूर्तियां वहां हैं, वे उस काल की नहीं हैं। प्रथम तो यही विवादास्पद है कि महाभारत-काल तक मूर्तियां स्थापित करने का रिवाज था भी या नहीं। तब लोग प्रायः वैदिक काल के देवताओं के उपासक थे और शिव सबसे बड़ा देवता माना जाता था। शिव महादेव कहलाते थे। उनके साथ ब्रह्मा और विष्णु की भी उपासना होती थी, किन्तु कदाचित इनके मन्दिर और मूर्तियां नहीं थीं क्योंकि लोग चिह्नों के उपासक थे और प्रत्यक्ष चिह्नों में सूर्य और अग्नि की उपासना करते थे। कृष्ण भगवान से पहले यद्यपि सात अवतार हो चुके थे जिनमें चार तो मनुष्येत्तर योनि के थे और तीन मनुष्य योनि के और उनमें भगवान राम ही सर्वश्रेष्ठ हुए हैं, मगर उनकी भी प्रतिमा की पूजा महाभारत-काल तक नहीं होती थी। न उनके मन्दिर बनने का उल्लेख मिलता है। मन्दिर बनाने का रिवाज तो बौद्ध काल के बहुत पश्चात पड़ा प्रतीत होता है। इसलिए यह नहीं कह सकते कि यहां के छः मन्दिर उस काल के हैं और यदि कोई मंदिर बनाए भी गए होंगे तो मुस्लिम काल में उन सब को खंडित कर दिया गया होगा। योगमाया का मन्दिर बेशक ऐसा है जिसमें मूर्ति न होकर चिह्न अथवा पिंडी है। भारत में देवी के दो ही ऐसे स्थान हैं जहां देवी की पिंडी है—एक गया में और दूसरी योगमाया में। उपरोक्त बाकी पांच मन्दिरों में मूर्तियां हैं।

अब इन आठ स्मृति स्थानों पर विचार कर लेना ज़रूरी है।

1. **हनुमानजी का मन्दिर :** इसकी बाबत निगमबोध घाट के विवरण में लिखा जा चुका है। निगमबोध तो पांडवों से भी पुरातन काल का स्थान था और बहुत पवित्र माना जाता था। इस बात को पांडव भी जानते होंगे। सम्भव है कि निगमबोध घाट पर वह धारा यमुना में जाकर मिलती हो जो मुस्लिम काल तक पहाड़ी में से आकर एक ओर बारहपुले पर यमुना में मिलती रही और दूसरी ओर तुर्कमान दरवाजे से होकर कोतवाली के स्थान तक जाती रही (जैसा कि नक्शे में दिखाया गया है)। निगमबोध पर जो हनुमानजी का मन्दिर है, सम्भव है कि यहां अर्जुन ने हनुमानजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए कोई कीर्ति

स्तम्भ उनके नाम से स्थापित किया हो और बाद में यहां मूर्ति स्थापित कर दी गई हो।

2. नीली छतरी : यमुना के किनारे सलीमगढ़ के उत्तरी द्वार के सामने शहर से यमुना के पुल को जाते समय सड़क के बाएं हाथ नीली छतरी नाम का एक छोटा-सा मन्दिर है। कहते हैं कि युधिष्ठिर महाराज ने, जब वह सम्राट घोषित हुए तो राजसूय यज्ञ की स्मृति में यमुना के किनारे एक छतरी बनवाई थी जो यहां कहीं रही होगी। उसी समय की स्मृति चली आती है। वर्तमान मन्दिर सड़क से बिल्कुल लगा हुआ है। सड़क की पटरी के साथ बाएं हाथ पर चारों ओर से ढलुवां छतरी बनी हुई है जिस पर नीले, पीले और हरे रंग के फूल पत्तीदार टाइल जड़े हुए हैं। जहां चारों ढलान ऊपर की तरफ एक जगह जाकर मिलते हैं वहां एक बुर्जी है। सड़क से 16 सीढ़ी उतर कर दाएं हाथ मन्दिर है। एक बड़ा दालान है जिसकी छत आठ खम्भों पर खड़ी है। बीच में एक कुंड है जिसमें शिवजी की काले पत्थर की पिंडी है और उसके तीन ओर पार्वती, गणेश आदि की संगमरमर की मूर्तियां। दालान में संगमरमर का फर्श है। दीवारों और खम्भों पर मारबिल चिप्स का पलस्तर है। मन्दिर की परिक्रमा, जो कभी रही होगी, अब नहीं है। वह एक ओर दालान में ही मिला दी गई है और दूसरी ओर एक कोठा बना दिया गया है। मन्दिर के आगे कोलोनेड है एवं सहन में एक कुआं है। फिर आगे जाकर पांच सीढ़ी चढ़कर दूसरी सड़क यमुना के साथ वाली आ जाती है। पहले तो यहां सब जगह यमुना की धारा बहा करती थी। अब खुश्की हो गई और सड़क निकाल दी गई है। यमुना बहुत नीचे चली गई है। इस सड़क के बाएं हाथ यमुना नदी पर पक्का घाट है।

यह निश्चित है कि मौजूदा मन्दिर उस काल का नहीं हो सकता। इसके लिए कई रिवायात मशहूर हैं। कहा जाता है कि हुमायूं बादशाह ने 1532 ई० में उस मन्दिर को तोड़-फोड़ कर उसे अपने मनोरंजन का स्थान बना लिया था। यह भी कहा जाता है कि उसके ऊपर लगे रंगीन टाइल वह किसी अन्य स्थान से निकाल कर लाया था और 1618 ई० में जब जहांगीर आगरे से कश्मीर जा रहा था तो वापसी पर उसने मन्दिर के ऊपर एक कुतबा लिखवा दिया था। यह भी कहा जाता है, जो अधिक सम्भव है, कि इसे मराठों ने अपने दिल्ली पर अधिकार के समय बनवाया था।

3. योगमाया का मंदिर : श्री कृष्ण के जन्म के सम्बन्ध में भागवत में कथा है कि वह योगमाया की सहायता से कंस के जाल से बच पाए। उसी योगमाया की स्मृति में सम्भवतः पांडवों ने यह मन्दिर स्थापित किया होगा या यह हो सकता है कि जब खांडव वन को जला कर कृष्ण और अर्जुन निवृत्त हुए तो उस विजय की स्मृति में यह मन्दिर बना दिया गया हो क्योंकि बिना भगवान की योग शक्ति के इन्द्र को पराजित

करना आसान न था। जब तोमरवंशीय राजपूतों ने इस स्थान पर दिल्ली बसाई तो सम्भव है कि उन्होंने योगमाया की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी हो क्योंकि वह भी चन्द्रवंशी थे और देवी के उपासक थे।

वर्तमान मन्दिर 1827 ई० में अकबर द्वितीय के काल में लाला सेठमलजी ने बनवाया बताते हैं। मन्दिर का अहाता चार सौ फुट मुरब्बा है। चारों ओर कोनों पर बुर्जियां हैं। मन्दिर की चारदीवारी है जिसमें पूर्व की ओर के दरवाजे से दाखिल होते हैं। चारदीवारी के बाहर कितने ही मकान यात्रियों के ठहरने के लिए बने हुए हैं। अन्दर जाकर मन्दिर के दक्षिण और उत्तर में बन्द मकान यात्रियों के ठहरने के लिए बने हुए हैं। मन्दिर लोहे की लाट से करीब 260 गज उत्तर पश्चिम में स्थित है। मन्दिर में मूर्ति नहीं है बल्कि काले पत्थर का गोलाकार एक पिंड संगमरमर के दो फुट चौकोर और एक फुट गहरे कुंड में स्थापित किया हुआ है। पिंडी को लाल वस्त्र से ढका हुआ है जिसका मुख दक्षिण की ओर है। मन्दिर का कमरा करीब बीस फुट चौकोर होगा। फर्श संगमरमर का है। ऊपर गोपुर बना हुआ है जिसमें शीशे जड़े हुए हैं। मन्दिर की दीवारों पर चित्रकारी की हुई है। मूर्ति के ऊपर छत्र और पंखा लटका हुआ है। मन्दिर के द्वार पर लिखा हुआ है—'योगमाये महालक्ष्मी नारायणी नमस्तुते'। यह स्थान देवी के प्रसिद्ध शक्तिपीठों में गिना जाता है। मन्दिर में घंटे नहीं हैं। यहां मदिरा और मांस का चढ़ावा वर्जित है। श्रावण शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को यहां मेला लगता है।

मन्दिर के तीन द्वार हैं। दक्षिण द्वार के ऐन सामने दो शेर लोहे के सींखचों के एक बक्स में बैठे हैं जो देवी के वाहन हैं। इनके ऊपर चार घण्टे लटकते हैं। शेरों की पुश्त की ओर एक दालान है जिसमें पश्चिम की ओर के कोने में गणेश की मूर्ति है और एक छोटी शिला भैरव की है। मन्दिर के उत्तरी द्वार के सामने शिवजी का मन्दिर है जिसके पीछे एक सैदरी बनी हुई है जिसमें उत्तर की ओर खड़े होकर अनंगपाल ताल दिखाई देता है। उत्तर पश्चिम कोण में एक पक्का कुआं है जो रायपिथौरा के समय का बताया जाता है। यहां करीब डेढ़ सौ वर्ष पूर्व मुगल काल में वर्षा ऋतु का एक मेला 'फूलवालों की सैर' के नाम से शुरू हुआ। यह सैर प्रायः श्रावण मास में हुआ करती थी जिसमें हिन्दू मुसलमान दोनों भाग लेते थे। सैर दो दिन हुआ करती थी—बुध और गुरुवार को। बुध के दिन योगमाया के मन्दिर में हिन्दुओं की ओर से पंखा चढ़ता था और बृहस्पतिवार को मुसलमानों की ओर से हजरत कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के मजार पर। यह मेला हिन्दू-मुसलमान एकता का प्रतीक था।

4. कालकाजी अथवा काली देवी का मन्दिर : इस काली देवी का इतिहास बहुत प्राचीन है। कहते हैं कि लाखों वर्ष हुए जब इस मन्दिर के सान्निध्य में देवताओं

का बास था जिन्हें दो दैत्य सदा सताया करते थे। तंग आकर देवता ब्रह्मा के पास अपनी शिकायत लेकर गए। लेकिन ब्रह्मा ने इसमें दखल देने से इन्कार कर दिया और उन्हें पार्वती के पास जाने को कहा। पार्वती के मुंह से कुश्की देवी निकली जिसने दैत्यों पर आक्रमण किया और उन्हें मार डाला, लेकिन हुआ यह कि दैत्यों का रुधिर जमीन पर गिरने से हजारों अन्य दैत्य पैदा हो गए जिनके साथ कुश्की देवी का संग्राम चलता रहा। पार्वती को अपनी पैदा की हुई कुश्की को दैत्यों से घिरा देखकर दया आ गई और कुश्की देवी की पलकों से विकराल काली देवी का जन्म हुआ जिसके नीचे का होंठ निचली पहाड़ियों पर टिका हुआ था और ऊपर का आकाश को छू रहा था। उसने मारे हुए दैत्यों का रुधिर पी लिया जो उनके जख्मों से निकल रहा था और इस प्रकार देवी की अपने शत्रुओं पर पूर्ण विजय हुई। कोई पांच हजार वर्ष पूर्व काली देवी इस स्थान पर आकर बस गई और तब ही से वह यहां की मुख्य अधिष्ठात्री देवी के रूप में पुजने लगी। कदाचित पांडवों ने ही उसे स्थापित किया होगा।

वर्तमान मन्दिर का सबसे पुराना भाग 1768 ई० में बना बताते हैं। यद्यपि यह माना जाता है कि देवी का यह स्थान रायपिथौरा के समय में अवश्य रहा होगा और यहां पूजन होता होगा। योगमाया के मन्दिर से यह सम रेखा में पांच मील के अन्तर पर है।

मन्दिर मौजा बहापुर में दिल्ली से नौ मील मथुरा रोड पर ओखले के स्टेशन के पास से होकर जाते हुए पक्की सड़क पर पड़ता है। मन्दिर पत्थर और चूने का बना हुआ है। देवी की मूर्ति मन्दिर के मध्य में स्थापित है जिसके तीन ओर लाल पत्थर और संगमरमर का 6 फुट ऊंचा परदा और कटहरा है। आगे की तरफ संगमरमर की 6 फुट ऊंची चबूतरी है। परदे की बाईं ओर एक फारसी और एक हिन्दी का लेख है जिसमें लिखा है—

'श्री दुर्गा सिंह पर सवार—1821 फसली'

1816 ई० में पुजारियों ने मन्दिर का जीर्णोद्धार करने की तजवीज रखी लेकिन लोगों ने सहयोग नहीं दिया। तब लोगों के नाम कागज की परची पर लिखकर देवी के सामने रखे गए और अकबर सानी के पेशकार राजा केदारनाथ का नाम निकला। राजा ने मन्दिर के बाहर के बारह कमरे बनवाए और मन्दिर का गौपुर बनवा दिया। हर कमरे में एक दरवाजा अन्दर और दो बाहर हैं। मन्दिर के बारह दरवाजे हैं। मन्दिर के सामने दक्षिण की ओर लाल पत्थर के दो शेर हैं जिनके सर पर एक भारी घण्टा लटकता रहता है जिसको दर्शक बड़े जोर से बजाते हैं। घण्टे के अतिरिक्त और भी बहुत-सी घंटियां लटकी हुई हैं जो यात्री

बजाते रहते हैं। पिछले पचास-साठ वर्षों में मन्दिर के इर्द-गिर्द यात्रियों के ठहरने के लिए बहुत-से मकान बन गए हैं।

मन्दिर में प्रातःकाल आरती होती है। घण्टे की आवाज़ दूर-दूर जाती है। दोपहर को भोग लगता है। मिठाई और चने का पकवान भी चढ़ाया जाता है। यात्री कन्या लौकड़े जिमाते रहते हैं जो यहां बड़ी संख्या में हर वक्त मौजूद रहते हैं। देवी लाल कपड़े की तियल पहने रहती है और अलंकारों से शृंगार हुआ रहता है। सर के ऊपर चांदी आदि धातु के छत्तर लटकते रहते हैं। यहां भी पंखा चढ़ता है। घी की एक ज्योति रात दिन जलती रहती है।

दिल्ली और आस-पास के देहातों में इस मन्दिर की बहुत मान्यता है। वर्ष में दो मेले यहां खास तौर से लगते हैं—चैत्र शुक्ला अष्टमी और आश्विन शुक्ला अष्टमी को। यह छमाही मेले कहलाते हैं। चैत्र की छमाही का मेला बड़ा होता है। हज़ारों शहरी और देहाती इसमें शरीक होते हैं। मेला सप्तमी से नवमी तक रहता है। रामनवमी को देवी के दर्शन करके ओखले के यमुना घाट पर जाकर स्नान करते हैं जो मन्दिर से दो-तीन मील पड़ता है। यहां वसन्त पंचमी को भी मेला होता है और हर शुक्ल पक्ष की अष्टमी तथा मंगल को भी काफी यात्री दर्शन करने आते हैं। यहां के पंडे चिराग दिल्ली में रहते हैं जो यहां से दो मील के करीब है। पंडों की संख्या बहुत है, इसलिए चढ़ावे का बंटवारा हो जाता है और बारी-बारी से पंडे पूजा करवाते हैं। पंडों में विद्या का अभाव है। दिल्ली वालों में वैश्य जाति वाले लड़का-लड़की के विवाह के पश्चात नव दम्पति को इस मन्दिर में आराधना करवाने एक बार अवश्य ले जाते हैं। किसी समय तो मन्दिर उजाड़ में था, मगर अब मन्दिर से आधा मील दूर शरणार्थियों की एक बहुत बड़ी कालोनी बस गई है जो एक नगर ही है और जहां की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई है। 1947 ई० में जब शरणार्थी दिल्ली आए तो मन्दिर के पास उनके लिए एक कैम्प खोला गया था जिसे देखने महात्मा गांधी गए थे और मन्दिर के चारों ओर घूमकर उन्होंने वहां के मकानों में बसे हुए शरणार्थियों की हालत का निरीक्षण किया था।

5. पांचवां स्थान जो पांडवों के समय का बताते हैं, वह है **किलकारी भैरवजी का मन्दिर** जो दिल्ली शहर से 2 मील मथुरा रोड पर बाएं हाथ पुराने किले की उत्तरी चारदीवारी के बराबर जो सड़क अन्दर को गई है, उसके बाएं हाथ पुराने किले की फसील से बिलकुल सटा हुआ है। मन्दिर में दो सैदरियां हैं—एक में भैरोंजी, भीमसेन और हनुमान की मूर्तियां हैं और दूसरी में यहां के पुजारी नाथों की तीन समाधियां हैं। दोनों सैदरियों के सामने खुला सहन है। मन्दिर में सदर दरवाज़े से प्रवेश करके सामने ही चौक में शिव मन्दिर है और बाएं हाथ भैरव मन्दिर है। दाएं हाथ भी एक कोने में शिव मन्दिर है। उसके एक भाग में पुजारी रहता है।

हर इतवार को बहुत से दर्शनार्थी इस मन्दिर की यात्रा को आते हैं। मन्दिर के सहन में चौके बिछे हुए हैं और एक कुआं भी है। मन्दिर की एक तरफ की दीवार तो किले की ही दीवार है बाकी तीन तरफ दीवार खिंची हुई है। मन्दिर के बाहर एक प्याऊ है। यहां पुजारी नाथ सम्प्रदाय का रहता है। कभी-कभी मन्दिर में बकरा भी काटा जाता है।

दिल्ली में 52 भैरों माने जाते हैं। इनमें जो सबसे प्राचीन गिने जाते हैं वे हैं किलकारी भैरों और इसी मंदिर के पास एक दूसरे भैरों 'दूधिया भैरों'।

6. दूधिया भैरों : इन्हें भी पांडव-काल का माना जाता है। कहते हैं यह किलकारी भैरों से कोई एक फर्लांग आगे जाकर है। किले की दीवार से सटा हुआ दूधिया भैरों का मंदिर है। भैरों की मूर्ति सिंदूर से ढकी है। एक छोटी-सी बगीची और कुंआ भी यहां है।

7. बाल भैरों : किलकारी भैरों के समय के ही एक दूसरे भैरों बाल भैरों भी माने जाते हैं जिनका मंदिर तीसहजारी फतहगढ़ की पहाड़ी पर है। मंदिर का अहाता बहुत बड़ा है। दो उसके द्वार हैं। अहाते में कई बारहदरी यात्रियों के लिए बनी हुई है। मंदिर एक दालान में बना हुआ है। चारों ओर उसके परिक्रमा है। मूर्ति की पिंडी है जिसका चेहरा जमीन में बना हुआ है। चारों ओर 6 इंच ऊंची संगमरमर की रोक है। मंदिर में और भी कई मूर्तियां हैं। यहां के पुजारी भी नाथ संप्रदाय के हैं। इस मन्दिर की भी बहुत मान्यता है। मूर्ति पांडव-काल की ही मानी जाती है।

8. पुराना किला : यह किला पांडव-काल के स्मृति स्थानों में गिना जाता है, जो दिल्ली से दो मील के अन्तर पर है। यह पांडवों का किला कहलाता चला आया है। लेकिन इस किले को किसी इतिहासकार ने उस काल का बना हुआ नहीं बताया है। अलबत्ता किले में जो खुदाई अब हो रही है मुमकिन है वह किसी दिन उस काल का कोई चिह्न प्रकट कर दे।

जब पाण्डव राज्य छोड़ कर अपनी अन्तिम यात्रा के लिए विदा होने लगे तो महाराज युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ का राज व्रज को दे दिया था और हस्तिनापुर का परीक्षित को। मगर जब व्रज अपना राज्य मथुरा ले गए, तब इन्द्रप्रस्थ शायद फिर परीक्षित के ही अधीन आ गया होगा। युधिष्ठिर की तीस पीढ़ी ने राज्य किया। अन्तिम राजा क्षेमक को, जो बहुत दुर्बल था, उसके मन्त्री विस्रवा ने मार कर राज-सिंहासन पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार पाण्डव कुल का अन्त हुआ। पाण्डवों का राज्य 1,745 वर्ष रहा।

विस्रवा की चौदह पीढ़ी ने राज्य किया। अन्तिम राजा वीरसालसेन अपने मन्त्री वीरबाहु द्वारा मारा गया। वीरबाहु के वंशजों ने सोलह पीढ़ी राज्य किया। अन्तिम राजा

आदित्यकेतु प्रयाग के राजा धान्धर द्वारा मारा गया और धान्धर की नौ पीढ़ियों ने राज्य किया। इस वंश के अन्तिम राजा का नाम राजपाल अथवा रंगपाल था। इस प्रकार परीक्षित से लेकर राजपाल तक छयासठ पीढ़ियों ने राज्य किया। महाराज राजपाल ने कुमायूं के राज्य पर चढ़ाई की और वह वहां के राजा सुखवंत द्वारा मारा गया। सुखवंत ने इन्द्रप्रस्थ को अपने हस्तगत कर लिया मगर वह अधिक समय तक उस पर कब्जा न रख सका। बारह वर्ष पश्चात महाराज विक्रमादित्य ने इन्द्रप्रस्थ पर चढ़ाई की और सुखवंत को मार कर इन्द्रप्रस्थ को मालवे में मिला लिया और उज्जैन लौट आया। इस प्रकार न केवल पाण्डवों की परम्परा समाप्त हुई बल्कि विक्रमादित्य ने युधिष्ठिर संवत की जगह अपना संवत चला दिया। उसके बाद से आठ-दस शताब्दी तक इन्द्रप्रस्थ का सिंहासन खाली पड़ा रहा।

हिन्दू काल के यहां तक के इतिहास को देखने से पता चलता है कि जब विक्रमादित्य ने ईसा की पहली शती में सुखवंत को मार कर पाण्डवों की प्राचीन राजधानी इन्द्रप्रस्थ को मालवा राज्य में मिला लिया तब करीब एक हजार वर्ष तक भारतवर्ष में अनेक परिवर्तन हुए। कितने ही छत्रपति राजा हुए। बड़े-बड़े नगर बसे और उजड़े। कई राजधानियां बदलीं और उजड़ीं, अनेक घटनाएं घटीं, कितने ही विदेशी आक्रमण भी हुए।

405 ई० और 695 ई० के बीच चार विख्यात चीनी यात्री भारत भ्रमण के लिए आए। आखिर के वर्षों में तो महमूद गजनी ने 17 बार भारतवर्ष पर हमले करके भारत को लूटा, मगर इन्द्रप्रस्थ का उल्लेख कहीं देखने में नहीं आता। इतिहासकार अल्बरूनी ने दसवीं सदी के आखिर में मुसलमानों की हालत का वर्णन किया है। वह कई बरस भारत में रहा। मगर उसने भी इन्द्रप्रस्थ अथवा दिल्ली का कोई जिक्र नहीं किया। उसने कन्नौज, मथुरा, थानेश्वर का जिक्र तो किया है और कन्नौज से भिन्न-भिन्न नगरों का अन्तर बताते हुए मेरठ, पानीपत, कैथल तक का नाम गिनवाया है, मगर दिल्ली का नाम कहीं नहीं लिया। महमूद गजनी के इतिहासकार उत्बीन ने, जिसने उसके आक्रमणों का हाल लिखा है, दिल्ली के पास के चार स्थानों को लूटने का जिक्र किया है, मथुरा और कन्नौज की पराजय का जिक्र किया है, मगर इन्द्रप्रस्थ अथवा दिल्ली का हवाला कहीं नहीं दिया। इससे अनुमान होता है कि इन्द्रप्रस्थ किसी गिनती में ही न था। यह कोई छोटी-सी बस्ती रही होगी। इसलिए खोज का विषय यह है कि इन्द्रप्रस्थ फिर कब और कहां बसा और उसका नाम दिल्ली कैसे पड़ा।

हजार या आठ सौ वर्ष पश्चात इन्द्रप्रस्थ का नाम पहली बार हिन्दू कवियों (भाटों) की रचनाओं में सुनने में आता है जो उन्होंने राजपूत राजाओं के सम्बन्ध में की हैं। उनका कहना है कि विक्रमादित्य की विजय के पश्चात 792 वर्ष तक दिल्ली

(इन्द्रप्रस्थ) उजड़ी पड़ी रही और इसे 736 ई० अथवा सम्वत 792 में महाराज अनंगपाल प्रथम ने फिर से बसाया।

महाकवि चन्दबरदाई ने लिखा है कि अनंगपाल प्रथम, जो तोमर वंश का राजपूत था, वास्तव में चन्द्रवंशी पांडवों का वंशज था और कहा है कि इसी राजा ने फिर से नगर बसाकर इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाया और इसकी 20 पीढ़ियों ने करीब चार सौ वर्ष इन्द्रप्रस्थ अथवा दिल्ली पर राज्य किया जब अनंगपाल तृतीय ने दिल्ली राज्य को अपने धेवते पृथ्वीराज चौहान को दे दिया।

प्रसिद्ध राजावली ग्रन्थ में लिखा है—'भारतवर्ष के उत्तरीय भाग कुमायूं गिरिव्रज से सुखवंत नामक एक राजा ने आकर चौदह वर्ष तक इन्द्रप्रस्थ पर राज्य किया। फिर महाराज विक्रमादित्य ने उसे मार कर इन्द्रप्रस्थ का उद्धार किया। भारत युद्ध को हुए इस समय तक 2,915 वर्ष हुए थे। इसने आगे चलकर लिखा है कि पौराणिक ग्रन्थों की खोज करने से यह पता चलता है कि युधिष्ठिर से लगाकर पृथ्वीराज तक एक सौ से अधिक राजा नहीं हुए और इन एक सौ राजाओं ने 4,100 वर्ष राज्य किया था।'

महाराज अनंगपाल प्रथम ने नई नगरी कहां बसाई और इन्द्रप्रस्थ का नाम दिल्ली कब और कैसे पड़ा, इस बारे में बहुत कुछ कहा गया है। कुछ का कहना है कि अनंगपाल ने इन्द्रप्रस्थ उसी स्थान पर फिर से बसाया जहां वह पहले था और उसका नाम इंदरपत या पुराना किला पड़ गया था जो आज भी दिल्ली शहर से दो मील की दूरी पर मथुरा की सड़क पर बाएं हाथ खड़ा दिखाई देता है। कुछ का कहना है कि उसने यहां से 10 मील दूर महरौली के पास उसे बसाया था।

कुछ का यह कहना है कि जब मुसलमानों के आक्रमण बहुत बढ़ गए तो इन्द्रप्रस्थ को उस स्थान पर बसाया गया जहां अड़गपुर बंद व गांव और सूरज कुंड हैं। यह कुंड तुगलकाबाद से कोई तीन मील की दूरी पर और आदिलाबाद से करीब ढाई मील पूर्व दक्षिण में एक पहाड़ी में अड़गपुर गांव से एक मील पर पड़ता है। अड़गपुर के करीब बंद और इस कुंड के निकट सूरज के एक मन्दिर के चिह्न और एक नगर के चिह्न मिलते हैं। प्रतीत होता है कि पहाड़ों में बंद बांधकर यह कुंड बनाया गया था ताकि नगर के लिए पानी मिलने में कोई कठिनाई न हो। अनुमान है कि इस बंजर पहाड़ी में यह नगर बसाना शायद इसलिए पसन्द किया गया था क्योंकि मुसलमानों के हमले लगातार हो रहे थे और महमूद गजनी ने उत्तरी भारत पर आतंक जमाया हुआ था। आक्रमण से सुरक्षित रहने के लिए शायद यह स्थान पसन्द किया गया हो क्योंकि यहां और कोई सुविधा न थी। चंद वर्ष पीछे जब शायद महमूद गजनी के हमलों का भय घट गया, वह 1030 ई० में मर गया था, तो राजधानी

वहां से हटाकर मौजूदा कुतुबमीनार के करीब ले जाई गई। कुछ का कहना है कि दिल्ली सबसे पहले किलोखड़ी में बसी थी और लोहे की जो कीली यहां गाड़ी गई थी उसके उखाड़ने से ही उस स्थान का नाम किलोखड़ी पड़ा था।

अनुमान है कि अनंगपाल प्रथम ने इन्द्रप्रस्थ से दिल्ली को हटाकर विक्रम सम्वत 733 (676 ई०) अथवा 792 से 735 में उसे अड़गपुर में बसाया जो गुड़गांव जिले में तुगलकाबाद से तीन मील और दिल्ली से कोई 12 मील है और यहां एक बहुत बड़ा बंद बनाया। यह बंद एक घाटी पर बनाया हुआ है जो 289 फुट लम्बा है। यह बदरपुर-महरौली रोड से पूर्व दिशा में कोई ढाई मील के अन्तर पर पहाड़ियों में बना हुआ है। इन्द्रप्रस्थ गुरुकुल से भी रास्ता जाता है। वहां से कोई एक मील है। बंद के दो तरफ पहाड़ हैं और बीच में छोटी-सी एक घाटी है। उस घाटी को बंद करके इसे बनाया गया है। बंद पक्का और बड़ा मजबूत पत्थर का बना हुआ है। यह सतह पर 150 फुट चौड़ा और 120 फुट ऊंचा है। इस बंद के बीच में एक दर 60 फुट गहरा और 215 फुट चौड़ा है। इस दर के सामने तीन नालियां आठ-आठ फुट ऊंची बनी हुई हैं। यह नालियां दीवार की सारी चौड़ान में चली गई हैं। इन नालियों के दोनों ओर पानी छोड़ने और बन्द करने की खिड़कियों के निशान पड़े हुए हैं। इस मेहराब के दोनों तरफ 37-38 फुट लम्बी दीवार है जिसकी 17 सीढ़ियां मौजूद हैं। इस बंद की मोरी इतनी बड़ी है कि बड़ा आदमी उसमें से चला जाता है। यद्यपि इस बंद में पानी अब नहीं ठहरता मगर जड़ों में से बारह महीने रिसता रहता है। उसी जमाने में राजा ने इस बंद के पास पहाड़ की चोटी पर गांव के उत्तर पश्चिम में एक छोटा-सा किला बनाना शुरू किया था। कहा जाता है कि चारदीवारी के अतिरिक्त और कुछ बनने नहीं पाया था। अब चारदीवारी भी नहीं रही। कुछ खंडहर जरूर दिखाई देते हैं। कंदर भोपाल, जो अनंगपाल का शायद बारहवां बेटा था, उस जगह आबाद हुआ और उसके वंशज वहां रहते रहे। चौथी पीढ़ी में साकरा नामी राजा ने एक गूजरी से शादी कर ली और उससे जो औलाद चली वह तंवर न रह कर गूजर कहलाने लगी। वही वहां आबाद हैं। इस बंद के एक पहाड़ी भाग में बिल्लौर की खान भी थी जिसमें बहुत अच्छा बिल्लौर निकलता था। अब वह बंद हो गई है।

इस बंद को देखते हुए, जिसे बने करीब तेरह सौ वर्ष हो गए, आश्चर्य होता है कि उस जमाने में भी कैसे-कैसे कारीगर थे और कैसा मसाला वह काम में लाते थे।

सूरज कुंड—अनंगपाल के पांच पुत्र बताए जाते हैं—तुडंगपाल, महीपाल, सूरजपाल और दो और। अनंगपाल ने अनंगपुर गांव में, जिसे अब अड़गपुर या अनकपुर कहते हैं, बंद बांधा और नगर बसाया। उसके बेटे महीपाल ने महीपालपुर

बसाया जो महरौली से तीन चार मील है। वहां एक बहुत बड़ा ताल, महल और किला था जिनके चिह्न आज भी मौजूद हैं। तुडंगपाल ने तुगलकाबाद के निकट किला बनाया और सूरजपाल, जो पांचवा बेटा था, ने सूरजकुंड बनाया। यह अड़गपुर से एक मील है। भाटों की कविताओं के अनुसार इस कुंड की रचना का समय सम्वत 743 विक्रमी (686 ई०) बताया जाता है। यह कुंड छः एकड़ जमीन में जंगल और पहाड़ों के बीच, इंसान की जहां गुज़र आसान नहीं है, बना हुआ है। कुंड पक्का खारे के पत्थर का है। चारों तरफ घाटदार पत्थर की सीढ़ियां हैं जो नीचे से ऊपर तक चली गई हैं। ये सीढ़ियां नौ-दस फुट तक तो मामूली चौड़ी हैं, लेकिन ऊपर जाकर ये बहुत चौड़ी हो गई हैं। कुंड घोड़े की नाल की शक्ल का बना हुआ है। कुंड के पश्चिमी भाग के बीच में, जो खंडहर पड़ा है, ख्याल है कि सूर्य का मन्दिर था। तालाब से मन्दिर पर चढ़ने को पचास सीढ़ियां हैं और इन सीढ़ियों के दोनों ओर ऊंची-ऊंची दीवारें हैं। पूर्व में भी इसी प्रकार एक जवाबी घाट बना हुआ है। उस ओर भी शायद कोई इमारत रही हो। कुंड की उत्तरी दीवार के बीच में मवेशियों के लिए एक रपटवां गौघाट बना हुआ है। इस घाट से उस टूटी हुई दीवार की तरफ, जो पश्चिम में है, सीढ़ियां नहीं हैं। यह भाग शायद इसलिए खाली छोड़ा गया है ताकि इधर से पहाड़ का सारा पानी बहकर कुंड में भर जाए। कुंड के चारों कोनों पर बुर्जियां भी रही होंगी क्योंकि पत्थरों के ढेर पड़े हुए हैं। कुंड से हटकर भी और मकानात और बुर्ज थे जिनका मलबा कुंड से आठ नौ गज के अन्तर पर पड़ा हुआ है। कुंड के उत्तरी भाग में एक महल था। महल से तालाब पर जाने के लिए सीढ़ियां बनी हुई थीं। महल तो नहीं रहा, मगर सीढ़िया हैं। कुंड में बरसाती पानी भर जाता है। 15-20 फुट पानी हो जाता है। भादों सुदी छठ को यहां हर वर्ष एक मेला लगता है। कुंड के दक्षिण-पूर्वी कोने में एक पीपल का पुराना पेड़ है जिसकी पूजा होती है। चढ़ावा अड़गपुर और लकड़पुर गांव के पुजारी ले जाते हैं। कुंड से कोई पाव मील पूर्व दिशा में अन्दर जाकर एक छोटा-सा चश्मा है जो सिद्ध कुंड कहलाता है। यहां भी मेला लगता है। कुंड में पानी सदा बना रहता है। वर्षा काल में यह सारा भाग देखने योग्य होता है।

सम्भवत: अड़गपुर अथवा अनकपुर से दिल्ली हटाकर किलोखड़ी और फिर महरौली के पास 1052 ई० में बसाई गई और राजा अनंगपाल तथा उसके वंशजों ने करीब एक सदी तक वहां बिना किसी रोक-टोक के राज्य किया। इस दरमियान राजा अनंगपाल ने एक बहुत विशाल कोट बनाया जिसका नाम लालकोट था। इस कोट के खंडहर आज भी देखने को मिलते हैं। किले के अतिरिक्त राजा ने एक ताल अनंगपाल के नाम से बनाया तथा 27 मन्दिर बनाए जिनकी बनावट राजपुताना

और गुजरात के मन्दिरों के नमूने की थी। उन मन्दिरों को मुसलमानों ने तोड़ कर उस सामग्री से मस्जिद बनाई थी जिसमें लोहे की लाट खड़ी है। आबू पहाड़ पर जैसे दिलवाड़े के मन्दिर हैं उसी नमूने के ये मन्दिर थे और उनके बीच में लोहे की कीली खड़ी थी। कीली तो अपने स्थान पर जहां थी वहां ही खड़ी है मगर मन्दिरों की जगह मस्जिद बन गई जिसे कुव्वतुलइस्लाम अर्थात् इस्लाम की शक्ति के नाम से पुकारते हैं। यह तो निश्चित है कि मस्जिद उसी चबूतरे पर बनाई गई है जिस पर मन्दिर बना हुआ था, मगर यह भी बहुत मुमकिन है कि मस्जिद का पिछला भाग मन्दिर का ही भाग रहा हो। इसको पृथ्वीराज का चौंसठ खम्भा भी कहते हैं।

चौंसठ खम्भे में प्रवेश करने के लिए पूर्व की ओर से सीढ़ियां उतर कर फिर सात सीढ़ियां चढ़कर चौंसठ खम्भे के मुख्य द्वार में दाखिल होते हैं। चबूतरे की ऊंचाई 4½ फुट है और द्वार के दाएं-बाएं बारह फुटी दो दीवारें हैं। दरवाजा कोई ग्यारह फुट चौड़ा है। द्वार में प्रवेश करके हम एक गुम्बद के नीचे पहुंचते हैं जिसके दाएं और बाएं स्तम्भों की कतार है और आगे की ओर सहन 142 फुट लम्बा और 108 फुट चौड़ा है। दाएं हाथ पर चार कतार स्तम्भों की हैं। चौंसठ खम्भे की दक्षिण की ओर इसका दक्षिणी दरवाजा है। वैसा ही उत्तर में है। दक्षिण-पूर्व की ओर की खिड़कियां मौजूद हैं। दक्षिण-पश्चिम की ओर की खिड़कियां मय दीवार के खतम हो गई हैं।

पश्चिम की ओर पांच बड़ी महराबें हैं। इन महराबों के पीछे की ओर मस्जिद का प्रार्थना भवन था जो उसी नमूने का था जैसे कि अन्य भवन बने हुए हैं। इसके बीच में गुम्बद था जैसा कि पूर्वी द्वार पर बना हुआ है। प्रार्थना भवन 147 फुट लम्बा और 40 फुट चौड़ा था जिसकी छत अति उत्तम और बहुत ऊंचे पांच कतारों में स्तम्भों पर बनी हुई थी। मस्जिद के अब खंडहर ही बाकी हैं। यह मस्जिद ऐबक के काल में कैसी थी, उसका जिक्र करते हुए फर्ग्युसन ने लिखा है—"यह इस कदर जैनियों की इमारतों के नमूने की है कि उसका वर्णन करना ही चाहिए। इसके खम्भे आबू पहाड़ के जैन मन्दिरों के खम्भों के समान हैं सिवा इसके कि दिल्ली के अधिक सुन्दर और प्रशस्त हैं। सम्भवतः यह ग्यारहवीं या बारहवीं शती के बने हुए हैं और उन चंद एक नमूनों में से गिने-चुने हैं जो भारतवर्ष के स्मारकों को अलंकृत किए हुए हैं क्योंकि धरती से शिखर तक एक इंच स्थान भी बिना खुदाई के काम के नहीं छूटा है। खम्भों पर लहरिये हैं जिनके सिरों पर घण्टे या फुंदने हैं। अनुमान यह किया जाता है कि मस्जिद के आगे के तीन दरवाजे तो बेशक नए बनवाए गए होंगे, मगर बाकी हिस्से में मन्दिर को तोड़ कर मस्जिदनुमा बना दिया गया होगा और मन्दिर के खम्भों पर बनी हुई मूर्तियों पर प्लास्टर चढ़ाकर उनके ऊपर अरबी जबान में आयतें लिख दी गई होंगी। मगर धीरे-धीरे वह प्लास्टर झड़ता गया

और खम्भे अपनी असल हालत में निकल आए। मस्जिद की छत और दीवारों पर बाज-बाज सिलें और पत्थर अब भी ऐसे लगे हुए देखने में आते हैं जिनमें कृष्ण भगवान का बचपन और देवताओं की सभाएं बनी हुई हैं। मस्जिद की शुमाली दीवार के बाहर के दो कमरों में से हर एक कमरे में एक-एक औरत अपने पास एक बच्चे को लिए हुए लेटी है और तख्त पर शामियाना तना हुआ है और एक नौकरानी पास बैठी है। बाएं हाथ की तरफ के कमरे में दो औरतें अपने-अपने बच्चों को लिए हुए दरवाजे की तरफ जा रही हैं। दाहिने हाथ के कमरे में दो और औरतें अपने-अपने बच्चों को एक देवता की तरफ ले जा रही हैं। दालान के उत्तर-पूर्वी कोने में एक पत्थर पर छः मूर्तियां—विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा, शिव और दो अन्य देवताओं की पाई जाती हैं। कई मूर्तियां बुद्ध भगवान की बैठी हुई खुदी हुई हैं।

लोहे की लाट के गिर्द के दालानों में 340 खम्भे हैं। ख्याल किया गया है कि असली हालत में 450 खम्भे रहे होंगे। दालान, जो बने हुए हैं, दो मंजिला भी है।

जैनियों का कहना है कि जहां मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम बनाई गई, वहां जैन पार्श्व नाथ का मंदिर था। यह तोमरवंशीय राजा अनंगपाल तृतीय के मंत्री अग्रवाल वंशी साहू नट्टल ने 1132 ई० से पूर्व बनवाया बताते हैं। इसके बारे में कवि श्रीधर ने पार्श्वपुराण में भी उल्लेख किया है। निकटवर्ती जिन मंदिरों को कुतबुद्दीन ऐबक ने 1193 ई० में विध्वंस किया, उनमें यह मंदिर मुख्य था जिसके अवशिष्ट चिह्नों में से हाथी दरवाजा तथा दो ओर के सभा-गृह अब भी देखने को मिलेंगे। उनके कहने के अनुसार कीली के पार्श्व भाग में शिखर युक्त पीठिका में मुख्य वेदी स्थापित थी तथा इसी के केन्द्र से चारों ओर सभा-गृह था जिसके स्तम्भों व दीवारों पर तीर्थंकरों की मूर्तियां देखने में आती हैं। द्वार को छोड़कर बाकी तीन ओर के सभा-गृह में तीन अतिरिक्त वेदियों की स्थापना का आभास पाया जाता है। जैनियों का कथन है कि यह संपूर्ण मंदिर एक सरोवर के मध्य में स्थित था।

महात्मा गांधी सर्वप्रथम जब कुतुबमीनार और उसके चारों ओर की इमारतों को देखने गए थे तो इस मस्जिद को देखकर, जिसमें टूटे हुए मन्दिरों की सामग्री लगी हुई थी, उन्हें इतना धक्का लगा था कि वह अपने साथियों को कुतुब की इन इमारतों को देखने से रोक दिया करते थे।

लोहे की लाट या कीली की, जो हिन्दू काल की एक अद्भुत स्मृति है, अपनी एक अलग कहानी है जिसका पता संस्कृत में लिखे उन छः श्लोकों से लगता है जो कीली पर खुदे हुए हैं। इन श्लोकों का अध्ययन सर्वप्रथम जेम्स प्रिंसेज ने किया और बाद में अन्य लोगों ने भी उन श्लोकों की व्याख्या की। श्लोकों के अतिरिक्त

दूसरी भाषाओं में भी लाट पर कुछ खुदा हुआ है। संस्कृत श्लोकों के अनुसार चन्द्र नाम का एक राजा हुआ जिसने वंग (बंगाल) देश पर विजय प्राप्त की थी और सिन्धु नदी की सप्त सहायक नदियों को पार करके उसने वाल्हिका (बल्लख) को जीता था। उस विजय की स्मृति में यह लोहे की कीली या स्तम्भ बना है। अनुमान है कि यह विष्णु भगवान के मन्दिर के सामने, जो विष्णुपद नाम की पहाड़ी पर बना हुआ होगा, भगवान के ध्वज रूप में लगाया गया होगा और इसके ऊपर गरुड़ भगवान की मूर्ति रही होगी। राजा चन्द्र से अनुमान है कि यह चन्द्रगुप्त द्वितीय होंगे जिनको विक्रमादित्य द्वितीय भी कहते थे और जो 400 ई० में हुए हैं। यह राजा भगवान विष्णु का बड़ा भक्त था और पाटलिपुत्र इसकी राजधानी थी जो बिहार में है।

लोहे की कीली के संस्कृत श्लोकों का अनुवाद इस प्रकार है—

'जिसकी भुजाओं पर तलवार से यश लिखा हुआ है, जिसने बंगाल की समर-भूमि में शत्रुओं के संगठित दल को बार-बार पीछे मार भगाया, जिसने सिन्धु नदी के सात मुहानों को पार कर युद्ध में बल्लखों को जीता, जिसकी यश कीर्ति दक्षिण समुद्र में अब भी लहराती है ॥ 1 ॥

'जिसने खेद से इस लोक को छोड़ दिया और जो अब स्वर्ग में राजभोग कर रहे हैं, जिसकी मूर्ति स्वर्ग पहुंच चुकी है किन्तु यश अभी तक पृथ्वी पर है, जिसने अपने शत्रुओं को आमूल नष्ट कर दिया, जिसकी वीरता का यश जंगल में महाग्नि के समान अब भी इस पृथ्वी को छोड़ने को तैयार नहीं है ॥ 2 ॥

'जिसने अपनी भुजाओं के बल से इस पृथ्वी पर एकछत्र राज्य अनेक वर्षों किया, जिसका मुख पूर्ण चन्द्र के समान सुशोभित था, उस राजा चन्द्र ने विष्णु की भक्ति में दत्तचित्त होकर विष्णुपद गिरि पर भगवान विष्णु का यह विशाल ध्वज स्थापित किया ॥ 3 ॥'

यह बात स्पष्ट है कि मौजूदा स्थान वह नहीं हो सकता जहां यह लाट पहले लगी हुई थी। अनुमान यह है कि राजा अनंगपाल, जिसने दिल्ली को बसाया, इस स्तम्भ को बिहार से यहां लिवा लाया। सैंकड़ों मील की दूरी से इतने वजनी स्तम्भ को लाना भी कोई आसान बात नहीं है, खासकर उस जमाने में जब साधन बहुत सीमित थे। कुछ का कहना है कि लाट को मथुरा से लाया गया था।

इसी लाट पर से दिल्ली के नामकरण संस्कार का पता चलता है। कहते हैं कि जब महाराज अनंगपाल ने अपनी राजधानी बनाई तो इस कीली को मन्दिरों के बीच के स्थान में गड़वाया। अनंगपाल का नाम, जो बेलानदेव के नाम से विख्यात

था और तोमर वंश का था, लाट पर खुदा हुआ है और विक्रमी सम्वत 1109 दिया हुआ है जो 1052 ई० होता है। कथा है कि किसी ब्राह्मण ने वचन दिया था कि इस स्तम्भ को यदि ठीक तरह शेषनाग के सर पर मजबूती से गाड़ दिया जाएगा तो, जिस तरह यह स्तम्भ अटल रहेगा, उसका राज्य भी अटल रहेगा। स्तम्भ को गाड़ दिया गया मगर राजा को विश्वास नहीं हुआ कि वह शेषनाग के सर पर पहुंच गया है। उसने कीली को उखड़वा कर देखा और उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने यह देखा कि कीली का निचला सिरा खून से भरा था जो शेषनाग का था। राजा घबरा गया। उसने कीली को फिर से उसी तरह गाड़ने को कहा मगर वह पहली तरह मजबूती के साथ गड़ न सकी, ढीली रह गई। इसका यह दोहा विख्यात है—

'कीली तो ढीली भई, तोमर भया मतहीन।'

इसी ढीली पर से कालान्तर में दिल्ली नाम पड़ गया। कवि चन्दबरदाई ने भी पृथ्वीराज रासो में इस घटना का उल्लेख करते हुए कीली ढीली की कथा लिख डाली है। रियासत ग्वालियर का खरग भाट इस घटना का वर्ष 736 ई० देता है। चंद कवि के अनुसार अनंगपाल द्वितीय ने व्यास से अपने पोते की पैदायश का मुहूर्त दिखवाया था। व्यास ने कहा कि मुहूर्त बहुत शुभ है, उसके राज्य को कोई भय नहीं होगा क्योंकि उसके राज्य की जड़ शेषनाग के फण तक पहुंची है। राजा को उसकी बात का विश्वास नहीं हुआ तब व्यास ने लोहे की एक सलाख ली और साठ उंगल उसे जमीन में गाड़ा और वह शेषनाग के फण तक पहुंच गई और बाहर निकाल कर राजा को दिखाया तो उसके निचले सिरे पर खून लगा हुआ था। ब्राह्मण ने कहा कि चूंकि राजा ने उसकी बात पर यकीन नहीं किया, इसलिए उसका राज सलाख की तरह डगमगा गया है और यह कहा—

'व्यास जग जोती (जोतषी) यों बोला ये बातें होने वाली हैं

तोमर तब चौहान और थोड़े दिनों में तुरक पठान।'

यह भी सम्भव है कि यह स्थान, जहां कीली गाड़ी गई, पूर्व काल में खांडव वन का भाग रहा हो और यहां नाग वंश वाले रहते हों। यहां शेषनाग नाम की कोई शिला हो जिस पर कीली गाड़ी गई हो या यहां फिर सांप बढ़ गए हों और उनका राजा शेषनाग वहां रहता हो। इस स्थान को इन्द्र का शाप तो था ही इसलिए कीली ढीली रह गई हो, यह भी सम्भव है।

चंद कवि का यह भी कहना है कि इस लाट को राजा अनंगपाल ने ही बनवाया था। वह कहता है कि राजा ने सौ मन लोहा मंगवाकर उसे गलवाया और लोहारों ने उसका पांच हाथ लम्बा खम्भा बनाया।

यह लाट किस धातु की बनी हुई है। इसके लिए जुदा-जुदा राय है। कुछ का कहना है कि यह ढले हुए लोहे की बनी है। कुछ इसे पंचरस धातु—पीतल, तांबा आदि से बना बताते हैं। कुछ इसे सप्त धातु से बना कहते हैं। कुछ इसे नर्म लोहे का बना कहते हैं। डा० टोम्सन ने इसका एक टुकड़ा काट कर उसका विश्लेषण किया था। उनका कहना है कि यह केवल गर्म लोहे की बनी हुई नहीं है, बल्कि चन्द मिश्रित धातुओं से बनी है जिसके नाम भी उन्होंने दिए हैं।

यह लाट 23 फुट 8 इंच लम्बी है। 22½ फुट जमीन की सतह से ऊपर और करीब चौदह इंच जमीन के अन्दर गड़ी हुई इसकी जड़ लट्टू की तरह है जो छोटी-छोटी लोहे की सलाखों पर टिकी हुई है और स्तम्भ को सीसे से पत्थर में जमाया हुआ है। इसकी बुर्जीनुमा चोटी 3½ फुट ऊंची है जिस पर गरुड़ बैठा था और लाट का सपाट हिस्सा 15 फुट है। इसका खुर्दरा भाग 4 फुट है। इसका नीचे का व्यास 16.4 इंच है और ऊपर का 12.05 इंच। वजन इसका 100 मन के करीब आंका जाता है। इस स्तम्भ को दो बार बरबाद करने का प्रयत्न किया गया। कहा जाता है कि नादिरशाह ने इसे खोदकर फेंक देने का हुक्म दिया, लेकिन मजदूर काम न कर सके। सांपों ने आकर घेर लिया। एक भूचाल भी आया। दूसरी बार मरहठों ने, जब उनका दिल्ली पर कब्जा था, इस पर एक भारी तोप लगा दी मगर उससे भी कुछ नुकसान नहीं हुआ। गोले का निशान बाकी है। यह लाट प्रायः सहस्र वर्ष से अपनी जगह खड़ी है, मगर इसकी धातु इतनी अच्छी है कि इस पर मौसम की तबदीली का कोई प्रभाव न पड़ सका।

लोहे की लाट और कुतुबमीनार के बारे में समय-समय पर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट होते रहे हैं कि इन्हें किसने और कब बनाया, मगर अभी तक कोई निश्चयात्मक बात कायम नहीं हो सकी। पिछले दिनों महरौली के रहने वाले एक शिक्षक मायारामजी से मेरा मिलना हो गया जो कई वर्ष से इसी खोज में लगे हुए हैं कि इन दोनों को बनाने का हेतु क्या था। लोहे की कीली के बारे में उनकी यह राय है कि यह कहीं दूसरी जगह से नहीं लाई गई। यह शुरू से ही यहीं लगी हुई है। कीली लगने और उखड़ने और फिर से लगने के पश्चात उस पर से दिल्ली नाम पड़ने की जो रिवायत मशहूर है, वह इस कीली के बारे में नहीं है। उनका कहना है कि तोमर वंशी राजपूतों ने जब दिल्ली बसाई तो वह इन्द्रप्रस्थ के भिन्न-भिन्न भागों में किले बनाकर रहा करते थे। मुमकिन है कि अनंगपाल प्रथम ने, जैसा कि कहा गया है, दिल्ली के पुराने किले में ही आबादी की हो जिसे इन्दरपत कहा जाता था और बाद में उसके वंशज दिल्ली को किसी कारणों से दरिया के किनारे से हटा कर पहाड़ी इलाके में अड़गपुर ले गए हों, क्योंकि खांडव बन का इलाका यही था, और कुछ सदियों बाद उसे फिर नदी के किनारे किलोखड़ी स्थान पर बसाया

हो; क्योंकि उनके मत के अनुसार लोहे की कीली की मशहूर रिवायत इस किलोखड़ी के बारे में प्रचलित हुई होगी जैसा कि नाम से पता लगता है कि कील+उखड़ी=किलो-खड़ी। उनका कहना है कि चंद कवि ने यह जो कहा है कि 'इस लाट को अनंगपाल ने ही बनवाया था, इसे राजा ने सौ मन लोहा मंगवाकर गलवाया और लोहारों ने उसका पांच हाथ लम्बा खम्भा बनाया' मौजूदा लाट के सम्बन्ध में नहीं हो सकता क्योंकि न तो यह सौ मन की आंकी गई है और न पांच हाथ लम्बी है बल्कि उस जमाने में, जैसा कि रिवाज था, अनंगपाल राजा ने ज्योतिषियों के कहने पर सौ मन लोहे की एक कीली बनवाकर नगर बसाने से पूर्व उसे धरती में गड़वाया होगा और जब ज्योतिषी ने बताया कि वह शेषनाग के फन पर पहुंच गई तो विश्वास न आने के कारण उसे उखड़वा कर देखा गया होगा जिस पर से स्थान का नाम किलो-खड़ी पड़ा और फिर उसे गड़वाने पर जब वह ठीक जगह न बैठ कर ढीली रह गई होगी तो किलोखड़ी को ढीली किलोखड़ी कहने लगे होंगे जिस पर से होते-होते दिल्ली का नाम प्रचलित हो गया होगा। किलोखड़ी से हटाकर दिल्ली महरौली में लाई गई होगी। उनका तो यह कहना है कि यह कोई अलहदा स्थान न थे बल्कि मिले-जुले थे। अनंगपाल ने जो लालकोट के अन्दर दिल्ली बसाई बताते हैं वहां तो मन्दिर थे और मन्दिरों में चूंकि उस वक्त बेशकीमत जवाहरात, सोना आदि धन रहता था, इसलिए उस सबकी रक्षा के लिए किला बनाया होगा। इसको बढ़ाकर पृथ्वीराज ने रायपिथौरा का किला बना लिया। शिक्षक महोदय के मत के अनुसार कैकवाद ने जब किलोखड़ी में दिल्ली बसाई जो नया शहर कहलाया तो वह दिल्ली कुछ नई न होगी बल्कि पुरानी इमारतों को ही ठीक करके उसने अपने लिए किला और महल बना लिया होगा। इसी तरह उनकी राय में जब तुगलक ने तुगलकाबाद का किला बनाया तो वहां भी पहले से किला रहा होगा, क्योंकि इतना बड़ा किला और शहर दो वर्ष में बना लेना असम्भव था। यह कहना कि उसके किलों को जिन्न बनाते रहे महज गप्प है।

मौजूदा कीली के बारे में उन्होंने जो कुछ कहा वह इस प्रकार है—यह कीली शुरू से ही यहां थी और मुमकिन है इसे राजा चन्द्र ने बनवाकर यहीं लगवाया हो। उसने एक तालाब बनवाया जो क्षीर-सागर कहलाता था और उस तालाब में विष्णु भगवान शेषशायी का मन्दिर बनवाया जो शेषनाग पर शयन कर रहे थे और जो हजार फन से भगवान पर साया किए हुए थे। यह कीली उस मूर्ति का ही भाग रहा होगा और इसके ऊपर चतुर्मुखी ब्रह्मा बैठे होंगे।

जब मुसलमानों ने दिल्ली पर विजय पाई तो यहां सीरी में राजपूतों की एक कौम सहरावत रहा करती थी जो पृथ्वीराज की बड़ी वफादार थी। उन्होंने यह सुना हुआ था कि मुसलमान मन्दिर गिराते और मूर्तियों को तोड़ते चले आ

रहे हैं। यह मूर्ति मुसलमानों के हाथों में न पड़े, इस विचार से वे उसे, यहां से निकालकर रातों रात मथुरा की तरफ भागे। होड़ल पलवल के बीच पलवल से परे वे यमुना के किनारे एक गांव में पहुंचे। मूर्ति बहुत भारी थी। उसे वे पार न ले जा सके। वहां वे जंगल में घुस गए और उन्होंने एक टीले के नीचे मूर्ति को छुपा दिया। घाट पर जो ब्राह्मण रहते थे उनसे यह कह दिया कि उनका पता किसी को न बताया जाए। पीछा करते हुए मुसलमान वहां पहुंचे और घाटवालों से उनका पता पूछा। उन्होंने कह दिया कि वे लोग तो यमुना पार चले गए। इस बात को सुनकर मुसलमानों ने उन सब लोगों को कत्ल कर डाला।

वे सहरावत यमुना के खादर में मूर्ति को छुपाकर खुद वहां बस गए और उस गांव का नाम खीरखी रखा। यह गांव आज भी वहां आबाद है। सहरावत ही वहां रहते हैं। कालान्तर में लोग मूर्ति की बात भूल गए। बाद में इसी खानदान में दो व्यक्ति राधोदास और रामदास हुए जिन्हें कोढ़ हो गया। ये बहुत दुखी थे। अंग गल गए थे, चलना भी कठिन था। इन्होंने जगन्नाथपुरी जाकर प्राण छोड़ने का विचार किया। चला तो जाता न था। घुटनों के बल घिसटते-घिसटते चल पड़े। कुछ दूर जाकर इन्हें एक बूढ़ा मिला। पूछा कि कहां जा रहे हो? इन्होंने अपना उद्देश्य बताया। तब बूढ़े ने कहा कि जगन्नाथ यह ही है, उन्हें वहां जाने की जरूरत नहीं। उनका भाई पोढ़ेनाथ हिरनोटा की मिट्टी के ढेर में दबा पड़ा है। वे उसे निकालकर उसकी स्थापना करें और पूजा करें तो उनका कोढ़ दूर हो जाएगा। उस टीले की पहचान यह है कि उस पर यदि काली गाय जाकर खड़ी हो जाएगी तो उसके दूध की धार स्वतः ही उस टीले पर गिरने लगेगी। यह आदेश पाकर दोनों बूढ़े लौट गए और उस टीले की तलाश करने लगे। जैसा बताया था वैसा ही हुआ। तब उसे खोदकर मूर्ति बाहर निकाली और उसको स्थापित कर दिया गया।

खीरखी में शेषशायी भगवान का मन्दिर है। वहां जो मूर्ति है, वह यही है या कोई और, इसकी अभी तक जांच नहीं की गई, मगर कोई उसको काले पत्थर की बताता है तो कोई अष्ट धातु की। मगर मूर्ति वहां अवश्य है और यह कथा भी प्रचलित है।

कुतुबमीनार के लिए भी शिक्षक महोदय का एक नया ही मत है। उनकी राय में यह मीनार न तो पृथ्वीराज ने बनाया और न ही कुतुबुद्दीन ने। बल्कि इसे भी किसी और ने ही बनाया बताते हैं। उनका कहना है कि पृथ्वीराज ने बनाया होता तो उसका चन्दबरदाई ने जरूर जिक्र किया होता। दूसरे पृथ्वीराज का समय विलास में ही अधिक बीता। उसको ऐसे कामों के लिए फुर्सत ही कहां थी। यह मीनार उनकी राय में एक वेधशाला थी जैसा कि जन्तर मन्तर बना है और इससे सितारों की चाल

को देखा जाता था। इसीलिए इसे तालाब में बनाया गया था ताकि ज्योतिषी लोगों को आसमान का नक्शा पानी में देखने से सहूलियत रहे। यह वेधशाला थी इसके वह कई प्रमाण देते हैं :

(1) इसका द्वार ठीक उत्तर में है और ध्रुवतारा रात को ऐन सामने दिखाई देता है। महरौली नाम मिहिर पर से पड़ा है जिसका संस्कृत अर्थ है सूर्य। संभव है कि वारहमिहिर, जो भारत का विख्यात ज्योतिषी हुआ है, ने ही इसे बनवाया हो। इसको कुतुब भी इसीलिए कहते हैं क्योंकि कुतुबनुमा ध्रुवतारा ही होता है।

(2) इस मीनार पर जो लाल पत्थर लगे हैं, केवल इसकी सुन्दरता के लिए हैं, अन्दर से यह लाट मसाले और पत्थर की बनी हुई है। पत्थरों को आपस में बांधने के लिए जो लोहे के हुक लगाए हुए हैं वह ऐसे लोहे के हैं जो आजतक फूला नहीं है। मगर मुसलमानों ने अपनी इमारतों में लोहे के जो हुक लगाए हैं वे फूल गए हैं और उन्होंने पत्थरों के कोनों को तोड़ डाला है।

(3) मुसलमानों ने अपनी जितनी इमारतें बनाई हैं, वे काबे की तरफ मुख की हुई हैं और मीनार के तथा उनके बीच में कई डिग्री का अन्तर है। इस मीनार में पांच डिग्री का ढलान दिया गया है। यह सौ गज लम्बी थी, चौरासी गज जमीन के बाहर तथा सोलह गज पानी में और जमीन के नीचे। जहां से जीना चढ़ना शुरू होता है उसकी दहलीज के नीचे भी जीना गया हुआ था लेकिन वह मिट्टी में दब गया।

इस मीनार पर सूरज की जो किरणें पड़ती हैं, वह भिन्न-भिन्न शक्ल की खास-खास जगह साया डालती हैं जिनसे यदि अच्छी तरह खोज की जाए तो दिन के घण्टों का और महीनों का हिसाब निकल सकता है। चुनांचे वृद्ध शिक्षक ने देखा है कि 21 जून को दोपहर के बारह बजे इस लाट का साया मीनार के अन्दर ही पड़ता है, कहीं बाहर नहीं पड़ता। इससे साफ जाहिर है कि मीनार में कोई ऐसा ढंग जरूर है जो ज्योतिष सम्बन्धी हिसाब को बताता है। जिन 27 मन्दिरों का जिक्र आता है कि मुसलमानों ने उन्हें ढहा दिया, शिक्षक महोदय की राय में वे उन 27 नक्षत्रों के मन्दिर थे जिन पर धूप पड़ने से तिथि का पता लग जाता था वरना 27 की संख्या में मन्दिर बनाने का और क्या हेतु हो सकता था। शिक्षक कोई ज्योतिषी नहीं हैं, न कोई बहुत बड़े हिसाबदां, मगर वह इस खोज के पीछे पागल बने रहते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि जिस स्थान पर मीनार बनाया गया है उसको भी सोच-समझकर चुना गया है क्योंकि इसके पूर्व और पश्चिम में यकसां ऊंचाई की पहाड़ियां थीं जिन पर निशान लगे हुए थे और उनका साया वहां से नापा जाता था। वह अपनी धुन के इतने पक्के हैं कि उन्होंने तो लोहे की कीली पर लिखे लेख का अर्थ भी इस मीनार के सम्बन्ध में ही कर डाला और

बताया कि उसमें सूरज की चाल का उल्लेख है। उनका कहना है कि कीली पर सम्वत पड़ा हुआ ही नहीं है और इस स्तम्भ का निर्माता महाराज मधवा को बताते हैं जो युधिष्ठिर का वंशज था और जिसने 895 ई० से पूर्व राज्य किया था। क्या ही अच्छा हो यदि ज्योतिषज्ञाता और हिसाबदां तथा पुरातत्ववेत्ता दोनों स्थानों की जांच इस दृष्टि से भी कर देखें। शायद कोई नया ही प्रकाश पराने इतिहास पर दिखाई दे जाए।

शिक्षक महोदय के कथन की कतिपय पुष्टि बिहार के प्रमुख इतिहासकार डा० देव सहाय त्रिवेद के कथन से होती है जो उन्होंने कुतुबमीनार के सम्बन्ध में किया है। उनका कहना है कि यह मीनार उस समय की बनी हुई है जब भारत में मुसलमानों का शासन नहीं था। डा० त्रिवेद के अनुसार प्राचीन काल में इसका नाम विष्णु ध्वज था और गुप्तवंश के शासक समुद्रगुप्त ने ईसा से 280 वर्ष पहले इसे बनाया था। वहां जो लौह-स्तम्भ है, उसका निर्माण समुद्रगुप्त के बेटे चन्द्रगुप्त द्वितीय ने ईसा से 268 वर्ष पहले किया। इस मीनार में 27 खिड़कियां हैं जो हिन्दू ज्योतिष शास्त्र के अनुसार 27 नक्षत्रों की प्रतीक हैं।

डा० त्रिवेद ने बताया कि इतिहास के अनुसार इस मीनार को गुलाम बादशाह कुतुबुद्दीन ऐबक ने बनवाया और इसको अधूरा छोड़ कर ही वह मर गया। इसके बाद अल्तमश ने इसको पूरा किया पर यह बात ठीक नहीं जंचती क्योंकि मुसलमानों ने अपने शासन से पहले कभी ऐसी इमारत नहीं बनाई। उन्होंने कहा कि 1857 ई० से पहले अंग्रेज लोग भी इसे 'हिन्दू मीनार' के नाम से पुकारते थे। कुछ विद्वानों का कथन है कि इसे पृथ्वीराज चौहान ने बनाया, पर यह भी सही नहीं जंचता क्योंकि 'पृथ्वीराज रासो' में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

सर सैयद अहमद लोहे के स्तम्भ को चौथी सदी से भी पहले का बताते हैं। उनका कहना है कि इस पर सम्वत पड़ा हुआ नहीं है और इस स्तम्भ का निर्माता महाराज मधवा को बताते हैं जो युधिष्ठिर का वंशज था और जिसने 895 ई० से पूर्व राज्य किया था। इस लाट पर जो दूसरी बातें खुदी हुई हैं वे इस प्रकार हैं :—

1. अनंगपाल द्वितीय का 'सम्वत दिहाली 1109 अनंगपाल बही' अर्थात सम्वत 1109 (1052 ई०) में अनंगपाल ने दिल्ली बसाई।
2. दो लेख चौहान राजा चतुरसिंह के हैं जो रायपिथौरा का वंशज था। ये दोनों सम्वत 1883 (1826 ई०) के हैं। खुद राय-पिथौरा का काल सम्वत 1151 (1094 ई०) दिया गया है।

3. अब हाल का एक लेख छः लाइन का नागरी भाषा में सम्वत 1767 (1710 ई०) का है जो बुन्देले राजा चन्देरी का है। इसके नीचे दो लेख फारसी के हैं जो 1651-52 ई० के हैं। इनमें केवल दर्शकों के नाम दिए हुए हैं।

अनंगपाल के वंशजों ने 19 या 20 पीढ़ी तक दिल्ली की राजधानी में रहकर राज्य किया बताते हैं। अनंगपाल नाम के कई राजा हुए हैं। तोमर बंश का अन्तिम राजा अनंगपाल तृतीय था। इसके कोई लड़का नहीं था, दो कन्याएं थीं। बड़ी कन्नौज के राजा विजयचन्द्र को ब्याही थी जिसका लड़का जयचन्द्र कन्नौज के सिंहासन पर बैठा था। इसी जयचन्द्र ने मुसलमान आक्रमण करने वालों से मिलकर देशद्रोह किया बताते हैं। छोटी बेटी रुकाबाई अजमेर के राजा विग्रहराज के छोटे भाई सोमेश्वर को ब्याही थी। पृथ्वीराज चौहान इसी का पुत्र था। जयचन्द्र को यह आशा थी कि अनंगपाल अपनी बड़ी कन्या के पुत्र को गोद लेगा और इस प्रकार दिल्ली की गद्दी भी उसे मिलेगी, मगर उसकी आशा पूर्ण न हो सकी। राज्य मिला पृथ्वीराज को। यह एक कारण था पृथ्वीराज से उसकी ईर्ष्या का।

पता चलता है कि अजमेर के चौहानवंशी विग्रहराज के पिता बिशालदेव ने 1151 ई० में दिल्ली पर चढ़ाई की और अनंगपाल उस युद्ध में पराजित हो गया। कोटला फीरोजशाह में जो अशोक स्तम्भ लगा है, उस पर विशालदेव का नाम खुदा है और उसका विक्रम सम्वत 1220 (1163 ई०) बताते हुए लिखा है कि उसका राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत तक और दक्षिण में विन्ध्य पर्वत तक नर्मदा नदी की सीमा तक फैला हुआ था।

अनंगपाल के कोई पुत्र नहीं था। उसने अपने नाती पृथ्वीराज को गोद लेकर दिल्ली का राज्य उसे सौंप दिया।

पृथ्वीराज चौहान हिन्दुओं का अन्तिम राजा हुआ है। इसे रायपिथौरा भी कहते थे। यह विशालदेव का पोता और सोमेश्वर का लड़का था जिसको अनंगपाल तृतीय की लड़की ब्याही थी। इसने 1170 से 1193 ई० तक राज्य किया। यह कनिंघम का कहना है, मगर सर सैयद इसका समय 1141 से 1193 ई० बताते हैं। इसके नाम से अनेक कविताएं आज भी गाई जाती हैं। आल्हा-ऊदल की लड़ाई का किस्सा आज भी इधर के देहातों में प्रसिद्ध है जिसे सुनने के लिए हजारों की संख्या में लोग जमा हो जाते हैं। इसने पुराने किले लालकोट को 1180 ई० में और बढ़ाया। यह कनिंघम का कहना है। सर सैयद उसका साल 1143 ई० बताते हैं। यह पांच मील के घेरे में फैला हुआ था। इसको रायपिथौरा का किला कहते थे। इसके खण्डहरात दिल्ली से 11 मील दूर कुतुब और महरौली के इर्द-गिर्द मीलों में फैले हुए दिखाई देते हैं। महान

कवि चन्दबरदाई ने इसके नाम से पृथ्वीराज रासो की रचना करके इस राजा के गुणों का बखान किया है। इसने जयचन्द्र की लड़की संयुक्ता से जयचन्द्र की इच्छा के विरुद्ध स्वयंवर में विवाह किया था। इस कारण जयचन्द्र की ईर्ष्या और भी प्रज्वलित हो उठी थी। यहां से ही हिन्दुओं का पतन काल शुरू हुआ और मुसलमानों का अभ्युदय काल। जयचन्द्र ने, जो पृथ्वीराज से ईर्ष्या करता था, कहा जाता है लाहौर के तत्कालीन मुसलमान सूबेदार शहाबुद्दीन गोरी को दिल्ली पर चढ़ाई करने के लिए उभारा। मुसलमान लोग ऐसा सुअवसर ढूंढ़ ही रहे थे। मौका पाकर उन्होंने 1191 ई० में दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। मगर तारावड़ी के मैदान में, जिसे तारायन कहते थे और जो करनाल और थानेश्वर के बीच में घग्गर नदी के किनारे स्थित है, थानेश्वर से 14 मील दूर पृथ्वीराज ने उसे भारी पराजय दी। हार खाकर शहाबुद्दीन सिन्धु नदी के पार चला गया। हिन्दू इतिहासज्ञों के अनुसार शहाबुद्दीन कई बार परास्त हुआ और एक बार पकड़ा भी गया, मगर भारतीय संस्कृति ऐसी रही है कि शत्रु को पकड़ कर मारते न थे, इसलिए उसे छोड़ दिया गया।

मगर दो वर्ष पश्चात 1193 ई० में जब शहाबुद्दीन को यह पता चला कि राजा भोग विलास में मग्न है, तो उसने पहले से भी अधिक सेना लेकर फिर एक बार धावा किया और इस बार राजपूतों को धोका दिया गया। पानीपत के उसी तारावड़ी के मैदान में फिर एक बार घोर युद्ध हुआ। राजपूत इस बार भली प्रकार तैयार न थे। उनकी पराजय हुई और पृथ्वीराज लड़ाई के मैदान में मारे गए। उनके बहनोई समरसिंह ने भी, जो मेवाड़ से उनकी सहायता के लिए आए थे, वीरगति प्राप्त की। महारानी संयुक्ता ने अपना शरीर अग्नि को समर्पण करके पति का अनुगमन किया।

इस प्रकार आपसी फूट के कारण वीर राजपूत जाति का मुसलमानों के आगे पतन हुआ और दिल्ली के ऊपर मुसलमान शासकों की पताका लहराने लगी। यही मुसलमानों के भारत विजय का सूत्रपात था। महाराज पृथ्वीराज के साथ देश की स्वाधीनता का सूर्य साढ़े सात सौ वर्ष के लिए अस्त हो गया जो देश के स्वतन्त्र होने पर 1947 ई० से फिर से एक बार अपने पूरे वैभव के साथ चमक उठा और दिनोंदिन जिसका प्रकाश देश देशान्तर में फैलता चला जा रहा है।

1193 ई० में पृथ्वीराज की पराजय के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक पहला मुसलमान बादशाह था जिसने दिल्ली को राजधानी बनाया। शुरू-शुरू में तो रायपिथौरा का किला ही मुसलमान बादशाहों की राजगद्दी का केन्द्र और राजधानी रहा। आगे चलकर जलालुद्दीन खिलजी ने किलोखड़ी मुकाम को, जो वहां से पांच-छः मील था, राजधानी बना लिया। तब ही से रायपिथौरा का शहर पुरानी दिल्ली कहलाने

लगा और खिलजी का शहर नई दिल्ली मशहूर हुआ। इब्नबतूता ने भी पृथ्वीराज की दिल्ली को पुरानी दिल्ली लिखा है। रायपिथौरा की पांच मील घेर की दिल्ली बड़ी-बड़ी मशहूर इमारतों से भरी पड़ी है। लोहे की लाट इसी घेरे में है। इसी में हिन्दुओं के बनाए बीसियों मन्दिर थे जिनको मुसलमानों ने तोड़ कर जमीन में मिला दिया। यहां ही कुतुबुद्दीन ऐबक ने कस्रे सफेद नामी जगत विख्यात वह महल बनवाया जिसमें छः सात बादशाहों की एक के बाद एक गद्दीनशीनी हुई। इसी घेरे में कुतुब की लाट है। जमीन के इस छोटे से टुकड़े पर कितने ही राज्य स्थापित हुए और लुप्त हो गए। किसी राजा का अभ्युदय हुआ तो किसी का पतन। किसी को खिलअत मिली, किसी की गरदन उड़ाई गई, किसी के यहां खुशी के शादयाने बजते थे, किसी के यहां मातम छा जाता था, कोई बन गया तो कोई बिगड़ गया। कोई अंबारी में चढ़ा, कोई हाथी के पांवों तले कुचला गया। किसी ने जशन मनाया तो कोई कैद में सड़-सड़ कर मर गया। लाखों के सर धड़ से जुदा हुए। खून के नदी-नाले बह गए। गर्ज कत्लेआम, लूटमार, आग और कहर का नजारा न जाने कितनी बार दिल्ली के इस छोटे-से टुकड़े ने देखा। यह क्षण भर में स्वर्ग बन जाती थी, दूसरे ही क्षण यहां नरक का दृश्य दिखाई देने लगता था। जिसको आज राजमुकुट पहनाया, उसी को कल खाक में मिलाकर छोड़ा। यह थी इस दिल्ली की धरती की माया जिसका कुछ थोड़ा-सा विवरण मुस्लिम काल के 750 वर्ष के इतिहास में देखने को मिलेगा।

अनंगताल—इसे अनंगपाल द्वितीय ने बनाया। यह उस समय एक सुन्दर स्थान गिना जाता था। आज भी यह योगमाया के मन्दिर के उत्तर में देखने में आता है और मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम से कोई पाव मील है। इसकी लम्बाई उत्तर और दक्षिण में 169 फुट है और पूर्व तथा पश्चिम में 152 फुट। सर सैयद का कहना है कि कुतुब की अधचिनी लाट को बनाने के लिए अलाउद्दीन खिलजी के समय में (1296-1316 ई०) इस ताल से पानी लिया जाता था और उस स्थान तक पानी ले जाने के लिए जो नालियां बनाई गई थी उनमें से कुछ अब तक मौजूद हैं। ताल अब सूखा पड़ा है और बरसात में भी इसमें इतना पानी नहीं भरता जो गर्मियों में इसे तर रखे। यहां से करीब मील डेढ़ मील दूर एक बहुत पुराना बन्द नीले का बन्द है। कहते हैं इस ताल में उस बन्द से पानी आता था।

रायपिथौरा का किला—इस किले को पृथ्वीराज चौहान ने 1180 से 1186 ई० के समय में बनवाया। किला साढ़े चार मील के घेरे में है।

इस किले को इसलिए इतना बड़ा बनाना पड़ा कि उत्तरी भारत की ओर से मुसलमानों के हमलों का खतरा बराबर बना रहता था। अब तो यह किला बिल्कुल खण्डहर की हालत में रह गया है, लेकिन उसके खण्डहरात

को देखने ही से पता चलता है कि अपने समय में इसकी क्या शान होगी। इसकी लम्बी चौड़ी दीवारें, इसके मजबूत बुर्ज, इन सब का फैलाव देखकर अनुमान नहीं होता कि किस कदर रुपया इस किले को बनाने पर लगा होगा। रायपिथौरा के महलात और तमाम मन्दिर इसी किले के अन्दर बने हुए थे। किला एक छोटी-सी पहाड़ी पर बना है और किले के इर्द-गिर्द पहाड़ी में खन्दक भी बनी हुई है। इस खन्दक में सारे जंगल का पानी एक बन्द बांध कर डाला गया था जो बारह महीने भरी रहती थी। यद्यपि सारा किला टूट चुका है, मगर पश्चिम में, जहां गजनी दरवाजा था, फसील का थोड़ा निशान बाकी है और गजनी दरवाजे का टूटा ढेर भी मालूम होता है। किले का सब से अच्छा दृश्य उत्तर और पश्चिम से दिखाई देता है। कुतुबमीनार पर से तो वह साफ नजर आता है। किले की शुरुआत ऊधमखां के मकबरे से की जाती है; क्योंकि किले की फसील इस मकबरे से बिल्कुल मिली हुई है। इस जगह से फसील सीधी पश्चिम की ओर उस दरवाजे तक गई है जो चार सौ फुट की दूरी पर है और फिर जरा मोड़ के बाद उत्तर पश्चिम की ओर 419 फुट तक गई है। यहां से फसील का रुख उत्तर-पूर्व की ओर मुड़ता है और दो सौ कदम बढ़ कर रंजीत दरवाजा मिलता है। मोहम्मद गोरी इसी द्वार से शहर में दाखिल हुआ था। इसी बीच में दो सौ कदम आगे जाकर एक बड़ा बुर्ज मिलता है जो अब भी अच्छी हालत में है। इसे लालकोट की पश्चिमी फसील माना जाता है। फसील तीस फुट चौड़ी और खन्दक से साठ फुट ऊंची है। खंदक की चौड़ाई 18 फुट से लगाकर 35 फुट तक है। पहले दरवाजे में कोई खास बात नहीं है। दूसरा दरवाजा रंजीत दरवाजा है जिसका नाम मुसलमानों ने गजनी दरवाजा रखा था। यह एक बड़े मारके का स्थान है। यहां तीन बुर्ज बने हुए हैं। यह दरवाजा 17 फुट चौड़ा है जिसमें एक पत्थर का खम्भा सात फुट ऊंचा दरवाजा उठाने और गिराने का अब भी मौजूद है। फसील का यह हिस्सा फतह बुर्ज पर खतम होता है। फतह बुर्ज का कुतर अस्सी फुट है। यह फसील के उत्तर-पश्चिम में पुरानी ईदगाह के खण्डहर हैं जो एक बड़ी भारी इमारत थी और दिल्ली के लुटने से पहले जहां अमीर तैमूर का कैम्प था और दरबार हुआ था।

फतह बुर्ज से फसील की दो शाखा हो जाती हैं। नीची वाली शाखा उत्तर की ओर झुकी हुई रायपिथौरा के किले को घेर लेती है और ऊपर वाली शाखा सीधी पूर्व की तरफ आगे बढ़ती चली गई है। पहली शाखा सोहन बुर्ज से जा मिली है जो फतह बुर्ज के मुकाबले में थोड़ी नीची है। दोनों बुर्जों में दो सौ फुट का अन्तर है। शायद फतह बुर्ज और सोहन बुर्ज के बीच में भी एक दरवाजा था जिसका कोई निशान बाकी नहीं है। सोहन बुर्ज से तीन सौ फुट के फासले

पर सोहन दरवाजा है जो बराय नाम है। यहां से फसील दक्षिण की ओर ऊधमखां के मकबरे तक, जो आधे मील के अन्तर पर है, दिखाई देती है। सोहन बुर्ज और फतह बुर्ज के मोरचों के दरमियान भी छोटे-छोटे सलामीनुमा दमदमे थे जो नीचे से बहुत फैले हुए थे जिनके ऊपर का कुतर 45 फुट था और एक दूसरे का अन्दर 40 फुट था। यह दमदमे गिर-गिराकर अब तीस तीस फुट ऊंचे बाकी हैं। इस फसील के अलावा एक बाहरी फसील और भी है जिसे घुस के तौर पर बनाया था जो तीस फुट ऊंचा है। सोहन दरवाजे से फिर ऊंची फसील की दो शाखा हो जाती हैं। जो चिह्न बाकी हैं उनसे दक्षिण की तरफ फसील का सिलसिला यूं मालूम होता है कि अनंगपाल ताल के पास से गुजर कर फिर भिण्ड दरवाजा मिलता है और फसील ऊधमखां के मकबरे पर जाकर खतम होती है। दूसरी शाखा सौ गज तक पूर्व की ओर चली गई है और तुगलकाबाद की सड़क के करीब जाकर खतम होती है। यहां से ऊधमखां के मकबरे की फसील का पता नहीं है। अनंगपाल के लालकोट और रायपिथौरा का किला बिल्कुल दो भिन्न-भिन्न चीजें हैं।

पठानों के जमाने में भी जब दिल्ली यहां आबाद थी तो इन फसीलों की हालत खराब हो गई थी। मगर चूंकि मुगलों के हमलों का भय लगा रहता था, इसलिए अलाउद्दीन खिलजी ने इन फसीलों की मरम्मत करवाई और पुराने किले को और भी बढ़ाया। 1316 ई० में कुतुबुद्दीन मुबारक शाह ने इस शहर और फसील की तामीर को पूरा करवाया जिसे अलाउद्दीन अधूरी छोड़ गया था। इब्नबतूता ने, जो 1333 ई० में दिल्ली आया, लिखा है कि किले की फसील का निचला हिस्सा बड़े मजबूत पत्थरों से बना हुआ है और ऊपर का ईंटों से। इससे मालूम होता है कि निचला भाग हिन्दुओं का बनाया हुआ था और ऊपर का मुसलमानों ने बनाया।

अब फिर फतह बुर्ज से शुरू करें जहां से फसील की दो शाखा फूटी हैं। इनमें से एक शाखा, जो पूर्व की ओर जाती है, किले की फसील है और दूसरी सीधी उत्तर की ओर चली गई है और इस जगह बीचोंबीच एक दरवाजे का निशान है। इसी ओर यह फसील करीब-करीब आधे मील तक जाकर जहांपनाह की उत्तरी खण्डहर से जा मिली है। यहां से फसील का रुख दक्षिण की ओर मुड़ता है और तीन सौ गज से कुछ ऊपर जाकर एक दरवाजा मिलता है और आगे दक्षिण की ओर बढ़ो तो दक्षिण-पूर्व की ओर एक दरवाजा मिलेगा। इस हिस्से के मध्य में दिल्ली महरौली की सड़क मिल जाती है। पाव मील पर एक तीसरा दरवाजा मिलता है जहां किले की फसील जहांपनाह की दूसरी फसील से फिर मिल गई है। अब यहां से फसील का रुख सीधा दक्षिण की तरफ गया है और यही हौजरानी दरवाजा है। इसी की सीध में आगे चलकर एक बड़ा भारी दरवाजा

है जो बदायूं दरवाज़े के नाम से मशहूर है। यहां से फसील दक्षिण-पश्चिम की तरफ पलटती है और कुतुबमीनार से जो तुगलकाबाद की सड़क जाती है वहां जा मिलती है। यहां से आधा मील के बीच में बुरका दरवाज़ा मिलता है जिसके बाहर बुर्ज बने हुए हैं। यहां से जमाली मस्जिद तक, जो तीन सौ गज का अन्तर है, फसील का सिलसिला टूट गया है। फिर जमाली मस्जिद से फसील ऊधमखां के मकबरे से जा मिली है। इस तरह यह चक्कर पूरा हुआ और जहां से शुरू किया था वहां ही आ पहुंचा। इब्नबतूता ने, जो मोहम्मद तुगलक के समय में आया था, लिखा है कि किले की फसील का आधार 33 फुट है जिसके अन्दर कोठड़ियां बनी हुई हैं जहां रात के पहरे वाले दरबान रहते हैं। इन्हीं कोठड़ियों में गल्ला, सामान, रसद, गोला-बारूद आदि जमा किया हुआ है। इन कोठड़ियों में अनाज बिगड़ता नहीं। यह फसील इस कदर चौड़ी है कि इसके अन्दर ही अन्दर सवार और पैदल एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिना किसी रुकावट के चले जा सकते हैं।

रायपिथौरा की दिल्ली के अमीर खुसरो ने बारह दरवाज़े बताए हैं मगर अमीर तैमूर ने दस का ज़िक्र किया है जिनमें से कुछ बाहर को खुलते थे, कुछ अन्दर की तरफ। यज़दी ने अपने जफरनामे में अठारह दरवाज़ों का ज़िक्र किया है जिनमें से पांच जहांपनाह की तरफ खुलते थे। अब इन दरवाज़ों का सही पता नहीं चलता। जो नाम मिलते हैं वे हैं—1. दरवाज़ा हौजरानी, 2. बुरका दरवाज़ा (जफरनामे में ज़िक्र है कि सुलतान महमूद और मल्लूखां जब किला जहांपनाह छोड़ कर पहाड़ों में भाग गए तो पहला शख्स रावी दरवाज़े से निकला, दूसरा बुरका दरवाज़े से), 3. गज़नी दरवाज़ा जिसका असल नाम रंजीत दरवाज़ा था, 4. मौअज्जी दरवाज़ा (1237 ई० में जब मरहठों ने मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम में बलवा किया, तो ये लोग इस दरवाज़े तक पहुंच गए थे), 5. मंडारकुल दरवाज़ा (शायद यह दरवाज़ा लाल महल और मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम के बीच में कहीं था), 6. बदायूं दरवाज़ा सदर दरवाज़ा था (इसी में से पुरानी दिल्ली के मशहूर बजाजा बाज़ार का रास्ता निकलता था। इस दरवाज़े के सामने फसील की कोठड़ियां बनी हुई हैं जिनमें शराब पीने वालों को बन्द किया जाता था। यही दरवाज़ा है जिसके सामने अलाउद्दीन खिलजी ने मुगलों को हौजरानी के मैदान में पराजित करके उनके सर काटकर दो बार चबूतरे बनाए थे ताकि आने वाली नसलों को इबरत हो। हौजरानी का मैदान भी ऐतिहासिक है जिसमें बड़े-बड़े भयानक वाकयात हुए हैं। बाग़ी मुगलों और बलवाई मलहदों का कत्लेआम इसी जगह किया गया। इनमें से कुछ तो हाथी के पांवों तले रुंदवाए गए। कितनों के तुर्कों ने टुकड़े-टुकड़े कर दिए। जल्लादों ने उनकी सिर से पांव तक जिन्दा खाल खींच ली। इस बदायूं दरवाज़ा

पर अलाउद्दीन खिलजी ने शराब से तोबा की और शराब पीने का तमाम सामान फोड़ डाला। इस कदर शराब बहाई गई कि मैदान में बरसात जैसी कीचड़ हो गई। इस दरवाजे की ओर से बड़े-बड़े हमले होते रहे हैं। बड़े-बड़े जुलूस निकले हैं। गैर-मुलकों के सफीर शहर में दाखिल होते रहे हैं। अब तो इसका नाम ही बाकी है), 7. दरवाजा हौज खास तथा 8. दरवाजा बगदादी। बाकी दो दरवाजों के क्या नाम थे और कहां थे, यह पता नहीं चलता।

कुतुब की लाट—इसे कुतुबुद्दीन ऐबक ने बनाया बताते हैं। इसके बारे में आज तक एक बहस चली आती है और यह बताया जाता है कि असल में इस मीनार को पृथ्वीराज ने ही बनवाया था। उसकी लड़की यमुना का दर्शन करके भोजन किया करती थी। यमुना बहुत दूर थी। अपनी लड़की की सहूलियत के लिए यह लाट बनवा दी थी। यह हिन्दुओं की बनवाई हुई है, इसके प्रमाण में कई दलील दी जाती हैं। बताया जाता है कि कुतुबमीनार पर चढ़ने के लिए जो दरवाजा है, वह उत्तरमुखी है और हिन्दू उत्तर में ही दरवाजा रखते हैं। मुसलमान पूर्वमुखी रखते हैं। जो दूसरी लाट दूसरी तरफ थोड़ी-सी बनी पड़ी है, उसका दरवाजा पूर्वमुखी है। फिर मुसलमान अपनी इमारतों को कुछ कुरसी देकर बनाते हैं, मगर हिन्दू बिना कुरसी दिए जैसा कि इसमें है। इसके अतिरिक्त लाट के पहले खण्ड में जो खुतबे अरबी जबान में लगे हुए हैं उनसे साफ मालूम होता है कि ये बाद में लगाए गए होंगे। फिर जिस प्रकार पृथ्वीराज के चौंसठ खम्भे के मन्दिर में खम्भों पर घण्टियां खुदी हुई हैं, उसी तर्ज की घण्टियां इसके पहले खण्ड में खुदी हैं। एक बड़ी दलील यह भी है कि पृथ्वीराज का मन्दिर अपनी जगह पर कायम है। कम-से-कम उसका चबूतरा वही है, इसको सब कोई मानते हैं। तब इतनी बड़ी लाट को बनाने के लिए उसकी बुनियाद का फैलाव जरूर मन्दिर के चबूतरे के नीचे तक गया होगा इसलिए भी यह मन्दिर के पहले बनी होगी। कम-से-कम पहला खण्ड तो उसी का बनवाया हुआ प्रतीत होता है। उस पर जो मूर्तियां थीं, उनको निकालकर कुतबों के पत्थर लगा दिए होंगे। यह सम्भव है कि उस वक्त इसके इतने खण्ड न हों मगर एक खण्ड जरूर रहा होगा जिस पर से खड़े होकर पिथौरा की लड़की यमुना का दर्शन करती थी।

बड़ी दादाबाड़ी—गुड़गांव रोड़ पर लड्डासराय में यह वाड़ी स्थित है। इस स्थान पर जैनियों के श्री जिनदत्त सूरि के पट्ट शिष्य श्री जिनचंद्र जी का दाहसंस्कार 1166 ई० में हुआ बताते हैं। यह वाड़ी उन्हीं की स्मृति में कायम की गई। यहां यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था भी है।

हिन्दू काल की मानी जानेवाली दिल्लियां और स्मृति चिह्न

(1193 ई० से पूर्व)

इन्द्रप्रस्थ से पूर्व के नाम

स्मृतियां: 1. निगमबोध—बेला रोड पर निगमबोध दरवाज़े से बाहर।

2. राजघाट—बेला रोड पर दरियागंज के रास्ते लाल किले के दक्षिण में।

3. विद्यापुरा—चांदनी चौक में, कटरा नील जहां अब है, विश्वेश्वर महादेव का मन्दिर।

4. बरमुरारी—जिसे अब बुराड़ी कहते हैं। दिल्ली से पांच मील के करीब किंग्ज़वे के रास्ते से होकर पूर्व दिशा में यमुना नदी के करीब।

इन्द्रप्रस्थ (पहली दिल्ली) का फैलाव जिसे महाराजा युधिष्ठिर ने अब से करीब 5,100 वर्ष पूर्व बसाया, दक्षिण में बारहपुले तक, उत्तर में सलीमगढ़ और निगमबोध घाट तक, पश्चिम में कोतवाली तक और पूर्व में यमुना नदी तक बताया जाता है।

स्मृतियां: 1. नीली छतरी—यमुना के रेल के पुल को जाते हुए ऊपर की सड़क पर बाएं हाथ सलीमगढ़ के द्वार के सामने।

2. किलकारी भैरव का मन्दिर—पुराने किले के पीछे दिल्ली से ढाई मील।

3. दूधिया भैरव का मन्दिर—पुराने किले के पीछे किलकारी भैरव से एक फर्लांग आगे।

4. बाल भैरव—जीतगढ़ पहाड़ी पर तीसहजारी होकर।

5. पुराना किला—दिल्ली से दो मील दिल्ली मथुरा रोड पर बाएं हाथ।

6. योगमाया का मन्दिर—कुतुबमीनार की लाट के पास दिल्ली से 12 मील के करीब दिल्ली कुतुब रोड पर।

7. कालकाजी का मन्दिर—कालका कालोनी के पास । दिल्ली से आठ मील के करीब दिल्ली-मथुरा रोड पर ।

8. हनुमान मन्दिर—निगमबोध घाट के बाहर ।

अनंगपुर अथवा अड़गपुर (दूसरी दिल्ली), जिसे महाराज अनंगपाल न सम्वत 740 विक्रम के करीब बसाया, दिल्ली से करीब 15 मील दूर दिल्ली-मथुरा रोड पर बदरपुर से कुतुब को जाते हुए बाएं हाथ सूरजकुण्ड के रास्ते पर आबाद थी ।

स्मृतियां:9. अड़गपुर या अनंगपुर—विक्रम सम्वत 733 के लगभग अड़गपुर गांव में बना । वहीं किला भी बना और नगर बसा ।

10. सूरजकुण्ड—सम्वत 743 (686 ई०) में बदरपुर कुतुब रोड पर कुतुब से कोई आठ मील बाएं हाथ एक सड़क पहाड़ में गई है ।

11. अनंगताल—महरौली में योगमाया के मन्दिर के उत्तर म राजा अनंगपाल द्वितीय ने बनाया । दिल्ली से 12 मील दूर दिल्ली कुतुब रोड पर ।

अनंगपाल और रायपिथौरा की दिल्ली (तीसरी दिल्ली) महाराज अनंगपाल ने, अनुमान है, 1052 ई० में बसाई । यहीं पृथ्वीराज ने 1170 से 1193 ई० तक राज्य किया । यह दिल्ली से 12 मील दूर महरौली में है ।

12. लालकोट — महाराज अनंगपाल द्वितीय द्वारा 1060 ई० में निर्मित हुआ । अब इसका पता नहीं है । कुछ दीवारें हैं ।

13. सत्ताईस मन्दिर—सब तोड़ दिए गए । चौंसठ खम्भा मौजूद है जो कुतुबमीनार के पास है ।

14. लोहे की कीली—चतुर्थ शताब्दी की बनी हुई ।

15. कुतुब की लाट—जिसका एक खण्ड पृथ्वीराज द्वारा निर्मित बताते हैं ।

16. रायपिथौरा का किला—कुतुब के पास 1160 से 1186 ई० में बना बताते हैं। दिल्ली से 12 मील।

17. जैन पार्श्वनाथ मन्दिर—(महरौली में अशोक विहार के पास) 1132 ई० से पूर्व का।

18. बड़ी दादावाड़ी—गुड़गांव मार्ग पर लड्डासराय में कुतुब से करीब 1 मील (निर्माण 1166 ई०)।

2-मुस्लिम काल की दिल्ली

(पठान काल : 1193–1526 ई०)

मुसलमानों का शासनकाल 1193 ई० से प्रारम्भ होता है। मोहम्मद गोरी पहला मुस्लिम बादशाह था। मगर सलतनत का आरम्भ हुआ कुतुबुद्दीन ऐबक से जिसने गुलाम खानदान की बुनियाद डाली और किला रायपिथौरा को राजधानी बनाया। पहले नौ गुलाम बादशाह पृथ्वीराज की दिल्ली में ही हकूमत करते रहे। रायपिथौरा का किला इनकी राजधानी थी जिसमें इन्होंने एक मस्जिद और अन्य बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें बनाईं। लेकिन दसवें बादशाह कैकबाद ने, जो बलबन का पोता था, किलोखड़ी में 1286 ई० में एक महल बनाया और वहां शहर बसाया जो नया शहर कहलाया। यह मुसलमानों की दूसरी दिल्ली थी। राजधानी को वह किलोखड़ी में ले गया। जलालुद्दीन खिलजी ने यहां के किले को मजबूत किया और उसमें सुधार किया।

जलालुद्दीन खिलजी ने पृथ्वीराज के किले को ही राजधानी रखा, मगर अलाउद्दीन खिलजी ने कुछ अर्से किला रायपिथौरा में रह कर 1303 ई० में सीरी को राजधानी बना लिया। यह मुसलमानों की तीसरी दिल्ली थी। 1321 ई० में खुसरो खां ने कुतुबुद्दीन मुबारकशाह को कत्ल कर डाला और गद्दी पर बैठ गया लेकिन खुद गयासुद्दीन तुगलकशाह द्वारा मारा गया जो राजधानी को सीरी से हटाकर 1321-23 ई० में तुगलकाबाद ले गया। यह मुसलमानों की चौथी दिल्ली थी। गयासुद्दीन के लड़के मोहम्मद आदिलशाह ने तुगलकाबाद के नजदीक ही आदिलाबाद बसाया और चन्द वर्ष बाद उसने दिल्ली रायपिथौरा और सीरी के चारों ओर एक दीवार 1327 ई० में बनवाई और नए शहर का नाम जहांपनाह रखा। यह मुसलमानों की पांचवीं दिल्ली थी। मोहम्मद शाह के भतीजे फीरोजशाह तुगलक ने, जो उसके बाद गद्दी पर बैठा, अपने पुरखों की राजधानियों को छोड़कर 1354 ई० में एक नया नगर फीरोजाबाद नाम से आबाद किया जो मुसलमानों की छठी दिल्ली थी। तैमूर के हमले ने इस नए शहर को बरबाद कर दिया और शक्तिहीन सैयदों ने, जो लड़ाकू पठानों के उत्तराधिकारी बने थे, और कुछ तो नहीं पर अपने नाम से शहर बसाने का प्रयत्न जरूर किया। सैयद खानदान के पहले बादशाह खिजर खां ने खिजराबाद 1418 ई० में बसाना चाहा और उसके जानशीन मुबारकशाह ने 1432 ई० में मुबारकाबाद आबाद किया जो मुसलमानों की सातवीं और आठवीं दिल्ली थी। लोदियों ने जो सैयदों के पीछे आए, दिल्ली में अपने राज्यकाल की कोई खास यादगार नहीं छोड़ी। बहलोल लोदी, जिसने इस खानदान को चलाया, कुछ समय सीरी में रहा। जब बाबर ने

लोदियों को पानीपत में पराजित करके दिल्ली को फतह कर लिया था। उसने दिल्ली को अपने सूबेदार के अधीन छोड़ कर आगरे को ही राजधानी बनाया। बाबर का लड़का हुमायूं पठानों द्वारा शेरशाह सूरी से पराजित होकर हिन्दुस्तान छोड़ गया और 14 वर्ष बेघरबार घूमता रहा। हिन्दुस्तान से निकाले जाने के पूर्व हुमायूं ने पुराने किले के पास 1533 ई० में दीनपनाह नाम की दिल्ली बसानी शुरू की थी जो मुसलमानों की नवीं दिल्ली थी। जब शेरशाह दिल्ली पर काबिज हुआ तो उसने भी अपने पूर्वजों का अनुकरण करके 1540 ई० में एक नया शहर 'शेरगढ़' या दिल्ली शेरशाह बसानी शुरू की जो मुसलमानों की दसवीं दिल्ली थी। 1546 ई० में उसके लड़के सलीमशाह सूरी ने यमुना नदी के द्वीप पर एक नया किला सलीमगढ़ बनाया। यह मुसलमानों की ग्यारहवीं दिल्ली थी।

1555 ई० में हुमायूं ने पठानों को पराजित करके दिल्ली को फिर से अधिकृत किया। पठानों पर विजय प्राप्ति के छः मास पश्चात हुमायूं दीनपनाह में गिर कर मर गया और उसका लड़का अकबर प्रथम गद्दी पर बैठा जो आगरे को राजधानी बनाकर वहां ही रहने लगा और वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसके पश्चात उसका लड़का जहांगीर भी आगरे में ही रहता रहा और उसकी मृत्यु के पश्चात जब शाहजहां गद्दी पर बैठा तो उसने दस वर्ष आगरे में शासन करके 1678 ई० में राजधानी को फिर से दिल्ली में तबदील कर दिया। 1678 से 1803 ई० तक दिल्ली में मुगलों की राजधानी रही। 11 सितम्बर 1803 को दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। उसके बाद 1857 ई० के गदर तक यद्यपि मुगल बादशाह दिल्ली में रहा, मगर उसका शासन केवल लाल किले तक ही सीमित था और वह भी अंग्रेजों की अधीनता में। 1857 ई० में उसकी भी समाप्ति हो गई, साथ ही भारतवर्ष से मुस्लिम शासन की भी। शाहजहां ने अपनी बसाई दिल्ली का नाम शाहजहांबाद रखा। यह मुसलमानों की बारहवीं और अन्तिम दिल्ली थी।

गुलाम खानदान
(1193 ई० से 1320 ई०)

मोहम्मद गोरी के आगमन से दिल्ली की काया पलट गई। अब न तो यह कोई प्रान्तीय नगर रह गई थी, न किसी छोटी सी रियासत की राजधानी, न राजपूत राजाओं का मुख्य स्थान, बल्कि यह एक बड़ी सल्तनत का राजकीय केन्द्र बन गई थी। बड़े साम्राज्यशाही राज्यों का दौर, जो हर्ष के समय समाप्त हो गया था, फिर एक बार शुरू हो गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक मोहम्मद गोरी का गुलाम था। बादशाह ने इसे सूबे का नायब (गवर्नर) मुकर्रर किया हुआ था। गद्दी पर बैठकर इसने अपने खानदान का नाम गुलाम खानदान रखा। इस तरह गुलाम खानदान का आरम्भ हुआ। उसने चार वर्ष हुकूमत की। इसकी राजधानी पृथ्वीराज की दिल्ली ही रही। रायपिथौरा के किले को ही उसने अपनी राजधानी बनाकर पुराने लालकोट की हद्द को अधिक बढ़ाया। इसके नाम से कई यादगारें मशहूर हैं। सर्वप्रथम है 'कुव्वतुलइस्लाम मस्जिद'—'इस्लाम की शक्ति की मस्जिद' जिसे 27 मन्दिर तोड़ कर उनकी सामग्री से बनाया गया था। इसको इसने 1193 ई० और 1198 ई० के दरमियानी समय में बनवाया। इसके नाम से दो और इमारतें बनवाने का जिक्र आता है। पहली कुतुबमीनार जो संसार की आश्चर्यकारी इमारतों में गिनी जाने लगी है। दूसरी इमारत कहते हैं इसने पृथ्वीराज के किले के अन्दर कस्रे सफेद के नाम से बनवाई थी जिसका अब कोई निशान मौजूद नहीं है।

कुव्वतुलइस्लाम मस्जिद (1193–1300 ई०)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, यह पृथ्वीराज के मन्दिर को तोड़ कर बनाई गई है। मुहम्मद गोरी ने 1193 ई० में दिल्ली पर विजय पाकर अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा इस मस्जिद को बनवाना शुरू किया था। मुस्लिम इतिहासकारों का कहना तो यह है कि मन्दिर की केवल पश्चिमी दीवार तोड़ी गई थी, बाकी मन्दिर ज्यों का त्यों है और उसमें मस्जिद बना दी गई। लेकिन कनिंघम का कहना है कि सिवा चन्द स्तम्भों के बाकी तमाम हिस्सा गिरा दिया गया था। चबूतरा बेशक वहां है और उस पर मस्जिद बनाई गई है। दरवाजे पर और बहुत सी बातों के अतिरिक्त यह भी लिखा हुआ है: हिजरी 587 में ऐबक ने इस किले को फतह किया और इस मस्जिद के बनवाने में 27 मन्दिरों की मूर्तियों के सामान को काम में लिया। हर मन्दिर की दौलत का अंदाजा बीस लाख दिलवाली था अर्थात् 40 हजार रुपये। यह दिलवाली 2 नये पैसे के बराबर होता था। उस वक्त इसके पांच ही दर बन पाए थे। इसके एक दर पर इसकी तामीर का साल 1198 ई० लिखा हुआ है। 1220 ई० में शमशुद्दीन अल्तमश ने तीन-तीन दर के दो दरवाजे और बनवाए। 80 वर्ष बाद 1300 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने दो दरवाजों का इजाफा किया। फीरोजशाह तुगलक ने इस मस्जिद की मरम्मत करवाई थी। इस वक्त इसके ग्यारह दर मौजूद हैं जिनमें तीन बड़े और आठ छोटे हैं। इन ग्यारह दरों की लम्बाई 385 फुट है। बड़ी महराब 53 फुट ऊंची और 31 फुट चौड़ी है। मस्जिद की हर दो लम्बाई और चौड़ाई आगे और पीछे से 150 फुट है और इधर उधर की तरफ 75 फुट। इसका सहन 104 फुट से 152 फुट है। इसी सहन के मध्य में अगले दरवाजों के सामने की तरफ लोहे की कीली गड़ी हुई है जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। हिन्दू इस मस्जिद को ठाकुरद्वारा या चौंसठ खम्भा भी

कहते हैं। इसमें कितने ही दालान और सहंचियां बनी हुई हैं। सबसे सुन्दर खम्भे उत्तरी भाग में पूर्व की ओर के हैं जिन पर बड़ी सुन्दर पच्चीकारी का काम हुआ है। इसकी सहंचियां भी देखने योग्य हैं जिनकी छतों पर पच्चीकारी का काम हुआ है। इब्नबतूता ने इस मस्जिद के बारे में लिखा है—"मस्जिद बहुत बड़ी है और अपने सौन्दर्य में अद्वितीय है।" मुसलमानों के काल से पूर्व यह मन्दिर था। इसके सहन में एक स्तम्भ है जिसे कहते हैं सात खानों के पत्थरों से बनाया गया है।

इस मस्जिद को आदीना और जामा दिल्ली भी कहते थे। कहते हैं कि कुतुबुद्दीन ऐबक ने जिन मन्दिरों को तोड़कर उनके मसाले से इसको बनवाया, उन मन्दिरों को हाथियों द्वारा ढवाया गया था और जो पैसा हाथ लगा उससे मस्जिद की तामीर करवाई गई। इस मस्जिद के सामने अल्तमश ने एक नीचे स्थान पर शिव की मूर्ति स्थापित की जिसे वह उज्जैन के महाकाल के मन्दिर से लाया था। इसके बाद अलाउद्दीन खिलजी सोमनाथ के मन्दिर से जो मूर्ति लाया था, उसके टुकड़े टुकड़े करके इसी मस्जिद के दरवाजे के फर्श में लगवा दिया गया। चुनांचे दो मूर्तियां काले पत्थर की मस्जिद के उत्तरी दरवाजे में गड़ी हुई मिली थीं। अल्तमश के काल में इस मस्जिद में पनाह लेने वाले हिन्दुओं को ऊपर से पत्थर मारकर मार डाला गया था।

1237 ई० में पुरानी दिल्ली के मलहदों ने इस मस्जिद को लूट लिया था। तैमूर ने जब दिल्ली पर हमला किया तो हिन्दुओं ने भाग कर इस मस्जिद में फिर पनाह ली थी। तैमूर ने उनका पीछा किया और उनको कत्ल करवा डाला था।

कुतुब मीनार

कुतुबमीनार के बारे में दो ख्याल हैं। हिन्दुओं का कहना है कि इसे पृथ्वीराज ने बनवाया और मुसलमानों का कहना है कि इसे कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1193 ई० में बनवाना शुरू किया। कई कहते हैं कि 1200 ई० में पूरा करवाया। मालूम होता है कि कुतुबुद्दीन ने केवल एक ही खण्ड बनवाया था। इस खण्ड पर उसका और गोरी का नाम खुदा है। अल्तमश ने दूसरा, तीसरा, चौथा खण्ड बनाया। इन खण्डों पर उसका नाम खुदा हुआ है। फीरोजशाह ने इस मीनार की मरम्मत करवाई जबकि बिजली गिरने से 1368 ई० में इसको भारी हानि पहुंची थी। शायद पांचवें, छठे और सातवे खण्ड को भी उसी ने बनवाया। मीनार पर फिर बिजली गिरी और उसे हानि पहुंची। 1403 ई० में सिकन्दर लोदी ने मीनार की फिर मरम्मत करवाई। मीनार 1782 ई० और 1803 ई० के भूकम्पों से खस्ता हालत में हो गई। 1828 ई० में मेजर राबर्ट स्मिथ ने 17 हजार की लागत से इसकी मरम्मत करवाई। उसके बाद 1829 ई०

और 1904 ई० में फिर दो बड़े भूकम्प आए, मगर इन दोनों में मीनार को कोई हानि नहीं पहुंची।

मीनार की बुलन्दी 238 फुट 1 इंच है। ज़मीन पर इसका व्यास 47¾ फुट है और ऊपर चोटी पर 9 फुट। इस वक्त इसके पांच खण्ड हैं और चार छज्जे। दो खण्ड उतार दिए गए। यह लाल पत्थर की बनी हुई है और बीच-बीच में संगमरमर भी काम में लाया गया है। चौथा खण्ड संगमरमर का है। पहली मंजिल 94 फुट 11 इंच ऊंची है। दूसरी 50 फुट 8½ इंच और तीसरी 40 फुट 1½ इंच। आखिर की दो 24 फुट 4½ इंच और 22⅓ फुट ऊंची हैं। मीनार में चढ़ने को उत्तरमुखी दरवाजा है। उसमें 379 सीढ़ियां हैं। मीनार के चौतरफा खुदाई का काम है जिसमें कुतुबुद्दीन और गोरी की प्रशंसा तथा कुरान की आयतें व ईश्वर के 99 नाम लिखे हुए हैं। मीनार का नाम या तो इसके बनाने वाले के नाम पर पड़ा या पृथ्वी के सिरे को भी कुतुब कहते हैं, इसलिए उसे कुतुब मीनार कहा गया या उस वक्त एक फकीर कुतुब साहब थे उनके नाम पर इसका यह नाम पड़ा। अधिक सम्भावना यही है कि उसके निर्माता कुतुबद्दीन के नाम पर ही इसका नामकरण हुआ।

इसका छठा खण्ड, फीरोजशाह की बुर्जी, 1794 ई० तक मौजूद था जो 12 फुट 10 इंच ऊंचा था। यह 1808 ई० के भूकम्प में गिर पड़ा। यह फिर कब बना, इसका पता नहीं चलता। सातवां खण्ड बिल्कुल सीधा सादा शीशम की लकड़ी का मंडवा था जिस पर झण्डा लहराया करता था। इस मण्डवे के थम आठ फुट ऊंचे थे और झण्डे का खम्भ जो साल की लकड़ी का था 35 फुट लम्बा था। 1884 ई० में लार्ड हार्डिंग ने उसे उतरवा दिया। उसका नमूना बिना झण्डे के कुतुब के पास के एक चबूतरे पर रखा हुआ है।

यह मीनार इतना ऊंचा है कि इसके नीचे खड़े होकर ऊपर की तरफ देखें तो सर की टोपी को थामना पड़े। लाट के ऊपर खड़े होकर देखने से नीचे खड़े आदमी छोटे-छोटे खिलौनों से चलते मालूम होते हैं। ऊपर से तांबे का पैसा मस्जिद के चौक में फेंके तो वह पत्थर की धार से मुड़ जाता है। मीनार के ऊपर से जड़ के पास पृथ्वीराज का चौंसठ खम्भा, लोहे की कीली, थोड़ी दूर बढ़ कर लालकोट की दीवार, फिर पश्चिम में रायपिथौरा के किले की इमारतें नजर आती हैं। उसके सिरे पर पुरानी ईदगाह। रायपिथौरा के किले के उत्तर में जहांपनाह की गिरी हुई चारदीवारी के टीले हैं जिनका सिलसिला सीरी की खण्डहर चारदीवार तक चला गया है। बेगमपुर की मस्जिद भी देखने को मिलती है। जहांपनाह के आगे उत्तर पश्चिम में फीरोजशाह के मकबरे का गुम्बद, जो हौज खास के पास है, दिखाई देता है। उससे आगे सफदरजंग का मकबरा चमकता दिखाई देता है। उसी लाइन में जामा मस्जिद की बुर्जियां देखने में आती हैं। सफदरजंग के पूर्व में पुराने किले की लम्बी चारदीवारी

और निजामुद्दीन की दरगाह का गुम्बद और उससे जरा आगे हुमायूं के मकबरे का गुम्बद देखने में आएगा। दक्षिण की ओर देखने में पहाड़ी पर कालका देवी का मंदिर और फिर मीनार से पश्चिम की ओर तुगलकाबाद तथा आदिलाबाद के किले दिखाई देंगे जिनके बीच में तुगलक का मकबरा है।

तुगलकाबाद की सड़क के करीब उत्तर में एक बड़ा भारी आम का पेड़ है। यह हौजरानी और खिड़की का मैदान है। इस सड़क के दक्षिण में और मीनार के पास ही जमाली मस्जिद और सुल्तान बलबन के मकबरे के खण्डहर पड़े हैं जिनके पास कुतुब साहब की दरगाह के दक्षिण में मौजा महरौली की बस्ती नजर आती है।

ख्याल किया जाता है कि कुतुबुद्दीन इस मीनार को मस्जिद की मीनार बनाना चाहता था जिस पर मुल्ला अजान दे सके। दूसरा मीनार अलाउद्दीन खिलजी ने बनवाना शुरू किया था, मगर वह मुकम्मिल न हो सका।

कस्रे सफेद

1205 ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने रायपिथौरा के किले में एक महल बनवाया था जिसका नाम कस्रे सफेद पड़ा। इब्नबतूता ने इसकी बाबत लिखा है कि यह महल बड़ी मस्जिद के पास था, मगर अब उसका कोई पता नहीं चलता। इसी महल के मैदान में मलिक बख्तियार खिलजी, जो शाहबुद्दीन गोरी का सूबेदार था, हाथी से लड़ा था। इसी महल में शमशुद्दीन अल्तमश और उसके पोते नासिरुद्दीन महमूद शा तथा बलबन और दूसरे चन्द बादशाहों की ताजपोशियां हुईं। फीरोजशाह खिलजी यद्यपि कैकबाद को कत्ल करके किलोखड़ी के किले में गद्दी पर बैठा था, मगर रिवाज के अनुसार ताजपोशी उसकी भी इसी महल में हुई। इसी प्रकार इसके भतीजे तथा वारिस अलाउद्दीन खिलजी की ताजपोशी भी यहां ही हुई। इस प्रकार सात बादशाहों की ताजपोशी इसी महल में हुई। नासिरुद्दीन महमूदशाह के समय में (1259 ई०) हलाकू खां के राजदूत की आवभगत इसी महल में हुई थी। मोहम्मद तुगलक की ताजपोशी भी उसके गद्दी पर बैठने के 40 रोज बाद इसी महल में हुई, यद्यपि वह गद्दी पर बैठा तुगलकाबाद में था। इस महल में ताजपोशियां ही नहीं होती रहीं, बल्कि इसमें बड़े-बड़े लोगों को कैद में भी रखा गया था। कभी-कभी इस महल में खून की नदियां भी बही हैं। मलिक बख्तियारुद्दीन को, जो मुईउद्दीन बहराम शाह का वजीर था, 1241 ई० में यहां कत्ल किया गया। जब कभी कोई खास सभा किसी कठिनाई के समय होती थी तो इसी जगह होती थी। बहराम शाह का जांनशीन कैद में से निकाल कर इस महल में लाया गया था और फिर कुस्के फिरोजी में सुल्तान अलाउद्दीन मसऊद के नाम से उसकी ताजपोशी हुई थी। मगर जब से राजधानी यहां से तब्दील

हो कर नए शहर में ले जाई गई, इस महल की तबाही शुरू हो गई।

कुतुबुद्दीन ऐबक की वफात लाहौर में 1210 ई० में चौगान खेलते हुए घोड़े से गिर कर हुई। इसकी कब्र का पता नहीं लगता कि कहां बनवाई गई। यह चार वर्ष बादशाह रहा। वैसे इसने 24 वर्ष 6 माह हकूमत की। इसके बाद इसका बेटा आरामशाह गद्दी पर बैठा। मगर यह पूरे वर्ष भर भी हकूमत न कर सका। अपनी कमजोरियों के कारण यह तख्त पर से उतार दिया गया। बेशक इसने अपने नाम का सिक्का जरूर चला दिया था। बदायूं के गवर्नर अल्तमश ने आराम-शाह की मनमानी देखी और चारों ओर अराजकता दिखाई दी तो वह फौरन दिल्ली पहुंच गया और गद्दी को हथिया कर उसने आरामशाह को कत्ल करवा दिया।

अल्तमश लगातार हिन्दू राजाओं से लड़ता रहा और भिन्न-भिन्न प्रदेशों को अपने अधीन करता रहा। जब यह मुलतान को फतह करने गया हुआ था तो वह बीमार हुआ और दिल्ली लाया गया। 1236 ई० में इसकी मृत्यु हो गई। इसे मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम में दफन किया गया।

अल्तमश का मकबरा

अल्तमश की मृत्यु 1236 ई० में हुई। यह पहला मुस्लिम बादशाह था जिसका मकबरा हिन्दुस्तान में बना। यह मकबरा कुव्वतुलइस्लाम की पुश्त पर उत्तर पश्चिमी कोने में बना हुआ है और शायद उन्हीं कारीगरों का बनाया हुआ है जिन्होंने मस्जिद बनाई क्योंकि दोनों एक ही नमूने की इमारतें हैं। उस जमाने में मेमार अधिकतर हिन्दू थे और वह अपने देश की कारीगरी को ही जानते थे। मुसलमानों की कारीगरी भिन्न प्रकार की थी, मगर उसको सीखने में हिन्दुओं को समय लगा। यही कारण है कि मुस्लिम काल की शुरूआत की इमारतों में वह मुसलमानी कला देखने में नहीं आती जो बाद की इमारतों में दिखाई देगी।

इमारत लाल पत्थर की है जो बाहर से चालीस मुरब्बा फुट है और अन्दर से तीस मुरब्बा फुट। अन्दरूनी भाग की दीवारों में पच्चीकारी का बहुत सुन्दर काम बना हुआ है। दो दीवारों पर खुदाई की जगह रंगीन फूलपत्ती का काम था। कब्र भी बहुत बड़ी और ऊंची संगमरमर की बनी हुई है। छत न होने के कारण अन्दर के हिस्से को मौसमी तब्दीलियों से नुकसान पहुंचा है। वैसे सात सौ वर्ष से ऊपर की बनी हुई यह इमारत देखने योग्य है। असल कब्र तैखाने में है। वहां 21 सीढ़ी उतर कर जाते हैं।

अल्तमश ने कुव्वतुलइस्लाम की मस्जिद में तीन दरवाजे 1220 ई० में और बनवाए। यह जिक्र ऊपर आ चुका है। इसके अतिरिक्त उसने एक बहुत बड़ा हौज 'ही

समशी' कस्बौ महरौली में 1231 ई० में बनाया जो सौ एकड़ जमीन पर बना हुआ है। यह लोहे की कीली से एक मील है। इब्नबतूता ने इस हौज के सम्बन्ध में लिखा है।

हौज शमशी (1229 ई०)

इस हौज में बरसात का पानी जमा होता है। इसकी लम्बाई दो मील और चौड़ाई एक मील है। इसके पश्चिम में ईदगाह की तरफ पक्के घाट चबूतरों की शक्ल के ऊपर तले बने हुए हैं। चबूतरों से पानी तक सीढ़ियां हैं और हर चबूतरे के कोने पर बुर्ज बना हुआ है जिसमें बैठ कर तमाशाई इसे देखते हैं। हौज के बीचोंबीच पत्थरों का दो मंजिला बुर्ज बना हुआ है। जब तालाब में पानी अधिक होता है तो लोग किश्तियों में बैठकर बुर्ज तक पहुंचते हैं और जब थोड़ा होता है तो वैसे ही आते जाते रहते हैं। इसके अन्दर एक मस्जिद भी बनी हुई है। जब पानी उतर जाता है तो किनारों पर खरबूजे बो देते हैं। खरबूजा गो छोटा होता है मगर बहुत मीठा।

आजकल इस हौज में सिघाड़े बोए जाते हैं जो बहुत मीठे होते हैं। किसी जमाने में यह हौज तमाम लाल पत्थर का बना हुआ था। अब सारी बन्दिश उखड़ गई है। इस तालाब के पानी को एक झरना बनाकर फीरोजशाह तुगलक तुगलकाबाद ले गया था।

अब तो इसमें बरसात में ही पानी भरता है। यह तालाब और इसके साथ की इमारतें तथा बाग बहुत खूबसूरत लगते थे। पूर्व की ओर लाल पत्थर की एक बहुत बड़ी इमारत है जिसे जहाज कह कर पुकारते हैं। एक मस्जिद है जिसे औलिया मस्जिद कहते हैं। कहते हैं कि दिल्ली को फतह करने की नमाज इसमें पढ़ी गई थी। इसके नजदीक सड़क की दूसरी ओर इसमें से जो नहर काट कर ले गए हैं, वह झरने में जाकर गिरती है जहां साएदार वृक्ष लगे हैं। यह नहर तुगलकाबाद चली गई है।

कहते हैं कि ख्वाजा कुतुबुद्दीन अल्तमश के जमाने में एक बहुत बड़े औलिया हो गुजरे हैं। अल्तमश ने एक बार स्वप्न में हजरत अली को देखा और ख्वाजा साहब से उसकी ताबीर (मतलब) पूछी। ख्वाजा साहब ने कहा कि जहां आपने हजरत अली को देखा है, वहीं तालाब बनवा दो। चुनांचे बादशाह ने हुक्म की तामील की और यह तालाब बनवा दिया। 1311 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने इसकी मरम्मत करवाई थी और उसी जमाने में इसके बीचोंबीच एक चबूतरा, जो नीचे से खाली है, बनवाकर उस पर एक बुर्जी बनवा दी थी जो करीब ढाई फुट ऊंची और 52 फुट थी जिसके सोलह स्तून आठ-आठ फुट ऊंचे हैं। कहते हैं कि यह बुर्जी मोहम्मद साहब की आमद की यादगार में बनाई गई थी और उनके घोड़े के निशान बुर्ज के मध्य में हैं। दो सौ वर्ष बाद मोहम्मद शाह तुगलक ने इसकी फिर

मरम्मत करवाई और इसी तालाब से कुतुब साहब के झरने में पानी होता हुआ तुगलकाबाद जाता है। लोहे की लाट से यह तालाब कोई एक मील के फासले पर है। इस तालाब के गिर्द की जमीन तारीखी घटनाओं की जगह है। इर्दगिर्द में बहुत से शूरवीरों और सन्तों की यहां कब्रें हैं जो हमलावरों के साथ आए। हौज के दक्षिण में अन्धरिया बाग है और पूर्व में औलिया मस्जिद और लाल महल जिसे जहाज कहते हैं।

सुलतान गारी का मकबरा (1239 ई०)

पुरानी दिल्ली की कुतुब मीनार (पृथ्वीराज की दिल्ली) से कोई तीन मील पश्चिम में मलिकपुर गांव में अब्दुल फतह मोहम्मद का मकबरा बना हुआ है जो अल्तमश का सबसे बड़ा लड़का था और जिसकी मृत्यु 1228 ई० में बंगाल में हुई। यह ढाके का गवर्नर था। इस मकबरे को अल्तमश ने 1231 ई० में बनवाया। ख्याल है कि किसी वक्त यह इमारत दो मंजिला रही हो। इस मकबरे के पास ही रुकनुद्दीन फीरोज और मुइज्जुद्दीन बहराम के मकबरे हैं जो अल्तमश के लड़के और उत्तराधिकारी थे। रुकनुद्दीन की मृत्यु कैदखाने में 1237 ई० में हुई और 1240 ई० में इसका मकबरा रजिया बेगम ने बनवाया। मुइज्जुद्दीन बहराम शाह को 1242 ई० में कत्ल किया गया और उसका मकबरा अलाउद्दीन मसूर शाह ने 1242 ई० में बनवाया। फीरोजशाह ने इन तीनों मकबरों की मरम्मत कराई थी। मगर इस वक्त ये खस्ता हालत में हैं। संगमरमर का बना हुआ एक दालान और उसमें वर्ना कब 93 सीढ़ियां उतर कर नीचे है। इसकी छत में भी जैन मन्दिरों के पत्थर लगे हुए हैं जैसे कुतुब की मस्जिद में लगे हैं।

अल्तमश के जमाने की एक बड़ी यादगार ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की दरगाह है जिसे ख्वाजा साहब की दरगाह भी कहते हैं।

दरगाह हजरत कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी

इनका जन्म फरगुना (तुर्किस्तान) में हुआ था। इनके पिता का नाम कमालुद्दीन अहमद मूसा था। इनको आम तौर पर ख्वाजा साहब कहकर पुकारते थे। यह जब ढाई बरस के थे तो इनके पिता का देहान्त हो गया। यह बगदाद में मुईनुद्दीन चिश्ती के मुरीद बने। जब चिश्ती साहब अजमेर तशरीफ ले आए तो यह भी पहले मुलतान और फिर दिल्ली आ गए। उस वक्त इनकी उम्र करीब बीस वर्ष थी। यह उन दरवेशों में से थे जो शुरू-शुरू के मुस्लिम हमलावरों के साथ हिन्दुस्तान आए। इनकी गिनती प्रमुख मुस्लिम संतों में होती है। मुईनुद्दीन चिश्ती के यह न केवल शिष्य ही थे बल्कि उनके मित्र भी थे और उनके बाद इन को मुस्लिम सन्तों में पहला दरजा प्राप्त हुआ।

दिल्ली यह 1188 ई० में आए और जब मुसलमानों ने दिल्ली को फतह किया तो फतह की नमाज इन्होंने महरौली की औलिया मस्जिद में पढ़ी थी।

मोहम्मद गोरी से इनका सम्बन्ध अच्छा न रहा, मगर शमशुद्दीन अल्तमश इनका बड़ा भक्त था और उसके ज़माने में इनका बड़ा दौरदौरा था। शुरू-शुरू में यह पानी की सुविधा की दृष्टि से किलोखड़ी में दरिया के किनारे आकर रहे। बाद में यह महरौली जा रहे। यह शान्त प्रकृति के थे। अल्तमश के ज़माने में इन्हें धर्म परिवर्तन के कार्य में बहुत सफलता मिली थी। इनकी मृत्यु 67 वर्ष की उम्र में 1235 ई० में हुई। कुतुबुद्दीन के काल में तो इनकी ख्याति एक धार्मिक पेशवा के तौर पर ही रही, लेकिन बाद में इनके प्रति इतना आदर बढ़ा कि इनके मृतक संस्कार स्वयं बादशाह अल्तमश ने किए जिसने न कभी नमाज़ के समय में देरी की थी और न नमाज टाली थी।

इनकी शादी दिल्ली में ही हुई थी और इनके दो लड़के सैयद अहमद और सैयद महमूद इनकी कब्र के पास ही दफना दिए गए थे। सन्त ख्वाजा खिज़र, जो कहते हैं अब भी मौसमों की हालत की देखभाल करते हैं और गल्ले की कीमतों को मुकर्रर करते हैं, इन्हें ख्वाब में मिले थे और इनको भविष्य बताने की शक्ति दी थी। इन्होंने हज़रत निज़ामुद्दीन को ईश्वरी शक्ति दी। इसके अलावा इन्होंने इस शक्ति का कभी इस्तेमाल नहीं किया। यह एक विख्यात धर्मोपदेशक की तरह रहे और मरे और यद्यपि बादशाह ने इनके जनाजे को कन्धा दिया, मगर जो इज्जत अफ़ज़ाई इनके मुरीदों ने इनकी की, उसके मुकाबले में यह कोई बड़ी बात न थी।

इन्होंने अपने बिस्तरे मर्ग से अपना असा और अब्बा अपने मुरीद फरीद शकरगंज के पास पाकपट्टन भेज दिया था जो मुलतान के नजदीक है। यह रिवायत है कि जब एक बार इनके गुरु मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेर से दिल्ली तशरीफ लाए तो इन्होंने उनके साथ वहां चलने की इच्छा प्रकट की, लेकिन जैसे ही लोगों को इस बात का पता लगा तो उन्होंने मुईनुद्दीन की सेवा में निवेदन किया कि कुतुब साहब को उनकी बेहतरी और इज्जत के लिए उनके बीच में ही रहने दिया जाए। अवाम की इच्छा का ख्याल करते हुए उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया गया और कुतुब साहब दिल्ली में ही रहे और जब उनका इन्तकाल हुआ तो उन लोगों के बीच दफन किए गए जो सदा उनसे मोहब्बत और प्यार करते थे। इनके मज़ार का सदा ही बड़ा अहतराम होता रहा है और यह रिवायत है कि आदिलशाह सूर का हिन्दू सेनापति हीमू मुगल सेना के मुकाबले के लिए जाने से पूर्व कुतुब साहब के मज़ार की जियारत को गया था और उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि वह दिल्ली फतह कर सका और मुगल सेना को भगा सका

तो वह मुसलमान बन जाएगा।

जब कुतुब साहब की मृत्यु का समाचार पाकपट्टन पहुंचा तो फरीद शकर दिल्ली तशरीफ लाए और सन्त की कब्र को मिट्टी से ढंक दिया जिसे वह खुद हौज शमशी से उठा कर लाए थे। मजार अभी तक उस मिट्टी का ही बना हुआ है जिस पर सफेदी होती रहती है और उस पर एक सफेद चादर बिछी रहती है। 1541 ई० में शेरशाह सूरी के काल में खलीलुल्लाह खां ने मजार के गिर्द एक बड़ी दीवार और उत्तर की ओर एक दरवाजा बनवा दिया था जिस पर कुतबा लिखा हुआ है। दस वर्ष बाद सलीमशाह के जमाने में 1551 ई० में युसुफ खां ने एक दूसरा दरवाज़ा बनवाया जो मौजूदा सदर दरवाज़ा है। इस दरवाज़े से प्रवेश करके एक चालीस गज लम्बी गली आती है जिसमें मकानों और सहनों की पुश्त पड़ती है। इस गली के आखिर में छः पत्थर की सीढ़ियां हैं जिनसे मौलाना फखरुद्दीन के तामीर करदा द्वार में दाखिल होते हैं जो शाह आलम के जमाने में एक बारसूख व्यक्ति था। दरवाज़े के एक तरफ तीन कमरे हैं और मुकाबले की तरफ एक कमरा है जो मुसाफिरों के आराम के लिए बनाया गया था।

इस दरवाज़े में प्रवेश करने से पूर्व दर्शक के दाएं हाथ एक दीवारदार अहाता पड़ता है जो 57 फुट × 54 फुट का है। इसके पश्चिम में तीन दरवाज़ों की एक छोटी मस्जिद है और मस्जिद के सामने नवाब झज्जर के कुटुम्ब का कब्रिस्तान है। इसमें सबसे मशहूर कब्र झज्जर के प्रथम नवाब निजाब अली खां की है जिसे लार्ड लेक ने ब्रिटिश सरकार की ओर से जागीर दी थी। यह एक सादे संगमरमर के मकबरे से ढकी हुई है जो 3 फुट ऊंचा और 10 फुट लम्बाई चौड़ाई में है। इसी के नीचे निजाब अली की बेगम की कब्र भी है। इन कब्रों के सिराहने की तरफ इसी साइज की संगमरमर की एक और कब्र है जिस पर 1843 ई० पड़ा है। यह निजाब अली के लड़के फैजमोहम्मद की है। इस कब्र के दाएं हाथ संगमरमर की एक और कब्र है जो फैजमोहम्मद की कब्र जैसी ही बनी हुई है। यह फैज अली खां की है जो झज्जर के आखिरी नवाब अबदुल रहमान खां के पिता थे। अब्दुल रहमान खां को 1857 ई० के गदर में अंग्रेजों ने बागियों का साथ देने पर फांसी दी थी।

जब आप मकबरे के अन्दरूनी अहाते में मौलामा फखरुद्दीन के दरवाज़े से दाखिल होते हैं तो पत्थर के फर्श का आपको एक सहन मिलेगा। इसके सामने कोई बीस गज के अन्तर पर दीवार में एक लम्बोतरा दरवाज़ा है और दाएं हाथ एक महराबदार दरवाज़ा है; आपके दाएं हाथ के नजदीक महराबदार दरवाज़े पर पहुंचने से पेशतर कोई 35 मुरब्बा फुट का एक और अहाता है जिसकी दीवारें दस फुट ऊंची लाल पत्थर की बनी हैं। इस अहाते में औरंगज़ेब के दरबार के एक ख्वाजा

सरा मोहम्मद खां की कब्र है जिसका असल नाम ख्वाजा नूर था और वह ग्वालियर तथा आगरे के किलों का किलेदार रह चुका था। अहाते में एक महराबदार दरवाजे से दाखिल होते हैं जिसकी दहलीज पर एक कुतबा लिखा हुआ है। कब्र पर का मकबरा बिल्कुल सादा बना हुआ है। यह संगमरमर का बना हुआ है। इसकी ऊंचाई करीब 3 फुट है और यह 3 फुट ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है। अहाते के पश्चिम में पांच दरों की एक मस्जिद है जो 29 फुट लम्बी और 8 फुट गहराई में है। मस्जिद की लम्बाई में पत्थर जड़ा हुआ है जो 5½ फुट चौड़ा है। अहाते में चार कब्रें और हैं जो निजामुद्दीन के मिरजा इलाहीबख्श के परिवार की हैं।

बाएं हाथ को मुड़कर और महराबदार लम्बोतरे दरवाजे से गुजर कर एक पत्थर के फर्श की गली आती है जो 58 फुट लम्बी और 6 फुट चौड़ी है और इसमें उत्तर से दक्षिण को चार फुट का ढलान है। दाएं हाथ पर कुतुब साहब के मजार के अहाते की संगमरमर की दीवार है और बाएं हाथ उनकी मस्जिद की पुश्त है। इस गली के सिरे पर संगमरमर का एक दरवाजा है और इसके दाएं हाथ संगमरमर का एक चार फुट ऊंचा तावीज है जो मौलाना फखरुद्दीन की कब्र पर बना हुआ है। संगमरमर के दरवाजे पर फर्रुखसियर की हकूमत के काल का एक कुतबा लिखा हुआ है। बाएं हाथ घूम कर कोई 30 फुट दाएं हाथ कुतुब साहब के मजार की दक्षिणी दीवार है और चार जाली के काम की जालियां हैं; दूसरे संगमरमर के दरवाजे में घुसने से पहले बाएं हाथ पर एक छोटा सा कब्रिस्तान है जिसमें बांदे के नवाब की कब्रें बनी हुई हैं। इनमें तीन संगमरमर की हैं जिन पर बारीक पच्चीकारी का काम बना हुआ है। बांदे के नवाबों के शवों को दफनाने के लिए महरौली भेजा जाया करता था, लेकिन 1857 ई० के गदर के बाद यह रिवाज बन्द हो गया।

दूसरे संगमरमर के दरवाजे में से गुजर कर और दाएं हाथ घूम कर एक अहाता आता है जिसकी पूर्वी और दक्षिणी दीवारों का जिक्र आ चुका है। यह अहाता 9 फुट × 57 फुट है। इसकी तीन-चौथाई पश्चिमी दीवार पर टाइल लगे हुए हैं। बाकी की पश्चिमी और उत्तरी दीवारें चूने पत्थर की बनी हुई हैं। पश्चिमी दीवार के उत्तरी कोने में एक दीवारवाली मस्जिद है जिसे कहते हैं, फरीद शकरगंज ने बनवाया था जब वह कुतुब साहब के मजार की जियारत को आए थे। मजार के चारों ओर लकड़ी का कटहरा लगा हुआ है जो 21 मुरब्बा फुट लम्बाई चौड़ाई में और 2 फुट ऊंचाई में है जैसा कि बताया जा चुका है। मजार मिट्टी से ढका हुआ है और उसे बदनजर से बचाने को एक सफेद कपड़े का टुकड़ा बिछा रहता है। इस मजार के चंद फुट पर ताजुद्दीन सैयद अहमद और सैयद मोहम्मद कुतुब साहब के साहबजादों, बदरुद्दीन गजनवी, इमामुद्दीन अब्दात और अन्य पंथियों की कब्रें बनी हुई हैं।

दाएं हाथ, फर्रुखसियर के संगमरमर के पहले दरवाजे से गुजर कर और करीब दस गज के फासले पर कुतुब साहब के दोस्तों और सम्बन्धियों की कब्रें हैं। थोड़ा आगे बढ़कर संगमरमर का एक चबूतरा 4 फुट ऊंचा और 11 मुरब्बा फुट लम्बा चौड़ा बना हुआ है। इस चबूतरे पर दो सुन्दर संगमरमर के तावीज हैं। एक बदनाम जाब्ते खां की कब्र पर है जिसने दिल्ली सल्तनत के बरबाद होने में सहायता दी और जिसका लड़का गुलाम कादिर अपने बाप से भी अधिक बदनाम हुआ और दूसरा जाब्तेखां की बीबी की कब्र पर है।

अब जैसे ही अपने दाएं को घूमिए और पक्के फर्श पर उस गली के बिल मुकाबिल, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है, चलिए तो कुतुब साहब की मस्जिद आ जाती है।

कुतुब साहब की मस्जिद

वह देखने में बिल्कुल साधारण है। 22 फुट लम्बी और 21 फुट चौड़ी है। इसमें तीन दरवाजे हैं। इसकी पुश्त की दीवार को कहा जाता है कि कुतुब साहब ने खुद मिट्टी का बनाया था। 1551 ई० में सलीम शाह के जमाने में तीन और दरों का इसमें इजाफ़ा किया गया और ऐसा ही दूसरा इजाफ़ा 1717 ई० में फर्रुखसियर ने किया था।

इनका खिताब काकी इसलिए पड़ा बताते हैं कि जब रमजान शरीफ में यह रोजा रखा करते थे तो एक दरवेश, जिनका नाम खिजर था, इन्हें छोटी रोटियां खिलाया करते थे जिन्हें काक कहते थे। यह भी कहा जाता है कि एक बार औलिया की मस्जिद में दरवेशों की मजलिस थी। वहां आसमान पर से रोटियां उतरीं, मगर उन्हें काकी साहब को ही खाने का हुक्म हुआ। फरिश्ते के जमाने में यह रोटियां तब तक पकाई जाया करती थीं और गरीबों को बांटी जाती थीं। वह अब भी पकाई जाती हैं मगर उन धनिकों को दी जाती हैं जो दरगाह में भेंट चढ़ाते हैं। ये रोटियां आटा, चीनी और सौंफ डाल कर पकाई जाती हैं।

दरगाह के बाहर जब पश्चिम की ओर से दाखिल हों तो एक बड़ी मस्जिद आती है जिसे अहसानुल्ला खां ने बनवाया था जो दिल्ली के आखिरी बादशाह बहादुरशाह के तबीब हुआ करते थे और बहादुरशाह के मुकदमे में जिन्होंने गवाही दी थी। इसके बाद जो दरवाजा आता है वह महल सराय में ले जाता है। इस खूबसूरत इमारत में दिल्ली के आखिरी चंद बादशाह गर्मियों के दिनों में आकर रहा करते थे। दरगाह की पश्चिमी चारदीवारी से गुजर कर एक मस्जिद का सहन आता है जिसके बाएं हाथ शाहआलम सानी की एक खातून की कब्र है और दाएं हाथ मोती मस्जिद और दिल्ली के आखिरी बादशाहों की कब्रें हैं। मोती मस्जिद को शाहआलम बहादुरशाह ने, जो औरंगजेब का जांनशीन (उत्तराधिकारी) था, 1709 ई० में बनवाया था।

मस्जिद के दक्षिणी भाग के छोटे से सहन में तीन बादशाहों की कब्रें हैं—अकबर शाह सानी की जो 1837 ई० में गुजरा, इसके पास शाहआलम सानी की जो 1806 ई० में गुजरा। इसके बाद जगह छूटी हुई है जो बहादुरशाह के लिए नियत की गई थी मगर वह रंगून में दफनाया गया। तीसरी कब्र शाहआलम बहादुरशाह की है जो सादी है और उस पर घास उगी है। पश्चिम में आखिरी कब्र मिरजा फारुख की है जो बहादुरशाह का जानशीन था मगर कत्ल कर दिया गया था। 1857 ई० के गदर के कारणों में एक यह कत्ल भी माना जाता है। अब एक दरवाजा आता है जो एक सहन में खुलता है। यह दरगाह के उत्तर में है। दाएं हाथ का रास्ता, जिसके सामने संगमरमर का दीवा है और संगमरमर का दरवाजा है, हजरत कुतुब की कब्र के दालान में पहुंचा देता है। यहां जूते उतार कर जाना होता है। जिस कमरे में कब्र है, उसकी पूर्वी और दक्षिणी दीवारों में संगमरमर की जाली लगी हुई है जिसे फर्रुखसियर बादशाह ने लगवाया था। उनमें से अन्दर की कैफियत भली प्रकार दीख जाती है। कब्र सादा मिट्टी की बनी हुई है जिस पर कपड़ा ढका रहता है और चारों तरफ संगमरमर का जाली कटा हुआ निहायत खूबसूरत कटहरा लगा हुआ है जो $2\frac{3}{5}$ फुट ऊंचा और 14 फुट × $15\frac{1}{2}$ फुट है। मजार के चारों ओर और बहुत सी कब्रें हैं। दरगाह की पश्चिमी दीवार पर सब्ज और पीले टायल जड़े हैं। दक्षिण पूर्वी कोने के बाहर ख्वाजा कुतुबुद्दीन की कब्र है। इसके साथ मौलाना फखरुद्दीन की कब्र है जिसने अंदर आने का दरवाजा बनवाया था। इसके सामने की ओर तालाब के किनारे दाई जी की कब्र है जो एक खातून थी। ऐसे ही तालाब अजमेर और निजामुद्दीन की दरगाहों में भी हैं। इनके अलावा और भी बहुत-सी कब्रें हैं। तालाब के सिरहाने की तरफ से कुतुब मीनार का नजारा बहुत साफ नजर आता है।

कुतुब की दरगाह के अहाते में खिरनी के चार पेड़ बहुत पुराने लगे हुए हैं। कुतुब की खिरनियां मशहूर हैं। बहादुरशाह रंगीले ने जो फूलवालों की सैर का मेला जारी किया था, उसका जिक्र ऊपर योगमाया के सिलसिले में किया जा चुका है कि बुधवार को पंखा मंदिर में चढ़ता है और गुरुवार को हजरत के इसी मजार पर। अब भी वही दस्तूर जारी है। मौसमे बरसात का यह मेला दिल्ली वालों की सैर और तफरीह का एक जरिया होता था। जब कांग्रेस की अंग्रेजों से लड़ाई चली तो इस मेले का भी बहिष्कार कर दिया गया था मगर फिर जारी हो गया है।

उस जमाने में इस मेले की रौनक ही जुदा होती थी। बरसात का मौसम आया और किसी दिन जब फुहारें पड़ रहीं हों, सैर की तारीख का एलान करने के लिए शहर में नफीरी फिर जाती थी मानो कोई बहुत बड़ी घटना होने वाली हो। हर एक की जबान पर यही चर्चा होती थी कि सैर की तारीख मुकर्रर हो गई है। बस उसके लिए तैयारियां शुरू हो जातीं थीं। महरौली के बाजार के कमरे सैकड़ों रुपया किराया

देकर शौकीन लोगों के लिए रोक लिए जाते थे। नए कपड़े सिलवाए जाते, जूते खरीदे जाते, सैर वाले दिन मुंह अंधेरे से लोग अपने बच्चों को साथ लेकर घरों से निकल पड़ते। उस जमाने में बसें और मोटरें तो थी नहीं, दिल्ली से महरौली तक 11 मील का फासला है। सड़कें सज जातीं, जगह-जगह प्याऊ बैठ जातीं, जगह-जगह खाने-पीने की, पान बीड़ी सिगरेट की दुकानें लग जातीं। ज्यादा लोग तो पैदल ही जाते थे, बाकी इक्कों में, घोड़ा गाड़ियों पर, मझोलियों में, मर्द और औरतें रास्ते में ठहरते चलते। बड़ा पड़ाव सफदरजंग पर होता था। शाम को झरने से पंखा उठता था। हजारों की खलकत (भीड़) साथ होती थी। आगे-आगे नफीरी बज रही है, डंडे खिल रहे हैं, सक्के कटोरे उछाल रहे हैं, हुक्केवाले चिलम भरे, लम्बी-लम्बी मुनाल लगाए उन पर कमरों तक हुक्का पिलाते चल रहे हैं। हर कोई सजा-धजा, तेल-इत्र लगाए, फूलों के कंठे पहने अपनी-अपनी टोली बनाए खरामां-खरामां कदम बढ़ा रहा है। क्या बेफिक्री का होता था वह आलम—न हिन्दू-मुसलमान का भेद, न ऊंच-नीच का ख्याल।

झरने पर एक और ही आलम होता था। झरना पानी से लबरेज, ऊपर से पानी की चादर गिर रही है और बारहदरी की छत पर से धड़ाधड़ लोग हौज में कूद रहे हैं। जगह-जगह खोंचे वाले बैठे तरह-तरह का सौदा बेच रहे हैं। आम और जामुन के ढेर लगे हुए हैं। बच्चे तार की नगीनेदार अंगूठियां खरीद रहे हैं जो सैर की खास निशानी होती थीं। गर्ज दिल्ली का यह मेला अपनी जुदा ही शान रखता था। अब न वह दिल रहे, न वह बेफिक्री।

फूल वालों की सैर, जिसे सैरे गुल फरोशां कहते हैं, जारी कैसे हुई, उसकी भी एक रिवायत है। अकबर शाह सानी के जमाने की बात है। उस जमाने तक बादशाह के दरबार में अंग्रेज रेजीडेंट आया करता था। एक दिन दरबार में पहुंचा तो उसका सांस चढ़ा हुआ था, हांफ रहा था और फों-फों की आवाज निकल रही थी। रेजीडेंट की फों-फों से वलीअहद जहांगीरशाह की हंसी [illegible] रेजीडेंट ने समझ लिया कि उसका मजाक उड़ाया जा रहा है। उस वक्त तो वह चुप रहा मगर अपनी कोठी पर जाकर ईस्ट इंडिया कम्पनी को लिखा और उकसाया कि यह हतक उसकी नहीं बल्कि आनरेबिल कम्पनी बहादुर की हुई है। झगड़ा बढ़ा। आखिर कम्पनी बहादुर ने फैसला किया कि किले में वलीअहद की सेहत खराब रहती है, तालीम का भी सही प्रबन्ध नहीं है। उन्हें अंग्रेज अतालीक की निगरानी में इलाहाबाद में क्याम करना चाहिए। वलीअहद की माता मलका आलम पर इस फैसले का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा और सारे किले में हाहाकार मच गया मगर फैसले के विरुद्ध अमल करने की ताब किसे थी। चुनांचे जहांगीरशाह इलाहाबाद भेज दिए गए।

मलका आलम दुआएं मांगती और मिन्नतें मानती रही। मिन्नतों में एक यह भी थी कि उसका बच्चा नजरबंदी से रिहाई पाएगा तो वह हजरत ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के मजार पर फूलों की चादर चढ़ाएगी।

इत्तफाक से ऐसा हुआ कि छः महीने नहीं गुजरे थे कि इलाहाबाद में हैजा फैला और कम्पनी बहादुर ने वलीअहद का इलाहाबाद में रखना मुनासिब नहीं समझा। वलीअहद फिर दिल्ली वापस लौट आए, मां की मिन्नत पूरी हुई और ख्वाजा साहब के मजार पर बड़ी धूम-धाम से फूलों की चादर चढ़ाई गई। उसी दिन से इस मेले का आगाज हुआ।

1947 ई० के फसाद में इस दरगाह को भी नुकसान पहुंचाने का प्रयत्न किया गया था। जनवरी 1948 में महात्मा गांधी इसे देखने गए और उन्होंने एक सभा में प्रवचन दिया। गांधीजी की इस जगह की यह अंतिम यात्रा थी।

कौशके फीरोजी

यह महल शायद अल्तमश ने अपने काल में बनवाया था जो सबसे बड़ा शाही महल था। इस महल में अल्तमश की बेगम सुलताना रजिया की माता रहा करती थी। जैसा कि बताया जा चुका है सुलतान अलाउद्दीन मसउद शाह को कस्रे सफेद से लाकर उसकी ताजपोशी 1239 ई० में मुइउद्दीन बहराम शाह के जांनशीन के तौर पर इसी महल में हुई। नासिरुद्दीन महमूद शाह ने, जो अलाउद्दीन का जांनशीन था, अपना पहला दरबार इसी महल में किया। इस महल का अब कहीं पता नहीं चलता।

कौशके सब्ज

यह सब्ज महल भी अल्तमश ने कौशक फीरोजी के साथ बनवाया था। इसमें भी कई ताजपोशियां, दरबार और कत्ल हुए बताते हैं। इस महल का पहला जिक्र अल्तमश के लड़के नासिरुद्दीन महमूदशाह के राज्य काल में आता है जो इस महल में तख्त पर बैठा और हलाकू के सफीर का यहां स्वागत किया जबकि किलोखड़ी के किले से यहां तक बीस-बीस सिपाहियों की गहरी कतार खड़ी थी। फरिश्ते ने यह घटना कस्रे सफेद की बाबत लिखी है जो अधिक विश्वसनीय है।

चबूतरा नासिरा

यह चबूतरा भी उसी जमाने में बना जब ऊपर के दोनों महल बने। मगर इसे शायद नासिरुद्दीन महमूद शाह ने बनवाया। यह सब इमारतें पृथ्वीराज के किले में थीं। अलाउद्दीन खिलजी जब देवगिरि को लूटकर दिल्ली लौटा था तो सब माल इसी चबूतरे पर फैलाया गया था और एक छतरी दरबार करने के लिए

बनाई गई थी। अब इस चबूतरे का भी पता नहीं चलता । जब जलालुद्दीन ने खुली बगावत की और किलोखड़ी के पास बहादुरपुर में अपने को किलाबंद कर लिया तो कैकबाद का मासूम बच्चा दिल्ली का बादशाह घोषित किया गया और उसने चंद महीनों तक अपना दरबार इस किले में किया।

शमसुद्दीन अल्तमश ने तीन लड़के और एक लड़की छोड़ी। लड़की का नाम रजिया था। तख्त पर बैठा बड़ा लड़का रुकनुद्दीन। मगर यह ऐयाश निकला। सात महीने के बाद ही इसे तख्त से उतार दिया गया। सात महीने में ही इसने इस कदर उधम मचाया कि रिआया इससे तंग आ गई। सारा कामकाज इसने अपनी मां के सुपुर्द कर रखा था। वह बड़ी कपटी थी। गर्ज इसके सौतेले भाई मारे गए और यह खुद अपनी मां के साथ कैद किया गया। कैद ही में 1237 ई० में यह दोनों मर गए और मौजा मलकपुर में दफन किए गए जहां सुलतान गारी का मकबरा है। 1238 ई० में इनका मकबरा बनाया गया। रुकनुद्दीन की जगह रजिया बेगम को गद्दी पर बैठाया गया।

रजिया बेगम 1236 ई० से 1239 ई० तक हुकमरां रही। यह बहुत बुद्धिमान थी। मुस्लिम काल में यह एक ही मिसाल है कि एक औरत ने हकूमत की। वह मरदाना लिबास पहनती थी और किसी की परवाह नहीं करती थी। खुद रोज तख्त पर बैठती और अदालत करती थी। गो नूरजहां ने भी एक तरह से हकूमत की है, मगर वह जहांगीर के साए के नीचे। खुद मुखतारी से नहीं। यह बड़ी बहादुर औरत थी, मगर यह एक हब्शी के साथ शादी करना चाहती थी। इस पर इसके उमरा इससे नाराज हो गए और बगावत कर दी। हब्शी मारा गया और रजिया ने एक अमीर से शादी कर ली जिसने इसका साथ दिया था। मगर दोनों गिरफ्तार हो गए और दोनों को कैथल के पास (जिला करनाल) 1239 ई० में कत्ल कर दिया गया और रजिया का भाई मुइउद्दीन बहराम शाह तख्त पर बैठा।

मकबरा रजिया बेगम

इब्नबतूता ने रजिया बेगम के कत्ल के बारे में लिखा है कि इसे एक काश्तकार से कत्ल करवाया गया जो उसे कत्ल करके और दफनाने के बाद उसके चंद कपड़े बाजार में बेचने ले गया, मगर वहां वह पकड़ा गया और मुंसिफ़ के सामने पेश किया गया। उसने इकबाल जुर्म किया और दफन करने की जगह का पता बता दिया। वहां से उसकी लाश को निकाल कर स्नान कराने और कफनाने के बाद उसी स्थान में दफना दिया गया। उसकी कब्र पर एक छोटा सा मकबरा बनाया गया जिसे दर्शक देखने जाते हैं और इसे पवित्र स्थान मानते हैं। मकबरा उसके भाई मुइउद्दीन बहराम शाह ने बनवाया बताते हैं। यह एक अहाते के अंदर बनाया गया है जो 35 मुरब्बा फुट है और लाल पत्थर का है। इसकी ऊंचाई 8 फुट 3 इंच है। दरवाजा

भी लाल पत्थर का बनाया गया है जो 6½ फुट ऊंचा है। अहाते में पश्चिम की ओर की दीवार में एक मस्जिद है। अहाते के उत्तर में लाल पत्थर के एक चबूतरे पर पत्थर चूने की दो कब्रें बनी हैं। इनमें से एक के सिरहाने एक पक्का स्तम्भ है जो डेढ़ फुट ऊंचा है जिस पर दीपक जलता था। यह रज़िया की कब्र है। दूसरी उसकी छोटी बहन की बताई जाती है जिसका नाम साज़िया बेगम था। कब्रें ज़मीन से करीब साढ़े तीन फुट ऊंची और आठ फुट लम्बी हैं। दक्षिण पूर्व के कोने में दो नामालूम कब्रें और हैं।

रज़िया बेगम तुर्कमान दरवाज़े के पास अंदर एक गली में जाकर दफन की गई। कहते हैं, इसकी कब्र 1240 ई० में यमुना नदी के किनारे बनाई गई थी। शायद उस ज़माने में यमुना की धारा वहां बहती हो।

मकबरा तुर्कमान शाह

उसी ज़माने की एक और कब्र तुर्कमान शाह उर्फ शमसुल अरफान की है जो कोई पीर गुज़रे हैं। इन्हीं के नाम से तुर्कमान दरवाज़ा बनाया गया था। इनका मृत्यु काल 1240 ई० है। यह यमुना के किनारे रहा करते थे। वहीं इनकी कब्र बनी। यह उन मुस्लिम दरवेशों में से थे जो हमलावरों के साथ हिन्दुस्तान आए। यह बहुत प्रभावशाली थे। यह हज़रत शोहरावर्दी के शागिर्द थे और जब कुतब साहब औलिया कहलाने लगे तो उस वक्त इनकी उम्र 78 वर्ष की थी। इनकी कब्र चूने पत्थर की बनी हुई है। फर्श का कुछ हिस्सा संगमरमर का है। कब्र के इर्द-गिर्द नीचे संगमरमर का कटहरा लगा हुआ है। शाह साहब की बरसी धूमधाम से मनाई जाती है। उस दिन यहां एक मेला होता है।

गयासुद्दीन बलबन ने 1266 ई० से 1286 ई० तक हुकूमत की। इसका असल नाम उलगखां था और यह अल्तमश के चालीस चुने हुए शमसी गुलामों में से था। शुरू में तो यह बहुत बेरहम निकला। इसने अपने तमाम उन साथियों को, जो चालीस में से थे, कत्ल करवा दिया। मगर फिर रहमदिल और इंसाफपसंद हो गया था। यह शिकार का बड़ा शौकीन था। फौज को सदा तैयार रखता था। इसके ज़माने में मेवाती बहुत लूटमार किया करते थे। इसने उनको दबाया। इसने पुरानी दिल्ली में कौशके लाल यानी लाल महल और एक किला मर्गजन, जिसे गयासपुर भी कहते थे, बनवाया था। इसके ज़माने में मुगलों ने कई हमले किए जिनका मुकाबला करने इसने अपने बेटे सुलतान मोहम्मद शेरखां को भेजा। मुकाबले में वह मारा गया जिससे इसे सख्त सदमा पहुंचा और यह बीमार पड़ गया। 1286 ई० में इसकी मृत्यु हुई। यह दारुल भवन के पास दफनाया गया। इसका मकबरा कुतब साहब में जमाली मस्जिद के पास है।

बलबन का मकबरा

यह कुतब मीनार से थोड़ी ही दूरी पर स्थित है। यह अल्मतश के मकबरे और अलाई दरवाज़े के समान ही चौकोर था, मगर इन दोनों से दुगुना बड़ा था। अब तो इस मकबरे की दीवारें ही बाकी रह गई हैं। इसको उसी स्थान पर दफन किया गया जहां उसके लड़के शेरखां को दो वर्ष पूर्व दफनाया गया था। शेरखां, जिसे खाने शहीद भी कहते थे, लाहौर में चंगेज़खां के सेनापति साभर से लड़ता-लड़ता मारा गया था। बलबन उस सदमे से उभर न सका। उसे इस कदर सदमा पहुंचा कि दिन में वह दरबार करता और रात में रंज के आंसू बहाता। अपने कपड़े चाक करता तथा सर पर मिट्टी डालता। इसी रंज में वह मर गया। शेरखां ने ईरान के कवि सम्राट सादी को भारत आने के लिए निमंत्रित किया था।

बलबन ने अपने पोते खुसरो को अपनी जांनशीनी के लिए चुना था, लेकिन साजिशों के कारण उसका दूसरा पोता कैकबाद तख्त पर बैठाया गया जिसने 1286 ई० से 1290 ई० तक हकूमत की। यह पढ़ा-लिखा और लायक था, मगर तख्त पर बैठते ही रंग-रेलियों में लग गया। यह किलोखड़ी के किले में जाकर रहने लगा जिसे इसने 1286 ई० में बनवाया था। यह किला उस जगह था जहां बाद में हुमायूं का मकबरा बनाया गया। मुसलमानों की यह दूसरी दिल्ली थी। अब उस किले का नाम भी बाकी नहीं रहा। उस ज़माने में यमुना किले के नीचे बहा करती थी। इसने वहां उम्दा-उम्दा बागात लगाए थे और बड़ी रौनक उस किले को दी थी। उमराओं को भी बादशाह के साथ आकर यहां रहना पड़ा। उन्होंने भी बहुत से मकान रहने को बनवा लिए थे।

कैकबाद सल्तनत के कामों से ग़ाफ़िल बन बैठा। बादशाह की ग़फ़लत से मुगलों ने मौका पाकर बगावत की, मगर परास्त हुए। इसके बाप बुगरा खां ने, जो बंगाल का गवर्नर था, इसे बहुत समझाया कि सल्तनत का कारोबार देखे, मगर यह लापरवाह बना रहा। आखिर समाने का गवर्नर और वज़ीर शायस्ता खां, जो तुरकी सरदार और खलज का रहनेवाला था, दिल्ली पर चढ़ आया। अलाउद्दीन खिलजी ने बगावत की और वह तख्त पर काबिज़ हो गया। किलोखड़ी के किले में बादशाह को कत्ल कर दिया गया और उसकी लाश को महल की खिड़की में से दरिया की रेती में फिकवा दिया गया। शायस्ता खां, जिसका नाम जलालुद्दीन खिलजी हुआ, 1290 ई० में खुद तख्त पर बैठ गया। कैकबाद का तीन साल का बच्चा भी कत्ल कर दिया गया। इस प्रकार 1290 ई० में गुलाम खानदान का खात्मा हुआ जिसकी शरूआत क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206 ई० में की थी। 84 वर्ष के अर्से में गुलाम खानदान में दस हुकमरां हुए जिनमें तीन अपनी मौत मरे और सात कत्ल किए गए।

कौशके लाल अथवा किला मर्गजन अथवा दारुल अमन

लालमहल (कौशके लाल) को गयासुद्दीन बलबन ने 1255 ई० में बनवाया । इस महल के इतिहास की जानकारी बहुत कम है । जलालुद्दीन फ़ीरोजशाह खिलजी कस्रे सफ़ेद में अपनी ताजपोशी के पश्चात इस महल को देखने आया, और सुलतान बलबन की ताजीम के लिए, जो अल्तमश के बाद गुलाम खानदान के बादशाहों में सबसे मशहूर हुआ है, महल के सामने घोड़े पर से उतरा। कौशके लाल में बलबन के दरबार में 15 शाही खानदान के शरणार्थी उसकी खिदमत में खड़े रहते थे और उसकी सरपरस्ती में सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक तथा आलिम फूले-फले। इस महल से सम्बन्धित दो और महत्वपूर्ण घटनाएं हैं अर्थात् बलबन और अलाउद्दीन खिलजी का दफन किया जाना। बरनी ने लिखा है कि सुलतान बलबन की लाश कौशके लाल से रात के वक्त निकाली गई और दारुल अमन में दफन की गई। वही लेखक बताता है कि शवाल की छठी तारीख को सुबह के वक्त अलाउद्दीन की लाश सीरी के कौशके लाल से निकाली गई और जामा मस्जिद के सामने एक मकबरे में दफनाई गई। ख्याल यह किया जाता है कि कौशके लाल रायपिथौरा के किले में स्थित था। बरनी ने यह भी लिखा है कि बलबन के पोते कैकबाद ने किलोखड़ी में एक नया किला बनाया और उसने शहर में रहना बंद कर दिया तथा कौशके लाल भी छोड़ दिया। शहर से मतलब पुरानी (रायपिथौरा की) दिल्ली से है। जब बलबन रायपिथौरा के किले को आबाद कर चुका तो यह गैरमुमकिन नहीं है कि उसने अपनी रिहायश किले की चारदीवारी के बाहर बना ली हो। सीरी में लाल महल का कोई ज़िक्र नहीं आता जबकि पुरानी दिल्ली के लाल किले का ज़िक्र बार-बार आता है। अगर हम फरिश्ते की बात को स्वीकार करें कि अलाउद्दीन खिलजी सीरी बनाने से पूर्व लाल महल में रहा करता था जहां उसकी लाश दफ़नाने के लिए ले जाई गई तब वह बलबन का ही महल होना चाहिए जो सम्भवत: रायपिथौरा के किले में ही था जिसे पुरानी दिल्ली कहते थे।

किला मर्गजन

सम्भवत: इसको बलबन ने जब वह तख्तनशीन हुआ तो 1266 ई० में तामीर कराया। इसका नाम दारुल अमन (रक्षा स्थल) भी पड़ा क्योंकि इब्नबतूता ने लिखा है कि जब कोई कर्ज़ख्वार इस किले में दाखिल हो जाता था तो उसका कर्ज़ा माफ कर दिया जाता था। इसी प्रकार हर व्यक्ति के साथ यहां इंसाफ होता था। हर एक कातिल को अपने विरोधी से छुटकारा मिल जाया करता था और हर भयभीत को रक्षा का आश्वासन। इब्नबतूता जब तेरहवीं सदी में दिल्ली आया तो यह स्थान मौजूद था। उसने लिखा है, "बलबन ने एक इमारत बनाई जिसका नाम रक्षा स्थल था। सुलतान को वहां दफन किया गया और मैंने

खुद उसका मकबरा देखा है।" बाबर भी इस महल और मकबरे को देखने आया था। उसने किले का जिक्र नहीं किया है। कहते हैं बलबन ने गयासपुर नाम का शहर भी बसाया था, लेकिन इस बात की तसदीक नहीं होती।

किलोखड़ी का किला और किलुघेरी, कस्रे मौइज्जीया नया शहर

इसे बलबन के पोते सुलतान कैकबाद ने किलोखड़ी गांव में 1286 ई० में बनवाया था। बलबन के अहद में जो मिनहजुसिराज हुआ है उसने अपनी तसनीफ तबकते नासरी में इस स्थान का जिक्र किया है। उसमें लिखा है कि जब नासिरुद्दीन ने चंगेज़खां के सफीर हलाकूखां का स्वागत किया तो सब्ज महल से किलोखड़ी के शाही महल तक फौज ही फौज खड़ी थी।

कैकबाद ने इस शहर के महल को बहुत बढ़ा दिया। उसने यमुना किनारे एक बहुत सुन्दर बाग लगाया। वह अपने उमरा और मुसाहिबों को लेकर वहां जाकर रहने लगा। जब उमरा और मुसाहिबों ने देखा कि बादशाह वहां रहने लगा है तो उन्होंने भी वहां अपनी रिहायश के लिए इमारतें बनवा लीं। इस प्रकार यह स्थान बहुत मशहूर हो गया।

अलाउद्दीन इमारतें बनवाने का बड़ा शौकीन था। इसके यहां सत्तर हजार शागिर्द पेशा थे जिनमें सात हजार मेमार, बेलदार और गुलकार थे जो आए दिन तामीरी काम किया करते थे। यह पहला मुसलमान बादशाह था जिसने पुरानी दिल्ली अर्थात रायपिथौरा के स्थान को छोड़कर एक नया शहर 'सीरी' बसाया जिसका नाम नई दिल्ली पड़ा और उसमें कस्रे हजार स्तून (एक हजार खम्भों का महल) की बेनजीर इमारत बनवाई। कुव्वतुलइस्लाम मस्जिद को और बढ़ाया और अलाई दरवाजे के नाम से एक निहायत आलीशान दरवाजा बनवाया। उस समय के वहशियाना कामों की बाबत अमीर खुसरो ने लिखा है: यहां यह कायदा है कि जब कोई नई इमारत बनती ह तो उस पर इंसान का खून छिड़का जाता है। बादशाह ने एक ऐसा मीनार बनवाना शुरू किया था जो कुतुब मीनार से भी बड़ा हो, लेकिन जिन्दगी ने वफा न की और वह अधूरी रह गई। यह अधबनी या टूटी हुई लाट कहलाती है। इसने सीरी में एक मस्जिद भी बनवाई थी जो पूरी न हो सकी। हौज अलाई भी इसी ने बनवाया।

सीरी अथवा नई दिल्ली (1303 ई०)

जैसा कि ऊपर बताया गया है, अलाउद्दीन को इमारतें बनाने का बड़ा शौक था। यद्यपि इसका समय लड़ाइयां लड़ते ही बीता, मगर इसने पथ्वीराज की नगरी लालकोट को छोड़कर अपनी राजधानी वहां से ढाई मील उत्तर पूर्व में सीरा के स्थान पर 1303 ई० में बनाई जो दिल्ली से नौ मील पूर्व में है

और जिसकी दीवारें अभी तक खड़ी हैं। अब यहां शाहपुर गांव आबाद है। पुरानी दिल्ली मुगलों की तबाही से दो बार बच चुकी थी। इसलिए उसने किले रायपिथौरा की मरम्मत कराई और एक नया किला बनवाया जिसका नाम उसने सीरी रखा। मुगलों से बदला लेने के लिए इसकी बुनियाद और दीवारों में आठ हजार मुगलों के सर चुने गए थे। इसकी दीवारें चूने पत्थर की बनाई गई थी। 1548 ई० में शेरशाह सूरी ने सीरी के किले को बरबाद कर दिया। उसने यमुना के किनारे अपना खुद का महल या नगर सीरी का किला तोड़कर बनाया। इसका घेरा करीब एक मील है और प्रतीत होता है कि इसे अलाउद्दीन के महल कस्रे हजार स्तून (जिसमें एक हजार स्तम्भ थे) की रक्षा के लिए बनाया गया था। इसकी चारदीवारी को देखने से पता चलता है कि मुगलों से उस समय कितना भय रहता होगा। अब उस महल का कहीं नामोनिशान भी बाकी नहीं है। अब इस मुकाम पर शाहपुर गांव है। उस जमाने में सीरी को नई दिल्ली और पृथ्वीराज की दिल्ली को पुरानी दिल्ली कहने लगे थे। इब्न-बतूता ने, जो तैमूर के हमले से सत्तर वर्ष पूर्व दिल्ली में आया था, सीरी का नाम दारुल खिलाफत अर्थात खिलाफत की गद्दी भी लिखा है और इसकी दीवारों की मोटाई 17 फुट बताई है। तैमूर ने भी अपने रोजनामचे में सीरी का जिक्र करते हुए लिखा है—"सीरी शहर गोलाकार बसा हुआ है। इसमें बड़ी-बड़ी इमारतें हैं और उनके चारों ओर एक मजबूत किला है, लेकिन वह सीरी के किले से बड़ा है।" तैमूर ने लिखा है कि सीरी शहर के सात दरवाजे थे जिनमें से तीन जहांपनाह की ओर खुलते थे, लेकिन नाम एक ही का दिया है—बगदाद दरवाजा जो शायद पश्चिम की ओर था। सीरी दिल्ली के मुस्लिम बादशाहों की तीसरी राजधानी थी।

कैकबाद के अतिरिक्त, जो गुलाम खानदान का अन्तिम बादशाह था, अन्य समस्त गुलाम बादशाहों ने पृथ्वीराज के किले में दरबार किया और वहां से फरमान निकाले। जलालुद्दीन खिलजी ने कैकबाद के किलेनुमा शहर किलोखड़ी की तामीर पूरी करवाई जिसका बाद में नया शहर नाम पड़ा। उसके भतीजे और जांनशीन अलाउद्दीन ने सीरी शहर का किला बनाया जो 1321 ई० तक राजधानी बना रहा जबकि गयासुद्दीन तुगलक ने अपना किला और शहर तुगलकाबाद में बनाया।

तैमूर और यजदी के बयानात के अनुसार तीन शहरों के, जिनको मिलाकर दिल्ली कहा जाता था, उत्तर-पूर्व में सीरी थी, पश्चिम में दिल्ली जो सीरी से बड़ी थी और मध्य में जहांपनाह था जो दिल्ली से भी बड़ा था। सीरी शाहपुर के करीब आबाद थी, शाहपुर के दक्षिण पश्चिम में राय-

पिथौरा की दिल्ली थी और शाहपुर तथा दिल्ली के बीच में जहांपनाह। शाहपुर दिल्ली से छोटा था।

सीरी रायपिथौरा के किले की दीवारों के बाहर एक गांव था और सीरी तथा हौजरानी के मैदान फौज के कैम्प लगाने के काम में आया करते थे। जब 1287 ई० में कैकबाद ने सीरी में अपना डेरा डाला तो उसकी फौज का उत्तरी भाग तिलपत में था और दक्षिण भाग इंदरपत में और मध्य भाग शाहपुर में।

सीरी की बुनियाद 1303 ई० में किले या शहर की शक्ल में डाली गई, लेकिन इसकी बुनियाद डालने से पूर्व यमुना के उत्तरी किनारे पर दो शहर थे—एक पुरानी दिल्ली (रायपिथौरा की) और दूसरा नया शहर किलोखड़ी का। जब रुकनुद्दीन इब्राहीम का भतीजा पुरानी दिल्ली के तख्त पर बैठा तो उस वक्त अलाउद्दीन का कैम्प सीरी में पड़ा हुआ था।

कस्रे हजार स्तून

1303 ई० में जब अलाउद्दीन ने सीरी में किला बनवाया तो उसने एक महल भी बनवाया जिसका नाम 'कस्रे हजार स्तून' रखा। इसकी बुनियादी में मुगलों के हजारों सिर चुन दिए गए थे। यह महल सीरी में किस जगह था, इसका सही पता नहीं लगता। कुछ कहते हैं कि यह कस्बा शाहपुर के पश्चिमी भाग में था। दूसरे कहते हैं कि यह दक्षिणी दीवार से कुछ आगे बढ़कर था।

अलाउद्दीन की मृत्यु के पैंतीस दिन बाद 1316 ई० में मलिक काफूर को कुतबुद्दीन मुबारकशाह के मुलाजमीन ने इसी महल में कत्ल किया था। 1320 ई० में खुसरो खां के हिन्दू मुलाजिमों ने कुतुबुद्दीन मुबारकशाह को इसी महल के कोठे पर कत्ल किया और फिर चंद महीने बाद गयासुद्दीन तुगलक ने उसी कोठे पर उसी जगह खुसरो को कत्ल करवाया और फिर उसी वर्ष तुगलक शाह इसी महल में गद्दी पर बैठा और अपने तमाम जमाकरदा उमरा के सामने कुतुबुद्दीन तथा अपने आका अलाउद्दीन के खानदान की तबाही पर रोया। इस महल में इतनी बड़ी-बड़ी घटनाएं हुई, लेकिन वह कैसा था, कहां था, इसका पता नहीं चलता।

हौज अलाई या हौज खास

यह दिल्ली से कुतुब को जाते हुए सफदरजंग के मकबरे से 2½ मील दक्षिण-पश्चिम में दाएं हाथ की सड़क पर आता है। इसे अलाउद्दीन खिलजी ने 1295 ई० में बनवाया था। यह तालाब क्या पूरी एक झील थी जो एक जमीन के टुकड़े पर बनी हुई थी। इस तालाब के चारों तरफ पत्थर लगे हुए थे। 1354 ई० में फीरोजशाह तुगलक के जमाने में इसकी हालत बहुत खराब हो गई थी। यह मिट्टी से अट गया था और पानी नाम को भी नहीं रहा था।

लोगों ने कुएं खोदकर खेती करनी शुरू कर दी थी। फीरोजशाह ने इसकी फिर नए सिरे से मरम्मत करवाई और उसे नया करवा दिया और तभी से इसका नाम हौज खास पड़ा। मरम्मत इतनी बड़ी हुई थी कि तैमूर ने तो इसे फीरोजशाह का बनाया हुआ ही बतलाया है। अमीर तैमूर ने लड़ाई के बाद इसी हौज के किनारे अपना डेरा डाला था। उसने अपने रोजनामचे में इसे फीरोजशाह का बनाया हुआ लिखा है। वह लिखता है, "यह तालाब जिसे फीरोजशाह ने बनाया है एक बड़ी भारी झील है। इसके चारों ओर सलामी उतरी हुई है और मुख्यत: चूने की इमारतें बनी हुई हैं।" बरसात के दिनों में यह पूरा ऊपर तक भर जाता था। साल भर तक इसका पानी लोग काम में लाते थे। 1352 ई० में फीरोजशाह ने इस पर एक मदरसा भी बना दिया था। उसकी पक्की इमारत अब भी मौजूद है जिसमें गांव वाले रहते हैं। किसी जमाने में यह एक आलीशान सैरगाह थी। अब तो इसमें पानी की बूंद भी नहीं रही, हल चलता है। इसके बीच में भी कभी हौज शमशी की तरह एक बुर्ज बना हुआ था। अब भी इसके किनारे कितनी ही टूटी हुई इमारतें देखने में आती हैं। सबसे अच्छी इमारत गुंबदनुमा फीरोजशाह तुगलक का मकबरा है जो 1389 ई० में मरा। मकबरे का बाहरी भाग सादा पत्थर का बना हुआ है। लेकिन अंदर का भाग, जिसकी तरफों की माप 24 फुट है, कामदार है और गुंबद अब भी थोड़ा रंगीन दिखाई देता है। तीन संगमरमर की कब्रें हैं। ख्याल है कि उनमें एक खुद बादशाह की है, दूसरी उसके लड़के नासिरुद्दीन तुगलक शाह की और तीसरी उसके पोते की है। मक़बरे को सिकन्दर शाह लोदी ने फिर से ठीक करवाया था और कुछ साल पहले पंजाब सरकार ने भी उसे ठीक करवाया था। मालूम होता है कि हौज और मकानात फीरोजशाह ने बनवाए थे और मकबरा पउसके लड़के सुलतान मोहम्मद नासिरुद्दीन ने बनवाया। मकबरे के दो दरवाजे खुले हैं—पूर्वी और दक्षिणी। दूसरे दो बन्द हैं। सदर द्वार दक्षिण में है जिसके सामने त्थर की मुंडेर है और छोटा-सा सहन। इसी सहन में होकर मकबरे में जाते हैं। दरवाजे के ऊपर का पटाव और दोनों तरफ के स्तून थोड़े आगे बढ़े हुए हैं जिन पर पच्चीकारी का काम हुआ है।

अलाई दरवाजा (1310 ई०)

कुतुब मीनार के पास यह बड़ा आलीशान गुम्बददार दरवाजा अलाउद्दीन खिलजी ने 1310 ई० में बनवाया था। उसी के नाम पर इसका नाम पड़ा है। जनरल कनिंघम ने इसकी बाबत लिखा है—"अफगानों की जितनी इमारतें देखने में आईं, उन सबमें यह बेहतरीन है।" फरगूसन ने इसके सम्बन्ध में लिखा है, "इस इमारत को देखने से प्रतीत होता है कि इस काल में पठानों की गृह-निर्माणकला अपने सर्वोच्च वैभव को पहुंच चुकी थी और हिन्दू निर्माताओं

ने मुसलमानों के अति सुन्दर और लाजवाब ढंग को काफी हस्तगत कर लिया था।" यह दरवाजा, जो स्वयं एक पूरी इमारत है, अलाउद्दीन द्वारा निर्मित दक्षिणी दालान में है। सम्भव है कि यह मस्जिद के शहर की ओर का दरवाजा रहा हो। सके बनाने की तिथि पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी महरावों पर लिखी हुई है। यह इमारत चौकोर बनी हुई है। अंदर से 34½ मुरब्बा फुट से थोड़ी अधिक और बाहर से 56½ मुरब्बा फुट है। दीवारें 11 फुट मोटी हैं। दरवाजे की ऊंचाई 47 फुट है। इमारत नीचे से चौकोर है, मगर ऊपर जाकर अष्टकोण हो गई है। इस पर गुंबद बना हुआ है। चारों तरफ के कोनों में कई महराबदार सुन्दर आले निकाले गए हैं। चारों ओर के दरवाजों पर बहुत बढ़िया बेल बूटे और नक्काशी का काम हुआ है। जगह-जगह कुरान की आयतें खुदी हैं। इसकी तमाम रोकार पच्चीकारी के काम से भरी हुई है। कोई जगह ऐसी नहीं है जो कारीगरी के काम से खाली हो। हर दरवाजे के दोनों ओर दो-दो खिड़कियां हैं। इनमें निहायत उम्दा संगमरमर की जालियां निहायत बारीक और नाजुक काम वाली लगी हुई हैं। खिड़कियों के ऊपर एक-एक आला बना हुआ है जो दूर से खिड़कियों की तरह नजर आते हैं। जगह-जगह फूल-पत्तियां बेल-बूटे खुदे हुए हैं। 1827 ई० में इस दरवाजे की मरम्मत मेजर स्मिथ द्वारा करवाई गई थी।

अधूरी लाट (1311 ई०)

यह कुतुब मीनार से कोई पाव मील है। इसे भी अलाउद्दीन ने 1311 ई० में बनवाया था। यह अल्तमश के मकबरे के उत्तर में है। इसके बारे में अमीर खुसरो ने लिखा है, "अलाउद्दीन ने एक दूसरी मीनार जामा मस्जिद (मस्जिद कुव्वतुलइस्लामिया) के जोड़े की बनवानी चाही, जो उस वक्त सबसे मशहूर मीनार थी और मंशा यह थी कि मीनार इतनी बुलंद हो जिसे अधिक ऊंचा न किया जा सके। बादशाह ने हुक्म दिया था कि इस मीनार का घेरा कुतुब मीनार से दुगुना हो और उसी के अनुसार वह ऊंची भी की जाए।" मगर बादशाह की इच्छा पूरी होने से पहले ही उसकी मृत्यु हो गई। मीनार को देखने से प्रतीत होता है है कि वह बनते-बनते रह गई। जितनी बनी है वह एक ढांचा है उस बड़े मीनार का जो बननेवाला था। इस के पाए में 32 कोण हैं और हर कोण आठ फुट का है। यह सारा खारे के पत्थर का बना हुआ है। इसका चबूतरा 22 मुरब्बा फुट और 4 फुट से कुछ अधिक ऊंचा है। कनिंघम साहब इसका घेरा 257 फुट बतलाते हैं। दूसरों ने उसे 254 फुट और 252 फुट भी बतलाया है। बाहर की दीवार का आसार 19 फुट है और कुल मीनार कुर्सी समेत 40 फुट है। इसकी तामीर 1311 ई० में शुरू हुई लेकिन खिलजी की मृत्यु के साथ ही इसका बनना बंद हो गया।

मकबरा अलाउद्दीन

अलाउद्दीन की मृत्यु जैसा कि ऊपर बताया गया है 1316 ई० में हुई। उसका जनाजा सुबह के वक्त सीरी के लाल महल से निकाल कर कुतुब के पास मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम के सामने एक मकबरे में दफन किया गया। मगर कुछ एक का कहना है कि बादशाह को उसके कस्र हज़ार स्तून में दफन किया गया। मगर यह सही नहीं मालूम होता क्योंकि जिन इमारतों को फीरोजशाह तुगलक ने दुरुस्त करवाया, उनमें यह मकबरा भी शामिल है। मरम्मत के अलावा चंदन के किवाड़ों की जोड़ी चढ़वाने का भी ज़िक्र है। अलाउद्दीन की कब्र मस्जिद के सहन के दक्षिणी भाग में है। गुंबद का अहाता चार सौ फुट लम्बा और दो सौ फुट चौड़ा है जिसके अहाते की पश्चिमी और दक्षिणी दीवारें अलाउद्दीन के बाद शहाबुद्दीन के समय की बनी हुई हैं। मकबरा, जहां तक पता लगता है, उन तीन वीरान दलानों के बीच वाले दालान में था जो मस्जिद के दक्षिण में पड़ते हैं। इस मकबरे की मौजूदा हालत यह है कि कुतुब की लाट के पश्चिम में एक चारदीवारी खड़ी है जिसके तीन तरफ एक-एक दरवाजा है। यह मकबरा अंदर से 23 मुरब्बा फुट है और बीच में एक खाली चबूतरा 2 फुट ऊंचा 13 फुट × 4 फुट का बना हुआ है। शायद कब्र इसी पर होगी। प्लास्टर बाकी नहीं रहा। बस खारे के पत्थर की दीवारें खड़ी हैं। गुंबद तो कभी का गिर चुका है। अंदर के फर्श पर बजरी बिछी हुई है। यह कहना भी कठिन है कि यह मकबरा था।

तुगलक खानदान

(1320 ई० से 1414 ई०)

इस खानदान में सब मिलाकर कुल आठ बादशाह हुए जिनमें दो बहुत विख्यात हैं। एक अपनी बुराइयों के कारण और दूसरा अपनी नेकियों के कारण। बदनामी का टीका है मोहम्मद तुगलक के माथे पर और नेकनाम हुआ फीरोज तुगलक।

गयासुद्दीन तुगलक 1320 ई० में गद्दी पर बैठा और उसने 1324 ई० तक चार वर्ष राज्य किया। वास्तव में यह भी गुलाम था। अलाउद्दीन के ज़माने में खुरासान से दिल्ली लाया गया था। इसका बाप तुरक और मां जाटनी थी। अपनी योग्यता के कारण ही यह देपालपुर (मिंटगुमरी) और लाहौर का गवर्नर बना था। चार वर्ष के समय में उसने अच्छी योग्यता दिखाई और नाम पाया। गद्दी पर बैठते ही इसने अपने नाम का एक नया शहर कुतुब से पांच मील के अंतर पर तुगलकाबाद नाम का बनवाना शुरू किया जो मुसलमानों की चौथी दिल्ली थी। कहते हैं कि इस शहर

में बादशाह के महलात और खजाना थे। उसने एक बड़ा महल ऐसा बनाया था जिसकी ईंटों पर सोना चढ़ा हुआ था। कोई व्यक्ति महल की ओर दृष्टि नहीं जमा सकता था। इसने बहुत सामान जमा किया था। कहते हैं कि उसने एक हौज बनवाकर और सोना पिघलवाकर उसमें भरवा दिया था। इसके बेटे ने वह तमाम सोना खर्च किया। इसकी दौलत का कोई हिसाब न था।

इसने भारी लश्कर देकर अपने बेटे जोनाशाह को दक्षिण फतह करने भेजा था मगर लोगों ने उड़ा दिया कि बादशाह दिल्ली में मर गया। इस खबर से लश्कर में निराशा छा गई। जोनाशाह दिल्ली लौट आया। बाद में बादशाह ने स्वयं बंगाल पर चढ़ाई की और अपने लड़के को दिल्ली में राज्य का काम देखने छोड़ दिया। बाद में कहा जाता है कि इसने हजरत निजामुद्दीन की सलाह से अपने बाप को मरवा डालने की तरकीब सोची। बादशाह जब बंगाल से लौट रहा था तो वापसी पर उसे ठहराने के लिए तुगलकाबाद के करीब अफगानपुर में एक ऐसा महल बनवाया कि जरा सा धक्का लगने से गिर पड़े। बादशाह जब ढाके से फरवरी 1325 ई० में वापस लौटा तो अफगानपुर में आराम करने उतरा। उसका छोटा लड़का और चंद उमरा बैठे हुए थे कि चंद हाथी सामने लाए गए और यकायक तमाम इमारत आन पड़ी जिसके नीचे दबकर सब मृत्युलोक को सिधार गए। बादशाह को अपने बनवाए हुए शहर तुगलकाबाद में फीले के पेटे में, जहां उसने अपना गुंबद बनवा रखा था, दफन किया गया। अपने बाप को इस प्रकार मरवाने की जो यह किंवदन्ती है उसके बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ का कहना है कि महल बिजली गिरने से गिरा था।

तुगलकाबाद का किला

तुगलकाबाद शहर और किला दिल्ली के दक्षिण में करीब 12 मील की दूरी पर है। तुगलकाबाद रेलवे स्टेशन से चार मील बदरपुर से कुतुब को जो सड़क गई है उस पर दाएं हाथ स्थित है। यह स्थान गदर से पहले राजा बल्लभगढ़ के अधिकार में था। 1857 ई० के गदर में बल्लभगढ़ के राजा ने बगावत की। इसलिए यह रियासत जब्त कर ली गई। इस किले और शहर की बुनियाद 1321 ई० में पड़ी और 1323 ई० में वह पूरे हुए।

मुसलमानों की यह चौथी दिल्ली थी। इब्नबतूता लिखता है, "पहला शहर पुरानी दिल्ली रायपिथौरा का किला था, दूसरा किलोखड़ी या नया शहर, तीसरा सीरी या नई दिल्ली मय जहांपनाह के और चौथा यह तुगलकाबाद।" फरगुसन इसे 'अफगान शासकों का बहुत बड़ा किला' लिखता है। यह किला त्रिकोण है—पूर्व,

पश्चिम और दक्षिण में एक-एक कोण है जो तीन-चौथाई मील से कुछ बड़ा है। किले के चारों ओर खंदक है जो पानी का एक बहुत बड़ा तख्ता दिखाई देता है जिसके दक्षिण और पूर्वी कोने में बंद बांधकर पानी रोका गया है। तुगलकाबाद का घेरा चार मील से कम है। किला पहाड़ी पर स्थित है और पहाड़ियों से घिरा हुआ है। फसील भारी-भारी पत्थरों की बनी हुई है। फसीलों में दोमंजिला बुर्जी और हुजरे बने हुए हैं। सबसे बड़ा पत्थर 14'/2" × 10'/12" है जिसका वजन छ: टन है अर्थात करीब 162 मन। किले की पहाड़ी का दक्षिणी रुख ढलवां है। इस स्थान की फसील 40 फुट ऊंची है जिसमें जगह-जगह गोली के सूराख बने हुए हैं। किले के छठे भाग में एक महल के खंडहर दिखाई देते हैं। फसील के बाज-बाज बुर्ज अब भी अच्छी हालत में हैं। रक्षा के लिए बादशाह ने इसे हर तरह सुरक्षित बनाया था। किले के साथ एक बहुत बड़ा तालाब है जहां से फौजें पानी लेती होंगी। सहन में हर तरफ मकानात बने हुए थे। हर मकान में जाने का एक ही दरवाजा था। किले के सदर फाटक की चढ़ाई बड़ी सख्त, ऊंची और पथरीली है। शहर के कुल मिलाकर 56 कोट और 52 दरवाज़े थे। तुगलकाबाद के सात तालाब हैं। इमारतों की कोई गिनती ही नहीं है। मसलन जामा मस्जिद और ब्रिज मंजिल है जिसे शेरमंडल कहते हैं। तीन बड़ी बावरियां हैं जो अब भी अच्छी हालत में हैं। बड़े-बड़े पुख्ता तहखाने हैं जो 30 से 40 फुट सतह ज़मीन से गहरे हैं। किला अंदर से वीरान पड़ा है, बाहर से इतना बड़ा मगर अंदर जाकर कुछ नहीं।

शेरमण्डल अच्छी हालत में है। इस पर से सारे किले की इमारतें दिखाई दे जाती हैं। दीवारें तो सैकड़ों खड़ी हैं मगर छतें नदारद। सारी इमारतें खारे के पत्थर और चूने की बनी हैं। फसील भी बहुत जगह से गिर गई है, मगर बहुत कुछ बाकी है। शेरमण्डल के पास एक बहुत बड़ी बावली है—111 फुट लम्बी, 77 फुट चौड़ी और 70 फुट गहरी। यह खारे के पत्थर से बनी है। यहां एक बहुत लम्बी सुरंग भी है जो एक तरफ बदरपुर रोड की तरफ किले के बाहर निकल गई है। इतनी बड़ी इमारत के लिहाज से सदर दरवाजा बहुत छोटा है। किले के जो दरवाजे इस वक्त मशहूर हैं, उनके नाम हैं—चकलाखाना दरवाजा, घोवन घोवनी दरवाजा, नीमवाला दरवाजा, बंडावली दरवाज़ा, रावल दरवाज़ा, भटोई दरवाजा, खजूरवाला दरवाजा, चोर दरवाजा, होड़ी दरवाज़ा, लालघंटी दरवाजा, तैखंड दरवाज़ा, तलाई दरवाज़ा वगैरह। इतनी बड़ी इमारत बनाने के लिए कितने मजदूर मेमार काम पर लगे होंगे और इस पर कितना सामान लगा होगा तथा तीन वर्ष के अर्से में यह तैयार कैसे हुई होगी, यह आश्चर्य है और दूसरा आश्चर्य यह है कि इतनी बड़ी इमारत कैसे इस कदर वीरान हो गई जैसे वह किसी खिलौने की तरह बना कर

गिरा दी गई हो। शायद औलिया की बानी फलीभूत हुई होगी कि 'या रहे ऊजड़ या बसें गूजर'। गूजर यहां अब भी आबाद हैं।

मकबरा गयासुद्दीन तुगलकशाह

जैसा कि बताया जा चुका है, यह बादशाह अपने एक लड़के और चंद साथियों के साथ 1325 ई० में मकान के नीचे दब कर मर गया। उसके शव को रातों-रात ले जाकर उस मकबरे में दफन किया गया जो बादशाह ने खुद तुगलकाबाद में बनवाया था। मगर कुछ-एक का कहना है कि इसे मोहम्मद तुगलक ने अपने बाप की मृत्यु के बाद एक ही साल के अन्दर बनवा दिया। कनिंघम ने इस मकबरे के बारे में लिखा है—यह मकबरा एक बनावटी झील के पेटे में बना हुआ है, जिसमें हौज शमसी से, जो कुतुब के पास है, नहर लाई गई है और चारों ओर के नालों का पानी जमा होता है; किसी जमाने में यह किले की खंदक का काम भी देती थी। यह झील छः सौ फुट लम्बे महराबदार पुल से मिला दी गई है। पुल के 27 दर हैं। मकबरा मुरब्बा शकल का है जो अन्दर से 34½ फुट ऊंचा है। नीचे से ऊपर की दीवारें ढलवां बनाई गई हैं। गुंबद का माप अन्दर से 35 फुट और बाहर से 55 फुट है और ऊंचाई 20 फुट है। तमाम गुंबद संगमरमर का है। कुल मकबरे की ऊंचाई 70 फुट है और कलश, जो संगमरमर का है, की ऊंचाई क़रीब 10 फुट है। गुंबद के चारों ओर चार बड़े-बड़े महराबदार चौबीस-चौबीस फुट ऊंचे दरवाजे हैं जिनमें पश्चिम का दरवाजा बन्द है। यह मकबरा 1321-25 ई० में बन कर तैयार हुआ। इसकी दीवारें गाओदुम हैं। मकबरे का बाहर का दरवाजा बड़ा आलीशान लाल रंग के पत्थर का बना हुआ है जिस पर 32 सीढ़ियां चढ़ कर जाते हैं। अहाते की दीवारों में बहुत से हुजरे हैं जो गरीबों के आराम के लिए बनाए गए हैं। गुंबद में तीन कमरे हैं। बीच वाली कब्र सुलतान गयासुद्दीन तुगलक की है। बाकी दो में से एक मोहम्मद शाह की है जो सिंध में 1351 ई० में फौत हुआ और दूसरी उसकी बेगम की। कब्रें सादी, चूने-मिट्टी की बनी हुई हैं। ये कब्रें पूर्व की ओर हट कर बनी हुई हैं, मकबरे के बीच में नहीं। शायद और कब्रों के लिए जगह छोड़ी गई होगी। तीनों तरफ के दरवाजों पर संगमरमर की जालियां हैं। दक्षिण की तरफ एक दालान के बाहर कुआं है जो पर्दे का कुआं कहलाता है। इस तरफ तहखाने का दरवाजा है जो अन्दर-अन्दर चला गया है। मकबरे के चारों ओर कंगूरेदार फसीलनुमा कम्पाउण्ड है जिसकी दीवार 12 फुट ऊंची है और जिसमें 46 कोठड़ियां हैं। कम्पाउण्ड के चारों कोनों में सैदरियां बनाई गई हैं। मकबरे के पूर्व के दालान में एक छोटी-सी कब्र है जो कुत्ते की बताई जाती है। मकबरे के दरवाजे के दाएं हाथ अन्दर पूर्वी कोने में एक और छोटा मकबरा बना हुआ है। मालूम नहीं वह किसका है, मगर है बहुत सुन्दर। इसके दो दर हैं। अन्दर के दर आठ हैं। इस मकबरे में दो कब्रें

है। मकबरे का सदर दरवाजा काफी बड़ा है जो लाल पत्थर का बना हुआ है। 23 सीढ़ियां चढ़ कर अन्दर जाते हैं। दरवाज़े में एक दालान भी है। मकबरे का नाम तिकोनिया कोट भी है। सड़क से मकबरे के दरवाजे तक पहुंचने के लिए एक पुल बना हुआ है। शायद फीरोजशाह तुगलक ने इसे बनवाया होगा। पूर्व में तुगलकाबाद का क़िला है, पश्चिम में पहाड़, दक्षिण में इमारत हज़ार स्तून और उत्तर से पानी आकर किले के नीचे कोसों तक भरा रहता है। उस वक्त यह मकबरा कटोरा-सा दिखाई देता था। चारों ओर पानी रहता था। अब सब सूख गया है। पुल के दोनों ओर कटहरे की दीवार हैं और साएदार वृक्ष लगे हुए हैं।

मोहम्मद बिन तुगलक

जोनाशाही, जिसे अलाखां भी कहते थे, 1325 ई० में गद्दी पर बैठा और उसने 1351 ई० तक राज्य किया। गद्दी पर बैठ कर इसने अपना नाम मोहम्मद बिन तुगलक रखा मगर आम लोग इसे खूनी सुलतान के नाम से जानते थे क्योंकि इसके जुल्मों की कोई हद न थी। दिल्ली की चारदीवारी इसी ने बनवाई।

इसके महल को, जो दिल्ली में था, दारेसरा कहते थे। उसमें कई दरवाजों में से होकर जाना पड़ता था। पहले दरवाजे पर पहरेदार रहते थे। नफीरी-नक्कारे वाले भी इसी दरवाज़े पर रहते थे। जिस वक्त कोई अमीर या बड़ा आदमी आता तो नफीरी-नक्कारा बजने लगता। यही बात दूसरे, तीसरे दरवाजे पर भी होती। यह नौबत इस तरह बजाई जाती कि उससे पता चल जाता था कि कौन व्यक्ति आ रहा है। पहले दरवाजे के बाहर जल्लाद बैठा रहता। जब किसी की गरदन मारने का हुक्म होता तो वह कत्ल हज़ार स्तून के सामने मारा जाता और उसका सर पहले दरवाजे के बाहर तीन दिन लटका रहता। तीसरे दरवाजे पर मुत्सद्दी रहते थे जो अन्दर आने वालों का नाम दर्ज करते जाते थे। दरवाज़े पर दिन में जो कुछ वाकयात गुजरते उसका रोजनामचा बादशाह के सामने पेश होता था। मुलाकात के लिए जो भी आता था उसे नजर देनी पड़ती थी। मौलवी हो तो कुरान, फकीर हो तो माला, अमीर हो तो घोड़ा, ऊंट, हथियार, आदि; एक बड़ा दीवानखाना लकड़ी के हजार स्तूनों पर बना हुआ था। इसमें सब दरबारी जमा होते थे। बादशाह का जुलूस भी एक खास शान से निकलता था, खासकर ईद की नमाज का। इसकी सब बातें निराली होती थीं। खाने का ढंग भी निराला था। सखावत भी खूब करता था। परदेसियों पर बहुत मेहरबान रहता था। हिन्दुओं के साथ भी इसका बर्ताव अच्छा था। इसके जमाने में मिस्र का सफीर भी आया था। इसकी सखावत, इंसाफ

और रहमदिली को तथा जुल्म और वहशत को बहुत सी कहानियां मशहूर हैं जिनको सुन कर यह अन्दाजा लगाना कठिन है कि यह व्यक्ति इंसान था या हैवान।

आदिलाबाद या मोहम्मदाबाद या इमारत हजार स्तून

तुगलकाबाद के दक्षिण में इसी किले के साथ दो और किले हैं। दक्षिण-पूर्व के कोने में जो एक छोटी सी पहाड़ी है, उस पर एक किला है। यह मोहम्मदशाह तुगलक के नाम पर है और मोहम्मदाबाद कहलाता है। चूंकि बादशाह का पूरा नाम मोहम्मद आदिल तुगलकशाह उर्फ फखरुद्दीन जूना था, इसलिए इसका नाम आदिलाबाद भी पड़ा। इस किले में हजार स्तून संगमरमर के लगाए गए थे। इसलिए इसे इमारत हजार स्तून भी कहते थे। यह जगह पहाड़ों के बीच के मैदान में है जहां पानी भरा रहता था। इसलिए इसका नाम जल महल भी पड़ा। बादशाह ने शहर तुगलकाबाद के दरवाजे से इस किले के दरवाजे तक एक पुल बनवाया और मकबरे और इस किले के दरवाजों के पास भी पुल बनवाया और किले की उत्तरी दीवार के आगे पानी के किनारे इमारत हजार स्तून बनवाई। अब यह किला खंडहर की हालत में है, केवल दीवारें खड़ी हैं। अन्दर जाने को पुल है जो सड़क पर से अन्दर जाता है। बरसात में अब भी इस मैदान में पानी भर जाता है। अन्दर के महल का कोई निशान बाकी नहीं है। आदिलाबाद का घेरा कोई आधा मील है। इब्नबतूता का ख्याल है कि हजार स्तून संगमरमर के नहीं बल्कि लकड़ी के थे जिन पर रोगन हुआ था और छत भी लकड़ी की थी। किले में चारों ओर मकानों और बाजार के खंडहर पड़े हैं। यह किला महरौली से पांच मील दाएं हाथ पर पड़ता है। इसे 1326 ई० में बनाया गया।

जहांपनाह

गुलामों के जमाने में किला रायपिथौरा के चारों ओर की बस्ती दूर-दूर तक फैल गई थी। मेवातियों ने लूट-मार करके परेशान किया हुआ था। अलाउद्दीन खिलजी जब गद्दी पर बैठा तो उसे इस लूट-मार से बड़ी परेशानी हुई। औरतें तक सुरक्षित न थीं। सरेआम लूट हुआ करती थी और सूरज डूबने से पहले शहर के दरवाजे बंद हो जाते थे। इस बादशाह ने मेवातियों को ठीक किया। फिर मुगलों ने शहर लूट कर बरबाद कर डाला तब अलाउद्दीन ने सीरी शहर बसाया और उसकी आबादी इतनी बढ़ी कि पिथौरा की दिल्ली, हौज रानी, टूटी सराय और खिड़की, सब एक साथ मिल गए। जब मोहम्मद तुगलक गद्दी पर बैठा तो इसने सोचा कि क्यों न सब शहरों को मिला कर एक कर दिया जाए, जिससे मुगलों और मेवातियों की रोज की लूटमार से रक्षा हो सके, चुनांचे 1327 ई० में उसका यह इरादा पूरा हुआ। पुरानी दिल्ली

और सीरी दोनों की आबादियों को चारदीवारी खड़ी करके मिला दिया गया और उसका नाम जहांपनाह रखा गया । यह मुसलमानों की पांचवीं राजधानी थी।

उत्तर-पश्चिम की ओर की फसील करीब दो मील और उत्तर-दक्षिण व उत्तर-पूर्व की ओर की फसील सवा दो मील लम्बी हैं। तीनों फसीलों की लम्बाई पांच मील है। उत्तर-पूर्व की ओर की दीवार सीधी न थी बल्कि टेढ़ी-मेढ़ी थी। वह गिर गई। पूर्वी दीवार सीधी थी मगर वह भी गिर गई। दक्षिण की दीवार का कुछ भाग गिर गया, कुछ बाकी है। इस नए शहर जहांपनाह के पुरानी दिल्ली और सीरी को मिला कर 13 दरवाजे थे। इन 13 में से 6 उत्तर-पश्चिम में थे जिनमें से एक का नाम मैदान दरवाजा था, लेकिन यजदी ने इसका नाम हौज खास दरवाजा लिखा है, क्योंकि वह इस नाम के हौज की ओर खुलता था। बाकी दरवाजे दक्षिण तथा उत्तर की ओर थे जिनमें से दो के नामों का पता चलता है। एक हौज रानी दरवाजा था और दूसरा बुरका दरवाजा। इस चारदीवारी के अन्दर एक इमारत 'विजय मंडल' नाम की थी। इस शहर के सात किले या 52 दरवाजे की एक कहावत है जो इस प्रकार माने जाते हैं—(1) लाल कोट, (2) किला रायपिथौरा, (3) सीरी या किला अलाई, (4) तुगलकाबाद, (5) किला तुगलकाबाद, (6) आदिलाबाद, (7) जहांपनाह। बावन दरवाजों की विगत इस प्रकार है: लालकोट 3, किला राय-पिथौरा 10, सीरी 7, जहांपनाह 13, तुगलकाबाद 13, किला तुगलकाबाद 3, आदिलाबाद 3—इस प्रकार कुल 52। कनिंघम ने 9 किले बताए हैं। किलोखड़ी और गयासपुर के दो किलों को मिला कर नौ होते हैं।

इब्नबतूता ने, जो तैमूर से 70 वर्ष पहले दिल्ली आया था, जहांपनाह की बाबत लिखा है——"दिल्ली एक बहुत बड़ा शहर है जिसकी आबादी बेहदोहिसाब है। इस वक्त यह चार शहरों का समूह है—1. असल दिल्ली जो हिन्दुओं की थी और जिसे 1199 ई० में जीता गया था, 2. सीरी जिसे दारुल खिलाफत भी कहते हैं, 3. तुगलकाबाद जिसे सुल्तान तुगलक ने बसाया, 4. जहांपनाह जिसे उस वक्त के बादशाह मोहम्मद तुगलक की रिहायश के लिए खास नमूने का बनाया गया था। मोहम्मद तुगलक ने इसे बनाया और उसकी इच्छा थी कि चारों शहरों को एक ही दीवार से जोड़ दें। उसने इसका एक भाग तो बनाया, मगर उस पर इस कदर खर्च आया कि उसे इसका इरादा छोड़ना पड़ा। इस दीवार का सानी नहीं है। यह ग्यारह फुट मोटी है। तैमूर ने इस दीवार की बाबत यों लिखा—

"मेरा दिल जब दिल्ली की आबादी की बरबादी से ऊब गया तो मैं शहरों का दौरा करने निकला। सीरी एक गोलाकार शहर है। इसकी बड़ी-बड़ी इमारतें

हैं। उनके चारों ओर किले की दीवारें हैं जो पत्थर और ईंट की बनी हुई हैं और बड़ी मजबूत हैं। पुरानी दिल्ली (पृथ्वीराज की) में भी ऐसा ही मजबूत किला है लेकिन वह सीरी के किले से बड़ा है। शहरपनाह गिर्द बनी हुई है जो पत्थर और चूने की है। इसके एक हिस्से का नाम जहांपनाह है जो शहर की आबादी के बीच में होकर गई है। जहांपनाह के तेरह दरवाजे है, सीरी के सात। पुरानी दिल्ली के दस दरवाजे हैं जिनमें से कुछ शहर के अन्दर की तरफ खुलते है, कुछ बाहर की तरफ। जब मैं शहर को देखता-देखता थक गया, तो मैं जामे मस्जिद में चला गया (यह मस्जिद कौन सी थी, पता नहीं) जहां सैयद, उलेमा, शेख और दूसरे खास-खास मुसलमानों की मजलिस लगी हुई थी। मैंने उन सबको अपने सामने बुलाया, उन्हें तसल्ली दी और उनके साथ भद्रता का व्यवहार किया, उनको बहुत से तोहफे दिए और उनकी इज्जत अफ़जाई की। मैंने अपना एक अफसर इस काम के लिए नियत कर दिया कि वह शहर में उनके मोहल्ले की रक्षा करे और खतरे से उनको बचाए। तब मैं फिर घोड़े पर चढ़ कर अपने मुकाम पर लौट आया।"

जहांपनाह के तेरह दरवाजों में से छ: पश्चिमी दीवार में थे और सात पूर्वी दीवार में। लेकिन उनमें से एक ही का नाम बाकी है—मैंदान दरवाजा जो पश्चिम में पुरानी ईदगाह के निकट है। शेरशाह ने जब अपनी दिल्ली बसाई तो वह इसकी दीवार तोड़ कर मसाला वहां ले गया।

सतपुला

इसे मोहम्मद तुगलक ने 1326 ई० में बनवाया था। जहांपनाह से जो नाला बहता था, उसको रोकने के लिए यह बंद बांधा गया था। जहांपनाह की दीवार में पश्चिम की ओर खिड़की गांव के पास एक दो मंजिला बंद है जिसमें सात-सात खिड़कियां लगी हुई हैं। यह 38 फुट ऊंचा है। बीच के तीन दर ग्यारह-ग्यारह फुट चौड़े हैं। बाकी चार नौ-नौ फुट चौड़े हैं। पुल की लम्बाई 177 फुट है और दोनों सिरों के दरवाजे मिला लें, जो 39 फुट चौड़े हैं, तो पुल की लम्बाई 255 फुट हो जाती है। पुल के ऊपर भी मकान बने हुए हैं। दरवाजे बहुत सुन्दर हैं जो बुर्जदार हैं। बुर्जों में अठपहलू एक-एक कमरा है। पुल के दोनों दरवाजों के सामने एक-एक चबूतरा 57 मुरब्बा फुट पुल की सतह के बराबर है, मगर सतह जमीन से 64 फुट ऊंची है। पुल के दोनों तरफ सतह जमीन के बराबर है। दोनों तरफ खुली महराबें हैं जिनमें ऊपर चढ़ने को जीना है। इधर खेती इसी पानी से होती है। मुसलमान इस जगह को अपना तीर्थ मानते हैं, क्योंकि हज़रत चिरागुद्दीन ने यहां नमाज पढ़ी थी और इस जगह के पानी को दुआ दी थी कि वह बीमारियों को अच्छा करेगा। कार्तिक के

महीने में इतवार और मंगल को यहां मेला लगता है और औरतें अपने बच्चों को इस पानी में स्नान कराती हैं तथा पानी साथ भी ले जाती हैं।

दरगाह निज़ामुद्दीन औलिया

हिन्दुस्तान में ऐसे मुसलमान सन्त हुए हैं जो पवित्रता और ईश्वरी ज्ञान में हज़रत निज़ामुद्दीन से बढ़ कर गिने जाते हैं, लेकिन इन्होंने सहधर्मियों के भिन्न-भिन्न मतों पर जितना काबू पाया इसका मुकाबला दूसरा कोई नहीं कर सकता। इनके अपने चिश्तियों के पंथ में तीन सन्त ऐसे गुज़रे हैं जिनके सामने बादशाहों को भी झुकना पड़ा और आज भी हज़ारों मतावलम्बी उनकी याद करते हैं। इनमें सर्वप्रथम मईनुद्दीन हुए हैं जिन्होंने हिन्दुस्तान में चिश्ती पंथ जारी किया और जिनके अजमेर में दफ़न होने के कारण अजमेर 'अजमेर शरीफ़' कहलाने लगा। उनके बाद उनके मित्र और जांनशीन कुतुब साहब गिने जाते हैं जिन्होंने महरौली के आसपास के खंडहरात में जो कुछ दिलचस्पी है उसको अपना नाम दे दिया, और तीसरे, जो किसी से कम नहीं थे, कुतुब साहब के शिष्य पाकपट्टन के रहने वाले फरीदुद्दीन शकरगंज करामातों को दिखलाने वाले गुज़रे हैं जिन्होंने शेख निज़ामुद्दीन औलिया में ईश्वरी शक्ति को जगाया। निज़ामुद्दीन चिश्तियों में अन्तिम लेकिन बहुत-सी बातों में प्रथम कोटि के सन्त गुज़रे हैं जिनमें से एक सन्त को पवित्रता और उस ज़माने के अनुसार एक सियासतदां की बुद्धिमत्ता भी थी। उनका मनुष्य स्वभाव का ज्ञान धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन पर अवलम्बित नहीं था, बल्कि मनुष्य जीवन के अनुभव से प्राप्त हुआ था। इस अनुभव के कारण उनके बारे में लोगों ने तरह-तरह की धारणाएं बनाईं। किसी ने उन्हें करामाती बताया, किसी ने उन्हें हिन्दुस्तान में ठग विद्या का प्रवर्तक बताया। लोगों ने उनको नाना रूपों में देखा। वह अलाउद्दीन खिलजी और मोहम्मदशाह तुगलक के मित्र थे जो दिल्ली के बादशाह बने। पहला अपने चाचा के कत्ल के पश्चात और दूसरा अपने पिता के कत्ल के बाद बादशाह बना था। समाधि लगाने की अवस्था में उनको जलालुद्दीन फीरोजशाह खिलजी की मृत्यु का ठीक समय मालूम हो गया था जो मानकपुर में हुई थी। और उन्होंने अपने शिष्यों को यह बताकर आश्चर्यचकित कर दिया था। इसी प्रकार तुगलकशाह के सम्बन्ध में भी उन्होंने कह दिया था कि वह अब दिल्ली न देख सकेगा। उनकी यह भविष्यवाणी ठीक निकली और तुगलकाबाद से चार मील अफगानपुर स्थान पर बादशाह की मृत्यु हो गई। 1303 ई० में जब मंगोलों ने अलाउद्दीन खिलजी के राज्य पर आक्रमण किया तो निज़ामुद्दीन की दुआओं से वे लौट गए, यह आम विश्वास है। इब्नबतूता ने इन्हें निज़ामुद्दीन बताऊ के नाम से पुकारा है और लिखा है कि मोहम्मद तुगलक उनके दर्शनों को अक्सर जाया करता था और औलिया ने अपनी एक मुलाकात में उसे दिल्ली की गद्दी बख्श दी थी।

हजरत निजामुद्दीन के अन्य मित्रों में सैयद नसीरुद्दीन महमूद चिराग दिल्ली के सन्त और कवि खुसरो माने जाते हैं। अपने जीवन काल में उनके लाखों पैरोकार थे और उनकी मृत्यु के बाद आज तक उनकी दरगाह पर मेले लगते हैं, जहां हिन्दुस्तान भर से यात्री आते हैं और विश्वास करने वालों का कहना है कि आज भी उनकी करामातें देखने में आती हैं।

अमीर खुसरो

अमीर खुसरो का असल नाम अबुलहसन था। यह हिन्द के इने-गिने विख्यात कवियों में से एक थे और अपने मित्र हजरत निजामुद्दीन की कब्र के बिल्कुल नजदीक दफनाए गए थे। यद्यपि इन्हें गुजरे छः सौ वर्ष से ऊपर हो चुके हैं, लेकिन इनके कवित्त आज भी उसी तरह मशहूर हैं और यह उन चुने हुए चंद व्यक्तियों में से हैं जिनकी याद लाखों इंसानों में कायम है।

इनकी पैदायश हिन्दुस्तान में तुर्क माता-पिता से हुई और बचपन में ही ये निजामुद्दीन के शिष्य बन गए थे। इनकी नौकरी का आरम्भ सुलतान बलबन के एक मुसाहिब के तरीके पर हुआ जो उस वक्त मुलतान का गवर्नर था। जब खिलजियों की हकूमत शुरू हुई तो सुलतान जलालुद्दीन फीरोजशाह ने इन्हें अपना दरबारी नियत कर दिया और फिर तुगलकों के आने तक ये फीरोजशाह के जांनशीनों के भी विश्वास-पात्र बने रहे। यद्यपि गयासुद्दीन तुगलक चिश्ती पंथ और हजरत निजामुद्दीन का कट्टर विरोधी था, मगर खुसरो पर सदा उसकी इनायत रही। जब मोहम्मद शाह गद्दी पर बैठा तो खुसरो का सितारा चमक उठा। बादशाह की इन पर खास कृपा-दृष्टि थी। उसने इन्हें अपना लाईब्रेरियन मुकर्रर कर दिया था और बंगाल जाते वक्त अपने खास मुसाहिब के तरीके से इन्हें साथ ले गया था। जब यह बादशाह के साथ लखनौती में थे तो इन्हें निजामुद्दीन औलिया की मृत्यु का समाचार मिला जिसको सुनते ही इन्होंने अपना तमाम मालमता बेच डाला और दिली सदमे के साथ दिल्ली पहुंचे। वहां पहुंचने पर इनके दोस्तों ने, जिनमें चिराग दिल्ली के फकीर नासिरुद्दीन भी थे, इन्हें बहुत दिलासा दिया, लेकिन इनका रंज दूर नहीं हुआ। कहा जाता है कि इन्होंने काला लिबास पहन लिया और छः महीने तक यह निजामुद्दीन की कब्र पर बैठे रहकर उसी की तरफ देखते रहे जबकि जकाद महीने की 29वीं तारीख हिजरी 725 (1324 ई०) को इनका शरीरान्त हो गया।

हजरत निजामुद्दीन यह कहा करते थे कि खुसरो को उनके नजदीक ही दफना-या जाए। इस बात को याद कर उनके शिष्यों ने उनकी हिदायत के अनुसार उनकी

कब्र के उत्तर में एक जगह पसन्द की, मगर हुआ यह कि जो उमरा उस वक्त दिल्ली में प्रभावशाली थे, उनमें एक जनखा भी था जो निज़ामुद्दीन का शिष्य था। उसको यह बड़ा नागवार गुज़रा कि औलिया के नज़दीक खुसरो को दफन किया जाए। इसे उसने औलिया का अपमान समझा। इसलिए खुसरो को चबूतरा यारानी पर दफनाया गया जहां औलिया अपने शिष्यों और मित्रों को धर्म-उपदेश दिया करते थे।

खुसरो की कब्र की बाकायदा देखभाल होती है और यद्यपि औलिया निज़ामुद्दीन की कब्र की तरह इसकी कब्र पर कुरान नहीं पढ़ी जाती, लेकिन दर्शक बड़े विश्वास के साथ दर्शन को आते हैं। हर बसन्त पंचमी को इनके मज़ार पर मेला लगता है।

हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया

नाम इनका निज़ामुद्दीन औलिया था। दिल्ली वाले इन्हें सुलतान जी के नाम से पुकारते थे। इनका असल वतन बुखारा था। इनका जन्म 1232 ई० में हुआ और मृत्यु 1324 ई० में। बुखारा से इनके बुज़ुर्ग लाहौर आ गए, वहां से वे बदायूं चले गए थे।

12 वर्ष की उम्र में इनका रुझान शेख फरीदुद्दीन शकरगंज की तरफ हो गया जो एक बड़े फकीर थे। बाद में यह विद्याध्ययन के लिए अपनी माता और बहन के साथ बादशाह बलबन के ज़माने में दिल्ली आ गए। यहां आकर यह गयासपुर गांव में रहने लगे। इनका रिहायशी मकान आज तक कायम है जो हुमायूं के मकबरे के दक्षिण-पूर्वी अहाते की दीवार के पास है। कुछ वर्ष बाद इनकी माता की मृत्यु हो गई जिनकी कब्र अधचिनी गांव में है जो कुतुब के रास्ते पर पड़ता है। गयासपुर से जाकर यह मौजा किलोखड़ी में एक मस्जिद में रहने लगे थे। उसी ज़माने में इनके एक भक्त ने यह खानकाह तामीर करवाई थी। इनका गुज़ारा बड़ी कठिनाई से होता था। खाने की भी कठिनाई थी। जलालुद्दीन खिलजी ने इनकी सहायता करनी चाही, मगर इन्होंने बादशाह की मदद को स्वीकार न किया और तंगहाल बने रहे। बाद में फकीर की दुआ से इनके यहां किसी बात की कमी न रही। मगर जो कुछ आता था शाम तक यह सब तकसीम कर देते थे। इनके दान की चर्चा से इनके द्वार पर भीड़ लगी रहती थी, मगर कोई खाली हाथ न जाता था। इनके लंगर में हज़ारों आदमी

रोज भोजन करते थे। बादशाह अलाउद्दीन खिलजी इनके दर्शन करने का बड़ा इच्छुक था, मगर इन्होंने उसकी इस इच्छा को कभी पूरा न होने दिया। आखिर उसने अपने दो लड़कों को इनका मुरीद बना दिया। अमीर खुसरो इनके बड़े मुरीद थे और इनके ही साथ रहा करते थे। इनकी करामातों की बहुत-सी कहानियां मशहूर हैं। जब गयासुद्दीन तुगलक गद्दी पर बैठा तो वह इनसे नाराज हो गया। उसको बंगाल जाना पड़ा। वह इस कदर इनसे नाराज था कि जाते वक्त कहता गया कि वापस आकर मैं इस फकीर को शहर से निकाल दूंगा। जब इन्होंने यह बात सुनी तो कहा—'हनूज दिल्ली दूरअस्त'—अभी दिल्ली बहुत दूर है। और जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बादशाह जब दिल्ली वापस लौट रहा था तो वह अफगानपुर में, जो तुगलकाबाद से चार मील के फासले पर है मकान के नीचे दब कर मर गया। उसके बाद मोहम्मद तुगलक गद्दी पर बैठा जो इनका बड़ा मुरीद था, मगर उसके गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिनों बाद 1324 ई० में 92 वर्ष की उम्र में इनकी मृत्यु हो गई। मौजा गयासुद्दीन, जिसका नाम बाद में मौजूदा निजामुद्दीन पड़ा, दिल्ली से पांच मील मथुरा रोड पर बाएं हाथ है। यह यहीं दफन किए गए। अमीर खुसरो का मकबरा भी इसी जगह है।

दरगाह निजामुद्दीन चिश्तियों की उन दरगाहों में से एक है जो मुसलमानों के बड़े तीर्थस्थान माने जाते हैं। अजमेर, कुतुब और पाकपट्टन में दूसरी दरगाहें हैं। ये चारों फकीरों में से आखिरी थे और शेख फरीदुद्दीन पाकपट्टन वालों के, जिन्हें शकरगंज भी कहते हैं, उत्तराधिकारी थे। दिल्ली में बादशाह और फकीर की लड़ाई की कहानी जितनी मशहूर है, उतनी और कोई नहीं है। कहते हैं फकीर ने तुगलकाबाद को शाप दिया था और कहा था कि वह या रहेगा ऊजड़ या वहां रहेंगे गूजर। और बादशाह ने शाप दिया था कि निजामुद्दीन के तालाब का पानी खारी हो जाएगा। दोनों शाप आज तक फलीभुत हो रहे हैं। कहानी इस प्रकार है कि बादशाह तुगलकाबाद का किला बनवा रहा था और फकीर अपनी बावली। दोनों जगह मजदूर एक ही थे। दिन में वे बादशाह के यहां काम करते और रात को औलिया के यहां चिराग जला कर काम करते थे। उन बेचारों को सोने को समय नहीं मिलता था। एक दिन थक कर वे सो गए और काम में बाधा पड़ी। बादशाह को पता लगा। उसने पूछा कि क्या माजरा है। तब मजदूरों ने असल बात बतलाई। बादशाह ने हुक्म दिया कि इन्हें तेल न बेचा जाए। मगर औलिया की दुआ से बावली का पानी तेल की तरह जलने लगा और काम जारी रहा। तब बादशाह को क्रोध आ गया और उसने शाप दिया कि बावली का पानी खारी हो जाए। इस पर औलिया ने तुगलकाबाद के शहर को शाप दे दिया।

दरगाह का सदर दरवाजा उत्तर में सड़क के ऊपर है। हुमायूं के मकबरे से जो सड़क सफदरजंग के मकबरे को जाती है उस पर यह बाएं हाथ की ओर पड़ता है। दरवाजा उस फसील का है जो सारी बस्ती को घेरे हुए है। इस दरवाजे पर और अन्दर के दरवाजे पर जो बावली के पार है, तामीर करवाने की तारीख 1378 ई० लिखी है। इनको फीरोजशाह तुगलक ने बनवाया था। निजामुद्दीन की बस्ती में दाखिल होते वक्त दाहिनी ओर चौसठ खम्भे की इमारत है और जरा आगे बढ़ कर उसी रुख पर अकबर सानी की मलिका और शहजादियों की कब्रें हैं। बाईं तरफ एक छोटा-सा दरवाजा है जहां जूते उतारे जाते हैं। इसी दरवाजे के कोने में कोई 500 वर्ष पुराना इमली का पेड़ है। इस दरवाजे के सामने साठ मुरब्बा फुट सहन है। दरवाजे के बाएं हाथ शरबतखाना है अर्थात संगमरमर का एक बहुत बड़ा प्याला है जिसको मिन्नत मुराद वाले दूध, शरबत या हलवे से भरते हैं। पास में ही मजलिसखाना है जिसे औरंगजेब ने बनवाया था। यहीं एक कमरे में मदरसा है और दाहिनी ओर अमीर खुसरो का मजार तथा चबूतरा यारानी है जिस पर फकीर अपने दोस्तों के साथ बैठा करते थे। अमीर खुसरो अपने समय के विख्यात कवियों में से थे। इनका नाम 'तूतीशकर मकाल' शक्कर की जबानवाला तोता पड़ा हुआ था। इनको अद्वितीय कवि कहा गया है। सहज उर्दू जबान को इनकी बड़ी देन है। इनकी मृत्यु 1324 ई० में हुई। यह निजामुद्दीन के गहरे मित्रों में से थे। इस सहन के उत्तर में एक और सहन है जिसमें संगमरमर का फर्श है और इसी में औलिया का मजार है। यह 19½ गज लम्बा और 8½ गज चौड़ा है। इस अहाते में दूसरी कब्रों में जहांआरा बेगम की कब्र है जो शाहजहां की लड़की थी और जो बादशाह की कैद के दिनों में उसका साथ देती रही। इसकी कब्र पर लिखा हुआ है "मेरी कब्र पर केवल घास ही उगा करे; क्योंकि मसकीनों की कब्र को घास ही ढकती है।" इसके दाएं-बाएं आखिरी दो मुगल बादशाहों के लड़कों और लड़कियों की कब्रें हैं। पूर्व की ओर मोहम्मदशाह बादशाह की कब्र है जिसकी मृत्यु 1748 ई० में हुई थी। नादिरशाह ने इसी के अहद में दिल्ली पर कब्जा किया था। फिर मिरजा जहांगीर की कब्र है जो अकबरशाह सानी का लड़का था और एक मस्जिद है जिसका नाम जमाअत खाना है और बहुत खूबसूरत बनी हुई है। दरगाह से अन्दर जाने को एक छोटा-सा दरवाजा उत्तर में है जिसके चारों ओर पांच-पांच महराबें है जिनके बीस स्तून संगमरमर के हैं। इसका नाम 'बस्त दरी' है। इसके चारों ओर छ: फुटा बरामदा है। मजार के हुजरे के चारों ओर संगमरमर की जालियां हैं। अन्दर से हुजरा 18 मुरब्बा फुट है। सारा फर्श संगमरमर का है। गुंबद भी संगमरमर का है। कलस सुनहरी है जिसके चारों ओर संगमरमर की छोटी-छोटी बुर्जियां है। मजार के सिरहाने की दीवार में संगमरमर की तीन जालियां हैं और सुनहरी काम का एक आला है। पूर्व में भी इसी प्रकार की जालियां हैं और दक्षिण की ओर अन्दर जाने का दरवाजा है। उसके दोनों ओर भी

जालियां लगी हैं। कब्र पर शामियाना लगा रहता है। कब्र के चारों ओर दो फुट ऊंचा संगमरमर का कटहरा लगा है। फीरोजशाह तुगलक ने हुजरे के अन्दरूनी भाग और गुंबद तथा जालियों की मरम्मत करवाई, चंदन के किवाड़ चढ़वाए, हुजरे के चारों कोनों पर सोने के कटहरे लगवाए। फरीदखां बानी फरीदाबाद ने 1608 ई० में मजार पर चंदन का छपरखट चढ़ाया जिस पर सीप से पच्चीकारी का काम हुआ था। इस मजार पर हर वर्ष मेला लगता है।

दो और कब्रें काबले जिक्र हैं। एक है दौरानखां की। इसकी मस्जिद भी है। दूसरी है आजमखां की जिसने हुमायूं की जान शेरशाह सूरी के मुकाबले में बचाई थी और फिर अकबर के जमाने में बहरामखां को पराजित किया था।

विभिन्न कब्रों के अतिरिक्त निज़ामी साहब का लंगरखाना दरगाह के पूर्वी द्वार के बाहर बना हुआ है। मजार के अहाते के बाहर उत्तरी द्वार से निकल कर एक दूसरे अहाते में वह बड़ी बावली है जिसकी तामीर पर गयासुद्दीन तुगलक से नाराजगी हो गई थी। बावली 1321 ई० में बन कर तैयार हुई थी। इसका नाम चश्मा दिलखुश भी है। यह बावली 180 फुट लम्बी और 120 फुट चौड़ी है जिसके चारों ओर पक्की बंदिश है और उत्तर में पक्की सीढ़ियां आखिर तक चली गई हैं। बावली में 50 फुट के करीब पानी रहता है। बावली के दक्षिण और पूर्व में दालान बने हुए हैं जिनमें से दरगाह में जाने का रास्ता है। बावली के दक्षिण की सारी इमारत फीरोजशाह के वक्त की बनी हुई है। बावली के पश्चिम की ओर की दीवार पर एक बहुत सुन्दर तीन दर की मस्जिद है जिसकी छत पर एक छोटा-सा बुर्ज पठानों के समय का बना हुआ है। इस पर चढ़ कर तैराक साठ फुट की ऊंचाई से बावली में कूदते हैं और तैराकी के करतब दिखाते हैं। इसके अतिरिक्त बाई कोकलदे, जो शाहजहां के वक्त में हुई है, की कब्र और गुंबद निहायत खूबसूरत बने हुए हैं।

लाल गुंबद

यह कबीरुद्दीन औलिया का मकबरा है जो यूसुफ कत्ताल के लड़के और शेख फरीदुद्दीन शकरगंज पाकपट्टनी के पोते थे। दिल्ली कुतुब रोड पर बाएं हाथ सीरी और खिड़की गांवों के नजदीक पड़ता है। इसे मोहम्मद तुगलक ने 1330 ई० में बनवाया था। मकबरा बाहर से 45 मुरब्बा फुट और अन्दर से 29 मुरब्बा फुट है।

गुंबद के अंदर का भाग लाल पत्थर का बना हुआ है और उसमें नौ जंजीरें कब्र पर लटकाने को लगी हुई हैं। कब्र के सिरहाने एक बहुत बड़ी दीवट दीपक रखने को बनी हुई है।

फीरोजशाह के निर्माण-कार्य

मोहम्मद तुगलक के निस्सन्तान होने के कारण उसका भतीजा फीरोजशाह तुगलक 1351 ई० में गद्दी पर बैठा जिसने 1388 ई० तक राज्य किया। फीरोजशाह का स्वभाव अपने चाचा से बिल्कुल भिन्न था। यह बड़ा नेकदिल था। इसने अपने चाचा के जुल्मों की, जिस प्रकार भी हो सका, तलाफ़ी की। जिनके साथ अन्याय हुआ था, उनको संतोष दिया और बिगड़ी हालत को सुधारा। यह बड़ा कट्टर मुसलमान था। गद्दी पर बैठकर सबसे पहले मुगलों से लड़ा और उन्हें परास्त किया। इसने दो बार बंगाल और सिंध की यात्रा की। बंगाल से 1354 ई० में लौट कर इसने एक नए शहर फीरोजाबाद की बुनियाद डाली जो दिल्ली का छठा मुस्लिम शहर था। इसने अपने शासन-काल में जनता की भलाई के बहुत से काम किए और उन पर बेहदोहिसाब रुपया खर्च किया। फीरोजाबाद बसाने के दो वर्ष बाद बड़ा सख्त अकाल पड़ा। उससे रक्षा करने के लिए इसने यमुना और सतलुज से दो नहरें निकलवाईं। यह पहला बादशाह था जिसने नदियों में से नहरें निकालने का काम किया। यद्यपि उस जमाने की नहरों का पता कहीं नहीं चलता मगर अब भी उनमें से एक नहर थोड़ी तब्दीली के बाद पश्चिमी यमुना के नाम से काम कर रही है। इस बादशाह ने मालगुजारी का महकमा कायम किया और महसूल लगाए। इतिहासकार फरिश्ते ने इसके शासन-काल का हाल लिखते हुए बताया है कि इसने पचास बांध दरियाओं पर बंधवाए, चालीस मस्जिदें, तीस विद्यापीठ, सौ धर्मशालाएं, तीस हौज, सौ हमाम और डेढ सौ पुल बनवाए। इसने अनेक शफाखाने खोले, सैकड़ों बाग लगवाए, एक सौ बाग तो दिल्ली शहर के गिर्द में ही लगवाए थे। अनेक पुरानी इमारतों की मरम्मत करवाई और नई इमारतें बनवाईं। दरबारदारी के नियम भी इसने कायम किए, जिनको बाद में मुगलों ने भी अपनाया। इसने दरबार को तीन दर्जों में बांटा—पहले दर्जे में आम लोग, दरमियानी दर्जा औसत दर्जे के लोगों के लिए और अन्दर का दर्जा उमरा तथा वजीरों के लिए। इसको शिकार का भी बड़ा शौक था। इसने एक शिकारगाह की जगह पहाड़ी (रिज) पर बनवाई थी जिसमें एक भव्य महल और दरबार भवन था जिसकी छत पर एक बजने वाला घंटा लगाया गया था। इसी जगह एक चिड़ियाघर भी बनाया था। इसके जमाने में मस्जिदें बहुत बड़ी संख्या में बनाई गईं जिनमें खास-खास इसके मशहूर वजीर खांजहां ने बनवाई थीं। रिज पर चौबुर्जी

मस्जिद, तुरकमान दरवाजे के पास काली मस्जिद, कोटले की मस्जिद, निज़ामुद्दीन की दरगाह के पास की मस्जिद, काली सराय की मस्जिद, बेगमपुर की मस्जिद और खिड़की की मस्जिद—ये सात मस्जिदें वजीर ने बनवाईं। कदम शरीफ की फसील और दरगाह रोशनचिराग दिल्ली इसी बादशाह के समय में बनीं। इसके जमाने में शहर की आबादी बहुत बढ़ गई। तब इसने एक नया शहर भी बसाया।

यद्यपि प्रजा इसके काम से बहुत खुश और खुशहाल थी, मगर यह कट्टर सुन्नी था और हिन्दुओं को इसके जमाने में अपना धर्म पालन करने की पूरी आज़ादी नहीं थी। इसने कितने ही मन्दिर तुड़वा कर मस्जिदें बनवाईं। हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन करने के लिए बाध्य भी किया जाता था और उन पर जजिया (धर्म कर) भी लगाया हुआ था। इसके ज़माने में ही मुसलमानों की शक्ति डगमगाने लगी थी। इसके उत्तराधिकारियों ने तो उसे बिल्कुल ही खोखला कर दिया था। इसके जमाने में बहुत से प्रान्त इसके हाथ से निकल गए और जगह-जगह बग़ावतें हुईं, मगर यह उन्हें दबा न सका। अन्तिम अवस्था में इसने अपने राज्य का बहुत कुछ भार अपने वजीर खांजहां के ऊपर डाल दिया था और अपने बेटे फतहखां को राज्य के कार्यों में भागीदार बना लिया था। फतहखां के 1387 ई० में मर जाने से इसने अपने दूसरे बेटे मोहम्मद शाह को अपने साथ शामिल कर लिया था। आखिर चालीस वर्ष राज्य करके नब्बे वर्ष की आयु में (1388 ई०) इसका देहान्त हुआ और अलाउद्दीन के हौज खास के किनारे इसे दफन किया गया।

शहर फीरोज़ाबाद

यह मुसलमानों की छठी दिल्ली थी जिसे फीरोजशाह तुगलक ने 1354 ई० से 1374 ई० में बसाया। शहर बसाने में दिल्ली के पुराने शहरों का मसाला बहुतायत से लगाया गया। शहर की बुनियाद मौजा गादीपुर में एक जगह पसंद करके यमुना नदी के किनारे डाली गई। यह स्थान रायपिथौरा की दिल्ली से 10 मील था (दिल्ली दरवाजे से पांच सौ गज मथुरा रोड पर बाएं हाथ पर)। शाही महल की तामीर से इसकी शुरुआत हुई और फिर सब उमरा और अन्य लोगों ने भी अपने-अपने मकान बनाने शुरू किए। शाही महल और किले का नाम था कुश्के फीरोजशाह। यह शहर इतना बड़ा बसाया गया था कि इसमें निम्न बारह गांव का क्षेत्र शामिल हो गया था—कस्बा इंदरपत, सराय शेखमलिक, सराय शेख अबुबकर तूसी, गादीपुर, खेतवाड़ा की जमीन, जाहरामट की जमीन, अंधोसी की जमीन, सराय मलिक की जमीन, अराजी मकबरा सुलताना रजिया, मौजा भार, महरौली और सुलतानपुर। शहर में इस कदर मकान बनाए गए कि कस्बा इंदरपत से लेकर कुश्के शिकार (रिज) तक पांच कोस की दूरी में सारी जमीन मकानों से पट गई थी। इस शहर

में आठ आम मस्जिदें और एक खास मस्जिद थी जिनमें दस-दस हजार आदमियों के ठहरने की गुंजाइश थी। शम्स सराज ने लिखा है कि यह शहर मौजूदा दिल्ली से दुगुना था। इंद्रपत (पुराने किले) से लेकर कुश्के शिकार (रिज) तक पांच कोस और यमुना नदी से हौज खास तक यह फैला हुआ था जिसमें मौजूदा दिल्ली के मोहल्ले—बुलबुलीखाना, तुर्कमान दरवाजा, भोजला पहाड़ी भी शामिल थे। फीरोज-शाह ने दिल्ली और फीरोजाबाद में एक सौ बीस सराय बनवाई थीं। फीरोजशाह के राज्य के 39 वर्ष कुछ ऐसे अमन के गुजरे कि दिल्ली (कुतुब) और फीरोजाबाद में यद्यपि पांच कोस का अन्तर था मगर यहां सड़क पर गाड़ियों और पैदल चलने वालों का तांता लगा रहता था। जिधर देखो आदमी ही आदमी नजर आते थे। गाड़ियां, बहलियां, रथ, पालकियां, कहार, ऊंट, घोड़े, टट्टू, गर्ज हर किस्म की सवारियां सुबह से रात तक बड़ी संख्या में हर वक्त मिलती थीं। हजारों मजदूर माल ढोने का काम करते थे।

फीरोजशाह के चार महल थे जिनके नाम मिलते हैं—1. महल सहनगुलीना अर्थात अंगूरी महल, 2. महल छज्जा चौबीन, 3. महल बारेआम। इन तीनों का अब कोई निशान नहीं है। चौथा था कोटला फीरोजशाह। फीरोजाबाद यमुना के दाएं हाथ उस वक्त तक सबसे श्रेष्ठ शहर गिना जाता रहा जब तक कि शेरशाह ने शेरगढ़ की बुनियाद नहीं डाली। जब तैमूर ने दिल्ली पर हमला किया तो वह फीरोजशाह की दिल्ली के सदर दरवाजे के सामने उतरा था। इब्राहीम लोदी ने एक तांबे के बैल की मूर्ति को इस दरवाजे पर लगाया था जिसे वह ग्वालियर के किले को फतह करके लाया था।

कुश्के फीरोजशाह या फीरोजशाह का कोटला

यह एक किला था जिसके खंडहर दिल्ली दरवाजे के बाहर आजाद मेडिकल कालेज के सामने की तरफ देखने में आते हैं। उस वक्त इसके गिर्द बड़ी संगीन फसील थी और गाओदुम बुर्ज थे। इस फसील का एक दरवाजा 'लाल' नाम का अब भी मौजूद है। कोटले में तीन सुरंगें इतनी बड़ी बनी हुई थीं कि बेगमात सवारियों सहित उनमें से गुजर जाती थीं। एक सुरंग किले से दरिया के किनारे तक गई है, दूसरी दो कोस लम्बी कुश्के शिकार (रिज) तक चली गई है और तीसरी पांच कोस लम्बी रायपिथौरा के किले तक गई है। कोटले में दो चीजें खास देखने योग्य हैं—1. अशोक की लाट और 2. जामा मस्जिद। मस्जिद 1354 ई० में बनी थी। अमीर तैमूर ने इसको 1398 ई० में देखा था और इस मस्जिद में खुतबा पढ़ा था। उसे यह इतनी पसंद आई थी कि इसका एक नक्शा वह अपने साथ ले गया था। वह यहां से अपने साथ मेमार भी ले गया था। वहां उसने समरकंद में जाकर इसी नमूने की एक मस्जिद

बनवाई थी। मस्जिद अशोक की लाट वाली इमारत के साथ ही बनी हुई है। यह पत्थर चूने की बनी हुई है और उस पर नक्काशी का काम है। मस्जिद की इमारत मिस्री इमारतों की तरह गाओदुम है। इसका दरवाजा पूर्व की बजाय उत्तर की तरफ है क्योंकि पूर्व में नदी बहती थी और दरवाजा बनाने को जगह न थी। मस्जिद की दीवारें ही दीवारें बाकी हैं। छत नहीं रही। लाटवाली इमारत से यह एक पुल के द्वारा जोड़ी हुई है। मस्जिद की इमारत दो मंजिला बनी हुई है। मस्जिद ऊपर की मंजिल में है। इस मस्जिद में या इसके करीब किसी इमारत में बादशाह आलमगीर सानी को 1761 ई० में कत्ल किया गया था।

अशोक की लाट

यह लाट महाराज अशोक (ईसा से 300 वर्ष पूर्व) के उन दो पत्थर के स्तम्भों में से है जिन्हें फीरोजशाह ने 1356 ई० में (जगाधरी, जिला अम्बाला से सात मील दक्षिण पश्चिम में) यमुना के किनारे खिजराबाद के निकट से और, मेरठ से लाकर अपने दिल्ली के दो महलों में लगवाया था। इस लाट को दिल्ली लाने का हाल बड़ा दिलचस्प है जिसे जिआउद्दीन बनरी ने यों बयान किया है :

"लाट को किस तरह गिराया जाए, इस पर विचार करने के पश्चात हुक्म जारी हुए कि आसपास के जिस कदर लोग हों वे हाजिर हो जाएं और जितने सवार तथा पैदल हों वे भी आ जाएं। यह भी हुक्म दिया गया कि इस काम के लिए जिस प्रकार के औजारों की जरूरत हो, वे सब लेते आएं और अपने साथ सैंमल की रूई के गट्ठे भी लाएं। रूई के हजारों गट्ठे लाट के चारों ओर बिछा दिए गए। फिर इसकी जड़ को खोदना शुरू किया गया। तब लाट उन रूई के गद्दों पर आन पड़ी जो चारों ओर बिछे हुए थे। जब लाट गिर गई और बुनियाद को देखा गया तो पता लगा कि लाट एक चौकोर पत्थर पर टिकी हुई थी। उस पत्थर को भी निकाल लिया गया। लाट को सिर से नीचे तक जंगली घास और कच्चे चमड़े में खूब लपेटा गया ताकि रास्ते में उसे किसी प्रकार की हानि न पहुंचे। तब इसे ले जाने के लिए एक बहुत लम्बा गाड़ा बनाया गया जिसके बयालीस पहिए थे और हर पहिए में एक-एक रस्सा बांधा गया। सैंकड़ों आदमियों ने मिल कर बड़ी कठिनाई से लाट को छकड़े पर चढ़ाया। फिर हजारों आदमी बहुत जोर लगा कर गाड़े को यमुना नदी के किनारे तक घसीट लाए। नदी के किनारे बादशाह की सवारी आई। बहुत सी बड़ी-बड़ी किश्तियां जमा हो गईं। कई तो इतनी बड़ी थीं कि जिन पर पांच हजार मन से सात हजार मन गल्ला लादा जाता था और छोटी-से-छोटी दो हजार मन गल्ला उठा सकती थीं। लाट को बड़ी कुशलता और बुद्धिमता से इन किश्तियों के बेड़े पर लादा गया और उसे फीरोजाबाद ले आए। वहां बड़ी खूबी से उसे उतारा गया और बड़ी बुद्धिमानी के साथ कुश्के (महल) तक ले गए। उस वक्त मेरी (लेखक जिआउद्दीन

की) उम्र 12 वर्ष की थी और मैं मीरखां का शिष्य था। लाट के महल में पहुंच जाने के बाद उसे खड़ा करने को जामा मस्जिद के बराबर एक इमारत बननी शुरू हुई जिसको बनाने के लिए बड़े-बड़े विख्यात और नामवर कारीगर चुने गए। यह इमारत चूने पत्थर की बनाई गई। उसमें बहुत सी सीढ़ियां रखी गईं। जब एक सीढ़ी बन चुकती थी तो लाट उस पर चढ़ा दी जाती थी और इसी तरह एक-एक सीढ़ी बनती जाती थी और लाट ऊपर चढ़ती जाती थी। लाट जब ऊपर तक पहुंच गई तो इसे खड़ा करने की तरकीब सोची गई। बड़े-बड़े मजबूत मोटे-मोटे रस्से और चर्ख बनाए गए जो 6 स्थानों पर लगाए गए। रस्सों को लाट के सिरों पर बांधा गया और रस्सों के दूसरे सिरे चर्खों पर जोड़े गए। चर्ख बहुत मजबूती से गाड़े और बांधे गए थे कि अपनी जगह से जरा हिल न सकें। तब चर्खों के पहियों को फिराना शुरू किया गया जिससे लाट करीब आध गज उठ गई। बड़े-बड़े लट्ठे और रूई के थैले नीचे डाल दिए गए कि कहीं लाट फिर न गिर जाए। इस प्रकार दर्जा-बदर्जा लाट को ऊंचा करते रहे और कई दिनों में जाकर वह सीधी खड़ी हुई। तब इसके चारों ओर बड़े-बड़े शहतीर लगा कर एक किस्म की पिंजरानुमा पाड़ बांधी जिसके बीच में लाट को ले लिया। तब कहीं जाकर वह थमी और सीधी तीर की तरह खड़ी रही। किसी तरफ जरा भी झोंक न थी। चौकोर बुनियादी पत्थर, जिसका ऊपर जिक्र किया जा चुका है, भी बुनियाद में लगाया गया। जब लाट खड़ी हो गई तो उस पर दो बुर्जियां बनाई गईं और सबसे ऊपर कलस चढ़ाया गया। लाट की ऊंचाई 32 गज थी जिसमें से आठ गज तो बुनियाद में गई और 24 गज ऊपर रही। लाट के निचले भाग में बहुत सी रेखाएं खुदी हुई थीं। बहुत से ब्राह्मण और पुजारी रेखाओं को पढ़ने के लिए बुलाए गए मगर कोई पढ़ न सका। कहा जाता है कि किसी एक हिन्दू ने मतलब निकाला था जो इस प्रकार था—'कोई व्यक्ति अपनी जगह से हिला न सकेगा। यहां तक कि भविष्य में एक मुसलमान बादशाह होगा जिसका नाम सुलतान फीरोज होगा'। 1611 ई० में जब विलियम फ्रेंक ने इस लाट को देखा तो इस पर एक चांद चढ़ा हुआ था। इसके सुनहरी कलस की ही वजह से इसका नाम 'मीनारेजरी' सोने का स्तम्भ पड़ा था। ईश्वर जाने बिजली गिरने से या तोप के गोले लगने से ऊपर का हिस्सा कब टूट गया। मुसाफिरों और भ्रमणकर्ताओं के नाम जगह-जगह खुदे हुए हैं जो ईसा की पहली शताब्दी से लेकर अब तक के हैं। दो बड़े लेख हैं। एक अशोक का है जिसमें उनकी आज्ञाएं हैं जो ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व की हैं। यह लेख पाली भाषा में है जो उस वक्त बोली जाती थी। दूसरा लेख संस्कृत भाषा का नागरी लिपि में सम्वत 1220 विक्रमी (1163 ई०) का है। इसमें चौहानवंशी शाकंभरी के राजा विशालदेव की विजयों का वर्णन है जिसने हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक के प्रदेश पर राज्य किया। पहला लेख अशोक के समस्त लेखों में सबसे बड़ा और सबसे महत्व का है। पांच लेख हैं—चार चारों ओर और एक उनके नीचे चारों

ओर तक चला गया है। पहले चार चौखटों में हैं और अपने आप में सम्पूर्ण हैं। यह चारों शब्दशः प्रयाग, मथुरा, राधिया और दिल्ली की पहाड़ी वाले स्तम्भों पर लिखे हुए हैं।

अशोक पहले विष्णु का उपासक था। फिर बौद्ध बन गया। यह लेख उसके राज्यकाल के सत्ताईसवें या अट्ठाईसवें वर्ष के समय के लिखे हुए हैं जब उसने बौद्ध धर्म अपनाया। उसने अपने को देवनमापियदसी (देवताओं का प्यारा प्रियदर्शी) कहा है और आदेश दिया है कि सब के साथ शुद्धता और मानवता का बर्ताव करना चाहिए, पशुओं के प्रति दया भाव रखना चाहिए, उनकी हिंसा कोई न करे, कोई मांस न खाए। जिन कैदियों को मृत्युदंड मिलता था, उनके लिए तीन दिन विश्राम के दिए जाते थे ताकि इस बीच वे प्रार्थना कर सकें और आत्मपरिशीलन कर सकें। सड़कों पर वृक्ष लगाने, प्रत्येक मील के अन्तर पर कुआं खोदने और यात्रियों के लिए विश्रामगृह बनाने के भी आदेश हैं।

यह लाट एक ही बिनघड़े पत्थर की बनी हुई है जिसे एक गावदुम मिस्री बनावट की इमारत पर खड़ा किया गया है। यह इमारत एक बहुत ऊंची कुर्सीदार चबूतरे पर बनी हुई है जो तीन खंड की है। पहले खंड में बहुत से कमरे और दालान हैं। इस इमारत की छत पर यह लाट खड़ी है। लाट एक रेतीले पत्थर का स्तम्भ है जो 42 फुट 7 इंच ऊंचा है। इसका ऊपर का भाग 35 फुट तो चिकना है और बाकी खुरदरा है। जो भाग अन्दर दबा हुआ है वह 4 फुट 1 इंच का है। ऊपर के भाग का कुतर 25.3 इंच है और सबसे नीचे का 38.8 इंच। स्तम्भ के वजन का अंदाजा 729 मन है। पत्थर का रंग जर्दी लिए हुए है। अशोक के चारों लेख बहुत सफाई के साथ खुदे हुए हैं। ये भारत के सबसे पुराने काल के हैं जिनका समय ईसा से तीन शताब्दी पूर्व का है। इनके अतिरिक्त दो और लेख वर्तमान लिपि में हैं। एक ढाई फुट ऊपर और दूसरा अशोक के लेख के नीचे महाराज विशालदेव के काल का है जिसकी तिथि विक्रम संवत 1220 (1163 ई०) दी है।

कोटले में इन दो इमारतों के अतिरिक्त और भी इमारतें हैं। एक बहुत बड़ी बावली है। यह सुरक्षित स्थानों में से है। घास लगा कर इसको बहुत सुन्दर बनाया गया है। छत पर से राजघाट की समाधि पूर्व में सामने ही दिखाई देती है। यमुना तो अब बहुत दूर हट गई है, मगर उसकी जगह अब बहुत चौड़ी सड़क बन गई है। कोटले की सीमा के अन्दर अब शरणार्थियों की एक बस्ती भी बसा दी गई है।

1850 ई० में ये इमारतें फीरोजशाह कोटले में मौजूद थीं—1. महल अर्थात् कोटला या कुश्के फीरोजशाह, 2. महल के दक्षिण में बहुत सी इमारतों के खंडहरात, 3, 4, 5. तीन खंडहर इमारतें जिनमें से दो मकबरे हैं और तीसरी किसी इमारत का

हिस्सा, 6. कुश्के अनवर या महदियां, 7. एक छोटी मस्जिद, 8. किसी का रिहाबशी घर, 9. कलां या काली मस्जिद, 10. चूने की मस्जिद ।

कुश्के शिकार जहांनुमा

यह महल फीरोजशाह तुगलक ने 1354 ई० में मौजूदा दिल्ली के उत्तर-पश्चिम में पहाड़ी पर फीरोजशाह शहर के बाहर बनवाया था। यह उसकी शिकारगाह थी। यहां अब दो ही इमारतें खड़ी हैं—चौबुर्जी मस्जिद और पीर गैब। अमीर तैमूर, जिसने महल को लूटा, इसकी बाबत कहता है, "एक सुन्दर स्थान पहाड़ी की चोटी पर यमुना के किनारे पर बना हुआ है।" महल की बाबत यह जिक्र आया है की 1373 ई० में वजीर मलिक मुकबिल उर्फ खांजहां की जब मृत्यु हो गई तो उसका सबसे बड़ा लड़का जूनाशाह उसका वारिस करार पाया। 1375 ई० में बादशाह अपने सुपुत्र फतहखां की मृत्यु से, जो बड़ा होनहार था, शोकसागर में डूब गया। सिवा संतोष और शान्ति रखने के और कोई चारा न था। बादशाह ने फतहखां को कदम शरीफ में दफन करवाया, मगर वह इतना शोकातुर रहने लगा कि उसने राज्य के काम-काज से ध्यान ही हटा लिया। तब उसके उमराओं और हितैषियों ने उसके पास आकर निवेदन किया कि सिवा ईश्वर की इच्छा के और कोई साधन है नहीं, इसलिए उसे हुकूमत के काम-काज की ओर ध्यान देना चाहिए। तब बादशाह ने अपने शुभचिन्तकों की बात पर अमल करना शुरू किया और अपने शोक को भुलाने के लिए खेल में लगा और वह शिकारगाह बनवाई।

अशोक की दूसरी लाट को फीरोजशाह के इस महल में लगाने के लिए उसी बुद्धिमता से यहां लाया गया जिस तरह पहली लाट को लाया गया था। उसने बड़ी धूम-धाम के साथ इसे महल में लगवाया। महल की इमारत के बाद उसके उमरा और अन्य धनिकों ने भी यहां चारों ओर बहुत सी इमारतें बनवाईं। पीर गैब नाम की इमारत शिकारगाह का महल बताया जाता है। इसका बहुत सा भाग गिर चुका है। इसकी दीवारों के निशानात दिखाई देते हैं। इसके उत्तर में दो मंजिला सदर दरवाजा दिखलाई पड़ता है। इस इमारत का नाम जंतर मंतर भी था। यह पहाड़ी पर सबसे ऊंचे स्थान पर बनी हुई है। इसके ऊपर एक घंटा लगा हुआ था जो शायद बजा करता था। इसमें किसी फकीर की कब्र भी है। पीर गैब के दक्षिण में थोड़ी दूर पर अशोक की दूसरी लाट है जिसे फीरोजशाह ने कुश्के शिकार में लगवाया था। यह कोटले वाली लाट से कोई चार मील के अन्तर पर है। अठारहवीं सदी के शुरू में (शायद फर्रुखसियर के काल में) किसी वस्तु के फटने से यह लाट गिर कर पांच टुकड़े हो गई थी जो 150 वर्ष तक वैसे ही पड़ी रही। इस कारण इसके पत्थर खुरदुरे हो गए और अक्षर भी मंद पड़ गए। यह लाट 33 फुट लम्बी और तीन फुट एक इंच कुतर में है। 1838 ई० में हिन्दू राजाओं ने जब फेजर साहब की कोठी खरीदी

(जिसमें अब अस्पताल है) तो यह पांचों टुकड़े भी खरीद लिए जो कोठी के सहन में बिखरे पड़े थे। 1867 ई० में यह जोड़ कर उस जगह संगखारा के चबूतरे पर खड़े किए गए जो पहाड़ी पर मौजूद है। नीचे जो लेख अंग्रेजी में लिखा हुआ है वह इस प्रकार है—"महाराज अशोक ने तीसरी शताब्दी के पूर्व इस स्तम्भ को मेरठ में लगवाया था। वहां से 1356 ई० में फीरोजशाह ले आया और उसे कुश्के शिकार में इसी जगह लगवाया। 1713-19 ई० में बारूद के मेगजीन को आग लग जाने से यह गिर कर पांच टुकड़े हो गई। अंग्रेजी सरकार ने इसे 1867 ई० में ठीक करवा कर इसी जगह खड़ा करवाया। पीर ग़ैब के पास हिन्दू राजाओं की कोठी है और एक बावली है जिसमें उतरने को पक्की सीढ़ियां बनी हैं। ये भी फीरोजशाह के जमाने की ही हैं।"

जहांनुमां के सामने की ओर शायद मटकाफ हाउस के निकट से तैमूर और उसके साथियों ने 1398 ई० में यमुना पार की थी। कुछ का कहना है कि वह वजीराबाद के पास से पार हुआ था। जहांनुमां के मुगलों के कैम्प पर सुलतान महमूद खां और उसके वजीर मल्लूखां ने हमला किया था मगर उसे परास्त होना पड़ा था।

चौबुर्जी मस्जिद

यह भी पहाड़ी पर बनी हुई है। इसका नाम इसके चारों कोनों पर के चार गुंबदों पर पड़ा मालूम होता है जो कभी मस्जिद के उठे हुए चबूतरे पर बने हुए थे। यह किसी का मकबरा था। इसका दरवाजा पूर्व की ओर है। यह इमारत दो मंजिला है। दोहरा जीना आमने सामने पन्द्रह-पन्द्रह सीढ़ियों का है। छत पर अब केवल दो दर बराबर के और दो इधर-उधर उससे छोटे, और 51 फुट लम्बी और 11 फुट 8 इंच ऊंची दो दालानों के बीच की दीवारें रह गई हैं। सामने सहन है। दक्षिण में एक कमरा बाकी है जिस पर एक बुर्ज है और इसी के अन्दर से जीना है। सहन में एक मुरब्बा कब्र है। मस्जिद का दूसरा दरवाजा दक्षिण में है। कुश्के शिकार से लेकर यहां तक इमारतें ही इमारतें थीं जिनमें कुछ साफ कर दी गई हैं और कुछ के खंडहर पड़े हैं। यह सारी इमारत पुख्ता और उसी ढंग की है जैसा कुश्के शिकार।

शाहआलम का मकबरा

तिमारपुर रोड से वजीराबाद गांव को जाते हुए चंद्रावल के पानीघर के रास्ते में पुराने जमाने का बना हुआ नजफगढ़ झील के नाले का एक पक्का पुल और सड़क के दाएं हाथ किसी मुसलमान फकीर का एक मकबरा है जो फीरोजशाह के जमाने का बना हुआ (1365-90 ई०) मालूम होता है। यह यमुना नदी के किनारे पड़ता है। मकबरे की इमारत, दरवाजा, सहन, मस्जिद और पुल सब उसी समय के बने हुए प्रतीत होते हैं। यह उस जमाने की बहुत सुन्दर इमारत है। वजीराबाद के इसी स्थान पर तैमूर और उसके मुगल लुटेरों ने अपने खेमे डाले थे और दिल्ली

में कत्लेआम, लूट और बरबादी करने के बाद वह पहली जनवरी 1399 ई० को मुसलमानी शक्ति को बरबाद करके यहीं से यमुना पार गया था।

दरगाह हज़रत रोशनचिराग दिल्ली

शेख नासिरुद्दीन महमूद खानदान चिश्ती के दिल्ली के सबसे आखिरी बुज़ुर्ग थे। यह हज़रत निज़ामी के सबसे बड़े खलीफाओं में से थे। यह बड़े विद्वान, पवित्र और ईश्वर भक्त थे। यह इस्लाम धर्म के प्रचारक भी थे। जब मखदूम जहांनियां सैयद जलाल मक्का के दर्शनों को गए तो काबा के शरीफ़ ने इनसे पूछा कि अब जब कि सब संत समाप्त हो चुके हैं, दिल्ली में पवित्र आत्माओं में अब कौन माना जाता है। मखदूम ने उत्तर दिया—नासिरुद्दीन महमूद और कहा बस वही एक दिल्ली का चिराग है।

मोहम्मद तुगलक से इनकी भी अनबन थी। उसने इन्हें कष्ट दिए और इन्होंने धैर्यपूर्वक उन्हें सहन किया। फीरोजशाह इनका बड़ा मुरीद था। इनके जीवन काल में ही उसने 1350 ई० में इनकी दरगाह का गुंबद बनवा दिया था। 1356 ई० में इनकी मृत्यु हो गई और उसी गुंबद में इनको दफन किया गया। इनको एक जालंधरी फकीर ने, जो इनके पास खैरात मांगने आया था, खंजर घोप कर मार डाला था। उस वक्त इनकी आयु 82 वर्ष की थी। यह मौजा खिड़की के पास रहा करते थे। जिस कमरे में यह रहते थे इन्हें उसी में दफन किया गया और इनके साथ इनका सारा सामान—इनका झुब्बा, आसा, प्याला और बोरिया जो नमाज के काम आता था और जिसे इनके गुरु निज़ामुद्दीन ने दिया था—दफन कर दिया गया। इनका मकबरा एक अहाते के अन्दर है जो 180 फुट लम्बा तथा 104 फुट चौड़ा है और 12 फुट ऊंचा है। इस अहाते का बड़ा हिस्सा और कस्बे के गिर्द की फसील मोहम्मद शाह बादशाह ने 1729 ई० में बनवाई थी। दरगाह का सदर दरवाजा इनकी मृत्यु के बाइस वर्ष बाद 1378 ई० में फीरोजशाह ने बनवाया था जिस पर एक बड़ा गुंबद है। यह दरवाजा दरगाह के उत्तर-पश्चिम के कोने में है। इस गुंबद के 12 दर हैं जिनमें संगखारा के स्तम्भ लगे हुए हैं। सब दरों में लाल पत्थर की जालियां लगी हुई हैं। गुंबद चूने और पत्थर का बना हुआ है। गुंबद के अन्दर सुनहरा कटोरा लटका हुआ है। अकबरशाह सानी के जमाने में उसके लड़के शाहज़ादे मिरज़ा गुलाम हैदर ने इस गुंबद के गिर्द लाल पत्थर की जाली लगवा दी थी। इस मकबरे में और बहुत सी कब्रें हैं जो खास-खास व्यक्तियों की हैं। गुंबद का फर्श संगमरमर का है और मजार के चारों तरफ संगमरमर का कटहरा लगा हुआ है। इस दरगाह के पास चिराग दिल्ली की बस्ती आबाद है। इस बस्ती के गिर्द मोहम्मद शाह बादशाह ने फसील बनवा दी थी जिसमें चार दरवाजे और एक खिड़की है।

चिराग दिल्ली कालका जी के मन्दिर से करीब दो मील के अन्तर पर—कालका मालवीय नगर—कुतुब रोड पर सड़क के किनारे पड़ती है।

मकबरा सलाउद्दीन

सलाउद्दीन शेख सदरुद्दीन के शिष्य थे। उनकी मृत्यु दिल्ली में हुई और उनको खिड़की गांव से एक मील के करीब दफन किया गया। मकबरा उनकी कब्र पर (1353 ई०) में बना। यह बड़े विद्वान, धार्मिक और असूलों के पक्के थे। यह चिराग दिल्ली के समकालीन और पड़ोसी थे। यह मोहम्मद शाह तुगलक के जमाने में हुए हैं जिसको यह बड़ा सख्त-सुस्त कहा करते थे। बादशाह इनके प्रवचन बड़ी शान्ति से सुन लिया करता था और यह उनके चरित्र बल का प्रभाव था कि वह इनकी सब बातें सहन कर लेता था।

मकबरा इमारतों के खंडहरों के बीच में खड़ा है। यह एक कमरे का गुंबद है जो 19 मुरब्बा फुट लम्बा-चौड़ा और 25 फुट ऊंचा है। यह पत्थर-चूने का बना हुआ है। बाहर लाल पत्थर लगे हुए है। इसका चबूतरा 33 मुरब्बा फुट है जिसकी ऊंचाई जमीन से 4 फुट है। गुंबद 12 पत्थर के स्तम्भों पर खड़ा है। बीच के दो खम्भों के बीच पूर्वी द्वार है। कब्र संगमरमर की 8 फुट × 4 फुट की है और 1 फुट ऊंची है। चारों ओर 1 फुट ऊंचा कटहरा लगा है। कब्र पर गुंबद की छत के बीच में एक उल्टा कटोरा लटक रहा है। मकबरे का गुंबद तुगलक नमूने का बना हुआ है। मकबरे के साथ वाली मस्जिद बरबाद हो चुकी है और यही हालत मजलिस खाने की तथा फरीद शकरगंज और सलाउद्दीन की कब्रों की है।

फीरोजशाह के जमाने में उसके वजीर खांजहां ने जो मस्जिदें बनवाई, उनमें खास खास ये हैं :

कलां मस्जिद

यह दिल्ली शहर के अन्दर मोहल्ला बुलबुलीखाना और तुर्कमान दरवाजे के पास बहुत बड़ी और पुरानी इमारत है। इसे 1387 ई० में तामीर किया गया था। यह 140 फुट लम्बी और 120 फुट चौड़ी है। दीवारों के आसार छः फुट है। इसको बहुत ऊंची कुर्सी दी गई है। यह दो मंजिला है। पहली मंजिल की कुर्सी 28 फुट है जिस में दुकानें किराए पर दी गई है। दीवार से मिली हुई कोठड़ियों में दरवाजे और एक-एक सीढ़ी है जो बुर्जी के नीचे है। उनमें अन्दर-अन्दर ही भीतरी रास्ते हैं। यह पत्थर-चूने की बनी हुई है जो बहुत ही मजबूत है। अन्दर-बाहर अस्तरकारी का काम बहुत भला मालूम होता है। मस्जिद में जाने की 29 सीढ़ियां हैं। कोने के बुर्ज और बाहर की दीवारें सब अन्दर की ओर गाओदुम हैं। मस्जिद में मीनार नहीं है। मुल्ला अजान मस्जिद की छत पर से लगाया करता था। बहुत वर्षों तक इस मस्जिद में नमाज नहीं पढ़ी गई। मस्जिद बनाने वाले की तथा उसके बाद की कब्रें 1857 ई० के गदर में बरबाद हो गईं।

मस्जिद बेगमपुर

इसे भी खांजहां ने 1387 ई० में बेगमपुर गांव में घुसते ही बिजयमंडल के पास बनाया था। यह निहायत आलीशान और बहुत बड़ी मस्जिद है। तर्ज वही कलां मस्जिद और खिड़की मस्जिद का है। अन्तर यह है कि यह एक मंजिला है और एक बहुत बड़े चबूतरे पर बनी हुई है। इमारत पत्थर-चुने की है। उत्तर-दक्षिण में 307 फुट और पूर्व-पश्चिम में 295 फुट है और चबूतरा मिला कर 31 फुट ऊंचा है। इसके तीन दरवाजे उत्तर, दक्षिण और पूर्व में हैं। सदर दरवाजा पूर्व में है जिसके तीन तरफ पन्द्रह-पन्द्रह सीढ़ियां हैं। सहन में चारों ओर कोठड़ियां बनी हुई हैं। असल मस्जिद बीच के भाग में है। मस्जिद की छत पर 64 गुंबद हैं। इस मस्जिद में अब आबादी है। यह सफदरजंग के मकबरे से दो मील दक्षिण में कुतुब को जाते हुए सड़क से एक मील पूर्व में पड़ती है।

बिजयमंडल अथवा बेदी मंडल

काली सराय और बेगमपुर के बीच यह एक मकान कुतुब साहब की सड़क पर बाएं हाथ फीरोजशाह का बनवाया हुआ है। इसे जहांनुमा भी कहते हैं और बेदी-मंडल भी। यह 1355 ई० के करीब बनाया गया। मकान एक ऊंचे टीले पर बना हुआ है। ऊंचाई 83 फुट है। ऊपर चढ़ने को सीढ़ियां हैं। इसमें एक बुर्ज और चार दरवाजों का कमरा है। इस पर से बादशाह अपनी सेना को देखा करता था।

अकबर और जहांगीर के जमाने में, 1652 ई० में अब्दुल हक मुहाद्दिस ने बिजय मंडल की बाबत लिखते हुए कहा है कि यह जहांपनाह का एक बुर्ज था और शेख हसन ताहिर, जो बड़े सन्त थे और सिकन्दर लोदी के जमाने में दिल्ली आए थे, बादशाह की आज्ञा से इस बुर्ज में ठहरे थे। जब 1505 ई० में ताहिर की मृत्यु हो गई तो इस बुर्ज के बाहर उनको दफनाया गया था। जो दूसरी कब्रें उसके इर्द-गिर्द हैं, वे उनके खानदान के लोगों की हैं जिन्होंने दिल्ली में रहना शुरू कर दिया था।

काली सराय की मस्जिद

यह बेगमपुर की मस्जिद के पास ही खांजहां की बनाई हुई मस्जिद है। इसमें भी अब लोग आबाद हैं। यह भी खांजहां ने 1387 ई० में बनवाई थी।

खिड़की मस्जिद

यह बेगमपुर से डेढ़ मील दक्षिण-पूर्व में और कुतुब-तुगलकाबाद रोड पर डेढ़ मील उत्तर में सतपुले के पास खिड़की नाम के गांव में है। इसे भी खांजहां ने

1387 ई० में बनवाया था। यह भी बड़ी आलीशान और देखने योग्य इमारत है। यह चौखूंटी है और गाओदुम तीन खंड की इमारत है। मस्जिद में नौ जगह मिले हुए नौ-नौ बुर्ज बने हुए हैं। हर एक बुर्ज के नीचे चार खम्भे हैं। पहला खण्ड सबसे नीचा है। तीन दरवाजे हे उत्तर, दक्षिण और पूर्व में। हर दरवाजे पर लदाओ का एक गुंबद है। इमारत दो मंजिला है। पहला भाग 15 फुट ऊंचा और दूसरा 22 फुट ऊंचा है जिसमें 41 गुंबद हैं। पठानों की तमाम मस्जिदों में यह सबसे अधिक दिलचस्प है। मस्जिद का बाहरी माप 192 मुरब्बा फुट है। इसमें भी गूजर आबाद हो गए थे। 1857 ई० के बाद इसे खाली करवाया गया था।

संजार मस्जिद -

यह भी खांजहां की बनवाई हुई है। यह 1372 ई० में बनाई गई। यह निजामुद्दीन की दरगाह के करीब है। खिड़की की मस्जिद की तरह ही यह बनी हुई है।

कदम शरीफ (मकबरा फतहखां)

लाहौरी दरवाजे के दक्षिण में कोई डेढ़ मील के अन्तर पर बूचड़खाने के पास यह दरगाह बहुत विख्यात है जो वास्तव में फीरोजशाह के बेटे फतहखां की कब्र है और 1374 ई० में बनाई गई। इस दरगाह में हजरत मोहम्मद साहब के चरण का चिह्न लगा हुआ है जिसे हजरत मखदूम मक्का से दिल्ली अपने सर पर रख कर लाए थे। 1374-75 ई० में जब फतहखां की मृत्यु हुई तो यह कदम उसकी छाती पर लगा दिया गया और उसके गिर्द मदरसा, मकान और मस्जिद बना दी गई तथा चारदीवारी के करीब एक बहुत बड़ा हौज बनाया गया। यह सारी इमारत पक्की बनी हुई है। इसके सात दरवाजे हैं जिनमें से दो अब बन्द हैं। इमारत एक चबूतरे पर बनी हुई है जो 78 फुट लम्बा तथा 36 फुट चौड़ा है और 5½ फुट ऊंचा है। इसका सदर फाटक पूर्व में है। पूर्व और पश्चिम में पक्के दालान बने हुए हैं जिनके कोनों पर चार बुर्जियां हैं। इन दालानों में फीरोजशाह तुगलक के कुटुम्बियों की कब्रें हैं। यह मुसलमानों का तीर्थस्थान है। यहां हर वर्ष मेला लगता है और पंखा चढ़ता है।

मकबरा फीरोजशाह

हौज खास के पास ही किनारे पर फीरोजशाह का मकबरा बना हुआ है जिसकी मृत्यु 1389 ई० में हुई। मकबरा अन्दर से 29 फुट 3 इंच मुरब्बा है जो बहुत उम्दा पत्थर का पक्का बना हुआ है। इसके दोनों ओर पश्चिम और उत्तर में एक-एक लाइन मकानों और कमरों की है जो शायद फीरोजशाह का मदरसा था। गुंबद के दो दरवाजे खुले हैं। पश्चिम और उत्तर की ओर बन्द है। मकबरे

का सदर दरवाजा दक्षिण में है। मकबरे के अन्दर चार कब्रें एक ही कतार में हैं। पश्चिम की ओर से पहली कब्र, जो सबसे बड़ी तथा संगमरमर की है, फीरोजशाह की है। मकबरा नासिरुद्दीन तुगलकशाह ने बनवाया था।

फीरोजशाह के समय की और भी बहुत सी इमारतें मौजूद हैं जैसे मेडिकल कालेज के पास कुश्के अनवर अथवा महदियां। यह 1354 ई० में बनी थी। अब लापता है। दो बुर्जी मस्जिद शेख सराय के पास 1387 ई० में बनी। यह कुश्के फीरोजाबाद की चारदीवारी के अन्दर बनी हुई थी। एक चबूतरे पर, जो 118 फुट × 88 फुट और जमीन से 12 फुट ऊंचा था, पांच गुंबददार कमरे बने हुए थे। चार चार कोनों पर और पांचवां मध्य में। अब केवल चबूतरे के निशान कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं। कमरों में से केवल एक कोने का बाकी है। ये कमरे गोल थे और बीस फुट ऊंचे थे।

बूली भटियारी का महल

यह करोलबाग जाते हुए बाएं हाथ पहाड़ी पर पड़ता है। इसमें बुअलीखां भट्टी रहते थे जिन्हें लोग बूली भटियारी कहने लगे थे। इमारत एक बंध के किनारे बनी हुई है। यह 518 फुट लम्बी, 17 फुट चौड़ी और 22 फुट ऊंची है। इसके बनने का काल 1354 ई० माना जाता है। इसमें संगखारा की कई कोठड़ियां बनी हुई हैं।

फीरोजशाह की मृत्यु के पश्चात उसके बेटे और पोतों में गद्दी के लिए बड़ी खींचातानी रही। गयासुद्दीन तुगलक सानी, अबूबकर, नासिरुद्दीन मोहम्मद शाह सब के सब बड़े कमजोर निकले। किसी में भी राज्य को चलाने की योग्यता न थी और न कोई अधिक समय टिक सका। आए दिन की आपसी लड़ाइयों का परिणाम यह हुआ कि हिन्दुस्तान के पुराने दुश्मन तैमूर ने, जो मुद्दतों से इस देश को विजय करने की चिन्ता में लगा हुआ था, 1398 ई० में दिल्ली पर हमला कर दिया। यह मुगल पहले तो लूटमार करके चले जाया करते थे मगर इस बार तैमूर एक बड़ी बाकायदा फौज लेकर आया। चूंकि यह लंगड़ा कर चलता था इसलिए इसका नाम तैमूर लंग पड़ा। इस वक्त इसकी आयु साठ वर्ष की थी। यह अपनी बेशुमार तातारी फौज लेकर पहले अफगानिस्तान से पंजाब में दाखिल हुआ और फिर लूटखसोट मचाता दिल्ली के करीब पानीपत तक पहुंचा। इसने पानीपत से जरा नीचे हट कर सम्भवतः बागपत के करीब यमुना को पार करके लोनी के किले पर कब्जा कर लिया जो फीरोजाबाद के सामने की तरफ पड़ता था और नदी के किनारे अपना कैम्प डाल दिया। फिर चंद सवारों को लेकर वजीराबाद के पास से दरिया पार किया और कुश्के शिकार तक का चक्कर लगा कर देखभाल करके

वापस लौट गया। फिर, जहां अब मटकाफ हाउस है उसने उस जगह कहीं अपना पड़ाव डाल दिया। इस वक्त अमीर के पास एक लाख हिन्दू कैदी थे जिन्हें वह रास्ते में पकड़ कर लाया था। कैदियों को उम्मीद थी कि शायद लड़ाई में अमीर की हार हो और वे छूट जाएं, मगर तैमूर जब लड़ाई की तैयारी में लगा तो उसने इस ख्याल से कि कहीं कैदी दुश्मन, से न मिल जाएं, इन सबको कत्ल करवा डाला। पहले पन्द्रह वर्ष से ऊपर के कत्ल किए गए। बाद में बाकी बचे हुए भी। इस कत्ल की खबर से दिल्ली वाले थर्रा उठे। बादशाह फसीलों के अन्दर दुबक गया। तैमूर का लश्कर यमुना के इस पार पड़ा हुआ था। उसने कैम्प के चारों ओर खंदक खुदवा कर मोर्चाबन्दी करवाई और सामने एक लम्बी कतार भैंसों की बंधवा कर खड़ी करवा दी। इधर बादशाह भी बारह हजार सवार और चालीस हजार पैदल और आगे आगे हाथियों की कतार को लेकर निकला। लड़ाई में बादशाह की पराजय हुई। तातारियों ने भगोड़े लश्कर का पुरानी दिल्ली (पृथ्वीराज की) के दरवाजों तक पीछा किया जो उस वक्त रात को बिल्कुल खाली पड़ी रहती थी। मोहम्मद तुगलक हार कर गुजरात की ओर भाग गया। अमीर तैमूर ने अपनी बादशाहत की घोषणा कर दी और यहां के बाशिंदों से एक बहुत बड़ी रकम तावान की शक्ल में मांगी। इन्कार करने पर कत्लेआम शुरू हो गया जो पांच दिन तक जारी रहा। इस कदर इंसान मार गए कि गलियों में चलने को रास्ता न रहा। घरों को न सिर्फ लूटा जाता था बल्कि जला भी दिया जाता था। गर्ज शहर में कुछ भी बाकी न छोड़ा। सब कुछ तबाह कर दिया। 17 दिसम्बर बुध के दिन तैमूर ईदगाह में गया जो मैदान के सामने थी। वहां तीनों शहरों (दिल्ली, फीरोजाबाद और तुगलकाबाद) के उमरा और भद्र पुरुष जमा किए गए। सबने अधीनता स्वीकार की। तब कहीं पीछा छूटा। शहर के दरवाजों पर तैमूरी झण्डे लहराने लगे। दो दिन बाद फीरोजाबाद की मस्जिद में तैमर के नाम का खुतबा पढ़ा गया। कुछ तैमूरी बेगमात कस्रे हजार स्तून देखने गई थीं। वहां लोगों से कुछ कहा-सुनी हो गई और तीन दिन तक फिर कत्लेआम जारी रहा। बहुत से हिन्दू जान बचाने के लिए भागे और पुरानी दिल्ली की एक मस्जिद में जा छिपे, मगर वहां भी उन्हें न छोड़ा गया, चौथे दिन इन सबको कत्ल कर दिया गया। आखिर जब कत्ल बन्द हुआ तो जो लोग भाग न सकते थे उनको गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें गुलाम बना लिया गया। तब तैमूर शहर में दाखिल हुआ और फीरोजशाह के अजायबखाने के सारे अच्छे-अच्छे जानवर ले लिए जिनमें 12 गैंडे भी थे। 1398 ई० के आखिरी दिन अमीर तैमूर फीरोजाबाद गया और कोटले की जामा मस्जिद को देखा जो उसे बहुत पसन्द आई। यहां उसे दो सफेद तोते दिए गए जिनकी उम्र कहते हैं 74 वर्ष की थी। ये तोते तुगलकशाह के जमाने से हर बादशाह को नजर किए जाते थे। तैमूर केवल 15 दिन दिल्ली में ठहरा। ये पन्द्रह दिन प्रलय के थे। उसने इस कदर तबाही मचाई

कि उसका कोई अनुमान नहीं हो सकता। यहां से वह अथाह धन और सामान तथा गुलाम कैदी लेकर गया। जहां से भी गुजरा कत्ल तथा लूट मचाता चला गया। जाते वक्त खिजरखां को हुक्मरान नियत कर गया और पंजाब, काबुल होता हुआ समरकन्द वापस लौट गया। वह पांच महीने हिन्दुस्तान में ठहरा।

तैमूर के जाने के पश्चात भी दो महीने तक यहां गदर मचा रहा। आखिर नसरतशाह वापस लौटा और लूटे-खसूटे शहर पर कब्जा किया। इकबालखां जब एक लड़ाई में मारा गया तो दौलतखां लोदी के कहने पर महमूद गद्दी पर बैठा, लेकिन 1407 ई० में एक बागी और खिजरखां ने सुल्तान महमूद को फीरोज़ाबाद में कैद कर लिया और वह बड़ी कठिनाई से छूटा। सुल्तान महमूद इस प्रकार नाममात्र का बीस वर्ष तक बादशाह रहा और जब वह कैथल की तरफ शिकार को गया हुआ था तो वहीं बीमार पड़ा और वापसी पर 1412 ई० में मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसके साथ ही खानदाने तुगलक की समाप्ति हो गई।

खानदाने सादात

(1414 ई० से 1451 ई० तक)

मोहम्मद शाह की मृत्यु के बाद लोगों ने दौलतखां लोदी को तख्त पर बिठाया लेकिन इसके गद्दी पर बैठते ही खिजरखां, जो इससे अधिक शक्तिशाली था, एक बड़ी भारी फ़ौज ले आया और सीरी के किले में बादशाह को कैद कर गद्दी पर बैठ गया।

1424 ई० में खिजरखां की दिल्ली में मृत्यु हुई और उसके बेटे और जांनशीन अब्दुल मुबारकशाह ने अपने बाप की कब्र पर एक मकबरा बनवाया जिसे खिजर की गुम्टी कहते हैं। खिजरखां को यमुना के किनारे ओखला गांव के पास दफन किया गया था जो दिल्ली से आठ मील दक्षिण में है। एक चारदीवारी के अहाते में, जिसका तीन चौथाई हिस्सा गिर चुका है, एक बहुत साधारण चौकोर कमरा खड़ा है जिसके चारों ओर महराबदार चार दरवाजे हैं। इसके नजदीक ही एक गुंबद बना हुआ है। पहली इमारत खिजरखां के मकबरे की बताई जाती है।

नीला बुर्ज या सैयदों का मकबरा

यह मकबरानुमा इमारत दिल्ली निजामुद्दीन सड़क के चौक पर बनी हुई है जिसके दाएं हाथ सड़क सफदरजंग को जाती है और बाएं हुमायूं के मकबरे को।

इस पर नीली चीना के टायल लगे हुए हैं इसलिए यह नीला बुर्ज कहलाता है। यह सैयदों के समय (1414 ई० से 1443 ई०) का माना जाता है। इसमें पुलिस चौकी हुआ करती थी। यह एक अठपहलू चबूतरे पर बना हुआ है जो 42 फुट मुरब्बा और सवा चार फुट ऊंचा है। चढ़ने को चार सीढ़ी हैं। इसमें अन्दर-बाहर चीनी का काम नीले, सुर्ख, सफेद रंग की फूलपत्तियों में बना हुआ है। यह बहुत कुछ झड़ चुका है। मकबरा 34 फुट ऊंचा है। अन्दर कब्र मिट्टी की है।

शहर मुबारकाबाद अथवा कोटला मुबारकपुर

जैसा कि ऊपर बताया गया है, सुल्तान मुबारकशाह सानी ने 1432 ई० के आखिर में यमुना के किनारे एक नए शहर की बुनियाद डाली। शहर की तामीर को देखने वह मुबारकाबाद में दाखिल हुआ लेकिन वज़ीर ने उसे कत्ल करवा दिया। लाश को मुबारकपुर कोटले में लाकर दफन किया गया। इस स्थान को कुतुब रोड के करीब सातवें मील के पास से बाएं हाथ को जाते हैं। अब यह जगह एक बहुत बड़ी कालोनी—लोदी कालोनी—से मिल गई है। यह मकबरा एक बहुत बड़े सहन में बना हुआ है। चारों ओर फसील की तरह का अहाता है। इमारत बहुत सुन्दर खारे के पत्थर की बनी हुई है। खम्भे और पटाव भूरे पत्थर के हैं। फसील के दरवाजे के करीब एक पतला पटका रंगीन ईंटों का है। नीचे संगमरमर की तख्ती पर दो खिले हुए कंवल के फूल हैं। दरवाजे से थोड़ी दूर पर गुंबद की इमारत है। मकबरे के चारों ओर चौबीस खम्भे चबूतरे पर खड़े हैं जो खास कारीगरी के बने हुए हैं। गुंबद के ऊपर के भाग में सोलह रंगीन गुलदस्ते बने हुए हैं। मकबरे का दरवाजा एक ही है जो दक्षिण की ओर है। गुंबद के नीचे संगमरमर की कब्र बनी हुई है। मकबरा असल में मुबारकशाह का कहा जाता है।

मकबरा सुल्तान मोहम्मदशाह

सफदरजंग के मकबरे के सामने से जो सड़क निजामुद्दीन गई है, उस सड़क पर दाएं हाथ सफदरजंग से केवल पांच फर्लांग पर एक मकबरा खानदाने सादात के तीसरे बादशाह मोहम्मदशाह का है। यह गुंबद अठपहलू है। इसका कलस टूट गया है। गुंबद की छत में सोलह ताक हैं जिनमें चार खुले हुए और बाकी बन्द हैं। इस गुंबद के आठ दर हैं। मोहम्मदशाह की मृत्यु 1445 ई० में खैरपुर मौजे में हुई और वहां ही उसे दफन किया गया। यह मकबरा मुबारकपुर के मकबरे जैसा ही बना हुआ है।

सीरी के पास ही मखदूम सबजेदार की एक बहुत सुन्दर देखने योग्य मस्जिद है जो 1400 ई० के करीब तामीर हुई थी।

लोदी खानदान

(1451 ई० से 1526 ई०)

मोहम्मद गोरी से लेकर इब्राहीम लोदी तक सब बादशाह पठान कहलाते हैं लेकिन वास्तव में वे तुरक थे। बहलोल लोदी से जिस खानदान की बुनियाद पड़ी, वह बेशक पठान था। शाहआलम के काल में राज्य का सारा काम यही करता था और असल बादशाह यही समझा जाता था। आखिरकार बादशाह ने गद्दी छोड़ दी और 1451 ई० में वह सिंहासन पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही इसने अपने वजीर को कैद कर लिया। जौनपुर का राज्य खुदमुख्तयार हो गया और उसने 1451 ई० में, जब कि बहलोल दिल्ली में मौजूद न था, दिल्ली पर घेरा डाल दिया। बड़ी कठिनाई से यह घेरा उठा, मगर लड़ाइयां जारी रहीं। उनसे इसके नाक में दम आ गया। तंग आकर इसने दिल्ली के कुछ जिले अपने बेटे निजामखां के लिए रख लिए और बाकी का मुल्क भिन्न-भिन्न सरदारों को बांट दिया। वह 1488 ई० में बीमारी के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ और अपने बाग में, जो दरगाह चिराग दिल्ली के निकट है, एक मकबरे में दफन हुआ।

बाप की मृत्यु का समाचार पाकर निजामशाह दिल्ली पहुंचा और सिकन्दर के लकब से 1488 ई० में गद्दी पर बैठा लेकिन फिर झगड़े शुरू हो गए। अफगान उमरा नहीं चाहते थे कि ऐसा व्यक्ति, जो सुनार कौम की हिन्दुआनी के घर से पैदा हुआ हो, बादशाह बने। मुकाबला चचेरे भाई से हुआ मगर वह पराजित हुआ। जौनपुर के बादशाह ने फिर करवट ली और अपना मुल्क वापस लेना चाहा, मगर वह भी परास्त हुआ। सिकन्दर इन लड़ाइयों में इतना उलझा रहा कि 1490 ई० तक दिल्ली न आ सका। वह तीन महीने यहां ठहरा था कि फिर बदअमनी फैल गई जिसे दबाने उसे जाना पड़ा। इस प्रकार कई वर्ष बीत गए। आखिरकार 1504 ई० में उसने दिल्ली से राजधानी उठा देने का इरादा किया। बादशाह ने एक कमेटी बिठाई जिसने घूम-फिर कर आगरा पसंद किया। चुनांचे राजधानी आगरा ले जाई गई। मगर इसके दूसरे ही वर्ष 1505 ई० में इतवार के दिन इतना जोर का भूकम्प आया कि उसने सारे हिन्दुस्तान और ईरान को हिला दिया। लोगों ने समझा कि प्रलय आ गई है। मगर सिकन्दर ने आगरा नहीं छोड़ा बल्कि नए सिरे से उसे आबाद किया। सिन्कदर से लेकर शाहजहां तक के काल में आगरा ही राजधानी रही। लेकिन जब तक ताजपोशी की रस्म दिल्ली में अदा न हो जाए, गद्दी पर बैठना पूरा नहीं समझा जाता था। आगरे में सिकन्दर के नाम का मौजा, जहां अकबर की कब्र है,

उसके नाम से मशहूर है। यहां उसने 1495 ई० में बारहदरी बनवाई थी। 28 बरस राज करने के पश्चात उसने नवम्बर 1517 में आगरे में मृत्यु पाई। उसकी लाश दिल्ली लाई गई और खैरपुर की चौहद्दी में एक बहुत बड़े मकबरे में दफन की गई। कहते हैं यह बादशाह मूर्ति पूजा का कट्टर विरोधी था। इसे जहां मन्दिर और मूर्ति मिलती थी, तुड़वा देता था। इसने कितनी ही पुरानी इमारतों को दुरुस्त करवाया। कुतुब मीनार और फीरोजशाह के मकबरे को उसी ने ठीक करवाया था। अपने प्रारम्भिक काल में इसने मोठ की मस्जिद भी बनवाई।

सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात उमरा ने उसके तीसरे बेटे इब्राहीम लोदी को 1517 ई० में गद्दी पर बिठाया और जौनपुर का राज्य उसके भाई सुल्तान जलाल को दे दिया। इस पर लड़ाई हुई। जलाल मारा गया और इब्राहीम ने अपने दूसरे भाइयों को कैद कर लिया। इसमें अपने बाप का एक भी गुण नहीं था। गद्दी पर बैठने पर इसकी हालत और भी बिगड़ गई। यह बड़ा अभिमानी और क्रोधी था। उमरा को घण्टों अपने सामने हाथ जोड़े खड़ा रखता और हर किसी को तुच्छ दृष्टि से देखता। पठान इसको कब सहन कर सकते थे? नतीजा यह हुआ कि एक तूफान खड़ा हो गया। कई उमरा मारे गए। हर पठान सरदार अपनी जगह तन गया और बागी हो गया। इसी कारण इस खानदान से सल्तनत निकल कर मुगलों के हाथों में चली गई। इसने जितने दिन राज किया, गृहयुद्ध होता रहा। इसके भाई अलाउद्दीन ने एक बड़ी सेना लेकर दिल्ली को घेर लिया। भाग्यवश वह सफल न हो पाया और उसे घेरा उठाना पड़ा।

अलाउद्दीन पंजाब की तरफ निकल गया। इस लड़ाई से पहले इब्राहीम ने सीरी के बगदादी दरवाजे के सामने बैल की वह तांबे की मूर्ति खड़ी करवाई थी जिसे वह दक्षिण के हमले से लाया था। दौलतखां लोदी नाम का एक व्यक्ति पंजाब का गवर्नर बना हुआ था। वह भी खार खाए बैठा था। उसने काबुल के बादशाह को पहले बुलवाया था। बाबर हिन्दुस्तान के हालात सुन कर स्वयं ही यहां का राज्य हस्तगत करना चाहता था। अब अलाउद्दीन ने पंजाब पहुंच कर बाबर को बुलवा भेजा। इशारे की देर थी। बाबर तो तैयार ही बैठा था। वह तुरन्त सेना लेकर रवाना हो गया। पानीपत के मैदान में, जो दिल्ली के उत्तर में और कुरुक्षेत्र और तारायन के पुराने लड़ाई के मैदान के करीब है, 21 अप्रैल 1526 को इब्राहीम और बाबर का मुकाबला हुआ जिसमें इब्राहीम मारा गया और वहां पानीपत में दफन हुआ। इस प्रकार पठानों का राज्य काल समाप्त हुआ। 1193 से ई० 1504 ई० तक पठानों का दिल्ली में राज्य रहा और 22 वर्ष आगरा में, मगर खात्मा दिल्ली में ही हुआ।

बहलोल लोदी का मकबरा

यह मकबरा रोशन चिराग दिल्ली की दरगाह के अहाते की पश्चिमी दीवार से मिले हुए एक बाग के अन्दर बना हुआ है जो **जोध बाग** के नाम से मशहूर था। इसे बहलोल के लड़के सिकन्दर लोदी ने 1488 ई० में बनवाया था और मौज़ा बघौली से अपने बाप की लाश को लाकर यहां दफन किया था। मकबरा 44 फुट मुरब्बा है जिसके तीन ओर दर हैं जिनके बारह खम्भे आठ फुट ऊंचे और दो फुट मुरब्बा लाल पत्थर के बने हुए हैं। महराबों पर बेल बूटे बने हुए हैं। छत जमीन से 18 फुट ऊंची है। गुंबद में लाल पत्थर के चौकों का फर्श है और कब्र पर नक्काशी का काम हुआ है। मकबरे के ऊपर बहुत सुन्दर पांच बुर्जियां चूने की बनी हुई हैं। बादशाह की मृत्यु इटावे से दिल्ली आते हुए रास्ते में कस्बा जलाली में हुई थी जो जिला अलीगढ़ में है। लाश को सिकन्दर लोदी दिल्ली लाया था और उसे उपर्युक्त मकबरे में दफन किया। जोध बाग का अब पता नहीं रहा।

मस्जिद मोठ

यह मस्जिद मुबारकशाह के मकबरे के पास मुबारकपुर से एक मील दक्षिण में स्थित है जिसे सिकन्दर लोदी ने 1488 ई० में बनवाया था। मस्जिद के पास एक बहुत बड़ी बावली भी बनाई गई थी। इसी मस्जिद के नमूने पर शेरशाह के पुराने किले में और कुतुब में जमाली मस्जिद बनी। मस्जिद का सदर दरवाजा और उसकी हिन्दू तर्ज की महराब बड़ी आलीशान है। यह मस्जिद लोदियों के जमाने की इमारतों का एक अच्छा नमूना है। इसका चबूतरा छः फुट ऊंचा है और इसकी लम्बाई चौड़ाई 130 फुट तथा 30 फुट है। चबूतरे के गुंबद की चोटी तक 60 फुट ऊंची है। इसमें पांच दर हैं और इधर-उधर दो दर छोटे-छोटे और हैं जिनमें सीढ़ियां बनी हुई हैं। छत पर तीन गुंबद हैं। इसका नाम मोठ की मस्जिद पड़ने की एक कहानी है। कहते हैं किसी को रास्ता चलते मोठ का एक दाना पड़ा मिल गया। उसे उठा कर उसने बो दिया। जो दाने निकले वे फिर बो दिए गए। चन्द वर्षों में पैदावार से बहुत रुपया जमा हो गया जिससे यह मस्जिद बनी।

लंगरखां का मकबरा

इसे भी सिकन्दर लोदी के एक अमीर लंगरखां ने मौज़ा जमरूदपुर और रायपुर की सीमा पर 1494 ई० में अपने लिए बनवाया था। कमरा, जिसमें लंगरखां की कब्र है, जमीन से छत तक 33 फुट ऊंचा है। इसमें तीन दरवाजे हैं। सारी इमारत चूने-पत्थर की बनी हुई है।

तिबुर्जा

मुबारकपुर कोटले की बस्ती से निकलते ही मोठ की मस्जिद के पास पश्चिम की ओर कई बुर्ज बने हुए हैं। इनमें तीन गुंबद छोटेखां, बड़ेखां और भूरेखां के हैं। ये लोदियों के काल 1494 ई० के बने हुए हैं। बीच का बुर्ज दूसरे दोनों से दुगुना ऊंचा है। तीनों चौकोर हैं। (12 गुंबद कालेखां का भी है, जिसमें कालेखां दफन है। उसकी मृत्यु 1481 ई० में हुई थी)।

दरगाह यूसुफ कत्ताल

यह दरगाह खिड़की की मस्जिद के पास है। यह 1497 ई० में सिकन्दर लोदी के समय में बनाई गई। बुर्ज और इधर-उधर की जालियां लाल पत्थर की हैं, और गुंबद चूने का है। गुंबद के हाशिए पर चीनी का काम बना हुआ है। एक और चूने-पत्थर की मस्जिद है। यूसुफ कत्ताल भी जलालुद्दीन लाहौरी के शिष्य थे।

शेख शहाबुद्दीन ताजखां और सुल्तान अबुसईद के मकबरे

ये दोनों सिकन्दर लोदी के उमरा थे। ये मकबरे खड़ेड़ा गांव में बने हुए हैं। इनका नाम बाग आलम पड़ गया है। मकबरे बहुत खूबसूरत बने हुए हैं।

राजाओं की बावली और मस्जिद

कुतुब साहब की लाट के करीब दक्षिण-पश्चिम में ऊधमखां के मकबरे के दक्षिण में एक आलीशान मकान है जिसे सिकन्दर लोदी के एक अमीर दौलतखां ने 1516 ई० में बनवाया था। मकान चूने और पत्थर का बना हुआ है, मगर निहायत आलीशान है। यहां ही एक बावली निहायत खूबसूरत बनी हुई है। बावली के उत्तर में 66 सीढ़ियां हैं जो पानी तक चली गई हैं। पास में ही एक मस्जिद है। चूंकि इसमें राजा रहा करते थे, इसका नाम राजाओं की बावली पड़ गया।

सिकन्दर लोदी का मकबरा, बावली और मस्जिद

मौजा खैरपुर के पास सफदरजंग के मकबरे से कोई पांच मील के अन्तर पर एक पुराने पुल के पास सिकन्दर शाह लोदी का मकबरा है जिसे शायद इब्राहीम लोदी ने बनवाया था। बादशाह की मृत्यु 1517 ई० में आगरे में हुई और लाश को वहां से दिल्ली लाकर दफन किया गया। मकबरे का गुंबद चिराग दिल्ली के मकबरे की तरह एक अहाते में बना हुआ है। यह एक गहरे ढालवां किनारे पर स्थित है जिस पर सात दरों का पुल बांध दिया गया है। उस पर से जो सड़क जाती थी वह फीरोजाबाद को सीरी और पुरानी दिल्ली से मिलाती थी। कब्र के सिरहाने जो

चिरागदान का खम्भा है, वह जैनियों के मन्दिर का स्तम्भ था। कब्र गच की बनी हुई है। गुंबद के अन्दर तमाम चीनी काम किया हुआ था। गुम्बद की ऊंचाई 24 फुट है। ऊपर जाने को जीना है। गुंबद के पास ही एक बहुत बड़ी बावली बनी हुई है। पहले यहां अहाते में बाग भी लगा हुआ होगा। साथ में एक मस्जिद भी थी।

पंच बुर्जा

बचनपुर अथवा जमरूंदपुर गांव, जो दिल्ली से करीब छः मील दक्षिण में लेडी श्रीराम कालेज के सामने है, जमरूंदखां को बतौर जागीर के दिया गया था। बाद में इसका नाम जमरूंदपुर पड़ा। इस गांव में जमरूंदखां के खानदान वालों की कब्रें हैं और शायद उनमें से पांच सर्वश्रेष्ठ इन पांच बुर्जों में दफन किए गए हों। गुंबद लोदी काल के बने हुए हैं और शायद सिकन्दर लोदी के समय में 1488 ई० बने हों।

पहला गुंबद गांव में घुसने के साथ 40 मुरब्बा फुट के अहाते में है जिसकी दीवारें 11 फुट ऊंची हैं। आगे की दीवार में सीढ़ियां लगी हैं जिनके द्वारा एक दरवाजे में दाखिल होकर सहन में पहुंचते हैं। दरवाजा 12 फुट चौड़ा और 15 फुट लम्बा है। अहाते की पुश्त की दीवार गिर चुकी है। मकबरा दो फुट ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है और यह गुंबदनुमा है जो 12 स्तम्भों पर खड़ा है। इसी प्रकार अन्य चारों गुंबदों की व्यवस्था है।

बस्ती बावरी या बस्ती की बावली

ख्वाजा सरा बस्तीखां एक मुखन्नस था और सिकन्दर लोदी के समय में एक विशेष व्यक्ति माना जाता था। उसने निजामुद्दीन के पास में एक खूब लम्बा चौड़ा अहाता घेर कर एक बड़ा गुंबददार दरवाजा, एक मस्जिद और एक बावली बनवाई जो सम्भवतः 1488 ई० में बने। अब तो सब कुछ खण्डहर बन चुका है। बावली भी सूख गई है जो शायद 112 फुट लम्बी और 31 फुट चौड़ी रही हो। बावली की दीवारों में जो कमरे बने थे, वे सब खत्म हो चुके हैं। केवल चार रह गए हैं। उत्तर और दक्षिण में बावली की दीवारें 15 फुट ऊंची थीं।

बावली के पश्चिम में बस्तीखां की मस्जिद है जो 13 फुट चौड़ी 57 फुट लम्बी और 34 फुट ऊंची है। दरवाजा पत्थर-चूने का है। यह 35 मुरब्बा फुट है।

दरवाजे के पूर्व में बस्तीखां का मकबरा है। यह 49 फुट मुरब्बा है और 15½ फुट ऊंचा है। अब तो यह मकबरा महज चूने-मट्टी का ढेर है।

इमाम जामिन उर्फ इमाम मुहम्मद अली का मकबरा

इस मकबरे को हसन भाई का मीनार भी कहते हैं। यह तुर्किस्तान से सिकन्दर लोदी के समय में दिल्ली आए और मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम में इनको कोई खास स्थान हकूमत की तरफ से मिला हुआ था। उन्होंने अपना मकबरा अपने जीवन काल में ही बनवाया और मृत्यु के बाद वह उसमें दफन किए गए। यह अच्छी हालत में है और कुतुब मीनार के दक्षिण-पूर्व में अलाई दरवाजे से दस गज के फासले पर है। यह 24 फुट मुरब्बा है और जमीन से बुर्जी तक 54 फुट ऊंचा है। चारों ओर की दीवारों में से तीन ओर जाली लगी है। दरवाजा दक्षिण की ओर है जिसका चौखटा संगमरमर का है। पर्दे लाल पत्थर के हैं जो बारह स्तम्भों पर खड़े हैं। खम्भों पर नक्काशी का काम किया हुआ है। कब्र 7 फुट लम्बी 4 फुट चौड़ी और डेढ़ फुट ऊंची संगमरमर की बनी हुई है। इसकी बनावट बिल्कुल सादी है। कब्र के सिरहाने की ओर दीप स्तम्भ कोई 2 फुट ऊंचा है। दरवाजे पर एक लेख दिया हुआ है।

मस्जिद खैरपुर

यह मस्जिद लोदी काल की बनी मालूम होती है और उस काल की सर्वश्रेष्ठ मस्जिदों में से है। इसमें पांच दर हैं। बीच वाला औरों से अधिक चौड़ा और मुरस्सा है। छत पर तीन गुम्बद हैं। प्लास्टर में पच्चीकारी का काम बनाया गया है। इसमें कुरान की आयतें लिखी हुई हैं। यह अलाई दरवाजे के किस्म की बनी हुई है। इसमें चूनाकारी का काम है। दाखिल होने से पहले इसमें एक आलीशान गुंबद है जो अन्दर से 41 मुरब्बा फुट है और बाहर से 45 फुट है। गुंबद के चार दरवाजे हैं। अन्दर जाने का द्वार उत्तर की ओर है। दूसरा मस्जिद में जाने वाले सहन का है। दो बन्द हैं। ऊपर 16 आले बने हैं जिनमें चार खुले हैं। गुंबद की छत पर जाने के लिए जीना है। जिसमें 37 सीढ़ियां हैं। गुंबद की ऊंचाई 55 फुट है।

पठानकाल की यादगारें

नाम इमारत	काल तामीर सन् ईस्वी	बनानेवालों का नाम	स्थान जहां बनी हुई है
1	2	3	4
गुलाम खानदान की यादगारें			
1. मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम या आदीना या जामा मस्जिद (मुसलमानों की पहली दिल्ली में)	1193-98	कुतुबुद्दीन ऐबक (पांच दरवाजे)	दिल्ली से 11 मील दक्षिण-पश्चिम में कुतुब मीनार के पास
	1220	शमसुद्दीन अल्तमश (छः दरवाजे)	"
	1300	अलाउद्दीन खिलजी (दो दरवाजे)	"
2. कुतुब मीनार	1200	कुतुबुद्दीन ऐबक (1 खंड) (पृथ्वीराज का नाम भी लिया जाता है कि पहला खंड उसने बनवाया था)	" "
	1220	शमसुद्दीन अल्तमश (दूसरा, तीसरा और चौथा खंड)	
	1368	फीरोजशाह तुगलक (पांचवां और छठा खंड)	

पठानकाल की यादगारें (क्रमश:)

1	2	3	4
3. कस्रे सफेद	1205	कुतुबुद्दीन ऐबक	अब नहीं रहा
4. हौज शमसी	1229	शमसुद्दीन अल्तमश (1311 में अलाउद्दीन ने इसमें एक बुर्जी बनवाई)	महरौली में दिल्ली से 12 मील
5. कुश्के फीरोजी	1230	शमसुद्दीन अल्तमश	अब नहीं रहा
6. कुश्के सब्ज	1230	,, ,,	अब नहीं रहा
7. चबूतरा नासिरी	1230	,, ,,	अब नहीं रहा
8. मकबरा सुल्तान गौरी (मृत्यु 1228 ई०) (भारत में पहला मुस्लिम मकबरा)	1231	,, ,,	मलिकपुर गांव में महरौली से साढ़े तीन मील नजफगढ़ रोड पर बाएं हाथ महरौली में दिल्ली से 11 मील
9. दरगाह तथा मस्जिद हजरत कुतबुद्दीन काकी	1235	,, ,,	
10. मकबरा अल्तमश	1236	इसके बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह मकबरा अल्तमश का ही है, क्योंकि फतूहाते-फीरोजशाही में जो अल्तमश के मकबरे का हाल लिखा है, वह इससे भिन्न है। इस पर कहीं भी कोई लेख नहीं है।	मस्जिद कुव्वतुलइस्लाम के उत्तरी कोने में

		सर सैयद ने लिखा है कि सम्भवतः इसे रज़िया ने बनवाया हो।	
11. मकबरा रुक्नुद्दीन फीरोजशाह	1238–40	रज़िया बेगम	मलिकपुर गांव में गारी के मकबरे के साथ
12. मकबरा रज़िया बेगम	1240	मुईउद्दीन बहरामशाह	दिली में तुर्कमान दरवाजे के अन्दर
13. दरगाह तुर्कमान शाह	1240	नामालूम	”
14. मकबरा मुईउद्दीन बहरामशाह	1242	अलाउद्दीन मसऊदशाह	मलिकपुर गांव में गोरी के मकबरे के साथ
15. कुश्के लाल (इसमें अलाउद्दीन खिलजी दफन किया गया)	1265	गयासुद्दीन बलबन	अब नहीं रहा
16. किला मर्गजन या दारुल अमन	1268	” ”	कुतुब मीनार के पास
17. मकबरा गयासुद्दीन बलबन	1284-86	” ”	कुतुब मीनार के पास
18. किलोखड़ी या नया शहर (मुसलमानों की दूसरी दिल्ली)	1286	कैकबाद	दिल्ली से पांच मील जहां हुमायूं का मकबरा है। अब नहीं रहा
खिलजी खानदान की यादगारें			
19. कुश्के लाल	1289	जलालुद्दीन खिलजी	अब नहीं रहा
20. हौज अलाई या हौज खास	1295	अलाउद्दीन खिलजी (ई० 1354 में फीरोजशाह तुगलक ने मरम्मत करवाई। ई० 1352 में इसके किनारे मदरसा बनवाया। उसका मकबरा ई० 1389 में यहां ही बना।	दिल्ली कुतुब रोड पर सफदरजंग के मकबरे से 2½ मील दक्षिण-पश्चिम में। इसी में युसुफ जमाल का मकबरा भी है

पठानकाल की यादगारें (क्रमशः)

1	2	3	4
21. सीरी या अलाई दिल्ली (मुसलमानों की तीसरी दिल्ली)	1303	अलाउद्दीन खिलजी	दिल्ली से 9 मील कुतुब रोड पर बाएं हाथ शाहपुर गांव में
22. कस्रे हजार स्तून	1303	" "	अब नहीं रहा
23. अलाई दरवाजा	1310	" "	कुतुब मीनार के पास
24. अधूरी लाट	1311	" "	कुतुब मीनार से 400 गज उत्तर में
25. मकबरा अलाउद्दीन	1315-16	कुतुबुद्दीन मुबारक शाह	कुतुब मीनार से पश्चिम में
तुगलक खानदान की यादगारें			
26. शहर तथा किला तुगलकाबाद (मुसलमानों की चौथी दिल्ली)	1321-23	गयासुद्दीन बकील व मोहम्मद तुगलक	कुतुब से पांच मील बाएं हाथ बदरपुर रोड पर
27. मकबरा गयासुद्दीन तुगलकशाह	1321-25	मोहम्मद आदिल तुगलकशाह (इसकी कब्र भी इसी मकबरे में है)	"
28. बावली हजरत निजामुद्दीन औलिया	1321	हजरत निजामुद्दीन	दिल्ली से पांच मील निजामुद्दीन की दरगाह में

29. दरगाह निज़ामुद्दीन औलिया .	1324	ज़ियाउद्दीन तुगलक शाह	दिल्ली से 5 मील मकबरा हुमायूं सफदरजंग रोड पर
30. मकबरा अमीर खुसरो .	1325		निज़ामुद्दीन की दरगाह में
31. सतपुला . .	1326	मोहम्मद तुगलक	महरौली-बदरपुर रोड पर बाएं हाथ खिड़की गांव के पास
32. आदिलाबाद और कस्रे हज़ार स्तून	1327	" "	महरौली से पांच मील दाएं हाथ बदरपुर रोड पर
33. जहांपनाह (मुसलमानों की पांचवीं दिल्ली)	1327	" "	सीरी के साथ दिल्ली-कुतुब रोड पर बाएं हाथ
34. लाल गुंबद (मकबरा कबीरुद्दीन औलिया)	1330	" "	दिल्ली-कुतुब रोड पर बाएं हाथ सीरी और खिड़की गांव के बीच
35. शहर फीरोज़ाबाद (मुसलमानों की छठी दिल्ली)	1354-74	फीरोज़शाह तुगलक	दिल्ली दरवाजे से करीब 400 गज बाएं हाथ (शहर फीरोज़ाबाद वज़ीराबाद तक फैला हुआ था)
36. मदरसा फीरोज़शाह .	1352	" "	हौज खास में
37. दरगाह सलाउद्दीन	1353	" "	कालकाजी से जाते हुए चिराग दिल्ली के साथ
38. जमाअतखाना या निज़ामुद्दीन की मस्जिद	1353	" "	निज़ामुद्दीन की दरगाह में

पठानकाल की यादगारें (क्रमशः)

1	2	3	4
39. कोटले की जामा मस्जिद फीरोजशाही	1354	फीरोज़शाह तुगलक	दिल्ली दरवाज़े के बाहर कोटले में मोलाना आज़ाद मेडिकल कालेज के सामने
40. कुश्के फीरोज़शाह या फीरोज़-शाह का कोटला (किला तथा प्रासाद बदाओला)	1354	" "	" "
41. कुश्के शिकार या जहांनुमा .	1354	" "	दिल्ली दरवाज़े के बाहर कोटले में
42. चौबुर्जी . .	1354	" "	पहाड़ी पर दिल्ली से 2 मील
43. पीरगैब . .	1354	" "	" "
44. (कुश्के अनवर अथवा महदियां)	1354	" "	पुराने जेल के पास था। अब कब्रिस्तान है
45. बूलीभटियारी का महल .	1354	बूअलीखां	करोलबाग जाते हुए बाएं हाथ पहाड़ी पर
46. विजयमंडल या जहांनुमा .	1355	फीरोज़शाह तुगलक	काली सराय और बेगमपुर के बीच कुतुब साहब की सड़क पर बाएं हाथ
47. अशोक की लाट	1356	" "	दिल्ली दरवाजे के बाहर कोटले में
48. अशोक की लाट नं० 2 .	1356		पहाड़ी पर दिल्ली से दो मील
49. दरगाह हज़रत रौशन चिराग दिल्ली	1356	" "	कालकाजी से 2 मील मालवीयनगर जाते हुए

50. मकबरा शाहआलम फकीर	1365-90	" "	तिमारपुर रोड से चंद्रावल वाटर वर्कस के रास्ते में दिल्ली से 3 मील
51. संजार मस्जिद .	1372	खांजहां	निजामुद्दीन की दरगाह के निकट
52. कदमशरीफ या मकबरा फतहखां	1374	फीरोजशाह	पहाड़गंज दिल्ली में बूचड़खाने के पास
53. कलां मस्जिद .	1387	खांजहां	तुर्कमान गेट के अन्दर
54. मस्जिद बेगमपुर .	1387	खांजहां	बेगमपुर गांव (सफदरजंग) मकबरे से 2 मील दक्षिण में कुतुब जाते हुए सड़क के 1 मील पूर्व में
55. मस्जिद काली सराय .	1387	खांजहां	बेगमपुर से डेढ़ मील दक्षिण पूर्व में
56. मस्जिद खिड़की	1387	खांजहां	खिड़की गांव में
57. मकबरा फीरोजशाह .	1389	नासिरुद्दीन तुगलक	हौज खास पर
58. मखदूम सब्जावर .	1400		सीरी से 370 गज पश्चिम में
खानदाने सादात की यादगारें			
59. नीला बुर्ज या सैयदोंका मकबरा	1414-43		हुमायूं के मकबरे के चौराहे पर
60. खिज्राबाद (मुसलमानों की सातवीं दिल्ली)	1418	खिज्रखां	ओखले के पास। अब पता नहीं रहा
61. मकबरा खिज्रखां (खिज्र की गुमटी)	1424	"	ओखले के पास दिल्ली से आठ मील
62. शहर मुबारकाबाद कोटला मुबारकपुर (मुसलमानों की आठवीं दिल्ली)	1432	मुबारकशाह सानी	लोदी कालोनी के पास। दिल्ली से 6 मील
63. मकबरा मुबारकशाह	1433	मोहम्मद शाह	कोटला मुबारकपुर में अन्दर जाकर

पठानकाल की यादगारें (क्रम

1	2	3	4
64. मकबरा सुल्तान मोहम्मद शाह	1445	अलाउद्दीन आलमशाह	सफदरजंग मकबरे के सामने वाली सड़क पर लोदी बाग में
लोदी काल की यादगारें			
65. मकबरा बहलोल लोदी .	1488	सिकन्दर लोदी	चिराग दिल्ली में दरगाह के साथ
66. मस्जिद मोठ . .	1488	वजीर मिया मोइमां	मुबारकपुर से 1 मील दक्षिण में
67. पंच बुर्ज . .	1488	जमरुंदखां	मेडिकल इंस्टीट्यूट की पुश्त पर
68. बस्ती बावरी या मकबरा और बावली बस्ती खां	1488	बस्ती खां ख्वाजा सरा	जमुरुंदपुर गांव में दिल्ली से 6 मील दक्षिण में निजामुद्दीन के पास
69. मकबरा इमाम जामिन उर्फ इमाम मोहम्मद	1488	इमाम जामिन	कुतुब मीनार के दक्षिण में अलाई दरवाजे से दस गज के अन्तर पर
70. मकबरा लंगरखां . .	1494	लंगरखां	जमरुंदपुर और रायपुर की सीमा पर
71. तिबुर्जा मकबरे .	1494	छोटेखां, बड़े खां, भूरे खां, काले खां	मुबारकपुर कोटले के पास
72. दरगाह यूसुफ कत्ताल	1497	यूसुफ कत्ताल	खिड़की मस्जिद के पास। खड़ेड़ा गांव में
73. मकबरे शेख शहाबुद्दीन ताजखां और सुल्तान अबूसईद,	1516		लोदी बाग में
74. राजाओं की बावली और मस्जिद	1516	दौलतखां	कुतुब साहब की लाट के करीब ऊधमखां के मकबरे के दक्षिण में
75. मकबरा सिकन्दर लोदी और बावली	1517	इब्राहीम लोदी	लोदी रोड पर सफदरजंग से जाते हुए
76. मस्जिद खैरपुर व मकबरे .	1523	नामालूम	लोदी बाग में

3. मुस्लिम काल की दिल्ली

(मुगल काल : 1526-1857 ई०)

जैसा कि देखने में आता रहा है, अल्तमश के समय से इब्राहीम लोदी के जमाने तक मुगलों के दांत लगातार हिन्दुस्तान पर रहे। वे बराबर इस मुल्क पर हमले करते रहे, मगर यहां वे लूटमार मचाने ही आते थे, राज्य कायम करने नहीं। उनका उद्देश्य धन संचय करना था। अमीर तैमूर ने महमूदशाह को पराजित करके दिल्ली पर कब्जा कर लिया, मगर वह भी चंद महीने यहां ठहर कर और मुल्क को खस्ता हालत में छोड़ कर चलता बना। आखिर में लोदियों ने हालात पर कब्जा पाने की कोशिश की, मगर वे अपने आपसी घरेलू झगड़ों में ऐसे फंसे कि उनमें से एक ने बाबर को अपनी मदद के लिए बुला भेजा। बाबर ने इब्राहीम को पराजित करके दिल्ली पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार पठानों की सल्तनत का अन्त हुआ। मुगलों को भी शुरू-शुरू में बहुत परेशानियां उठानी पड़ीं। मगर इस बार वे हुकूमत करने के ख्याल से ही आए थे। इसलिए वे सब कठिनाइयों को पार करके अन्त में विजयी हुए और 1857 ई० तक बराबर मुगल खानदान दिल्ली की बादशाहत करता रहा, जब आखिरी मुगल बादशाह बहादुरशाह अंग्रेजों का क़ैदी बना और ब्रिटिश हकूमत कायम हुई।

मुगलों का पहला बादशाह—बाबर (1526—30 ई०)

इब्राहीम लोदी पर विजय पाकर बाबर 1526 ई० में दिल्ली के तख्त पर बैठा, मगर यहां चन्द रोज ठहर कर आगरे चला गया और वहां से फिर दिल्ली नहीं आया। उसकी मृत्यु सम्भल मुकाम पर 1530 ई० में हो गई। दिल्ली में उसने अपनी कोई यादगार नहीं छोड़ी।

हुमायूं (1530—56 ई०)

1530 ई० से 1540 ई० तक हुमायूं हिन्दुस्तान में रहा। यह शुरू में तो पृथ्वीराज की दिल्ली में रहता रहा, मगर बाद में पुराने किले में इसने दीनपनाह बनानी शुरू की। पुराने किले का विवरण इस प्रकार है।

दीनपनाह (पुराना किला)—पुराना किला किसने बनवाया, इसके बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ का तो कहना है कि मौजूदा किला हुमायूं ने बनवाया, कुछ का कहना है कि महाराजा अनंगपाल ने संवत 440 विक्रम में इसे बनवाया और इंदरपत नाम

रखा। यह भी कहा जाता है कि इसके बनवाए किले का नामोनिशान बाकी नहीं रहा। शायद हुमायूं के समय तक कुछ निशान बाकी रहा हो। कुछ एक का कहना है कि यह किला पांडवों का इंद्रप्रस्थ ही है जिसका बिगड़ कर इंदरपत नाम पड़ा और जिसका नाम पुराना किला चला आ रहा है। हुमायूं ने उसी पुराने किले की महज मरम्मत करवा कर इसका नाम 'दीनपनाह' रख दिया था, मगर सिवा चंद मुसलमानों के और सब इसे 'इंदरपत' या 'पुराना किला' ही कहते आए हैं और इसमें मुसलमानों के जमाने की इमारतों को छोड़ कर बाकी की इमारतें पांडवों के समय की हैं। अधिकतर राय यह है कि किले की दीवारें और दरवाजे तो हुमायूं ने बनवाए और अन्दर की इमारतें शेरशाह सूरी के समय में बनीं जो पठान कारीगरी की परिचायक हैं। किला पांडवों के काल का होने के प्रमाण में वह यह कहते हैं कि किले में जो मस्जिद है वह 172 फुट लम्बी, 56 फुट चौड़ी और 52 फुट ऊंची है। उसके पांच दर हैं। इसको यदि गौर से देखें तो प्रतीत होगा कि यह मंदिर था। मस्जिद के ठीक दक्षिण में एक अठपहलू इमारत शेरमंडल के नाम की है। वह मंदिर के सम्बन्ध की वेदी रही होगी क्योंकि (1) वह मंदिर के दक्षिण में है, (2) यह काफी ऊंची है, फिर भी बुनियादें बहुत पक्की नहीं हैं, (3) यद्यपि इसके दरवाजे चार दिखाई देते हैं लेकिन वास्तव में पांच थे जो पांडवों के नाम पर थे, (4) इस स्थान के मध्य में सहन नहीं है, क्योंकि हवन-कुंड में सहन की जरूरत नहीं होती, (5) इसका ऊपर का भाग धुआं निकलने के लिए खुला रखा गया था जो बाद में बंद कर दिया गया है। सम्भव है कि इस स्थान का नाम सूर्यमंडल रहा हो क्योंकि पांडव सूर्य भगवान की आराधना किया करते थे। सूरज का मंदिर होता भी अठपहलू है। इस बात का प्रमाण एक यह भी है कि घोड़ा सूरज की सवारी है। हर देवता का अपना वाहन होता है—शिव का नंदी, देवी का शेर इसी प्रकार सूरज का घोड़ा। दरवाजे पर दोनों तरफ एक-एक सफेद घोड़ा बना है। मुमकिन है पहले सात घोड़े कहीं न कहीं बने हों। मगर मस्जिद के मंदिर होने और शेरमंडल होने का कोई खास प्रमाण नहीं है। यह केवल अनुमान है। इस किले की बाबत अधिकतर राय तो यही है कि इसे हुमायूं ने बनवाया। 'हुमायूं नामे' म इस किले के सम्बन्ध में यूं लिखा है—"इस बादशाह के कारनामों में दीनपनाह का तामीर करवाना भी था। पहले उसने अपने विद्वान साथियों से सलाह की और दिल्ली शहर के नजदीक एक शहर बसाने का निश्चय किया जिसका नाम 'दीन-पनाह' रखा गया। सबने इससे इतफाक किया और एक ने कहा, 'शाह बादशाह दीनपनाह' जिसकी तारीख 1533 ई० निकलती है, और इस साल में यदि नगर बन जाए ो बहुत शुभ होगा। ग्वालियर से बादशाह आगरे चला गया वहां से दिल्ली आया और शुभ मुहूर्त देख कर यमुना नदी के किनारे (जहां मौजूदा किला है) शहर से कोई तीन कोस पर दीनपनाह की बुनियाद डालने के लिए

स्थान चुना गया। मोहर्रम महीने के मध्य में 1533 ई० की उस शुभ घड़ी में जिसे नजूमियों ने बताया हुआ था, तमाम दरबारी बादशाह के साथ उस स्थान पर गए और ईश्वर से प्रार्थना की। सर्वप्रथम बादशाह ने खुद अपने पवित्र हाथ से बुनियाद रखने के लिए एक ईंट रखी और फिर उन सब उमराओं ने एक-एक पत्थर जमीन पर रखा।' उसी दिन बादशाह के महल में भी उसी मुहूर्त में काम शुरू हो गया। दस महीने के अन्दर इसकी फसील, बुर्ज, दरवाजे और दीगर इमारत बन कर खड़ी हो गई। यह सब काम इतने कम समय में हो गया, इसका कारण यह बताया जाता है कि किले के अन्दर पहले के मकान मौजूद होंगे जिनको तोड़ कर किला तामीर हुआ। किला तीन फरलांग लम्बा और डेढ़ फरलांग चौड़ा है। लम्बाई पूर्व से पश्चिम को है। तीन दरवाजे हैं—उत्तर और दक्षिण के दरवाजे बहुत काल तक बंद रहे। उत्तरी द्वार को तलाकी दरवाजा कहते थे। इसका कारण यह बताते हैं कि एक बार इस द्वार से फौज लड़ने गई और यह प्रतिज्ञा ली कि बिना विजय प्राप्त किए इस द्वार से नहीं घुसेंगे। विजय हो न सकी और द्वार बंद पड़ा रहा, मगर यह किस राजा के समय में बंद हुआ इसका पता नहीं चलता। पश्चिमी द्वार सदर द्वार है। उसी से आमदो-रफ्त होती है। तीन खिड़कियां हैं—दो नदी की ओर और तीसरी किले की पश्चिमी दीवार में। शहर के चारों कोनों पर चार बुर्ज थे। कुल बुर्ज सात थे। नदी की ओर की चारदीवारी का ऊपरी भाग टूट गया है। समस्त फसील खारे के पत्थर से बनी हुई है।

इंदरपत उन पांच गांवों में से एक गिना जाता है जो पांडवों ने कौरवों से मांगे थे। बाकी चार थे (1) तिलपत, मथुरा रोड पर बदरपुर से आगे (2) सोनीपत (3) पानीपत, करनाल के रास्ते में, और (4) बागपत जिसका नाम बाघपत था, (शाहदरे से होकर तहसील गाजियाबाद में छोटी लाइन पर)। यह भी कहते हैं कि ये सब गांव किसी जमाने में यमुना के पश्चिमी किनारे पर थे और बाद में यमुना का रास्ता बदल गया।

इंदरपत गांव अथवा दीनपनाह के लिए कहा जाता है कि एक बार यह चारों ओर से पानी से घिर गया था और इसके पश्चिमी दरवाजे के सामने एक पुल है जिसकी टूटी महराबें अब भी मौजूद हैं। नदी अपने पुराने किनारे से बहुत दूर हट गई है और अब पुराने किले तथा दरिया के बीच की जमीन पर काश्त होती है। दरिया की तरफ की दीवारें बहुत कुछ खराब हो चुकी हैं। यदि यह मान लिया जाए कि किले की दीवार का हर एक बुर्ज एक पैवीलियन से घिरा हुआ था तो वे सब गायब हो चुके हैं। जो दरवाजों पर हैं उनका जिक्र आ चुका है। अब से पचास वर्ष पहले तक इस किले में इंदरपत नाम का एक गांव आबाद था और यहां खेती हुआ करती थी। तब पुरानी इमारतों में से केवल मशहूर जामा मस्जिद, जिसे मस्जिद

किला कोहनाह भी कहते थे, और शेरमंडल का बुर्ज ही बाकी था। हुमायूं के महल का कोई निशान तक बाकी नहीं था। पुराने जमाने का यहां एक छोटा-सा कुन्ती का मंदिर बना हुआ है। मंदिर में एक पत्थर की मूर्ति है जिसमें दो मुख हैं, कहते हैं एक कुन्ती का है और दूसरा माद्री का। यह खुदाई में से मिली थी। दिल्ली राजधानी बनने के पश्चात इंदरपत गांव यहां से उठा दिया गया और किले को सुरक्षित स्थान मान लिया गया। इसका तलाकी दरवाजा भी खोल दिया गया। 1947 ई० के साम्प्रदायिक बलवे में यहां मुसलमानों को कैम्प में रखा गया था जिन्हें देखने 13 सितम्बर, 1947 को गांधी जी अन्दर गए थे। मुसलमानों के पाकिस्तान चले जाने के बाद यहां शरणार्थियों के लिए एक बस्ती बना कर इसे आबाद कर दिया गया था। पिछले दिनों अभी इसमें खुदाई हुई थी और पुरानी वस्तुएं निकली थीं। अब इस किले को चिड़ियाघर में शामिल कर लिया गया है जो सुन्दर नगर की पुश्त पर बना है।

पुराना किला अथवा दीनपनाह मुसलमानों की नवीं दिल्ली थी। इससे पहले आठ दिल्लियां पठान खानदान वाले बसा चुके थे।

जमाली कमाली की मस्जिद और मकबरा (1528 ई० से 1535 ई०)

जमाली का नाम शेख फजल उल्लाह था। इन्हें जलालखां और जलाली भी कहते थे। यह एक बड़े सैलानी, साहित्यकार और कवि हुए हैं जिन्हें बादशाह ने बड़ा सम्मानित पद दिया था। यह दिल्ली के चार बादशाहों के प्रिय रहे। सिकन्दर लोदी के काल में इनकी ख्याति सर्वोच्च थी और जब हुमायूं के जमाने में इनकी मृत्यु हुई तब भी इनका बड़ा सम्मान था। धर्म-सभाओं में इनकी शास्त्रार्थ शक्ति और वाक्-पटुता के सब कायल थे और विद्वानों को भी इनकी बात माननी पड़ती थी। 1528 ई० में इन्होंने कुतुब साहब के पुराने गांव में एक मस्जिद और एक कमरा बनवाया। गांव के खंडहर तो अब तक पड़े दिखाई देते हैं। जमाली हुमायूं के साथ गुजरात गए थे जहां 1535 ई० में इनकी मृत्यु हो गई। इनके शव को दिल्ली लाया गया और उसी कमरे में, जहां यह रहा करते थे, दफन किया गया।

जमाली की मस्जिद का नमूना मोठ की मस्जिद से हूबहू मिलता है; केवल इतना अन्तर है कि इनकी मस्जिद का एक गुंबद है, मोठ की मस्जिद के तीन हैं। जमाली की मस्जिद का गुंबद लोदी खानदान के उत्तरी काल के नमूने का है। इमारत 130 फुट लम्बी और 37 फुट चौड़ी है। फर्श से छत तक ऊंचाई 32 फुट है और छत से गुंबद की चोटी तक 10 फुट है। दीवारों और महराबों पर जगह-जगह खुदाई का काम किया हुआ है।

शेरगढ़ अथवा शेरशाह की दिल्ली (1540 ई०)

कहा जाता है कि शेरशाह ने दीनपनाह के किले को मजबूत किया और शेरगढ़ इसका नाम रखा। लेकिन 'तारीखे खां जहां' में कहा गया है कि हुमायूं के मकबरे की चारदीवारी सलीमशाह ने बनवाई जो शेरशाह का लड़का था। उसने सलीमगढ़ की इमारतें पूरी करवा कर फिर से बनवाई या उनकी मरम्मत करवाई। शेरगढ़ उस शहर का किला था जिसे शेरशाह ने इंद्रप्रस्थ के वीराने के एक हिस्से पर बनवाया था और अर्से तक वह शेरशाह की दिल्ली कहलाती रही। यह मुसलमानों की 10वीं दिल्ली थी। 'तारीखे शेरशाही' में लिखा है कि दिल्ली शहर की पहली राजधानी यमुना से फासले पर थी जिसे शेरशाह ने तुड़वा कर फिर से यमुना के किनारे पर बनवाया और उस शहर में दो किले बनाने का हुक्म दिया—छोटा किला गवर्नर के रहने को और दूसरा तमाम शहर की रक्षा के लिए चारदीवारी के रूप में। गवर्नर के किले में उसने एक मस्जिद बनवाई, लेकिन शहर की चारदीवारी पूरी होने से पूर्व ही शेरशाह मर गया। इससे यह साफ जाहिर है कि सलीमशाह ने इस चारदीवारी को पुरा करवाया। शेरशाह की दिल्ली की हदबन्दी बताते हुए कहा है कि इसका दक्षिणी दरवाजा बारह पुला और हुमायूं के मकबरे के कहीं निकट होगा। शहर की पूर्वी दीवार यमुना नदी के ऊंचे किनारे से घिरी हुई होगी जो उस जमाने में फीरोजशाह के कोटले से दक्षिण को हुमायूं के मकबरे की ओर बहा करती थी। पश्चिम में शहरपनाह का अंदाजा उस नाले से किया जा सकता है जो अजमेरी दरवाजे के दक्षिण की ओर यमुना के बिलमुकाबिल करीब एक मील से ऊपर के अन्तर पर बहा करता था। इस प्रकार तमाम शहर का घेरा नौ मील से ऊपर था, शाहजहांबाद से दुगुना।

'तारीखे दाऊदी' में लिखा है कि 1540 ई० में शेरशाह आगरे से दिल्ली गया और उसने सीरी में अलाउद्दीन के किले को मिसमार करवा दिया तथा यमुना के किनारे फीरोजाबाद व किलोखड़ी के बीच में इंदरपत से दो-तीन कोस की दूरी पर किला बनवाया। इस किले का नाम उसने शेरगढ़ रखा, लेकिन उसकी हुकूमत के मुख्तसिर होने से वह अपने जीवन काल में इसे पूरा न करवा सका। किलोखड़ी बारहपुले के पुल से आगे तक फैली हुई थी।

मस्जिद किला कोहनाह (1541 ई०)

'तारीखे शेरशाही' में लिखा है कि शेरशाह की दिल्ली के किले में शेरशाह ने पत्थर की एक मस्जिद तामीर करवाई थी जिसकी सजावट में बहुत सोना और जवाहरात खर्च हुए थे। यह मस्जिद 1541 ई० में बड़ी जल्दी बन कर तैयार हो गई। यह मस्जिद लम्बूतरी है—168 फुट लम्बी, 44½ फुट चौड़ी और 44 फुट ऊंची। यह छत से गुंबद तक 16 फुट ऊंची है। मस्जिद के पांच दर हैं।

बीच की महराब, जो 40 फुट ऊंची और 25 फुट चौड़ी है, संगमरमर और संग सुर्ख से दीवारदोज खम्भों से बनी हुई है और उस पर कुरान की आयतें लिखी हुई हैं। महराब और खम्भों पर पच्चीकारी का काम हुआ है। दाएं-बाएं की महरावें 37 फुट ऊंची और 20 फुट चौड़ी हैं। इन पर भी पच्चीकारी का काम बना हुआ है। इन महराबों में किवाड़ लगे हुए थे। मस्जिद के ऊपर दो छोटे-छोटे मीनार हैं। इधर-उधर की महराबों के ऊपर की छत पर कंगूरा बना हुआ है। मस्जिद की छत पर किसी जमाने में तीन गुंबद थे जिनमें से बीच का बाकी बचा है। मस्जिद का फर्श पत्थर का बना हुआ है। छतों के बीच में से पांच जंजीरें लटक रही हैं, जिनमें किसी वक्त तांबे के प्याले लगे हुए थे। गुंबदों की छतों में और कोनों में कैंची का काम बहुत सुन्दर है। छत पर चढ़ने को दो जीने हैं जिनमें सोलह-सोलह सीढ़ियां चढ़ने के बाद बुर्ज मिलता है। मस्जिद का मेम्बर गच का बना हुआ है, पहले संगमरमर का रहा होगा।

मस्जिद के साथ एक बावली थी जिसकी सीढ़ियां पानी तक जाती थीं। ये अभी तक मौजूद हैं और पुराने पत्थर की बनी हुई हैं। मस्जिद के सहन में सोलह पहलू का एक हौज बना हुआ है जो अब सूखा पड़ा है। इस मस्जिद की बनावट की सब ही ने तारीफ की है और इसे पठानों के अन्तिम दिनों की कारीगरी का एक लाजवाब नमूना माना है।

शेरमंडल (1541 ई०)

जब शेरशाह ने हुमायूं पर फतह पाई और दिल्ली उसके हाथ लगी तो उसने किला कोहनाह में चंद मकान बनवाए जिनमें मस्जिद के करीब 1541 ई० में एक मकान बतौर जहांनुमां बना कर शेरमंडल नाम रखा। 'तारीखे दाऊदी' में लिखा है कि किला शेरगढ़ के अन्दर शेरशाह ने एक छोटा-सा महल बनवाया था जिसका नाम शेरमंडल था, मगर वह बनते-बनते रह गया। यह कोई बड़ी इमारत नहीं है और न ऐसे स्थान पर बनी है कि इसको महल कहा जा सके।

शेरमंडल एक अष्टपहलू तीन मंजिल की इमारत है। तीसरी मंजिल पर एक खुला हुआ मंडवा है जिसका द्वार पूर्व की ओर है। यह इमारत 60½ फुट ऊंची है जिसका व्यास 52 फुट है। सारी इमारत लाल पत्थर की बनी हुई है जिसमें जगह-जगह संगमरमर लगा है। दाखिल होने का द्वार दक्षिण की ओर है। चबूतरा 4½ फुट ऊंचा है। यह इमारत मंडवे को छोड़ कर 40 फुट ऊंची है। मंडवा 16 फुट ऊंचा है जिसका व्यास 20 फुट है। मंडवे के ऊपर एक बुर्जी है जिस पर संगमरमर की पट्टियां हैं। इस बुर्जी के आठ खम्भे हैं जिन पर लहरिएदार काम बना है। उस पर चढ़ने के दो जीने हैं। ऊपर की मंजिल की दीवार भी है। ऊपर की मंजिल के छज्जे के नीचे आठ दीवारदोज नोकदार खिड़कियां बुर्ज की आठों दिशाओं में हैं

जिनमें लम्बूतरी महरावें हैं। ऊपर चढ़ कर दूर-दूर के जंगल और दृश्य दिखाई देते हैं। इमारत के अन्दर पांच कमरे चौपड़ के नमूने के बने हुए हैं जिनके बीच का कमरा सबसे बड़ा है। सब कमरों में आपस में रास्ता है। दीवारों के बाकी हिस्सों में बेलपत्ती का काम हुआ है।

यह मंडल एक ऐतिहासिक घटना के कारण विख्यात हो गया। हुमायूं इसी मंडल के जीने से गिर कर मरा था। यह आम ख्याल है कि हुमायूं उस मंडल को अपन पुस्तकालय के तौर पर काम में लाता था। उसकी मृत्यु 24 जनवरी, 1556 ई० के दिन हुई।

हुमायूं के शव को दीनपनाह से ले जाकर किलोखड़ी गांव में दफन किया गया था जहां बाद में उसकी बीबी हाजी बेगम और उसके लड़के अकबर ने उसकी कब्र पर एक बहुत शानदार मकबरा बनवाया।

शेरशाही दिल्ली का दरवाजा

पुराने किले से थोड़ा आगे बढ़ कर मथुरा रोड पर दिल्ली से आते हुए दाएं हाथ लाल दरवाजे की तरह का एक दरवाजा खड़ा है जिस पर रंगीन और चमकदार अस्तरकारी हुई है। यह शेरशाह की दिल्ली का दरवाजा था। अब इस दरवाजे में से नई दिल्ली के लिए सड़क निकल गई है। दरवाजे के दाएं-बाएं कुछ कोठड़ियां बनी हुई हैं। शायद ये सौदागरों की दुकानें होंगी।

सलीमगढ़ या नूरगढ़ (1546 ई०)

1546 ई० में जब सलीमशाह सूरी ने यह सुना कि हुमायूं फिर हिन्दुस्तान आ रहा है तो वह लाहौर से दिल्ली लौट आया और यहां उसने दीनपनाह के बिल-मुकाबल यमुना नदी के पानी के बीच में सलीमगढ़ की इमारत बनवाई ताकि हिन्दुस्तान में उससे बड़ा मजबूत कोई किला न हो सके, क्योंकि इसकी बनावट से ऐसा मालूम होता है कि जैसे एक ही पत्थर से यह सारे-का-सारा बना है। यह मुसलमानों की ग्यारहवीं दिल्ली थी। यह किला अर्धगोलाकार है और किसी वक्त इसके 19 बुर्ज और धुस इसकी रक्षा के लिए बने हुए थे। कहते हैं सलीमशाह का इसमें चार लाख रुपया लगा था। लेकिन केवल दीवारें बन पाई थीं कि बादशाह की मृत्यु हो गई और वह वैसा ही उपेक्षित पड़ा रहा। अस्सी वर्ष बाद फरीदखां ने, जिसे मुर्तजाखां भी कहते हैं और जो अकबर और जहांगीर के वक्त में एक प्रभावशाली अमीर था, यह किला और दूसरे स्थान जो यमुना के किनारे पर थे अकबर से जागीर में ले लिए और इस किले में मकान बनवाए। 1818 ई० में ये इमारतें बिल्कुल खंडहर बन चुकी थीं। लेकिन एक दो मंजिला पैविलियन और एक बाग अकबर सानी ने

सुरक्षित किया हुआ था जो वह अपनी सैरगाह के तौर पर इस्तेमाल किया करता था। 1788 ई० में गुलाम कादिर अपने साथियों के साथ इस किले में से भागा था और उसने वह पुल पार किया था जो लाल किले से इसे मिलाता है। यह पुल जहांगीर ने बनवाया था।

किले पर से अब यमुना के पुल के पास रेल गुजरती है। जैसा कि बताया गया है 1546 ई० में इसे सलीमशाह ने बनवाया था। यह शाहजहां के किले के उत्तरी कोने में बना हुआ है और लाल किला बनने के पश्चात इसको शाही कैद-खाने के तौर पर काम में लाया जाता था। यह लम्बाई में पाव मील भी नहीं है और किले का तमाम चक्कर पौन मील के करीब है। यह यमुना के पश्चिमी किनारे पर एक द्वीप में बना हुआ था। नूरुद्दीन जहांगीर ने पांच महराबों का एक पुल इसके दक्षिणी दरवाजे के सामने बनवाया था। तब ही से इसका नाम नूरगढ़ पड़ गया था। लेकिन आम नाम सलीमगढ़ ही रहा।

ईसाखां की मस्जिद और मकबरा (1547 ई०)

अरब की सराय के गांव के पश्चिमी द्वार के निकट और हुमायूं के मकबरे के नजदीक एक ऊंची चारदीवारी का अहाता है जिसमें ईसाखां की बनाई हुई मस्जिद और मकबरा है। ईसाखां शेरशाह के दरबार का एक प्रभावशाली अमीर था और जब शेरशाह की मृत्यु के बाद उसके लड़कों में झगड़ा हुआ तो इसने सलीमशाह का साथ दिया और दिल्ली का तख्त दिलाने में उसकी बड़ी मदद की। मस्जिद और मकबरा 1547 ई० में सलीमशाह के जमाने में बनाए गए थे। मस्जिद खार के पत्थर और चूने की बनी हुई है। यह करीब 186 फुट लम्बी और 34 फुट चौड़ी है। फर्श से छत तक बीच वाला दरवाजा 29 फुट ऊंचा है और बीच का गुंबद 32 फुट ऊंचा है। मस्जिद के तीन महराबदार दरवाजे हैं। छत के बीच में एक बदनुमा गुंबद है। एक पैवीलियन जो आठ स्तूनों पर खड़ा है बीच वाले गुंबद के दोनों ओर बना हुआ है। मस्जिद में तीन दरवाजे हैं।

ईसाखां का मकबरा इस मस्जिद के नजदीक ही बना हुआ है। यह अठपहलू है जिसका व्यास 34 फुट है। इसमें तीन नोकदार महराबें लगी हैं। मकबरे के कोनों पर दोहरे खम्भे लगे हुए हैं। कब्र संगमरमर और लाल पत्थर की है जो 9 फुट लम्बी, 4 फुट चौड़ी और 4 फुट ऊंची है। मकबरे में पांच कब्रें और हैं जिनमें दो संगमरमर की हैं। यह मकबरा 1547 ई० में बना और इसकी बनावट सैयद तथा लोदी बादशाहों की इमारतों जैसी है।

जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर (1556—1605 ई०)

मुगल खानदान का यह तीसरा बादशाह था। इसने 1556 ई० से 1605 ई० तक 50 साल हुकूमत की। गद्दी पर बैठने के वक्त इसकी उम्र 13 वर्ष की थी। अकबर खुद पढ़ा-लिखा नहीं था मगर दूसरों से पुस्तकें पढ़वा कर सुना करता था। उसने एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाया था जिसमें 24,000 हस्तलिखित पुस्तकें जमा थीं। इनकी कीमत का अनुमान 65½ लाख रुपए किया गया है। इसको चित्रकारी का भी बड़ा शौक था और गायन विद्या का भी। विख्यात गायनाचार्य तानसेन इसी के काल में हुए हैं। अकबर को इमारतें तामीर करवाने का भी बड़ा शौक था। फतहपुर सीकरी की इमारतें और आगरे का लाल किला तथा सिकन्दरा में इसका मकबरा खास इमारतें हैं जो इसके शौक को बताती हैं। दिल्ली में इसने कोई खास इमारत नहीं बनवाई। चंद इमारतें इसके काल में बनीं। वे हैं (1) हुमायूं का मकबरा, (2) खैरउलमानजिल, (3) ऊधमखां का मकबरा और (4) अफसर खां का मकबरा।

अकबर के दरबार के नौ रत्न तो विक्रम के नौ रत्नों की तरह ही जगत-विख्यात हैं। इनमें राजा मानसिंह, टोडरमल, भगवानदास और राजा बीरबल, जिनका असल नाम महेशदास था, फ़ैजी और अबुलफजल, जो दोनों भाई थे, खास मशहूर हैं। बीरबल का नाम किसने नहीं सुना होगा। उसके नाम से सैकड़ों किवदन्तियां मशहूर हैं। यह जात के ब्राह्मण थे और काल्पी के रहने वाले थे। शुरू में यह भाट का पेशा करते थे। फिर रामचन्द्र भट्ट की सरकार में नौकर हो गए। भाग्य उदय हुआ। अकबर से मुलाकात हो गई और बादशाह के प्रिय बन बैठे। बादशाह इन पर इस कदर मेहरबान थे कि कोई हिसाब ही न था। एक बार 1586 ई० में काबुल की तरफ मदद भेजनी थी। दरबार में यह तजवीज पेश थी कि किसको भेजा जाए। अबुल-फजल ने अपने को पेश किया और बीरबल ने अपने को। अकबर ने परची डाली जो बीरबल के नाम की निकली। अकबर उसे अपने से जुदा करना नहीं चाहता था, मगर इजाजत दे दी। वहां जाकर यह मारे गए। दूसरे नौ रत्नों में फैजी और अबुलफजल मशहूर हैं जो अकबर के बड़े वफादार और विश्वसनीय थे। सलीम इस बात को पसन्द नहीं करता था। वह इनसे द्वेष करता था। आखिर सलीम ने अबुलफजल को कत्ल ही करवा कर छोड़ा। फैजी बड़ा विद्वान था। फारसी और संस्कृत दोनों भाषाओं में निपुण था। इसने कई पुस्तकों का भाषान्तर किया है। उसने 'रामायण' और 'महाभारत' के कुछ भाग फारसी में अनुवाद किए हैं।

अकबर के जमाने में नौ रोज़ का मेला हुआ करता था और मीना बाजार लगा करता था। इस प्रकार पचास वर्ष की बड़ी शानदार हुकूमत के बाद अक्तूबर

1605 में अकबर की मृत्यु हुई और आगरे से बारह मील सिकन्दरा मुकाम पर, जिसे अकबर ने खुद बनवाया था और जिसका नाम बहिश्ताबाद रखा था, उसे दफन किया गया।

अरब की सराय (1560 ई०)

इसको हुमायूं की बेवा हाजी बेगम ने, जो अकबर की मां थी, 1560 ई० में आबाद किया था। इसकी चारदीवारी ही है। यह हुमायूं के मकबरे के दक्षिण में है। बेगम जब मक्का से आई थीं तो अपने साथ तीन सौ अरब लाई थीं। उनको इस सराय में आबाद कर दिया था। इसके दरवाजे ही बाकी हैं जिनमें से एक जहांगीर के वक्त में बनाया गया था। दरवाजे तीन हैं। पश्चिमी द्वार बिल्कुल साधारण है। उत्तरी द्वार बहुत आलीशान है—40 फुट ऊंचा, 25 फुट चौड़ा और 20 फुट गहरा। इस दरवाजे की बनावट बहुत सुन्दर है। इसमें पच्चीकारी का काम किया हुआ है। 1947 ई० के बलवे में यहां की सारी आबादी पाकिस्तान चली गई। अब इस जगह दिल्ली प्रशासन की ओर से दस्तकारी का एक बहुत बड़ा केन्द्र खोल दिया गया है।

खैरउलमानजिल (1561 ई०)

यह मदरसा और मस्जिद पुराने किले के पश्चिमी दरवाजे के ऐन सामने और शेरशाह की दिल्ली के पश्चिमी द्वार से दिल्ली-मथुरा रोड के बाएं हाथ बने हुए हैं। इन्हें ऊधमखां की मां माहम अंका ने, जो अकबर की धाय थी, 1561 ई० में बनवाया था। मदरसा खंडहर हो गया है, लेकिन इधर-उधर के कुछ हुजरे बाकी रह गए हैं। बिगुलर ने इस मस्जिद की बाबत लिखा है—यह मस्जिद अकबर शाह के जमाने की है जो बिन घड़े पत्थरों और चूने की बनी हुई है। इसके दरवाजों के बाज हिस्सों पर घड़े हुए पत्थर लगा कर रंगामेजी की गई है, जो अब बिल्कुल बरबाद हो गई है, लेकिन जब यह रही होगी तो निहायत खूबसूरत लगती होगी। मस्जिद का अन्दरूनी भाग मीनाकारी और रंगीन अस्तरकारी और चीनी की ईंटों से सजाया हुआ है। अब यह काम नष्ट हो चुका है। मस्जिद की रोकार और दरवाजे पर भी फूल-पत्तियों की मीनाकारी है।

अकबर की सल्तनत के आठवें साल 1564 ई० में इस मदरसे की छत पर से अकबर की जान पर हमला किया गया था जिसका जिक्र यों आया है—इस घटना के चंद दिन पहले मिरजा अशरफुद्दीन हुसैन दरबार शाही से बग़ावत करके नागोर की तरफ चला गया था। उसके साथ कोका फौलाद नाम का उसके बाप के जमाने

हिन्दू युग

सूरजकुंड
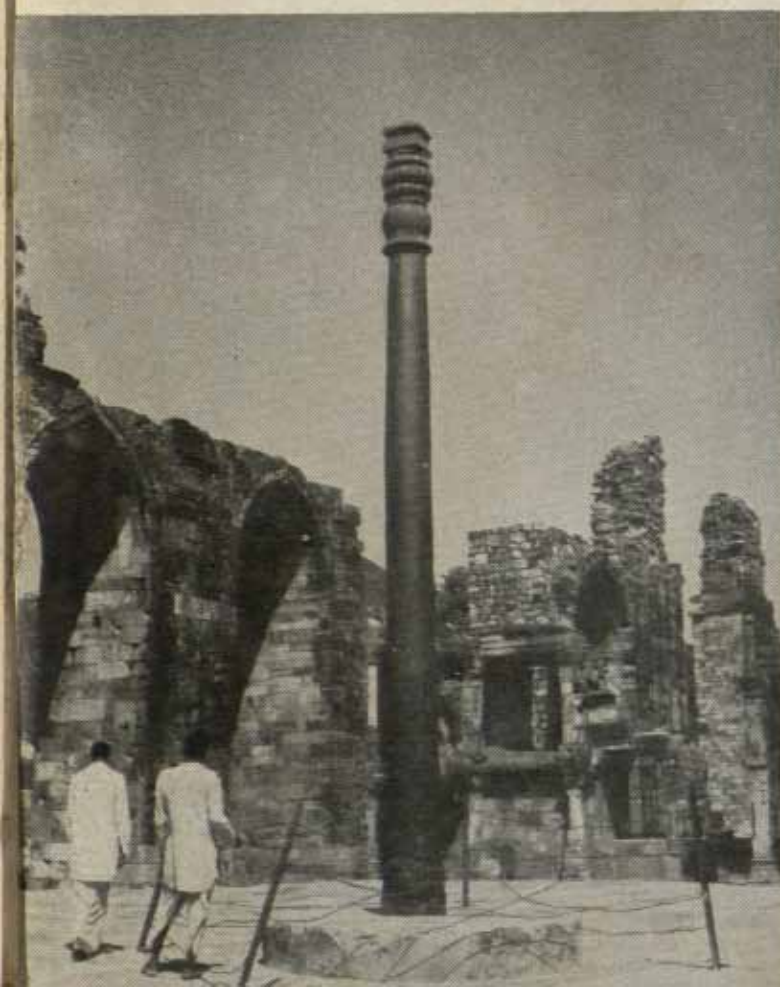
लौह स्तंभ और उसके पास बाद को बनी कुवते इस्लाम मसजिद
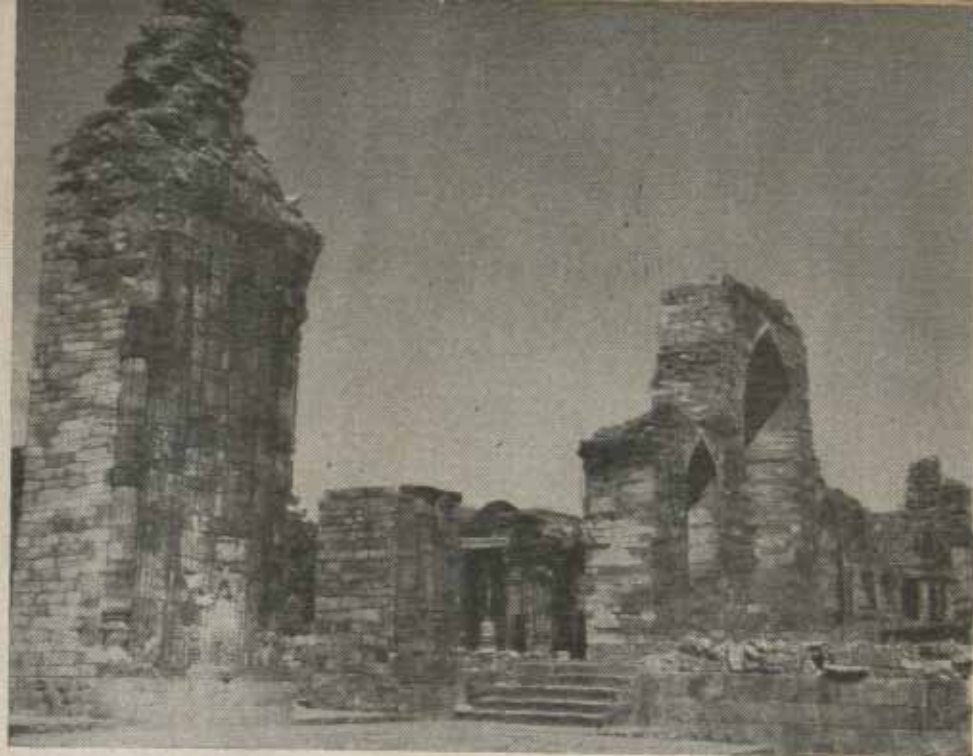
मसजिद कुवते इस्लाम, महरौली

किला इन्द्रप्रस्थ या पुराना किला

पठान युग

कुतब मीनार, महरौली

सुलतान गारी की कब्र का
अन्तरंग दृश्य और मकबरा
रुकनुद्दीन फीरोजशाह
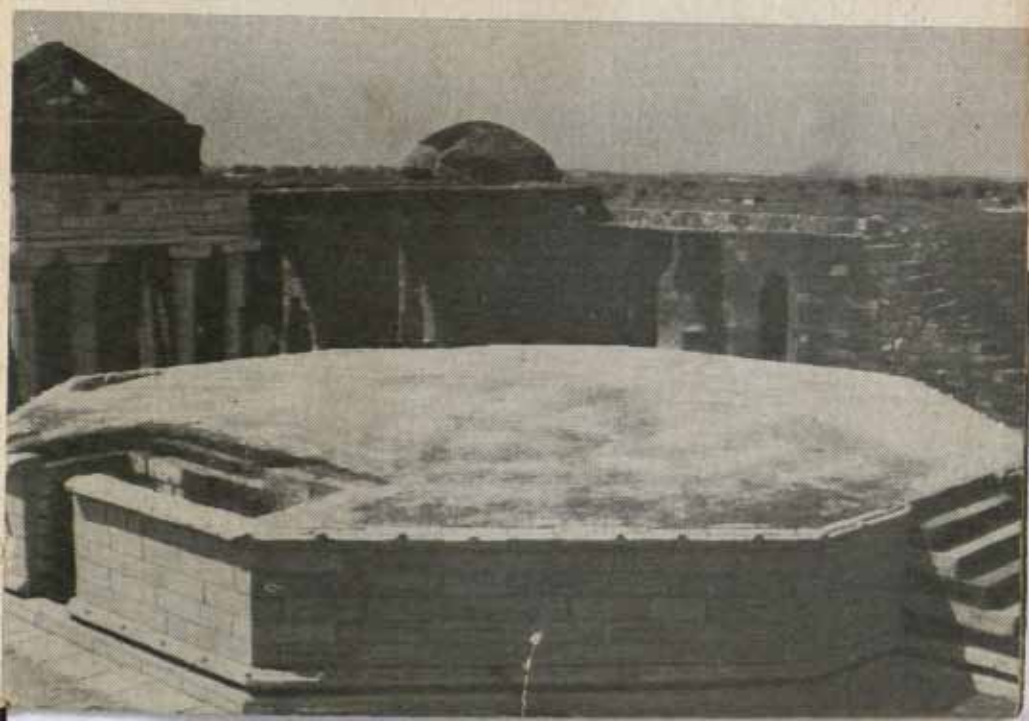
दरगाह ख्वाजा कुतुबुद्दीन काकी
(1235 ई०)

मकबरा अल्तमश

हौज खास
इलाके का दृश्य

अलाई दरवाज़ा, महरौली
इसे अलाउद्दीन खिलजी ने
1310 ई० में बनाया

अलाउद्दीन खिलजी द्वारा
निर्मित अलाइ मीनार
(1311 ई०)
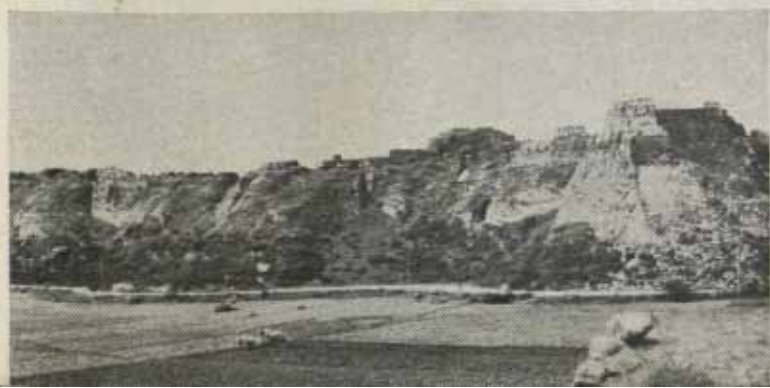
तुग़लकाबाद गढ़—
ग़ियासुद्दीन तुग़लक
द्वारा निर्मित

मुहम्मद आदिल तुग़लक शाह द्वारा 1321-25 में निर्मित ग़ियासुद्दीन तुग़लक का मकबरा

ज़ियाउद्दीन और मुहम्मद तुग़लक शाह द्वारा 1324 ई० में निर्मित दरगाह शरीफ हज़रत निज़ामुद्दीन

मकबरा अमीर खुसरो—निर्मित 1325 ई०

फ़ीरोज़शाह तुग़लक द्वारा
1353 ई० में निर्मित
मसजिद निज़ामुद्दीन

फ़ीरोज़शाह तुग़लक द्वारा
1354 ई० में निर्मित
मसजिद कोटला फ़ीरोज़शाह

विजय मंडल

अशोक स्तंभ, फ़ीरोज़शाह कोटला

रिज पर अशोक स्तंभ

फ़ीरोज़शाह् तुग़लक द्वारा 1368 ई० में निर्मित दरगाह् हज़रत रोशन चिराग़

फ़ीरोज़ शाह् के समय निर्मित मकबरा शाह् आलम फ़कीर

फ़ीरोज़शाह् द्वारा 1374 ई० में निर्मित कदम शरीफ़

खानजहान द्वारा 1381 ई० में निर्मित कलाँ मसजिद
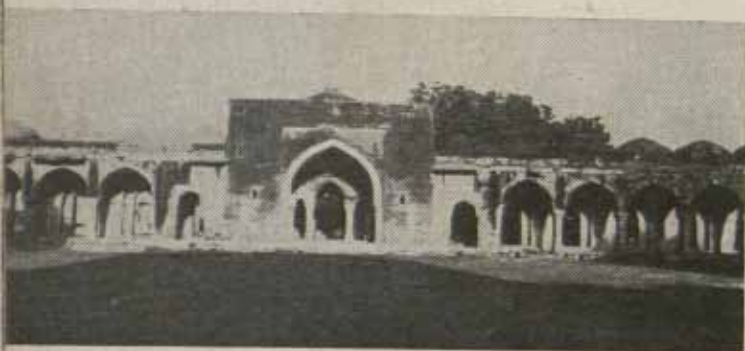
खानजहान द्वारा 1387 ई० में निर्मित मसजिद बेगमपुर

नसीरुद्दीन तुग़लक द्वारा 1389 ई० में निर्मित मकबरा फ़ीरोज़शाह

अलाउद्दीन आलम शाह द्वारा 1445 ई० में निर्मित मकबरा मुहम्मद शाह सैयद

वज़ीर मियां मोइयन (1488 – 1517) द्वारा निर्मित मसजिद

इमामज़ामिन द्वारा 1537 ई० में निर्मित मकबरा इमाम ज़ामिन

सिकन्दर शाह लोदी की कब्र—पुत्र इब्राहीम लोदी द्वारा निर्मित

जलाल खान द्वारा 1528 ई० में निर्मित मकबरा कमाली जमाली

मकबरा कमाली जमाली की भीतरी छतों तथा दीवारों पर सुन्दर शिल्प कार्य

मुगल युग
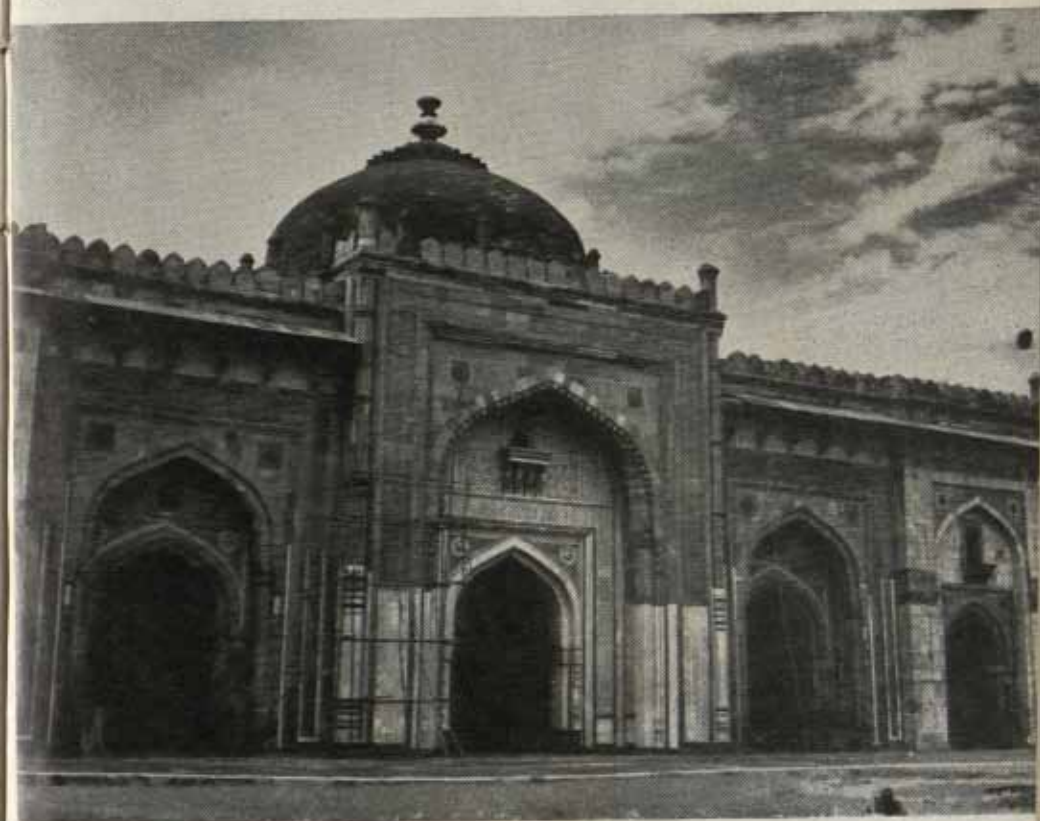
शेरशाह द्वारा 1541 ई० में निर्मित मसजिद किला कोहना, पुराना किला

ईसा खान द्वारा निर्मित मसजिद ईसाखान (1547 ई०)
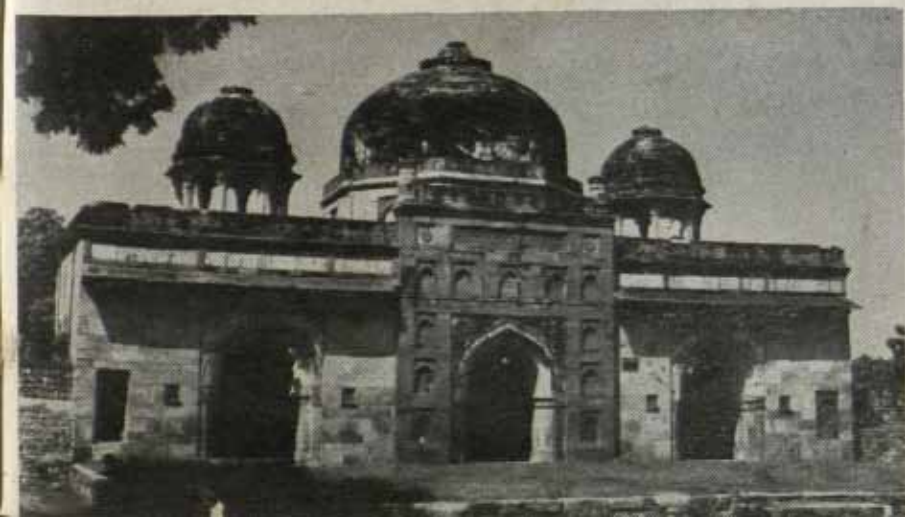
ईसा खान द्वारा 1547 ई० में प्रस्तुत मकबरा ईसा खान

आदम खान की कब्र—इसे अकबर ने आदम खां के लिए बनवाई

हुमायूं की कब्र—अकबर की मां हाजी बेगम द्वारा 1555 ई० में निर्मित

मकबरा अजीज ककुल ताश या चौसठ खम्भा (1624 ई०)

खानखाना द्वारा 1626 ई० में निर्मित अब्दुल रहीम खानखाना का मकबरा
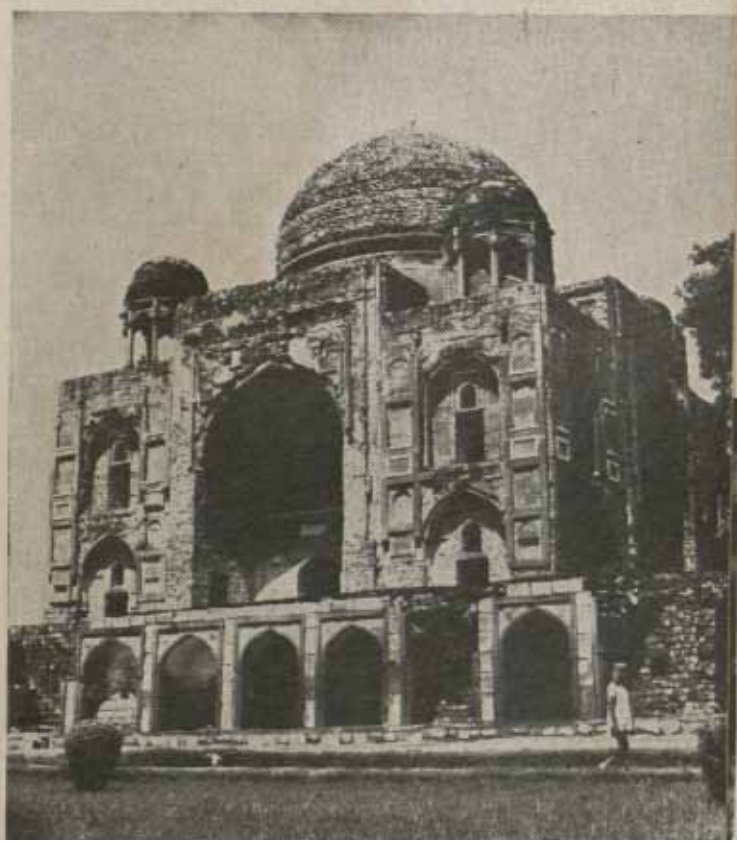
लाल किला दिल्ली—इसे शाहजहां ने (1638-48) ई० में बनवाया था

शाहजहां के द्वारा निर्मित नक्कारखाना या नौबतखाना

लाल किला, दिल्ली
का दीवान-ए-आम

बुर्ज तिला या
मुसम्मन बुर्ज या
खास महल,
लालकिला
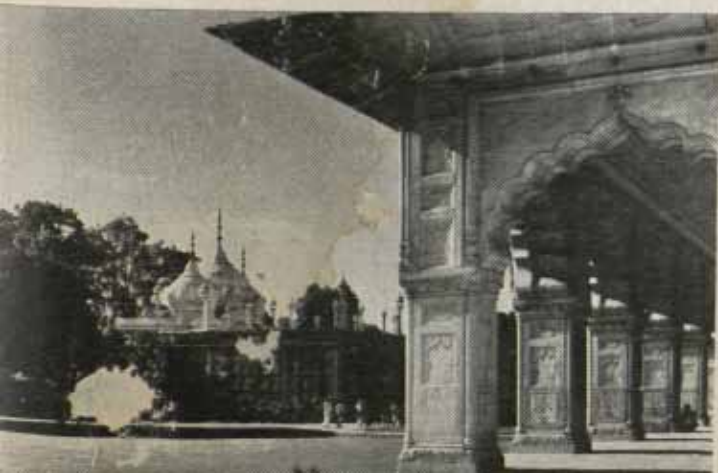
दीवान-ए-खास और
मोती मसजिद

लाल किला, दिल्ली का हमाम

लाल किला, दिल्ली का
शाह बुर्ज

जामा मसजिद (शाहजहां द्वारा 1648 ई० में निर्मित)

काश्मीरी दरवाजा—
शाहजहां द्वारा निर्मित
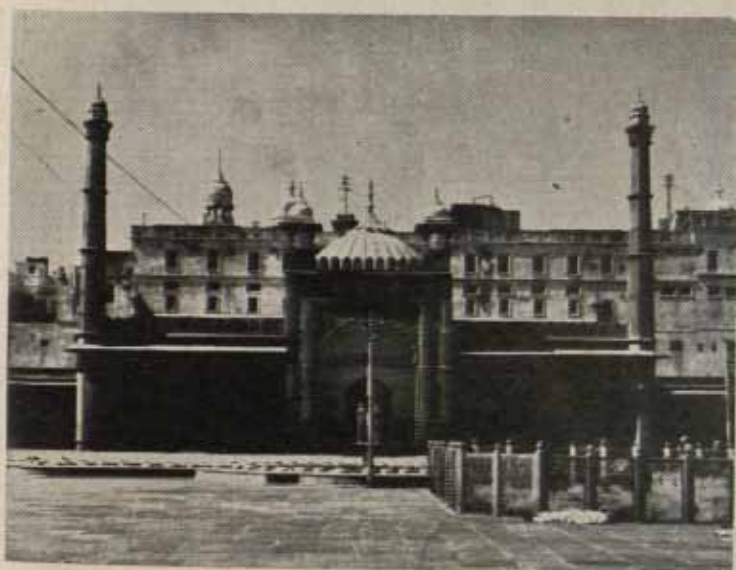
फ़तेहपुरी मसजिद का भीतरी हिस्सा—बेगम फ़तेहपुरी ने 1650 ई० में बनवाया था

बारह दरी, रोशन आरा बाग—रोशन आरा बेगम ने 1650 ई० में बनवाया

शालिमार बाग, दिल्ली के शीश-महल का भीतरी भाग — शाहजहां द्वारा 1653 ई० में निर्मित
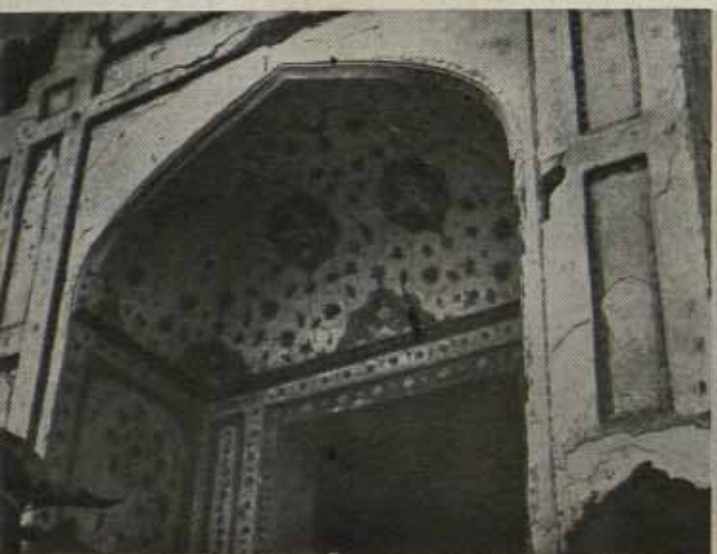
शीशमहल के भीतर का शिल्पकार्य

गुरुद्वारा शीशगंज, चांदनी चौक

गुरुद्वारा रकाबगंज—
1675 ई० में निर्मित

जीनतुलनिसा मसजिद—
इसे जीनतुलनिसा बेगम
ने 1700 ई० में बनवाया था
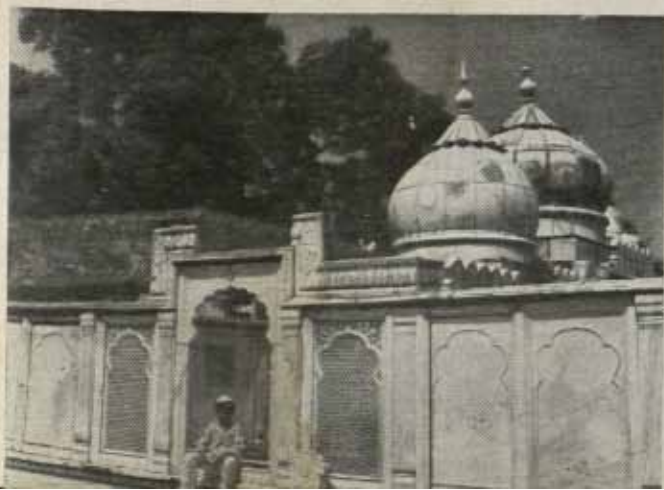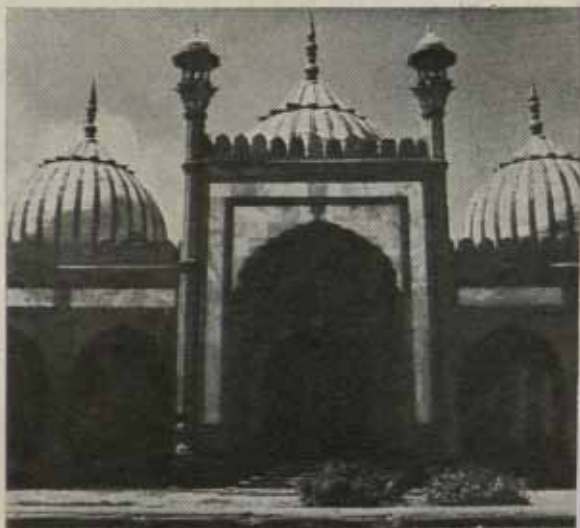
मोती मसजिद और शाह
आलम सानी, अकबर शाह
और बहादुर शाह ज़फ़र
की क़ब्र

सुनहरी मसजिद, चांदनी चौक, दिल्ली — इसे रोशनुद्दौला ने 1721 ई० में बनवाया

राजा जय सिंह द्वारा 1724 ई० में निर्मित जन्तर-मन्तर

दरियागंज की सुनहरी मसजिद
—निर्मित
1757 ई०

शुजाउद्दौला द्वारा 1753 ई० में निर्मित मकबरा सफ़दर जंग
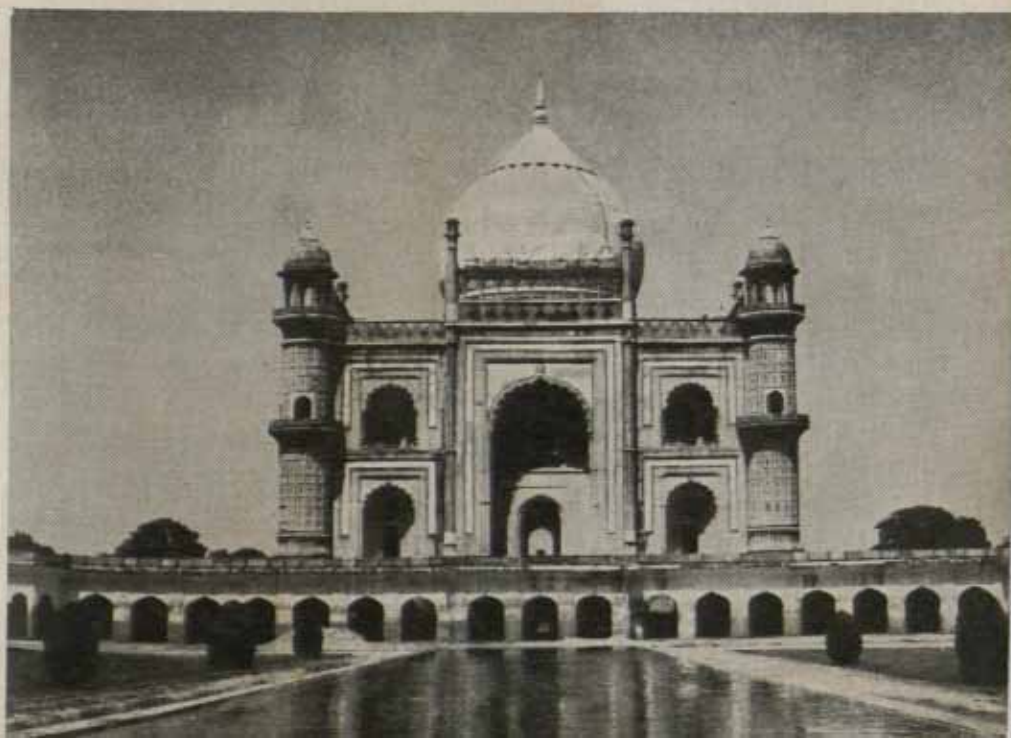
ब्रिटिश युग

जेम्स स्किनर द्वारा (1876–1936) निर्मित सेन्ट जेम्स गिरजा

दिल्ली का टाउनहाल (निर्माण—1889 ई०)

चांदनी चौक का घण्टाघर जो 28,000 रु० खर्च कर 1868 ई० में 1857 के विद्रोह के बाद बना

मकबरा मिर्जा ग़ालिब, निज़ामुद्दीन — 1889 ई० में निर्मित

दिल्ली की ओखला नहर — निर्मित 1895 ई०

1911 ई० का शाही दरबार जिसमें जार्ज पंचम आए थे

नई दिल्ली केन्द्रीय सचिवालय (निर्माण 1912–1930 ई०)

राष्ट्रपति-भवन

राष्ट्रपति-भवन का मुगल उद्यान (1921)

संसद्-भवन

नई दिल्ली-स्थित नगर-निगम कार्यालय (1931-32)

इण्डिया गेट, नई दिल्ली—
1933 ई० में निर्मित

लक्ष्मी नारायण मन्दिर—सेठ
बिड़ला द्वारा 1939 ई० में निर्मित
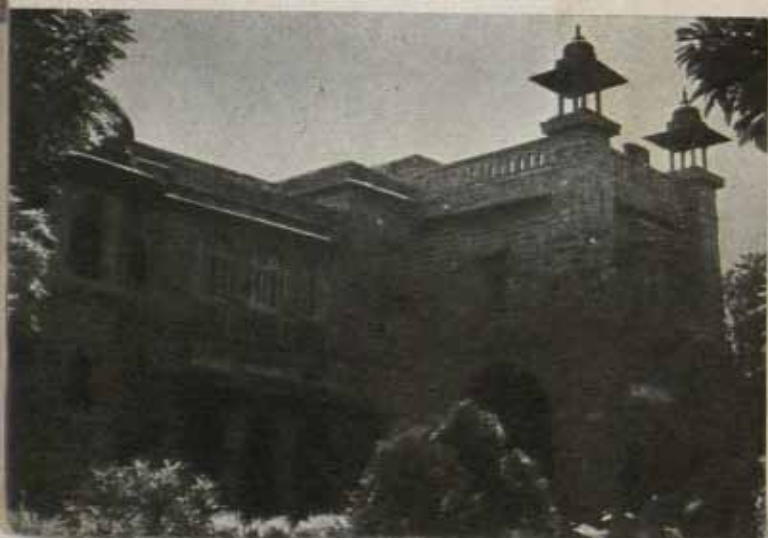
पोलिटेकनिक —
काश्मीरी दरवाजा,
यहां गांधी जी
1915–18 ई०
में ठहरते थे

हरिजन निवास—जहां गांधी जी ठहरा करते थे
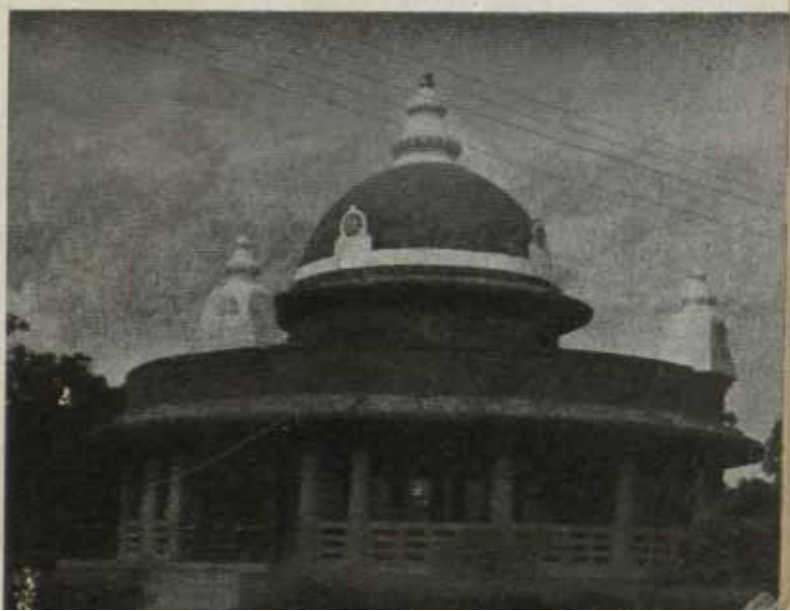
हरिजन निवास का
प्रार्थना-मन्दिर

बाल्मीकि मन्दिर, जहां गांधी जी स्वतन्त्रता-वार्ता के समय ठहरा करते थे

स्वराज्य युग

महात्माजी जहां पर 30 जनवरी 1948 को शहीद हुए थे
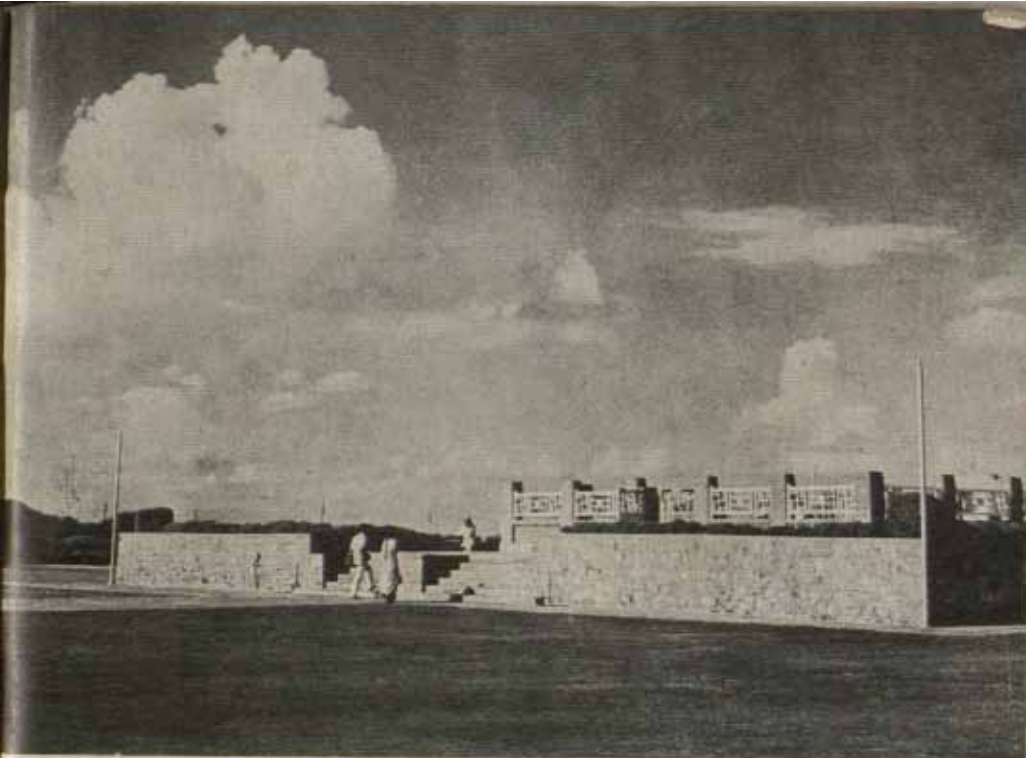
राजघाट, दिल्ली

राजघाट—दिल्ली

गांधी स्मारक संग्रहालय

नई कचहरी, दिल्ली

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

अशोक होटल

राष्ट्रीय संग्रहालय

विज्ञान-भवन

रामकृष्ण मिशन—नई दिल्ली
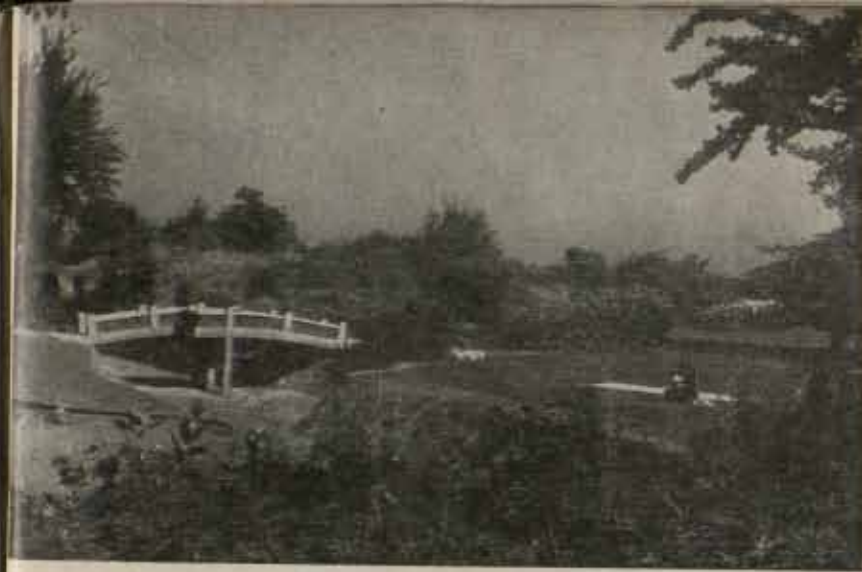
बुद्ध जयन्ती पार्क

राजपूताना राइफल मन्दिर छावनी, नई दिल्ली

लद्दाख बुद्ध विहार मन्दिर

कालका कालोनी में स्वास्थ्य सदन के पीछे का हिस्सा

जानकी देवी कालेज, दिल्ली

सप्रू भवन

तीन मूर्ति भवन, जो अब नेहरू स्मारक भवन बन गया है। 1929-30 ई० में इसे बनवाया गया था

आल इण्डिया रेडियो भवन

सफदर जंग
हवाई अड्डा

ललित कला
अकादेमी

नई दिल्ली का रेलवे
स्टेशन

नेशनल फिज़ीकल लेबारेटरी

मौलाना आज़ाद मैडिकल कालेज

जामा मसजिद के पास मौलाना आज़ाद की समाधि

आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ मैडिकल साइन्स
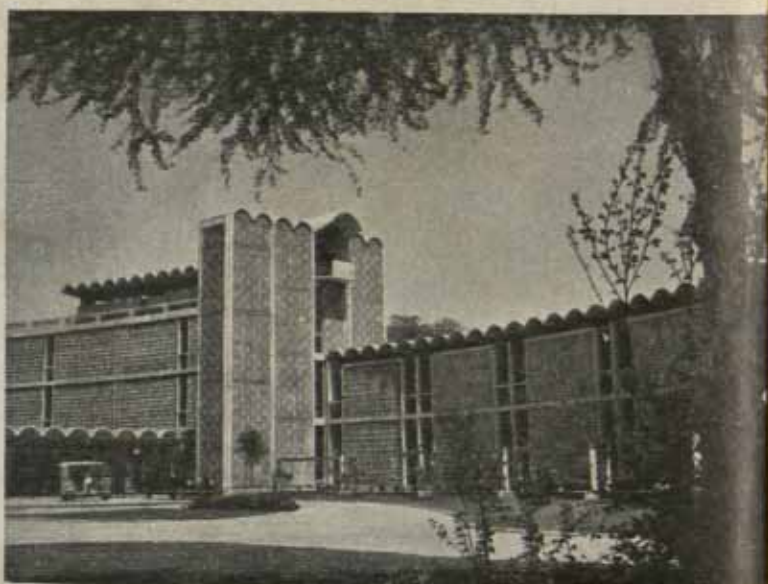
इण्डिया इन्टरनेशनल सेन्टर

स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू के दाह का स्थल जो दिल्ली यात्रियों के लिए एक दर्शनीय स्थल बन गया । अब यह शान्ति-वन है ।

का एक गुलाम भी था जो सदा बादशाह को नुक़सान पहुंचाने की ताक में रहता था। यह बादशाह के कैम्प में दाखिल हो गया और मौके की तलाश में रहने लगा। जब बादशाह शिकार से वापस आ रहे थे और दिल्ली के बाजार में से गुजर रहे थे तो वह जैसे ही इस मदरसे से महमअनझाह के नजदीक पहुंचे, गुलाम ने उन पर तीर से वार किया, लेकिन ईश्वर ने, जो सबका रक्षक है, बादशाह को बचा लिया। उनको कोई जख्म नहीं लगा केवल चमड़ी छिल गई। बादशाह के साथी फौरन गद्दार पर टूट पड़े और तलवार और खंजरों से उन्होंने उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। बादशाह को इस घटना का जरा भी मलाल नहीं हुआ। वह दीनपनाह के किले में चले गए। चंद रोज में जख्म ठीक हो गया।

ऊधमखां का मकबरा या भूल-भुलैयां और मस्जिद (1561 ई०)

कुतुब साहब की लाट से जो सड़क महरौली को जाती है, उसकी दाहिनी ओर ऊधमखां का मकबरा है। यह मकबरा अकबर ने अपने दूध भाई और उसकी मां माहम अंखा के लिए बनवाया था। ऊधमखां ने इस घमंड में कि वह बादशाह का दूध भाई है, आजमखां को अकबर के महल में मार डाला था। वह कत्ल करके शाही महल के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। बादशाह को जैसे ही इस घटना का पता लगा, वह तलवार निकाल कर वहां आ पहुंचे और कातिल को बांध लिया गया और कत्ल के अपराध में उसे फसील से नीचे लुढ़का दिया गया। आजमखां रमजान की 1561 ई० को कत्ल हुआ था। फसील पर से फेंके जाने पर भी ऊधमखां मरा नहीं था, उसमें जान बाकी थी। बादशाह ने उसे दोबारा फेंकवाया, तब वह मरा। वह अपने मक़तूल के एक दिन पहले दफन किया गया।

जब माहम अंखा को इस घटना की खबर मिली कि उसका लड़का मार दिया गया तो वह यद्यपि बीमार थी फिर भी दिल्ली से आगरे पहुंची। उसको देख कर अकबर ने कहा कि तुम्हारे लड़के ने मेरे धर्म पिता को मार डाला था और मैंने उसकी जान ले ली। माहम ने कहा, हुजूर आपने ठीक किया और दरबारशाही से बाहर निकल आई। इस घटना के चालीस दिन पीछे वह बेटे के गम से मर गई और अपने बेटे के साथ दिल्ली में दफन की गई। अकबर ने उन दोनों के लिए मकबरा बनवा दिया।

दो ऊंची-ऊंची सीढ़ियों पर चढ़ कर मकबरे का सहन मिलता है जो सड़क की सतह से 17 फुट ऊंचा है। मकबरा अठपहलू है जिसका व्यास 100 फुट है। सहन का वह हिस्सा, जो सड़क की तरफ है, खुला हुआ है। उत्तर और पश्चिम की दीवार में, जिधर से राय पिथौरा के लिए रास्ता है, एक छोटा सा दरवाजा है। इस

प्रकार का दरवाजा दक्षिण-पश्चिम की ओर भी है जो मकबरे के पश्चिम में कोई बीस गज के फासले पर है। अहाते की दीवार जमीन से दस फुट ऊंची है। इस दीवार का बहुत बड़ा भाग गिर चुका है। सहन के आठों कोनों पर एक-एक बुर्जी बनी हुई है और मकबरे के गिर्द छः फुट ऊंचा कंगूरा है। मकबरा 60 फुट ऊंचा है और चबूतरे की कुर्सी 8 फुट की है। मकबरे की सारी इमारत अठपहलू है। चबूतरे पर से गुंबद की ऊंचाई 32 फुट है जिसके आठों कोनों में हर तरफ तीन-तीन दर हैं। इन दरों के खम्भे चौकोर एक के ऊपर एक पत्थर रख कर बनाए गए हैं। बाज़-बाज़ खम्भे खारे के पत्थर के बेजोड़ के एक ही पत्थर के हैं। गुंबद चूने-पत्थर का बना हुआ है जिस पर अस्तरकारी का काम है। एक तरफ ऊपर जाने का जीना है जिसमें भूल-भुलैयां बना हुआ है। कब्र का तावीज़ करीब चालीस बरस हुआ कोई निकाल कर ले गया और वही हाल उसकी मां की कब्र का हुआ।

हुमायूं का मकबरा (1565 ई०)

हुमायूं की मृत्यु 24 जनवरी 1556 को पुराने किले में हुई और उसे किलोखड़ी गांव में दफन किया गया जहां उसका मकबरा है। यह दिल्ली से पांच मील मथुरा रोड पर बाएं हाथ पर बना हुआ है। हाजी बेगम ने, जो हुमायूं की वफादार बीवी और अकबर की मां थी, इसका बुनियाद पत्थर रखा था जो 1565 ई० में बन कर तैयार हुआ। कुछ का ख्याल है कि यह अकबर के राज्य काल के चौदहवें वर्ष 1569 ई० में बन कर तैयार हुआ। इस पर 15 लाख रुपया खर्च आया जिसका बड़ा भाग अकबर ने अपने पास से दिया था।

हुमायूं के मकबरे को तैमूर खानदान का कब्रिस्तान समझना चाहिए; क्योंकि यद्यपि उसके बाद के तीन बादशाह और जगह दफन किए गए, मगर किसी और मकबरे में इतनी बड़ी संख्या में मुगल खानदान के लोग दफनाए नहीं गए जितने इसमें। हुमायूं की कब्र के साथ उसकी बीवी हाजी बेगम की कब्र है जो उसके कष्ट के दिनों में उसकी साथिन रही। यहीं दाराशिकोह की बेसिर की लाश दफन है जो शाहजहां का लायक, बहादुर लेकिन बदकिस्मत लड़का था। वह औरंगजेब से पराजित हुआ और इसी मकबरे के पास उसका सर काटा गया। यहीं बादशाह मोहम्मद आजमशाह दफन है जो औरंगजेब का बहादुर लेकिन कमअकल लड़का था और जो अपने भाई से लड़ाई में आगरे में पराजित हुआ। यहीं बादशाह जहांदार शाह दफन है जो औरंगज़ेब का पोता था। फिर उसका बदनसीब जांनशीन फर्रुख-सियर भी यहीं दफन है जिसको उसके वजीर आजम ने जहर खिलाया। यहीं नौजवान रफीउद्दीन दरजा और रफीउद्दौला दफन हैं जो बादशाह बने भी, मगर तीन-तीन महीने बाद तख्त से उतर गए। अन्त में यहां आलमगीर सानी दफन किया गया जो अपने वज़ीर इमदादुलमुल्क के इशारे से कत्ल किया गया था। इनके अतिरिक्त

बहुत सी शहज़ादियां और शहज़ादे इस मकबरे में अपने बुजुर्गों के नज़दीक सोए हुए हैं जिनके नाम इतिहास में दर्ज हैं।

इसी मकबरे में दिल्ली के आखिरी मुगल बादशाह बहादुरशाह ने 1857 ई० के गदर के बाद ब्रिटिश हुकूमत का कैदी बनने के लिए अपने को अंग्रेजों के हवाले किया। यहां बहादुरशाह के तीन लड़के मिर्जा मुगल, मिर्जा खिषा सुलतान और मिर्जा अबुहका और भतीजे गिरफ्तार हुए थे जिनको इस मकबरे के सामने ही तुरन्त मुकदमे का फैसला सुना कर कत्ल कर दिया गया था।

मकबरा यमुना के किनारे एक बहुत बड़े अहाते में बना हुआ है जिसमें दाखिल होने के दो बहुत आलीशान गुंबददार दरवाज़े हैं—एक पश्चिम में और दूसरा दक्षिण में है। पश्चिमी द्वार में बहुत अच्छे-अच्छे छोटे मकान बने हुए हैं। दरवाज़े से हर मकान में जान का जुदा-जुदा रास्ता है और सुन्दर सीढ़ियां बनी हुई हैं। दक्षिणी द्वार में यद्यपि मकान नहीं हैं लेकिन चबूतरे हैं। दरवाज़े लाल पत्थर के बने हुए हैं।

इस मकबरे की फसील चूने-पत्थर की बनी हुई है। अहाते की पूर्वी दीवार के बीच में एक दालान है जिसमें आठ दर और एक दरवाज़ा दरिया की तरफ है। उत्तरी दीवार के बीचोबीच सात फुट ऊंचे चबूतरे पर एक छोटी सी इमारत बनी हुई है जिसके बीच में एक महराबदार कमरा है। इसमें बड़े-बड़े बुर्जनुमा कुएं हैं जिनसे दीवार के पीछे पानी लाकर नहरों में दौड़ाया जाता था और बागों में पानी दिया जाता था। वह नहर 1824 ई० तक जारी थी। दो दरवाज़े खारे के पत्थर के बने हुए हैं जिनमें लाल पत्थर के बेल-बूटे और पत्तियां हैं और जगह-जगह संग-मरमर भी लगा हुआ है। दक्षिणी द्वार को आरामगाह बना दिया गया है। बाग के बीचोबीच एक पक्का पत्थर का चबूतरा पांच फुट ऊंचा और एक सौ गज मुरब्बा बना हुआ है जिसके कोने काट कर गोल कर दिए गए हैं। इस चबूतरे के किनारे से 23 फुट पर एक पटा हुआ चबूतरा, 20 फुट ऊंचा और 85 फुट मुरब्बा है। इसके कोने भी गोल बनाए गए हैं। इस पटे हुए चबूतरे के चारों ओर एक-एक महराबदार दरवाज़ा है। इन दरवाज़ों से कोठड़ियों में जाते हैं जिनमें कब्रें हैं। इसी चबूतरे के चारो लम्बे अजला में सतरह-सतरह दर हैं। नवें दर में, जो बीच में है, एक जीना है जो इस चबूतरे पर जाकर निकलता है। पहले और दूसरे चबूतरों पर चौकों का फर्श है। ऊपर के चबूतरे के चारों तरफ लाल पत्थर की जालियों का कटहरा था, लेकिन 1857 ई० के गदर में दरिया की ओर के कटहरों को बागियों ने तोड़-फोड़ कर बराबर कर दिया। नीचे के जो कमरे हैं, उन सबके दरवाज़े महराब-दार हैं जिनमें जगह-जगह संगमरमर की सिलें और पट्टियां लगी हुई हैं। ऊपर वाले चबूतरे के तहखाने के बीच में हुमायूं बादशाह और उनकी बेगम साहिबा,

दूधपीती शहजादी और अन्य राज्य परिवार के लोगों की असल कब्रें हैं और चबूतरे के ऊपर कब्रों के तावीज बनाए गए हैं। सबसे अधिक सुन्दर हुमायूं बादशाह और उनकी बेगम साहिबा की कब्रें हैं। इन कब्रों में से कुछ गुंबद के अन्दर हैं, कुछ चबूतरे पर। जो कब्रें गुंबद के नीचे हैं, उनके तावीज सर्वोत्तम संगमरमर के बहुत सुन्दर और देखने योग्य बेल-बूटों और मीनाकारी से सज्जित हैं। ख्याल है कि अकबर के बाद हुमायूं की कब्र के पास अर्थात गुंबद के अन्दर कोई दफन नहीं किया गया।

असली मकबरा एक ऊंचा मुरब्बा गुंबद है जिसके ऊपर सुनहरी कलस लगा हुआ है। गुंबद की ऊंचाई 140 फुट है। बीच के कमरे में ऊपर-तले दो सिलसिले खिड़कियों के हैं। ऊपर वाली खिड़कियां नीचे वाली खिड़कियों से कुछ छोटी हैं। गुंबद के अन्दर तरह-तरह के संगमरमर के पत्थरों का फर्श है। गुंबद के बीचोबीच एक सुनहरी फुंदना लटक रहा था जिसको जाटों ने बंदूकों से मार-मार कर उड़ा दिया। हुमायूं की कब्र का तावीज संगमरमर के बहुत साफ चमकदार छः इंच ऊंचे चबूतरे पर है। चबूतरे पर संगमूसा की पट्टियां पास-पास पड़ी हैं। इस तमाम कमरे में संगमरमर का फर्श है। गुंबद की छत पर किसी जमाने में एक बहुत बड़ा विद्यालय था। मकबरे के ऊपरी भाग में भूल-भुलैयां बना हुआ है जिसमें जाकर आदमी उलझ जाता है और उतरने का रास्ता नहीं मिलता। कहा जाता है कि हाजी बेगम ने मक्के से आकर खुद इस मकबरे को अपनी देख-रेख में लिया था और उनकी मृत्यु के बाद उत्तरी-पश्चिमी कोने में, जहां उनकी दूधपीती बच्ची दफन की हुई थी, वह स्वयं भी दफन हुई। असल मकबरे में सिर्फ तीन कब्रें हैं और दक्षिण तथा पश्चिम के हुजरों में दो कब्रें हैं। इन सब कब्रों के तावीज संगमरमर के हैं। मकबरे के पश्चिम में चबूतरे पर ग्यारह कब्रें हैं जिनमें से पांच के तावीज संगमरमर के हैं और बाकी चूने और गच के। चबूतरे के दूसरी ओर केवल एक ही कब्र है जिस पर संगी बेगम पत्नी आलमगीर द्वितीय लिखा है। जिन कब्रों पर कुछ नाम नहीं है, उन पर कुरान की आयतें लिखी हैं। मकबरे के उत्तर की ओर सीढ़ियों के पास वाली कब्र लोग आम तौर से दाराशिकोह की बतलाते हैं और उसी ओर मइउद्दीन जहांदारशाह और आलमगीर सानी की कब्रें भी हैं।

मकबरा आठ फुट ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है जो 76 फुट मुरब्बा है और जिस पर लाल पत्थर जुड़ा हुआ है। खुद मकबरा 50 फुट मुरब्बा है और चबूतरे से करीब 72 फुट ऊंचा है। मकबरे की छत पर जाने का रास्ता नहीं है चूंकि कोई जीना नहीं। मकबरे के अन्दर की माप 24 फुट मुरब्बा है और अन्दर की दीवारों पर लाल पत्थर लगा है। मकबरे का एक ही द्वार है जो दक्षिण में है।

मकबरे में संगमरमर की दो कब्रें हैं—एक $7' \times 2\frac{1}{2}' \times 13'$ और दूसरी $6' \times 2\frac{1}{2}' \times 1\frac{1}{2}'$। मकबरे में बहुत बड़ा बाग है। इसकी देखभाल अच्छी होती है।

हजाम का मकबरा

हुमायूं के मकबरे के पास ही कोने में एक छोटा सा मकबरा बना हुआ है जिसे हुमायूं के हजाम का मकबरा कहते हैं।

नीली छतरी मकबरा नौबतखां (1565 ई०)

यह गुंबद पुराने किले और दरगाह हजरत निजामुद्दीन के बीच में स्थित है। अकबर के एक नवाब नौबतखां थे। उनका यह मकबरा है। उसे उसने अपने जीवन-काल में 1565 ई० में बनवाया और मृत्यु के पश्चात वह इसमें दफन किया गया। इसका नाम नीली छतरी इसलिए पड़ा कि किसी समय इस पर चीनी का काम था और बुर्ज पर नीला छतर था जो अब बिल्कुल टूट-फूट गया है। इसका अहाता कई एकड़ जमीन में है। मकबरे का दरवाजा 25 फुट मुरब्बा है। दरवाजे के पीछे छोटी-सी इमारत तीन दरों की है। इस इमारत के पिछवाड़े एक अठपहलू छः फुट ऊंचा चबूतरा है जिसका व्यास 79 फुट है। चबूतरे के दक्षिण में आमने-सामने छत पर चढ़ने को दो जीने हैं। चबूतरे के उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम के कोनों में दो पक्की कब्रें हैं। इनके अतिरिक्त भी कई और कब्रों के निशान हैं। चबूतरे के बीचोबीच नौबतखां का मकबरा है, जो अठपहलू इमारत है। तमाम मकबरा चूने-पत्थर का है जिसमें हरी, पीली, नारंगी, रंगबरंग की ईंटें लगी हुई थीं। मकबरे के अन्दर कुरान की आयतें लिखी हैं। गुंबद के आठ दर सात फुट ऊंचे और पांच फुट चौड़े हैं जिनकी महराबों पर आले बने हुए हैं। गुंबद के अन्दर भी सीढ़ियां हैं। दिल्ली-निजामुद्दीन सड़क पर बाएं हाथ की यह अंतिम इमारत सड़क से मिली हुई है। मकबरे की छत चपटी है।

आजमखां का मकबरा (1566 ई०)

निजामुद्दीन की दरगाह के दक्षिण-पूर्व में शमशुद्दीन मोहम्मद का मकबरा है जिन्हें अतगाखां भी कहते थे। जब इसने जालन्धर के पास बहरामखां पर विजय पाई थी तो अकबर ने इसे आजमखां का खिताब दिया था। यह उस वक्त मुगल सेना में मौजूद था जब पठानों ने कन्नौज के पास 1540 ई० में हुमायूं को पराजित किया था और इसने बादशाह को मैदान से भागने में सहायता की थी। हुमायूं ने शमशुद्दीन को इनाम दिया और उसकी बीबी को अकबर की धाय नियत कर दिया। जब मुगलों ने सूरियों से दिल्ली वापस ली तो शमशुद्दीन को अतगाखां (धर्मपिता) का खिताब मिला। यह बाद में पंजाब का गवर्नर बना दिया गया। लाहौर में कुछ अर्से ठहर कर यह आगरे लौट आया। इसने मुहनिमखां को, जो अकबर के दरबार के उमराओं में बड़ा अनुभवी और प्रभावशाली व्यक्ति था, हटा दिया।

ऊधमखां ने, जो एक बहादुर व्यक्ति था मगर खुदसर था और अकबर कई बार उससे नाराज हो चुका था, अतगाखां को कत्ल कर डाला । रमजान (1566 ई०) की रात को जब मुहनिमखां, अतगाखां और चंद दूसरे मुसाहिब आगरे के महल में किसी काम में व्यस्त थे, ऊधमखां मय अपने चंद साथियों के अचानक कमरे में घुस आया । सब उसका स्वागत करने खड़े हो गए । उसी वक्त ऊधमखां ने अतगाखां पर खंजर से वार किया और अपने एक साथी से उसे तलवार से खत्म कर देने को कहा । ऊधमखां अकबर बादशाह के हुक्म से उसके धर्मपिता के कत्ल के अपराध में मार डाला गया । अतगाखां का शव आगरे से दिल्ली लाया गया और निजामुद्दीन गांव में औलिया के मकबरे से बीस गज के अन्तर पर उसे दफन किया गया । 1566 ई० में अतगाखां के दूसरे लड़के मिरजा अजीज कुतल ताराखां ने अपने पिता की कब्र पर मकबरा बनवा दिया । यह इमारत उस्ताद अहमद कुली की देखभाल में बन कर तैयार हुई ।

मकबरा यद्यपि छोटा सा है, लेकिन इसमें जो रंगामेजी की गई है उसके लिहाज से यह दिल्ली के सब मकबरों से सुन्दरता में बढ़-चढ़ कर है । मकबरा करीब 30 फुट मुरब्बा है । फर्श से छत तक की ऊंचाई 30 फुट है और छत से गुंबद की ऊंचाई 24 फुट और है । कुल ऊंचाई 54 फुट है । मकबरे के चारों कोण यकसां हैं । दीवार के बीच में एक दो फुट गहरी महराब है जो 30 फुट ऊंची और 11 फुट चौड़ी है । महराब की दीवार में मकबरे का दरवाजा है जो 7 फुट ऊंचा और 4 फुट चौड़ा है । दीवार पर नक्काशी की हुई है जो सफेद और पीले संगमरमर में लाल और नीले पत्थर की है । मकबरे के बीच का भाग संगमरमर के बने गुंबद से घिरा हुआ है । मकबरे का कलस तूफान में गिर गया था । छत पर बहुत सुन्दर पच्चीकारी के काम का कंगूरा है । गुंबद के चारों ओर दीवार वाली महराबें हैं जिनके इधर-उधर दो पतले और सलेट के पत्थर की काली पट्टियां पड़ी हुई हैं । मकबरे के सामने का फर्श छः गज तक लाल पत्थर का है जिसमें संगमरमर की पट्टियां पड़ी हुई हैं और अठपहलू कटाव का काम है । मकबरे की वर्तमान हालत अच्छी नहीं है । बीच की कब्र अतगाखां की है । बाएं हाथ की उनकी धर्मपत्नी की और दाहिनी ओर किसी और की ।

अफसर खां सराय का मकबरा

यह मकबरा अरब की सराय में एक चबूतरे पर बना हुआ है । साथ में मस्जिद भी है । इसे किसने बनवाया, इसका पता नहीं चलता ।

दरगाह ख्वाजा बाकी बिल्लाह (1603 ई०)

बाकी बिल्लाह काबुल के रहने वाले थे । यह अकबर बादशाह के अहद में दिल्ली आए और 1603 ई० में इनकी मृत्यु हुई । इनको दिल्ली के पश्चिम में

नबीकरीम के करीब दफन किया गया। ये नक्शेबंदियों में से थे और इनका दावा था कि मोहम्मद साहब ने स्वप्न में इन्हें उपदेश दिया था। इनकी पूजनीयता का अंदाजा इससे हो सकता है कि इनकी कब्र को लोग बड़ी श्रद्धा-भक्ति से देखते हैं और हजारों आदमी वहां जियारत को जाते हैं। इनकी कब्र कई एकड़ जमीन के एक अहाते में बनी हुई है जिसकी नीची-नीची दीवारें हैं और यह एक बाकायदा कब्रिस्तान है।

बाकी बिल्लाहियों की कब्रें नीचे चबूतरों पर बनी हुई हैं। पहला चबूतरा कोई 24 फुट मुरब्बा है जिसके चारों ओर कोई डेढ़ फुट ऊंची खारे के पत्थर की दीवार है, दूसरा 12 फुट मुरब्बा है जिसके गिर्द एक फुट ऊंची दीवार है। इस दूसरे चबूतरे पर एक जनाने की शक्ल का मजार है। कब्र के सिरहाने तीन महराबों की एक दीवार है जिसमें दीपकों के लिए सूराख बने हुए हैं। कब्र के दाएं हाथ एक मस्जिद है, जिसमें महराबदार पांच दरवाजे हैं।

जहांगीर (1605 ई० से 1627 ई०)

अकबर के पश्चात जहांगीर तख्त पर बैठा। अकबर ने अपने जीवन-काल में ही इसे राजगद्दी का उत्तराधिकारी बना दिया था। इसके दो भाई अकबर के सामने ही मर चुके थे। यह 1605 ई० में गद्दी पर बैठा। इसने भी आगरे को ही राजधानी कायम रखा। जहांगीर को कश्मीर बहुत पसंद था और गरमियां वह वहीं बिताया करता था। अक्तूबर 1627 में कश्मीर से वापसी पर वह यकायक बीमार हुआ और 59 वर्ष की आयु में 22 वर्ष के शासन के पश्चात् इतवार के दिन मृत्यु को प्राप्त हुआ और लाहौर के करीब शाहदरे में एक निहायत शानदार मकबरे में, जो रावी नदी के किनारे बना हुआ है, दफन किया गया।

इसके जमाने की बहुत कम इमारतें बनी हुई हैं। आगरे में बेशक हैं, मगर दिल्ली में तो चंद ही हैं जिनमें चौसठ खम्भा, अरब सराय का पूर्वी द्वार, फरीदखां की कारवां सराय, फाहिमखां का मकबरा और खानखाना का मकबरा उल्लेखनीय हैं। सलीमगढ़ का यमुना पर का पुल भी इसीने बनवाया था।

फरीदखां की कारवां सराय (1608 ई०)

दिल्ली दरवाजे से निकलकर सीधे नई दिल्ली को जाएं तो दाएं हाथ पर पुरानी दिल्ली जेल हुआ करती थी। यह वास्तव में सराय थी। पुरानी दिल्ली के साथ यह सराय भी वीरान हो गई। आलमगीर सानी और शाह आलम ही के समय में यह बिल्कुल वीरान हो गई थी। अंग्रेजों ने इसे जेलखाना बना लिया था। आजादी की लड़ाई के दिनों में इस जेल में बड़े-बड़े नेता रखे गए थे। डा० अंसारी, पंडित मदनमोहन मालवीय, विट्ठलभाई पटेल, विधान चन्द्र राय, ये सब ही इस जेल में रहे। दिल्ली के तो तमाम राजनीतिक कैदी इस जेल में रहे। मास्टर अमीरचन्द, अवधबिहारी, जो पुराने क्रान्ति-

कारी थे, उनको इसी जेल में फांसी दी गई। इस लिहाज से यह स्थान बड़ा ऐतिहासिक रहा है। अब तो तमाम पुरानी इमारतें तोड़ कर यहां आजाद मेडिकल कालेज बना दिया गया है। मुगलों के जमाने में यह फरीदखां की कारवां सराय थी। फरीदखां शाहजहां के समय में गुजरात के सूबेदार थे। फरीदाबाद भी उन्हीं का बसाया था जो दिल्ली से 15 मील है। सलीमगढ़ के किले को भी उन्होंने ही ठीक करवाया। फरीदखां सराय शाहजी में दफन हैं, जो बेगमपुर की मस्जिद से पूर्व में कोई 400 गज पर है।

बारह पुला (1612 ई०)

यह पुल हुमायूं के मकबरे से करीब ही दक्षिण द्वार के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। इसे जहांगीर के एक दरबारी मेहरबान आगा ने बनवाया था। उसीने अरब की सराय का पूर्वी द्वार बनवाया था। पुल पर के एक लेख से यह 1612 ई० में बना बताया जाता है, लेकिन कनिंघम का कहना है कि मैरिनर फिंच ने इसे 1611 ई० में देखा था। इसलिए यह 1612 ई० में नहीं बन सकता। यह चूने-पत्थर की एक भारी इमारत है। यह यमुना की एक धारा पर बनाया गया था। 1628 ई० में मकबरे और पुल के बीच एक चौड़ी सड़क थी जिसके दोनों ओर सायेदार वृक्ष लगे हुए थे। इस पुल में ग्यारह दर थे, यद्यपि नाम इसका बारह पुला था। यह नाम इस कारण पड़ा मालूम होता है कि दर चाहे ग्यारह हों मगर पुल के स्तून बारह ही हैं।

पुल 361 फुट लम्बा और 46 फुट चौड़ा है। इसकी ऊंचाई 29 फुट है। पुल के दोनों तरफ बड़े भारी पुश्ते हैं। पुल की मुंडेरों के ऊपर 10 फुट ऊंचे बुर्ज बने हुए हैं जो दोनों ओर एक-दूसरे के सामने हैं। उत्तर की दूसरी महराब पर एक लाल पत्थर की दीवार कोई आठ फुट ऊंची और पांच फुट चौड़ी बनी हुई है जिस पर लेख लिखा हुआ है।

फरीद बुखारी का मकबरा (1615 ई०)

बेगमपुर की मस्जिद के मुकाबिल से आधा मील पूर्व में शेख फरीद बुखारी का मकबरा है जिसे जहांगीर के काल में मुरतजा खां के नाम से पुकारते थे। अकबर के काल में इसे पहले मीर बख्शी के स्थान पर लगाया गया। अकबर की मृत्यु के बाद यह जहांगीर के मददगारों में रहा। इसने ही शाहजहां खुसरो को व्यास नदी के किनारे पराजित किया था। इसी के एवज में इसे मुरतजा खां की उपाधि मिली और इसे गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। इसके बाद यह पंजाब का सूबेदार बनाया गया। पाकपट्टन में 1615 ई० में इसकी मृत्यु हुई और बेगम पुर में दफन किया गया। कब्र के ऊपर कोई मकबरा रहा होगा। अब तो संगमरमर की कब्र है। यह सात फुट लम्बी और 3½ फुट चौड़ी है और बीस इंच ऊंची। सिरहाने की तरफ एक

पत्थर सात फुट ऊंचा और 20 इंच चौड़ा लगा हुआ है जिस पर कोई लेख खुदा हुआ है।

मकबरा फाहिमखां या नीला बुर्ज (1624 ई०)

हुमायूं के मकबरे की पूर्वी दीवार के बाहर एक टूटा-फूटा नीला गुंबद खड़ा है जिसे हज्जाम का गुंबद भी कहते हैं। सम्भवतः यह खानखाना के साथी अब्दुल रहीम का है और शायद खानखाना ने इसे 1624 ई० में तामीर करवाया था। महाबत खां ने खानखाना को कैद करने से पूर्व फाहिम को कुछ दे-दिलाकर अपनी तरफ करने का यत्न किया था, लेकिन फाहिम एक वफादार साथी था। उसने अपने मालिक के साथ नमकहरामी करने से इन्कार कर दिया और महाबत खां से लड़ता हुआ मारा गया। अपने वफादार साथी की यादगार कायम रखने के लिए खानखाना ने उसकी कब्र पर मकबरा बनवा दिया जो खास तौर से सुन्दर रहा होगा। इस पर नीले रंग की चीनी का काम किया हुआ है।

मकबरा एक चबूतरे पर बना हुआ है जो 108 फुट मुरब्बा है और पांच फुट ऊंचा है। गुंबद अठपहलू है जिसके चार जिले लम्बे और चार छोटे हैं और व्यास 62 फुट है। चबूतरे के ऊपर से गुंबद की ऊंचाई सत्तर फुट है जिस पर लाल पत्थर का छः फुट ऊंचा कलश है। मकबरे की हालत आजकल काफी खराब है।

मकबरा अजीज कुकलताश या चौंसठ खम्भा (1624 ई०)

आजमखां के मकबरे से कोई बीस गज के अन्तर पर उसके लड़के मिरजा अजीज कुकलताश का शव दफन है जो अकबर का दूध भाई था और उसकी सभा का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति था। ऊधमखां द्वारा उसके पिता का कत्ल किए जाने के पश्चात् बादशाह ने खुद मिरजा अजीज की देखभाल अपने ऊपर ले ली थी। अजीज कुकलताश का जीवन कुछ मिला-जुला गुजरा है। उसकी इज्जत भी बहुत हुई और उसने अपमान भी बहुत सहा। सल्तनत के सबसे अगुआ प्रान्तों पर उसने हकूमत की और एक बड़ी बगावत को दबाने में वह सफल रहा, लेकिन उसको सियासी बदनामी और तनज्जली भी बरदाश्त करनी पड़ी। अकबर की मृत्यु के पश्चात उसने खुसरो का उसके पिता जहांगीर के खिलाफ साथ दिया और यद्यपि जहांगीर से उसकी सुलह-सफाई हो गई और सरकारी पदों पर उसकी उन्नति भी हुई, लेकिन उसकी आरम्भिक गलतियों को कभी नजरअन्दाज नहीं किया गया। अजीज कुकलताश को जहांगीर के एक पोते का संरक्षक मुकर्रर कर दिया गया था जिसके हमराह वह गुजरात गया और 1624 ई० में अहमदाबाद में उसकी मृत्यु हुई। उसके शव को दिल्ली लाया गया और निजामुद्दीन गांव में उसके पिता और औलिया की कब्रों के पास उसे दफन किया गया।

मिरजा अजीज के मकबरे को आम तौर से चौंसठ खम्भों कह कर पुकारते हैं। यह 69 फुट मुरब्बा 64 खम्भों का एक मंडप है जिसकी ऊंचाई 22 फुट है। मिरजा ने अपने जीवन काल में ही इसे बनाया था। मकबरे के स्तम्भ, जालियां, फर्श और छत सब संगमरमर की हैं। स्तम्भ निम्न प्रकार से बने हुए हैं। भवन के हर एक कोने में चार-चार स्तम्भ लगे हुए हैं, जो एक-दूसरे से आपस में जुड़े हुए हैं। खम्भों के बीच किनारों पर मकबरे की हर तरफ चार-चार खम्भों की दोहरी कतार है जिन पर संगमरमर की महराबें रखी हुई हैं और इस प्रकार 48 स्तम्भ बाहर के भाग में हैं। सोलह स्तम्भ अन्दर हैं जो चार-चार की कतार में हैं और वे भी दोहरे खम्भों की एक ही कतार में खड़े हैं। अन्दर के खम्भों में आपस का अन्तर 12 फुट है और जो चार-चार की जुट के 64 खम्भे हैं उन पर 25 छोटे गुंबद धरे हुए हैं जो 25 महराबों को सहारा दे रहे हैं।

मकबरा खानखाना (1626 ई०)

फाहिम के मकबरे के पास ही उस सड़क की दाहिनी ओर जो हुमायूं के मकबरे से बारह पुले को जाती है और निजामुद्दीन-मथुरा रोड पर बाएं हाथ पर अब्दुल रहीम खानखाना का मकबरा है। यह बैरमखां का बेटा था जो हुमायूं बादशाह का मित्र और जनरल था। इसकी मां एक मेवाती रईस की लड़की थी। अकबर इसकी योग्यता से बड़ा प्रभावित था और इसको बड़े-बड़े जिम्मेदारी के काम सुपुर्द किए हुए थे। इसने गुजरात में एक बड़ी भारी बगावत को रोका, सिंध को फतह किया और दक्षिण में खराब हालत में भी अकबर के जमाने तक शाही वकार को कायम रखा। जहांगीर के जमाने में इसकी किस्मत ने पलटा खाया। यह जहांगीर के लड़के खुर्रम का साथ देता था, लेकिन तटस्थ न रह सका। कभी किसी के साथ कभी किसी के साथ। आखिर महाबत खां ने इसे गिरफ्तार करके बादशाह के हुक्म से दिल्ली भेज दिया। वहां से वह लाहौर भेजा गया जहां वह बीमार पड़ा और मरने के लिए दिल्ली लौट आया। एक लेख के अनुसार उसका जीवन दिल्ली हुकूमत के पचास साला कारनामों का इतिहास था। उसकी मृत्यु 1626 ई० में हुई।

मकबरा 14 फुट ऊंचे और 166 मुरब्बा फुट के चबूतरे पर चूने-पत्थर का बना हुआ है। मकबरे के चारों ओर सत्रह-सत्रह महराबें हैं जिनमें से 14 दीवारदोज हैं। बाकी में से कमरों में जाने का रास्ता है। चबूतरे के दक्षिण में 14 सीढ़ियां हैं। गुंबद अठपहलू है जिसके चार भाग लम्बे और चार तंग हैं। व्यास 85 फुट है। तंग भाग में दो-दो महराबें हैं जो गैलरी में जाने के रास्ते हैं। छत तंग जिलों पर बनी हुई है। उस पर एक बुर्ज है। चबूतरे पर से गुंबद की ऊंचाई 37 फुट है। पहले यह संग-मरमर का बना हुआ था, मगर आसफउद्दौला के काल में वह सब उखाड़ लिया

गया। अब तो नंगी दीवारें खड़ी हैं और घास उगी रहती है। कब्र का भी अब पता नहीं रहा।

हर खम्भे के ऊपरी और नीची तह के भाग पर पत्तों का कटावदार काम हो रहा है और बीच के भाग पर बहुत खूबसूरत पालिश हुआ है। खम्भों की ऊंचाई दस फुट है जिनमें कुछ के ऊपर पच्चीकारी का काम किया हुआ है। पर्दों के ऊपर जो महराबें हैं, वे खुली हुई हैं। भवन में जाने को चार दरवाजे हैं जो चौतरफा बीच की महराब के नीचे बने हुए हैं।

मकबरे के फर्श का बहुत कम हिस्सा लाल पत्थर से जड़ा हुआ है। कुछ जगह जहां संगमरमर की जालियां खराब हो गई थीं, उन्हें सफेद पत्थर से तब्दील कर दिया गया है।

पूर्वी द्वार से मकबरे में दाखिल हों तो भवन चार-चार खम्भों की कतार द्वारा पांच भागों में बंटा दिखाई देता है। पहला और दूसरा भाग खाली है, तीसरे में मिरजा अजीज के बड़े भाई युसुफ मोहम्मद खां और भतीजे की कब्रें हैं, चौथे में इसकी अपनी कब्र है और इसके पैरों की तरफ इसके दूसरे भतीजे की। पांचवें भाग में इसकी बीवी की और उत्तरी कोने में, जो तमाम अन्य कब्रों से एक कटहरे द्वारा अलहदा किया हुआ है, मिरजा के एक और भतीजे की कब्र है। अन्य कब्रें कुकलताश परिवार की हैं। सब मिला कर चौंसठ खम्भों में दस कब्रें हैं। मिरजा अजीज की कब्र पर जो कुतुब खुदा हुआ है, उसमें इसका नाम और मृत्यु-तिथि लिखी हुई है जो 1634 ई० है, लेकिन यह जो यादगार है वह दस्तकारी का एक खास नमूना है। इसकी शक्ल कलमदान जैसी है और उस पर जो फूल-पत्ती बने हुए हैं वे कमाल के हैं। पत्तियां, कलियां, फूल और कोंपलें सब एक खास पसंदगी के नमूने हैं। यद्यपि मिरजा जहांगीर की कब्र का तो यह मुकाबला नहीं करते, लेकिन चूंकि मौसमी तब्दीलियों से इसकी रक्षा होती रहती है; इसलिए यह बेहतर हालत में है और है भी देरपा।

मकबरे का बाहरी भाग कोई खास दिखावे का नहीं है, लेकिन अन्दर का भाग बड़ा प्रभावशाली है; खासकर इसके खम्भों की कला, इसकी महराबों की सफाई और इसकी जालियां देखते ही बनती हैं। मकबरे का अन्दरूनी भाग बहुत मुलायम और नाजुक है और इस लिहाज से यह लामिसाल है तथा शाहजहां के भवनों के मुकाबले में बखूबी टिक सकता है। चौंसठ खम्भे के साए में दिल्ली के आखिरी बादशाह बहादुरशाह की बीवियों और लड़कियों की कब्रें हैं।

शाहजहां (1627—1656 ई०)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, 1526 ई० की पानीपत की लड़ाई और लोदी खानदान की बरबादी के बाद, हिन्दुस्तान की सल्तनत मुगलों के हाथ आ गई जिसका पहला बादशाह बाबर था। उसने आगरे को ही राजधानी रखा। बाबर की मृत्यु के पश्चात उसका बेटा हुमायूं भी 1540 ई० तक आगरे में ही रहा। शेरशाह ने उसे मुल्क से निकाल दिया और जब 1556 ई० में हुमायूं फिर से हिन्दुस्तान का बादशाह बना तो उसने दिल्ली को राजधानी बनाया, मगर छः महीने बाद ही वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। हुमायूं के बाद अकबर ने आगरे को ही राजधानी रखा और उसके बाद जहांगीर ने भी अपने बाप का अनुसरण किया। जहांगीर के बाद शाहजहां की ताजपोशी भी आगरे में ही हुई और ग्यारह बरस तक वह भी वहां राज करता रहा। मगर आगरा शहर पुराना हो चुका था। वहां जगह की तंगी महसूस होने लगी थी। फौज की नकले-हरकत में बड़ी अड़चन पड़ती थी क्योंकि बाजार सँकरे थे। शाहजहां चाहता था कि आगरे को फिर से बसाया जाए, वहां के बाजार चौड़े किए गए, मगर तिजारतपेशा लोग न माने; आखिर दिल्ली को राजधानी बनाने का निश्चय हुआ। यह मुसलमानों की बारहवीं और आखिरी दिल्ली थी।

शाहजहां 1627 ई० में तख्त पर बैठा और तीस बरस तक हकूमत करके वह 1658 ई० में अपने बेटे औरंगजेब के हाथों गिरफ्तार हुआ। शाहजहां का राजतिलक बड़ी धूमधाम से मनाया गया था। जब वह तख्त पर बैठा तो देश में प्रायः अमन-चैन और शान्ति थी इसलिए इसको बड़ी-बड़ी इमारतें बनाने का अच्छा मौका मिल गया जिसका इसे बड़ा शौक था। इसने ऐसी-ऐसी इमारतें बनवाईं कि इसकी ख्याति संसारव्यापी हो गई। ताजमहल ही इसकी बनवाई एक ऐसी लामिसाल इमारत है जिसने न केवल इसका बल्कि इसकी बीवी का भी, जिसके लिए इसने उसे बनाया था, नाम अमर कर दिया।

शाहजहां की शादी नूरजहां की भतीजी मुमताजमहल से हुई थी। वह अपने पति को बहुत चाहती थी। शादी के चौदह बरस बाद जब वह मरने लगी तो उसने अपने पति से दो बातें कहीं। एक यह कि वह दूसरी शादी न करे और दूसरी यह कि उसका मकबरा ऐसा बनवाए कि दुनिया उसे देखने आए। शाहजहां ने अपनी बीवी की दोनों इच्छाओं को पूर्ण किया।

शाहजहां के दरबार के ठाट-बाट की कोई हद न थी। उसके जमाने के कामिल खां ने उसका हाल लिखा है जो अगले बादशाहों से कहीं बढ़ा-चढ़ा हुआ था।

इमारतें बनाने में तो इसने हद ही कर दी थी । उसकी बीवी का मकबरा, ताजमहल, आगरे के किले की मोती मस्जिद और संगमरमर के महलात, दिल्ली शाहजहांबाद का लाल किला और जामा मस्जिद, ये इमारतें उसकी याद को हरदम ताजा किए रहती हैं। इन इमारतों के अतिरिक्त उसने जनता के लाभ के लिए भी कितने ही काम किए, जैसे पश्चिमी जमना नहर। तख्त ताऊस, जिस पर कहते हैं सात करोड़ रुपया खर्च हुआ था, इसीने बनवाया था। यद्यपि इन इमारतों और दूसरे कामों पर इसने खजाने-के-खजाने खाली कर दिए, फिर भी कहते हैं कि इसकी मृत्यु के वक्त इसके खजाने में चौबीस करोड़ रुपया नकद था। जवाहरात और जेवरात तथा दीगर सोने-चांदी का सामान उसके अलावा था। इसने तीस बरस हकूमत की। इसकी हकूमत से सभी सुखी और खुशहाल रहे। तख्त ताऊस को एक फ्रांसीसी जौहरी ने 1665 ई० में देखा था। वह उसे एक पलंग की शक्ल का बताता है—चार फुट चौड़ा, छः फुट लम्बा, जिसके चार पाए बीस से पच्चीस इंच तक ऊंचे खालिस सोने के बने हुए थे। इस पर बारह स्तूनों का शामियाना तना रहता था। कटहरे पर भिन्न-भिन्न प्रकार के जवाहरात और मोती जड़े हुए थे। 108 बड़े लाल तख्त में जड़े हुए थे और 116 जमुर्रद। शामियाने के बारह स्तूनों पर बेशकीमत बड़े-बड़े मोतियों की कतारें जड़ी हुई थीं। कीमत का अंदाजा साठ लाख पौण्ड था। इस पर दो मोर जवाहरात के ऐसे बने हुए थे कि असल रंग के मालूम होते थे। इसीलिए इसका नाम तख्त ताऊस पड़ा था। 1739 ई० में नादिरशाह इसे लूट कर ले गया था।

ताजमहल को बनाने में बराबर बाईस वर्ष तक हजारों आदमी काम करते रहे। इस पर चार करोड़ के करीब लागत आई थी। शाहजहां ने आगरे के किले में आलीशान महल बनवाया। मौजूदा दिल्ली शाहजहां ने ही आबाद की और लाल किला तथा उसके अन्दर के महलात 1648 ई० में इसीने बनवाए। दिल्ली शहर की चारदीवारी 1649 ई० में पहले पत्थर और गारे की चुनी गई थी जो बरसात में टिक न सकी। फिर वह पुख्ता बना दी गई।

शाहजहां 1634 ई० में कश्मीर जाते वक्त दिल्ली होकर गुजरा था और उधर से ही अगले वर्ष वापिस आया। दिल्ली आगरे के दरम्यान दाराशिकोह के लड़का पैदा हुआ। पोते के पैदा होने की खुशी में बादशाह ने तख्त ताऊस पर, जो सात बरस में तैयार हुआ था, पहले पहल दरबार किया। इसने सिक्का भी चलाया और एक खास किस्म की सोने की मोहर चलाई थी जो सिर्फ अमीरों और मनसबदारों को दी जाती थी।

शाहजहां ने कैद में ही 1 फरवरी, 1666 को चौहत्तर वर्ष की उम्र में मृत्यु पाई और उसे अपनी प्यारी बीवी के पास ताजगंज में दफन किया गया।

शाहजहांबाद और लालकिला—किला मोअल्लापुर (1636—48 ई०)

शहर और किले की बिस्मलार करने के लिए बादशाह कई बार दीनपनाह (पुराना किला) देखने यहां आया। आखिर नजूमियों और ज्योतिषियों की सलाह से यह जगह जहां अब लाल किला है, किले की तामीर के लिए चुनी गई और किले के चारों ओर फिर शहर शाहजहांबाद की बुनियाद डाली गई जिसको आम तौर पर दिल्ली कहा जाता है। किला ऐसा बनवाना शुरू किया गया जो आगरे के किले से दुगना और लाहौर के किले से कई चन्द बड़ा था। 1636 ई० में बुनियाद का पत्थर इज्जतखां की देखभाल में डाला गया। कारीगरों में सबसे बड़े उस्ताद अहमद बहामी चुने गए। इज्जतखां की देख-रेख में यह काम पांच महीने दो दिन रहा। इस अर्से में उसने बुनियादें भरवाईं और माल-मसाला जमा किया। इज्जतखां को सिंध जाने का हुक्म मिला और काम अलीवर्दी खां के सुपुर्द किया गया जिसने दो वर्ष एक मास चौदह दिन में किले के गिर्द फसील बारह-बारह गज ऊंची उठवाई। इसके बाद अलीवर्दी खां बंगाल का सूबेदार बन गया और उसकी जगह काम मुकर्रमतखां के सुपुर्द हुआ जिसने नौ साल की लगातार मेहनत से किले की तामीर का काम पूरा करवाया। उस वक्त बादशाह काबुल में था। मुकर्रमतखां मीर इमारत ने बादशाह सलामत की सेवा में निवेदन पत्र भेजा कि किला तैयार है। चुनांचे तारीख 24 रबीउलअव्वल, 1648 ई० के दिन बादशाह सलामत हवादार अरबी घोड़े पर सवार होकर बड़े समारोह के साथ किला मोअल्ला (लाल किले) में दरिया के दरवाजे (हिजरी दरवाजा) से दाखिल हुए।

जब तक बादशाह दरवाजे तक नहीं पहुंच गया दाराशिकोह बादशाह के सिर पर चांदी और सोने के सिक्के वार कर फेंकता रहा। महलात की सजावट हो चुकी थी और सहनों में नायाब कालीन बिछे हुए थे। हर एक नशिस्त पर गहरे लाल रंग का कश्मीरी कालीन बिछाया हुआ था। दीवाने आम की छतों में, दीवारों पर और एवानों पर खाता और चीन की मखमल और रेशम टंकी हुई थी। बीच में एक निहायत आलीशान शामियाना, जिसका नाम दलबादल था और जिसे अहमदाबाद के शाही कारखाने में तैयार करवाया गया था और जो 70 गज लम्बा 45 गज चौड़ा था तथा जिसकी कीमत एक लाख रुपये थी, लगाया गया था। इसकी तैयारी में सात बरस लगे थे। शामियाना चांदी के स्तूनों पर खड़ा किया गया था और चांदी का कटहरा उसमें लगा हुआ था।

दीवाने आम में सोने का कटहरा लगाया गया था। तख्त के ऊपर जो चदर छत थी, उसमें मोती लगे हुए थे और वह सोने के खम्भों पर खड़ी थी जिनमें हीरे जड़े हुए थे। इस मौके पर बादशाह ने बहुत से अतिये अता फरमाए। बेगम साहिबा को एक लाख रुपये नजर किए गए, दाराशिकोह को खास खिलअत और

जवाहरात जड़े हथियार और बीस हजारी का मनसब, एक हाथी और दो लाख रुपये अता किए गए। इसी प्रकार दूसरे शाहजादों, वजीरे आजम और दीगर मनसबदारों को प्रतिये अता किए गए। मुकर्रमतखां को, जिसकी निगरानी में किला तामीर हुआ था, पंचहजारी मनसब अता किया गया। दरबार बड़ी धूम-धाम के साथ समाप्त हुआ।

किला अष्टकोण है। बड़े दो कोण पूर्व और पश्चिम में हैं और छः छोटे कोण उत्तर और दक्षिण में हैं। किले का रकबा करीब डेढ़ मील है। यह करीब तीन हजार फुट लम्बा और करीब 1,800 फुट चौड़ा है। दरिया की ओर की दीवारें 60 फुट ऊंची हैं। खुश्की की तरफ की दीवार 110 फुट ऊंची है जिसमें 75 फुट खंदक की सतह से ऊपर और बाकी खंदक की सतह तक है। किले के पूर्व में यमुना नदी थी जो किले के साथ बहती थी और तीन तरफ खंदक थी जिसमें रंगबिरंगी मछलियां पड़ी हुई थीं। खंदक के साथ-साथ बागात थे जिनमें तरह-तरह के हर मौसम के फूल और झाड़ियां लगी हुई थीं। ये बागात 1857 ई० के गदर तक मौजूद थे जो अब गायब हो गए हैं। पूर्व में यमुना और किले के बीच की नशेब की जमीन हाथियों की लड़ाई तथा फौज की कवायद करने के काम में आती थी। किले की तामीर की लागत का अंदाजा डेढ़ करोड़ रुपया है। लाल पत्थर और संगमरमर जिस राजा के इलाके में होता था उसने भेज दिया था। बहुत सा सामान किश्तियों द्वारा फतहपुर सीकरी से लाया गया था।

1719 ई० के भूचाल से किले को और शहर को बहुत नुक्सान पहुंचा था। 1756 ई० में मरहठों और मोहम्मदशाह दुर्रानी की लड़ाई में भी यहां इमारतों को बहुत नुक्सान पहुंचा था। उस वक्त गोलाबारी के कारण दीवाने खास, रंगमहल, मोती महल और शाह बुर्ज को काफी नुक्सान पहुंचा। किले की मजबूती के कारण उसको कोई नुक्सान न पहुंच सका।

गदर के बाद अन्दर की इमारतों का बहुत सा हिस्सा मिसमार करके हटा दिया गया। रंगमहल, मुमताजमहल और खुर्दजहां के पश्चिम में स्थित जनाने महलात और बागात तथा चांदीमहल, ये सब खत्म कर दिए गए। इसी प्रकार तोशेखाने, बावर्चीखाने, जो दीवाने आम के उत्तर में थे तथा महताब बाग तथा हयात बाग का बहुत बड़ा हिस्सा हटा कर वहां फौजों के लिए बैरकें और परेड का मैदान बना दिया गया। हयात बाग के उत्तर में और इसके तथा किले की उत्तरी दीवार के बीच में जो शाहजादों के महलात थे, वे भी गिरा दिए गए।

किले के पांच दरवाजे थे। लाहौरी दरवाजा और दिल्ली दरवाजा शहर की तरफ और एक दरवाजा दरिया की तरफ सलीमगढ़ में जाने के लिए था। उस तरफ जाने के लिए दरिया पर पुल बना हुआ था। चौथी थी खिड़की या दरियाई

दरवाजा जो मुसम्मन बुर्ज के नीचे है और पांचवां असद बुर्ज के नीचे था। यह दरिया पर जाता था। इस तरफ से किश्ती में सवार होकर आगरे जाते थे। किले की चारदीवारी में बीच-बीच में बुर्ज बने हुए हैं।

लाहौरी दरवाजा सदर दरवाजा था। यह किले की पश्चिमी दीवार के मध्य में चांदनी चौक के ऐन सामने पड़ता है। शाहजहां के वक्त में यह दरवाजा सीधा चांदनी चौक के सामने पड़ता था। खाई पर से गुजरने के लिए काठ का पुल था। दरवाजे के सामने एक खूबसूरत बाग लगा हुआ था और उसके आगे चौक जिसमें बादशाह के हिन्दू अंगरक्षक, जिनकी बारी होती थी, ठहरते थे। इस चौक के सामने एक बड़ा हौज था जो चांदनी चौक की नहर से मिला हुआ था। औरंगजेब ने इस दरवाजे और दिल्ली दरवाजे के सामने हिफाजत के लिए घोघस (घूंघट) बनवा दिया जिससे बाग खत्म हो गया। शाहजहां ने आगरे से अपनी कैद के दिनों में इस बारे में औरंगजेब को लिखा था कि तुमने घोघस बनवा कर मानो किले की दुल्हन के चेहरे पर नकाब डाल दी। दीवारें खड़ी रहने से किले का रास्ता उत्तर की ओर घूम कर आने का हो गया। इसी आने के हिस्से पर नब्बे वर्ष तक यूनियन जैक लहराता रहा। 90 वर्ष बाद घोघस के ऊपर खड़े होकर श्री जवाहरलाल नेहरू ने 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र भारत का झंडा फहराया था और देश की आजादी का ऐलान किया था।

किले के अन्दर जाने का एक महराबदार दरवाजा 40 फुट ऊंचा और 24 फुट चौड़ा है जिसकी ऊंचाई अहाते की दीवार से आठ फुट अधिक है। इस पर मोरचाबन्दी कंगूरा है जिसके दोनों तरफ लाल पत्थर की दो पतली-पतली मीनारें दस फुट ऊंची हैं। लाहौरी दरवाजा बहुत ऊंचा और महराबदार है। इसकी ऊंचाई 41 फुट और चौड़ाई 24 फुट है। दरवाजे की तीन मंजिलें हैं जिनमें कमरे बने हुए हैं। इनमें किले के रक्षक रहते हैं। गदर से पहले किले की फौज का कमांडर इन्हीं में रहता था। बुर्जों पर अष्टकोण छतरियां बनी हुई हैं। बुर्जों के कंगूरों के बीचोबीच दरवाजे का दरमियानी कंगूरा है। दरवाजे के ऊपर वाले कंगूरे की मुंडेर पर एक कतार लाल पत्थर की तीन-तीन फुट ऊंची खुली महराबों की है जिन पर सात छोटी-छोटी संगमरमर की बुर्जियां महराबों के बराबर-बराबर हैं। 1857 ई० के गदर में इसी दरवाजे के सामने मिस्टर फ्रेजर, कप्तान डगलस, पादरी यंग आदि अंग्रेज कत्ल किए गए थे।

दिल्ली दरवाजा

बिल्कुल इसी तरह का दक्षिणी द्वार है जिसको दिल्ली दरवाजा कहते हैं। यह जामा मस्जिद की तरफ है। बादशाह इसी दरवाजे से शुक्रवार के दिन नमाज पढ़ने जामा मस्जिद आया करते थे। इसी दरवाजे के सामने अन्दर की तरफ

महराब के इधर-उधर 1903 ई० में लार्ड कर्जन ने पत्थर के दो हाथी खड़े करवा दिए थे।

छत्ता लाहौरी दरवाजा

लाहौरी दरवाजे से दाखिल होकर एक छत्ता 230 फुट लम्बा और 13 फुट चौड़ा आता है जिसके बीचो-बीच एक चौक है। इसका व्यास 30 फुट है। इस चौक के दाएं-बाएं छोटे-छोटे दरवाजे हैं जो किसी समय किले की बहुत आबाद जगहों पर निकलते थे। इस छत्ते के दोनों ओर चार फुट ऊंचे चबूतरे पर बत्तीस दुकानें हैं। यह किसी जमाने में छत्ता बाजार के नाम से मशहूर था और इस बाजार में हर किस्म का सामान बिकता था। अब भी यहां सामान बिकता है। छत्ते की छत लदाओ की है जिसमें तरह-तरह के लहरे और मोड़ बने हुए हैं। छत्ते के दोनों ओर दो मंजिला मकान बने हुए हैं। ऐसा ही छत्ता दिल्ली दरवाजे के सामने भी है।

नक्कारखाना

लाहौरी दरवाजे के छत्ते में से गुजरने के बाद हमको एक सजा हुआ चौक 200 फुट लम्बा और 140 फुट चौड़ा मिलता है जिसके गिर्द मकान बने हुए थे। इनमें उमरा और मनसबदारों की बैठकें थीं। इस चौक के दक्षिण और पश्चिम के कोने में कुछ और इमारतें थीं जिनमें उच्च अधिकारी राज-कार्य में लगे रहते थे। चौक के बीच में एक हौज था जिसमें नहर गिरती थी और जो हर वक्त भरा रहता था। यह नहर चौक के बीचोंबीच में से गुजरती थी जिससे इस चौक के दो टुकड़े हो गए थे। नहर के बराबर-बराबर दोनों ओर एक चौड़ी सड़क उत्तर से दक्षिण को थी जो एक ओर शाही बागों को चली गई थी जिनको यही नहर पानी पहुंचाती थी और दक्षिण की ओर दिल्ली दरवाजे से आ मिली थी। हौज के सामने और लाहौरी दरवाजे के बाजार के अन्दरूनी दरवाजे के मुकाबले में एक पुख्ता जंगले के अन्दर नक्कारखाने की लाल पत्थर की पक्की इमारत थी। अंग्रेजी जमाने में फौजी काम के लिए यहां बहुत कुछ टूट-फूट हुई है। अब न इस चौक की दीवारें हैं, न हौज, न कोई इमारत बाकी है, न ही वह पत्थर का जंगला रहा, लेकिन नक्कार-खाने के कमरे और दर खुले हुए थे। अब कई दर बन्द कर दिए गए हैं। बाजार के दरवाजे और नक्कारखाने के बीच की इमारत गिराकर मैदान साफ कर दिया गया है। इसलिए यह पता नहीं चलता कि शाहजहां के काल में नक्कारखाने के दोनों ओर क्या-क्या इमारतें बनी हुई थीं। इस नक्कारखाने के ऊपर हर रोज पांच बार नौबत बजा करती थी। इतवार को सारे दिन नौबत बजती थी क्योंकि वह दिन शुभ माना जाता था। इसके अतिरिक्त बादशाह की जन्म-तिथि को भी सारे दिन नौबत बजती थी। नक्कारखाना तीन फुट ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है जो अब चबूतरे के इस सिरे से उस सिरे तक बढ़ा दिया गया है। नक्कारखाने का दालान

70 फुट चौड़ा और 46 फुट ऊंचा है जिसके चारो कोनों पर 10-10 फुट ऊंची बुर्जियां हैं। नक्कारखाने का दरवाजा 29 फुट ऊंचा और 100 फुट चौड़ा है जिसके बीच में दोनों ओर दो मंजिला कमरे हैं। उनके आगे भी महराबें बनी हुई हैं और इनके इधर-उधर ऊपर जाने को सीढ़ियां हैं। उसके ऊपर पंचदरा दालान है। इधर-उधर दोनों ओर उसके दर हैं। इसी दालान में नौबत बजा करती थी। छत के उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण-पश्चिमी कोनों पर चार खम्भों की चौकोर बुर्जियां हैं जिनके गुंबदों के नीचे एक चौड़ा छज्जा है। यह दरवाजा, जो नक्कारखाने के काम में आता था, वास्तव में दीवाने आम के सहन का दरवाजा है।

हतियापोल दरवाजा

नक्कारखाने के दरवाजे को हतियापोल दरवाजा भी कहते थे। कुछ लोगों का यह कहना है कि यह नाम इस कारण पड़ा कि दरवाजे के दोनों तरफ दो पत्थर के हाथी खड़े थे। कुछ यह कहते हैं कि यहां हाथी कभी खड़े नहीं हुए क्योंकि सिवा शाही खानदान के सदस्यों के सारे उमरा जो हाथी पर सवार होते थे दीवाने आम के सहन में दाखिल होने से पूर्व यहीं अदब के ख्याल से हाथियों पर से उतर पड़ते थे। इसलिए यह नाम मशहूर हो गया। नक्कारखाने के दरवाजे में से सिवा शाही खानदान वालों के और किसी को सवारी पर बैठ कर जाने का अधिकार न था। राजदूत, मन्त्री, उमरा सब-के-सब पैदल ही जाते थे। इस रसम की पाबन्दी आखिरी दम अर्थात बहादुरशाह के जमाने तक की जाती रही। चुनांचे अंग्रेज रेजीडेंट मिस्टर होकिंज इसी इल्जाम पर कि वह शाही अदब कायम नहीं रखता था, मौकूफ कर दिया गया था। यह दरवाजा बड़ा ऐतिहासिक है। 1712-13 ई० में जहांदारशाह को और 1713-19 ई० में फर्रुखसियर को इसी नौबतखाने में कत्ल किया गया था।

दीवान आम

जिस जमाने में यह इमारत अपनी असली हालत में थी तो इसकी लम्बाई 550 फुट और चौड़ाई 300 फुट थी। इसकी चारदीवारी के अन्दर एक सिलसिला मकानों और दालानों का था जिनकी बाबत बरनियर ने लिखा है कि वह महल इंग्लिस्तान के शाही महल से मिलता-जुलता था। केवल इतना अन्तर है कि यह दो मंजिला नहीं है और दालान अलहदा-अलहदा है। इस महल के कमरे बहुत खुले हुए और चौड़े थे जिनकी कुर्सी 3½ फुट थी। इन स्थानों में वे दरबारी और उमरा रहते थे जिनकी बैठक होती थी। ईद वगैरह बड़े त्योहार पर ये स्थान बड़ी शान के साथ सजाए जाते थे। खम्भों पर कीमखाब और दरों में रेशमी और मखमली पर्दे लगाए जाते थे। फर्श बढ़िया-से-बढ़िया कालीनों से सजाया जाता था। 1857 ई० के बाद इस महल के अहाते के तमाम मकान और दीवारें गिरा कर

जमीन के बराबर कर दिए गए । अब उनका कोई नामो-निशान बाकी नहीं है। अब यहां दीवाने आम का बड़ा भारी दालान अकेला खड़ा है यह वास्तव में पूर्वी दीवार से मिले हुए सहन का मध्य है। इस दालान के सीधी तरफ एक फाटक था जिसमें से एक दूसरे सहन में जा निकलते थे। इसके बाएं हाथ बलीग्रहद के महलात थे जिन्हें गिरा कर सपाट मैदान कर दिया गया है। दीवाने ग्राम के महल की भी हालत खराब हुए बिना न रही। इसका सोने का काम जगह-जगह से खुरच डाला गया और पच्चीकारी के काम में जो कीमती पत्थर और नगीने जड़े हुए थे वे भी निकाल लिए गए, मगर जो बचा है वह भी देखने योग्य है। यह तमाम इमारत लाल पत्थर की बनी हुई है। चबूतरा चार फुट ऊंचा है और दालान अस्सी फुट लम्बा और चालीस फुट चौड़ा है। बुर्जियों की ऊंचाई छोड़ कर छत की ऊंचाई तीस फुट है। यह दालान तीन तरफ से खुला हुआ है। केवल एक ओर दीवार है। छत सपाट है जिसके तीन ओर चौड़ा छज्जा है। दालान के अन्दर तीन कतारें सात-सात दरों की हैं। हर एक दर में चार-चार खम्भे छ: छ: फुट के अन्तर पर हैं जिन पर बंगड़ेदार महराबें पछील की दीवार से शुरू होकर इमारत तक हैं। दालान के आगे बरामदे में दस बड़े-बड़े खम्भे हैं जिनकी महराबें इसी प्रकार की हैं। दालान के तीन ओर सीढ़ियां हैं—पांच सामने की ओर और सात-सात इधर-उधर।

सिंहासन का स्थान

पछील की दीवार के मध्य में करीब 21 फुट की चौड़ाई में संगमरमर पर पच्चीकारी का काम किया गया है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के और रंगों के पत्थर जड़े हुए हैं और जहां तरह-तरह की फूल-पत्तियां, बेल-बूटे, गुलदस्ते और चिड़ियों की सनग्रतकारी दिखाई गई है। बीच में एक संगमरमर का चबूतरा आठ फुट ऊंचा और सात फुट चौड़ा है [जिस पर संगमरमर का कुर्सीदार बंगला चार गज मुरब्बा बना हुआ है। इसके चार खम्भे हैं जिन पर वह बंगला खड़ा है। ये खम्भे संगमरमर की खुदाई के काम के हैं जिन पर सुनहरी कलस चढ़े हुए हैं। इस बंगले पर और पीछे की दीवार पर जो सात गज लम्बी और ढाई गज चौड़ी है तरह-तरह के रंगीन और बहुमूल्य पत्थर लगे हुए हैं और बेल-बूटे तराशे हुए हैं। इस दीवार के पीछे शाही महल था। उसमें दरवाजे लगे हुए थे। जब कभी दरबारे आम होता था, बादशाह उस ओर से आते थे और तख्त पर बैठते थे और तमाम राज्य अधिकारी हाथ बांध कर तख्त के सामने खड़े होते थे। तख्त की कुर्सी आदमी के कद से ऊंची है। इस वास्ते इस तख्त के आगे संगमरमर का बहुत सुन्दर एक तख्त रखा है। जब किसी को कुछ निवेदन करना होता था तो आज्ञा पाकर वजीर खड़ा होकर बादशाह के सामने निवेदन पेश करता था। यह तख्त संगमरमर का है और 7 फुट लम्बा, 4 फुट चौड़ा तथा 3 फुट ऊंचा है। इसका सारा काम लोग उखाड़ कर ले गए। चबूतरे के चारों ओर

भी वैसा ही रंगीन फूल-पत्ती का काम है। संगमरमर का यह चबूतरा और बंगला दालान की पूरी चौड़ाई में नहीं है बल्कि चबूतरे के दोनों ओर है। इस बंगले की जमीन के बराबर दो संगमरमर की बैठकें थीं जो उन उमरा के बैठने के लिए थीं जो बादशाह के खास खिदमतगार थे। इस तख्त के तीन ओर मुलम्मा किया हुआ था और चौथी ओर एक लोहे का 30′ × 40′ का कटहरा था। यह स्थान दरबारी उमरा के लिए नियत था।

बादशाह के दरबार की शान भी अजीब हुआ करती थी। उस वक्त बड़े-बड़े राजा, उमरा और मनसबदार दरबार में हाजिर होने के लिए जर्क-वर्क लिबास पहने, बड़ी शानो-शौकत के साथ आते थे। मनसबदार घोड़ों पर सवार, दो नौकर उनके आगे, दो पीछे 'हटो, बचो' कहते चलते थे। राजा और उमरा घोड़ों पर चढ़ कर या पालकियों में सवार होकर आते थे जिन्हें छः आदमी कंधों पर उठाते थे। पालकियों में की मखाब के मसनद-तकिए लगे रहते थे, उमरा उनका सहारा लगाए, पान चबाते आते थे। पालकी के एक तरफ एक नौकर चीनी या चांदी का पीकदान उठाए और दूसरी तरफ दो नौकर मोरपंख से हवा करते और मक्खियां उड़ाते चलते थे। तीन-चार पैदल आगे-आगे 'हटो, बचो' करते चलते थे। पीछे चंद घुड़सवार अंगरक्षकों के रूप में चलते थे।

दरबार डेढ़-दो घंटे होता था। दरबार के शुरू में चंद घोड़े बादशाह के सामने से गुजारे जाते थे ताकि बादशाह देख सकें कि वे अच्छी हालत में रखे जाते हैं या नहीं। फिर हाथी गुजारे जाते थे जिनको खूब सजाया होता था। वे सूंड उठा कर बादशाह को सलाम करते थे। फिर हिरन, नील गाय, भैंसे, कुत्ते और फिर परिंदे गुजारे जाते थे। इसके बाद किसी-न-किसी अमीर की फौज गुजरती थी। इतना ही नहीं, बादशाह खुद अपनी फौज के एक-एक सिपाही का ध्यान रखते थे। सबसे वह खुद मिलते थे और पूछताछ करते थे। जनता की तमाम अर्जियां बादशाह के सामने पेश की जाती थीं जिन्हें वह खुद सुनते थे। अर्जीरसां दरबार में खुद हाजिर होकर दरख्वास्त गुजारता था। बादशाह उसकी शिकायत सुन कर हुक्म सादिर फरमाते थे और इन्साफ करते थे।

यह सब अदब-कायदे फर्रुखसियर के जमाने तक ही जारी रहे।

दीवाने आम के उत्तर की ओर के दरवाजे से होकर एक सहन को पार करके एक और दरवाजा आता था जिसे लाल पर्दा कहते थे। इससे जनानखाने में दाखिल होते थे जो दीवाने खास के सामने की तरफ था। इस दरवाजे पर बादशाह के अंगरक्षक खड़े रहते थे। अन्तिम सहन के मध्य में और नदी की ओर की दीवार के साथ, जिसे जेरसरोखा कहते थे, दीवाने खास, शाही हम्माम और मोती मस्जिद की इमारतें तथा बादशाह के निजी मकान थे। इधर से ही रंगमहल और जनानखाने को रास्ता था। इसके उत्तर की तरफ हयात बख्श बाग था।

दीवाने खास

जिस सहन में लाल पर्दे में से होकर जाते थे, वह दीवाने ग्राम के सहन का चौथाई था। दूसरा सहन लम्बाई-चौड़ाई में 210′×180′ था। इससे मिले हुए शाहजहां का हम्माम और औरंगजेब की मोती मस्जिद हैं। इस अहाते की पश्चिमी दीवार खुद वह सहन था, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है और दक्षिण की ओर महल और रंगमहल था। दीवाने खास की लामिसाल इमारत साढ़े चार फुट ऊंचे 240′×78′ लम्बे-चौड़े चबूतरे पर बनी हुई है। यह इमारत बिलकुल सीधी-सादी संगमरमर की बनी हुई है। इस दालान की लम्बाई 90 फुट और चौड़ाई 67 फुट है। इसकी छत चपटी और महराबें बंगड़ेदार हैं। इसमें बत्तीस खम्भों की दोहरी कतार है। इनमें 24 तो चार-चार फुट मुरब्बा हैं और बाकी आठ चार फुट लम्बे और दो फुट चौड़े हैं। दालान की पूर्वी दीवार के दो दरों में संगमरमर की जालियां लगी हैं। सारा दालान चबूतरे सहित संगमरमर का बना हुआ है। दालान की छत के चारों कोनों पर खुली हुई चौकोर बुर्जियां हैं, जिन पर छतरियां और चार-चार स्तून हैं और ऊपर सुनहरी कलस है। खम्भों पर तरह-तरह के बेल-बूटों, फूल-पत्तियों की पच्चीकारी का काम है। तरह-तरह के रंग भरे हुए हैं। दीवाने खास में से एक नहर संगमरमर की कोई बारह फुट चौड़ी, जिस पर संगमरमर की सिलें ढकी हुई हैं, चलती थी। इसे नहरे बहिश्त कहते थे। इसमें जगह-जगह फव्वारे छूटते रहते थे। दालान का अन्दरूनी कमरा 48 फुट लम्बा और 27 फुट चौड़ा है जिसके बारह स्तून हैं। अब भी संगमरमर का वह चौकोर चबूतरा मौजूद है, जिस पर शाहजहां का वह विख्यात तख्त ताऊस था, जिसकी ख्याति संसार में फैली हुई थी। इस दालान की कार्नेस के नीचे कमरे की चौड़ाई में कोने की महरावों पर छोटी-सी संगमरमर की तख्तियों पर सादुल्लाखां का मशहूर कुतबा लिखा हुआ है :—

"अगर फरदौस बररुए जमीं अस्त
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त।"

(यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहां है, यहां है, यहां है!)

बरनियर ने इस दीवान की बाबत लिखा है : इस महल में बादशाह कुर्सी पर जुलूस फरमाते हैं और उमरा उनके गिर्द खड़े रहते हैं। इसी जगह प्रायः ओहदेदार एकान्त में मिलते हैं और बादशाह उनका निवेदन सुनते हैं और यहीं राज्य के विशेष कार्य सम्पन्न होते हैं।

इस दीवान की छत निरी चांदी की थी, जिसे मरहठे और जाट उखाड़ कर ले गए। रोहिल्लों ने जब दिल्ली पर हमला किया था उस वक्त की गोलाबारी के

निशान यहां मौजूद हैं। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली इसी दीवान में उस वक्त के बादशाह से मिले थे। यहीं गुलाम कादिर रोहिल्ले ने शाहआलम की आंखें फुड़वाई थीं और यहीं 1803 ई० में लार्ड लेक ने मरहठों से बादशाह को कैद से छुड़ा कर अपने तहत में लिया था। 27 दिसम्बर 1857 के दिन इसी जगह गदर के बाद ब्रिटिश काल शुरू हुआ और फिर जनवरी 1858 में इसी जगह बहादुरशाह बादशाह पर मुकदमा चलाया गया।

तख्त ताऊस

नादिरशाह ने जब 1739 ई० में दिल्ली पर कब्जा किया तो तख्त ताऊस को तोड़-ताड़ कर सोना-चांदी और कुल जवाहरात लेकर वह चलता बना। बरनियर ने इस तख्त को औरंगजेब के काल में देखा था, जो जश्न के मौके पर लोगों को दिखाया जाता था। उसने लिखा है : "इस तख्त के ठोस सोने के छः बड़े-बड़े भारी-भारी पाए थे, जिन पर लाल, जमुर्रद और हीरे जड़े हुए थे। जो बेशुमार अमूल्य रत्न इसमें जड़े हुए थे उनके मूल्य का अनुमान इस कारण होना कठिन था क्योंकि तख्त के निकट किसी को जाने की हिम्मत नहीं थी कि उनकी गिनती कर सके या उनको देख कर कीमत का अंदाजा लगा सके। फिर भी कीमत का अनुमान चार करोड़ रुपया किया जाता है। इसे शाहजहां ने बनवाया था और इस कदर बेश-कीमत जवाहरात इसमें इसलिए लगवाए थे ताकि मुगलों की दौलत का लोग अनुमान कर सकें कि जब तख्त में इतनी दौलत लगी है तो न जाने और कितनी दौलत उनके पास होगी। इसमें जो दो मोर हैं, वे जवाहरात और मोतियों से लिपे हैं। यह एक फ्रांसीसी ने बनाए थे। तख्त के नीचे सभी उमरा अपने तड़क-भड़क वाले लिबासों में एक निचले तख्त पर जमा होते थे, जिनके चारों ओर चांदी का कटहरा लगा था। इस पर किमखाब का शामियाना तना रहता था। भवन के खम्भों पर किमखाब और जरी-बूटी की साटन लपेटी जाती थी। तमाम बड़े-बड़े कमरों के सामने शामियाने ताने जाते थे। फर्श बेशकीमत कालीनों का होता था या लम्बी-चौड़ी दरियों का। भवन से मिला हुआ बाहर की तरफ एक शामियाना आधे सहन को घेर लेता था, जिसके गिर्द कनातें लगी रहती थीं। इन पर चांदी के पतरों के खोल चढ़े रहते थे। इस शानदार शामियाने का अबरा बिल्कुल सुर्ख और अन्दर मछली बन्दर की निहायत उम्दा छींट का अस्तर था। शामियानों में तरह-तरह के झाड़ और फानूस की हांडियां रोशनी के लिए लटकाई जाती थीं। रात को जश्न महताबी होता था, जिसमें तमाम चीजें सफेद होती थीं। यह नौ दिन तक चलता था। अकबर सानी के जमाने में दीवाने खास की हालत इस कदर खराब हो गई थी कि लोग उसे देख कर अफसोस के साथ हाथ मला करते थे। जगह-जगह टूटे सामान का ढेर लगा रहता था। कबूतरों की बीटों से सब सामान खराब हो गया था।

हम्माम

दीवाने खास के उत्तर में शाही हम्माम है। इन दोनों इमारतों के बीच में 47 फुट चौड़ा संगमरमर का फर्श है। हम्माम की इमारत की दक्षिणी दीवार के मध्य में दीवाने खास के मुकाबिले में तीन दर का हाल है, जो हम्माम की ड्योढ़ी है। इस ड्योढ़ी के दोनों ओर दो कमरे हैं, जिनके बीच में से हम्माम में दाखिल होते हैं। हम्माम में संगमरमर के फर्श के तीन बड़े कमरे हैं। इन कमरों का फर्श, आधी-आधी दीवारें, हौज, पानी गर्म करने की जगह, इन सब पर पहले रंग-बिरंग के कीमती पत्थर जड़े हुए थे और बहुत सुन्दर फूल-पत्तियां और गुलदस्ते बने हुए थे। दरिया की ओर के कमरे में पानी के लिए तीन हौज बने हुए हैं। पूर्वी दीवार में एक छोटी-सी संगमरमर की बालकनी है, जिसके हर तरफ एक-एक खिड़की है। इसमें संगमरमर की जालियां लगी हैं। दूसरे कमरे में केवल एक ही हौज है और तीसरे कमरे में पानी गर्म करने का बहुत सुन्दर गर्भा बना है, जिसके पीछे एक तवा लगा हुआ है जहां से पानी गर्म होकर आता था। हम्माम में जगह-जगह नहरें दौड़ती थीं, फव्वारे लगे हुए थे, जिनसे हर कमरे में पानी पहुंचता रहता था। हम्माम में रोशनी आने के लिए धुंधले आइने लगे हुए थे। तस्बीहखाने के दक्षिण में हम्माम है, जिसमें जाने का दरवाजा दीवाने खास की पूर्वी दीवार के सामने है। हम्माम की इमारत के इधर-उधर जो कमरे हैं कहते हैं वे साहबजादों के हम्माम थे। हम्माम की इमारत के तीन बड़े हिस्से हैं। पहला दरजा दरिया की तरफ 'जामा कुन' कहलाता है। यहां कपड़े उतारे जाते थे या स्नान के बाद आकर बैठते थे और कपड़े पहन कर नाश्ता करते थे। इसमें छोटे-छोटे हौजों में फव्वारे लगे हैं। एक में से गुलाब जल निकलता था। इसकी एक खिड़की में बड़ी बारीक काम की जाली लगी है और कुछ रंगीन आइने लगे हुए हैं। दूसरा दरजा उत्तर की ओर है, जिसमें बैठने की चौकी है जो संगमरमर की बनी है और उस पर पच्चीकारी का काम किया हुआ है। इसके आगे एक कमरा है, जिसमें फर्श से लेकर छत तक तरह-तरह के पत्थर लगे हुए हैं जैसे कालीन बिछा हो। बीचों-बीच एक हौज है। चार कोनों पर चार फव्वारे लगे हैं, जिनकी धारें मिल कर हौज में गिरा करती थीं। दीवार से मिली हुई एक नहर बनी है। इस स्थान की यह खूबी है कि चाहे उसे ठंडा कर लें चाहे गर्म। तीसरा दरजा, जिसके पश्चिम में गर्म पानी के संगमरमर के हौज बने हुए हैं जिनमें सवा सौ मन लकड़ियां जलाई जाती थीं। इसके आगे एक चौकोर कमरा है, जिसके बीच में संगमरमर का चबूतरा है। इस पर बैठ कर स्नान करते थे। उत्तर की ओर दूसरे दरजे की तरह हौज बने हैं जिन्हें चाहे गर्म रखें चाहे ठंडा, यह खूबी है। यहां भी सब जगह मीनाकारी का काम हुआ है। हम्माम के हर दरजे में रोशनी रंगीन शीशों से आती थी। मुगल बादशाहों को हम्मामों का बड़ा शौक था। यहां बैठ कर सल्तनत के बड़े-बड़े काम हुआ करते थे।

हीरा महल (1824 ई०)

इसे बहादुरशाह ने 1824 में बनवाया। यह हम्माम के उत्तर में है। इसमें और हम्माम में सहन छुटा हुआ है और इस सहन में चार गज की चौड़ाई की एक नहर संगमरमर की बनी हुई है। यह वही नहर है जिसका नाम नहरे बहिश्त है और दीवाने खास तथा रंगमहल में गई है। इस सहन के बीच में नहर के किनारे पर संगमरमर की एक बड़ी बारहदरी 32¼ फुट उत्तर-दक्षिण में और 19⅓ फुट पूर्व-पश्चिम में बहादुरशाह सानी अन्तिम मुगल बादशाह की बनवाई हुई है। इसको मिरज़ा फखरु वलीअहद की बारहदरी कह कर पुकारते थे। हम्माम के पीछे एक कुआं बहादुरशाह का बनवाया हुआ है। यह महल भी सारा संगमरमर का बहुत खबसूरत बना हुआ है। नहर के बीच में सुनहरे-रुपहले चौबीस फव्वारे थे, जो सदा छूटा करते थे।

मोती महल

हीरा महल के उत्तर में और हयातबख्श बाग के सामने मोती महल था, जो गदर के बाद तोड़ डाला गया और वहां तोपखाने की बैरक बना दी गई। यह महल लाल पत्थर का बना हुआ था। इसमें एक हौज और एक नहर थी, जिसमें से एक चादर दो गज चौड़ी हयातबख्श बाग के एक हौज में गिरा करती थी। यह भी बहादुरशाह ने बनवाया था।

मोती मस्जिद (1659-60 ई०)

इसे औरंगजेब ने लाल किले में 1659-60 ई० में एक लाख साठ हज़ार रुपये की लागत से बनवाया था। यह निहायत खूबसूरत और पूरी संगमरमर की बनी हुई इमारत है। इसमें बादशाह और बेगमात इबादत करने जाया करते थे। 1857 ई० में इस पर एक गोला तोप का गिरने से गुंबदों को हानि पहुंची थी, जिसकी बाद में मरम्मत करवा दी गई। लेकिन सुनहरी गुंबद पहले जैसे न बन सके। अब सादे हैं। यद्यपि यह एक छोटी-सी मस्जिद है, लेकिन यह हिन्दुस्तान की खास मस्जिदों में से एक है। मस्जिद में दाखिल होने का छोटा-सा दरवाजा संगमरमर का है, जिस पर पीतल के जुड़वां किवाड़ चढ़े हुए हैं। मस्जिद का सहन 35 फुट लम्बा और 10 फुट चौड़ा है, जिसमें संगमरमर की सिलों का फर्श है। चारदीवारी बीस फुट ऊंची है। दीवारों में चौड़ी सिलें लगी हुई हैं, जिनमें दीवारदोज स्तून हैं और उन पर संगमरमर की बुर्जियां हैं। अहाते की उत्तरी दीवार में जनाने महल में से आने का रास्ता है, जिधर से बेगमात आकर नमाज पढ़ती थीं। सहन के बीच में संगमरमर का एक हौज 10′×8′ का है, जो हयात बाग की नहर के पानी से भरा जाता था। मस्जिद की लम्बाई 40 फुट और चौड़ाई 30 फुट है। इसकी ऊंचाई 25 फुट और छत बीच के कलस तक 12 फुट और है। मस्जिद के तीन दर हैं, जो बंगड़ेदार महराबों के हैं और

बहुत ऊंचे नहीं हैं। चबूतरे की चार सीढ़ियां हैं जो 3½ फुट ऊंचा है। इन महराबों के चार खम्भे हैं, जिनके सिरे और बैठक पर कटाई का काम बना हुआ है, बीच के भाग साफ हैं। इधर-उधर की महराबें आठ फुट चौड़ी हैं और बीच की उससे दुगुनी। आगे के दालान के पीछे एक दालान और है। उसके भी तीन ही दर हैं। इस प्रकार इस मस्जिद में स्तूनों की दो कतारों में से छः भाग हो गए हैं। मस्जिद की पच्छील की दीवार में हस्ब मामूल दीवारदोज महराब है। बीच के दोनों बाजू मीनारें हैं और इधर-उधर की महराबों के सामने हर एक हिस्से में संगमरमर का चौड़ा छज्जा है। छत की मुंडेर पर खुदाई का काम है। यह मुंडेर बीच के दर पर महराबदार है और बाकी दो दरों पर हमवार। तीनों गुंबद संगमरमर के कमरख की तरह बने हुए हैं, जो सुनहरी थे। इसीलिए कुछ लोग इसे सुनहरी मस्जिद भी कहते हैं। मस्जिद के उत्तर में हुजरा बना हुआ है, जो प्रार्थना करने के लिए है।

बाग हयातबख्श

यह बाग, जिसका अब कोई निशान बाकी नहीं रहा, मोती मस्जिद के उत्तर में था। 1902 ई० में यह मल्बे के नीचे दबा पड़ा था और बाकी हिस्सा सड़कों में आ गया था। इसकी नहरें, रविशें, झरने, नालियां, टूट-फूट कर तबाह हो गई थीं। लार्ड कर्जन ने इसे 1904 ई० में ठीक करवाया था। जब यह अपनी असली हालत में था तो इसका नक्शा इस प्रकार था :

बाग के बीचोंबीच एक बड़ा हौज था। चारों ओर लाल पत्थर की नहरें छः गज चौड़ी थीं। हर नहर में तीस-तीस फव्वारे चांदी के छूटते थे और रविश में नहर का पानी आता था। हौज के दो तरफ जो मकान थे उनको सावन-भादों कहते थे। इस बाग की लम्बाई 150 गज और चौड़ाई 125 गज थी। बीच वाले हौज की लम्बाई 158 फुट और चौड़ाई 153 फुट है। हौज के बीच में 49 फव्वारे चांदी के लगे हुए थे, जो हरदम छूटा करते थे। इनके अतिरिक्त हौज के चारों ओर 112 फव्वारे चांदी के हौज की जानिब झुके हुए थे। इन फव्वारों का भी अब नाम नहीं रहा। हौज के गिर्द जंगला लगा हुआ था, जिसका ऊपरी हिस्सा शाहजहानी काल का नहीं है, बल्कि बहादुरशाह सानी के जमाने का प्रतीत होता है।

महताब बाग

हयात बाग के पश्चिम में यह बाग किसी जमाने में देखने योग्य था। मगर मुद्दतें हुईं उजड़ गया। इसके चप्पे-चप्पे पर नहर और हौज थे।

जफरमहल या जलमहल (1842 ई०)

महताब बाग के हौज के बीचोंबीच बहादुरशाह ने 1842 ई० में यह सारा महल लाल पत्थर का बनवाया था इसका एक दरजा है और चारों तरफ गुलाम

गर्दिश के तौर पर मकान और कोनों पर हुजरे बने हुए हैं। एक तरफ इस मकान में आने जाने का पुल बना हुआ था। अब उसका पता नहीं है। दालान की छत भी गिर गई है। गदर के बाद फौज के लिए इसे तैरने का हौज बना दिया गया था।

बावली

यह हयात बाग के पश्चिम में परेड ग्राउण्ड पर बनी हुई है। यह अठपहलू है जिसका व्यास 21 फुट है। इसी के पास एक तालाब 20 फुट मुरब्बा है। यह हौज तैरने के लिए बनाया गया है। तालाब के उत्तर और पश्चिम में सीढ़ियां हैं और दोनों तरफ कमरे भी बने हुए हैं। अब बावली और तालाब दोनों पर जस्त की चादरें जड़ी हुई हैं। इसीसे अब किले के बागात को पानी दिया जाता है।

मस्जिद

यह छता चौक के उत्तर में है। यह 42½ फुट लम्बी और 24 फुट चौड़ी है। यह भी बहादुरशाह की बनवाई हुई है।

तस्बीह खाना, शयनगृह, बड़ी बैठक

हम्मामखाने के बराबर और दीवाने खास के दक्षिण में पूरे संगमरमर के बने हुए चंद कमरे हैं, जिनके बीच में से नहर जाती है। इन कमरों और दीवाने खास के बीच संगमरमर का एक चबूतरा 46 फुट चौड़ा है। तस्वीहखाना, शयनगृह बड़ी बैठक सब एक ही इमारत में हैं। तस्वीहखाने के तीन कमरे दीवाने खास के सामने ही हैं, जिनके पीछे और तीन कमरे शयनगृह के नाम से मशहूर हैं और शयनगृह से मिला हुआ दालान बड़ी बैठक या तोशाखाना कहलाता है। ये तीनों इमारतें मिल कर दीवाने खास के बराबर हैं। इस चबूतरे के बराबर बादशाह के शयनगृह का एक दालान बना हुआ है, जो तस्वीहखाना कहलाता है। कभी-कभी जब एकांत की जरूरत पड़ती थी या खास-खास उमरा का दरबार होता था तो बादशाह यहां आते थे। इस दीवार के बीच में संगमरमर का तराज़ू बना हुआ है और वहां मेजाने अदल (न्याय का तराजू) लिखा हुआ है और तारों के झुरमुट में से चांद निकलता दिखाया गया है। बहुत-सा सुनहरी काम किया हुआ है। इसी तस्वीहखाने में से शयनगृह का रास्ता है, जो खासी ड्योढ़ी कहलाती है। उन सब कमरों में बहुमूल्य रंग-बिरंगे पत्थरों की पच्चीकारी का काम था। असली पत्थर लोगों ने निकाल लिए। उन गढ़ों में रंग भर दिया गया है। बीच के कमरे की उत्तर-दक्षिणी दीवार के दरवाजों में संगमरमर की जालियां लगी हुई हैं। पश्चिमी कमरे में से दीवाने खास को रास्ता जाता है, जिसे ड्योढ़ी खास कहते हैं। इस दालान के बीच में एक हौज है, जो संगमरमर का है। इसकी तह में तरह-तरह के रंगीन और बहुमूल्य पत्थरों से हजारों गुल-बूटे और पत्तियां बनाई गई हैं और हर फूल की पंखड़ी में एक सूराख

रखा है कि जब पानी छोड़ा जाता था तो उन सूराखों में से फव्वारे छूटते थे। इस हौज की पच्चीकारी में हज़ारों पंखड़ियां हैं। इस दालान के आगे संगमरमर का सहन है और नहर बहिश्त (स्वर्ग की नहर) बहती और लहराती रंग महल में चली जाती है। पश्चिमी रुख के दो कमरों में कुछ सामान सजा कर रखा गया है जिसमें शाहजहां की खास तलवार आबदार है।

बुर्ज तिला या मुसम्मन बुर्ज या खास महल

शयनगृह की पूर्वी दीवार से मिला हुआ दरिया की तरफ एक गुंबददार बरामदा है। यह एक अष्टकोण कमरा है जिस पर गुंबद है। किसी ज़माने में सारे गुंबद पर तांबे का झोल चढ़ा हुआ था, जिस पर सोने का मुलम्मा था। अब उस पर सफेद अस्तरकारी है। इस कमरे के तीन कोने तो शयनगृह में आ गए हैं और पांच कोने दरिया की तरफ हैं, जिनमें से चार में संगमरमर की जालियां लगी हुई हैं। इसी प्रकार के मुसम्मन बुर्ज आगरे और लाहौर के किलों में भी बने हुए हैं। यह बतौर झरोखे के काम में लिए जाते थे, जहां बादशाह रोज़ बाहर निकल कर नीचे खड़ी हुई अपनी रिआया को दर्शन दिया करता था। मुसम्मन बुर्ज का असली बुर्ज अब नहीं रहा। मौजूदा बुर्ज गदर के बाद का बना हुआ है। असली और तरह का था। उस पर सोने के पत्तरों का खोल चढ़ा हुआ था।

खिजरी दरवाजा

मुसम्मन बुर्ज के नीचे चंद सीढ़ियां उतर कर दरिया के किनारे पहुंच जाते हैं। यह वही दरवाज़ा है जिसको कप्तान डगलस 11 मई 1857 को इसलिए खुलवाना चाहता था कि बलवइयों से बातें कर सके।

सलीमगढ़ दरवाज़ा (1622 ई०)

सलीमगढ़ की तरफ उत्तरी फसील के बीच में एक दरवाज़ा है, जिसका कोई खास नाम नहीं है। इस दरवाज़े से उत्तर की तरफ थोड़े फासले से जहांगीर का बनवाया हुआ वह पुल था जो उसने 1622 ई० में सलीमगढ़ में जाने के लिए बनवाया था। सलीमगढ़ दरवाज़े के पास किले की उत्तर-पूर्वी फसील में एक खिड़की है। इसका नाम भी कोई नहीं जानता।

रंगमहल या इमतियाज़ महल

दीवाने आम की पुश्त पर शाहजहां के ज़माने का यह सबसे बड़ा और आलीशान महल है, जो उत्तर से दक्षिण की ओर 153½ फुट और पूर्व से पश्चिम की ओर 69¼ फुट है। इस का सहन बहुत चौड़ा था। इसमें नहरें जाती थीं और फव्वारे छूटते थे। बाग लगा हुआ था। अब सब बरबाद हो गया है। अगले ज़माने में इस महल के सहन में एक हौज 50 गज़ लम्बा और 48 गज़ चौड़ा था, जिसमें पांच फव्वारे

छूटते थे। एक नहर थी, जिसमें 25 फव्वारे छूटते थे। बगीचा था जो 115 गज लम्बा और 100 गज़ चौड़ा था। उसके गिर्द लाल पत्थर का पैवीलियन था, जिस पर दो हज़ार सुनहरी कलसियां चढ़ी हुई थीं। तीन तरफ उस सहन के सत्तर गज की चौड़ाई का मकान बना हुआ था। दरिया की तरफ बाग और इमतियाज़ महल की इमारत थी। कुर्सी देकर एक चबूतरा बना है, जिसके नीचे दो बहुत बड़े तहखाने हैं। इस चबूतरे पर पचदरा तिहरा दालान बना है 57 × 36 गज का। बीच के दर के सामने सहन की तरफ एक हौज संगमरमर का है और एक पत्थर का है जिसमें डेढ़ गज की ऊंचाई से तीन गज चौड़ी चादर पड़ती थी और उसमें से उछल कर नीचे के हौज में आती थी और वहां से नहरें बहती थीं। इस महल की रोकार तमाम संगमरमर की थी। महल की छत के चारों कोनों पर चार चौखंडियां बनी थीं। इस महल के कोनों पर चार बंगले संगीन बने हुए थे ताकि गर्मियों में खस लगाई जा सके। महल के अन्दर भी महराबदार दर हैं। एक हौज है, जो खिला हुआ फूल प्रतीत होता है। यह हौज साढ़े सात गज मुरब्बा है। कहते हैं इस महल की छत निरी चांदी की थी। फर्रुखसियर के वक्त में किसी ज़रूरत के कारण यह छत उखाड़ी गई और उसके बदले में तांबे की छत चढ़ा दी गई। फिर अकबर सानी के वक्त तांबे की छत भी उखाड़ ली गई और लकड़ी की चढ़ा दी गई जो अब बोसीदा हो गई है।

संगमरमर का हौज

इसका ज़िक्र ऊपर आया है। संगमरमर के बिल्कुल बेजोड़ पत्थर में पायों सहित तराशा हुआ है, जो शाहजहां के वक्त में मकराने की खान से लाया गया था। यह हौज दस फुट दो इंच लम्बा, 9½ फुट चौड़ा, और 2¼ फुट गहरा है। यह चार मुरब्बा संगमरमर के पायों पर खड़ा है। इसे बड़ी अहतियात से मकराने से लाकर लाल किले के मोती महल में रखा गया था। गदर के बाद इसे कम्पनी बाग में ले जाया गया। 1911 में इसे रंगमहल के सामने रखवा दिया गया।

दरिया महल

रंगमहल और इमतियाज महल के पास इस नाम का एक महल था। अब इसका कोई पता नहीं रहा।

छोटी बैठक

इमतियाज महल के दक्षिण में यह भी एक इमारत थी। यह भी और इमारतों की तरह बहुत सुन्दर थी। अब यह बाकी नहीं है।

मुमताज़ महल

अब इसमें अजायबखाना है। यह उत्तर से दक्षिण को 44 फुट और पूर्व से पश्चिम को करीब 82 फुट है। इसका शुमार बड़े महलों में था। गदर के बाद

इससे कैदखाने का काम लिया गया । इसकी छत के चारों कोनों पर सुनहरी छतरियां थीं । वे अब नहीं रहीं ।

असद बुर्ज

किले के दक्षिण और पूर्व के कोने में एक बहुत बड़ा बुर्ज है । जब हरनाथ चेले ने 1803 ई० में दिल्ली पर हमला किया था तो अखतरलोने ने बहादुरी से उसको परास्त किया था । बुर्ज को हमले से बहुत हानि पहुंची थी, लेकिन अकबरशाह सानी ने फिर से उसको ठीक करके बनवा दिया था ।

बदर रौ दरवाजा

यह किले के दक्षिण तथा पूर्व के कोने में असद बुर्ज के पास है । इस दरवाजे के सामने भी घोघस बना हुआ है, जो शायद औरंगजेब ने बनवाया था ।

शाह बुर्ज

किले के तीन मशहूर बुर्जों में से आखिरी बुर्ज यह है । यह बुर्ज दरिया की तरफ हम्माम से थोड़ी दूर किला सलीमगढ़ से मिला हुआ है । यह हीरा महल के उत्तर-पूर्व के कोने में है । यह तीन मंजिला था और दरिया पार से इसका दृश्य बहुत सुन्दर दिखाई देता था । 1784 ई० में शाह आलम वली अहद जवांबख्त अपने बाप के मन्त्रियों की सख्ती से तंग होकर इसी बुर्ज पर से पगड़ियां लटका कर भागा था और अंग्रेजों के पास लखनऊ चला गया था । बुर्ज उत्तरी भी कहलाता है । अब इस बुर्ज की दो ही मंजिलें बाकी हैं । गुंबद गदर में उड़ गया था । दक्षिण की ओर का संगमरमर का बरामदा बहुत सुन्दर है । अब हालत खराब होती जा रही है । यह पूर्व से पश्चिम तक 69 ½ फुट और उत्तर से दक्षिण तक 33 फुट है । गदर के बाद इसमें फौजी पहरेदार रहा करते थे । 1904 ई० में इसे उनसे खाली करा लिया गया । इस बुर्ज और हम्माम के बीच में 1911 ई० में एक चबूतरा बना कर तख्ता घास लगा दिया गया है । संगमरमर के बरामदे के पीछे गुंबद के नीचे के कमरे की छत पर शीशे लगे हुए थे । इस बुर्ज का व्यास 100 गज है और इसके तीन हिस्से हैं । पहले हिस्से को जमीन से बारह गज की कुर्सी देकर बनाया है । उसकी छत अन्दर से गोल और ऊपर से चपटी है । तमाम इमारत पत्थर की बनी हुई है । इजारे तक संगमरमर है, जिसमें रंगबिरंगे पत्थरों की पच्चीकारी है । इजारे से छत तक संगपठानी है जिसको पालिश करके सफेद कर दिया है और सुनहरी बेल-बूटे बनाए गए हैं । दूसरा हिस्सा अठपहलू है । इसका व्यास आठ गज है । इसमें चार ताक हैं । ताक की लम्बाई-चौड़ाई उत्तर और पूर्व की चार-चार गज है । पश्चिमी और दक्षिणी ताक की लम्बाई चार गज और चौड़ाई तीन गज है । तीसरे दरजे के बीच में एक हौज तीन गज व्यास का निहायत खूबसूरत है । पश्चिमी

ताक में एक आबशार है और छोटे-छोटे महराबदार ताक बने हुए हैं, जिनमें दिन को फूल और रात को दीपक रखते थे। इस आबशार (चद्दर) के आगे एक $3\frac{1}{2}' \times 2\frac{1}{2}'$ का संगमरमर का हौज है। इस हौज से पूर्वी ताक के किनारे तक एक नहर डेढ़ गज चौड़ी खालिस संगमरमर की है। इस नहर में से एक नहर निकल कर पश्चिमी हौज के ताक में पड़ती है। उससे बुर्ज की नहर में आकर मुसम्मन हौज में से होकर पूर्वी ताक की तरफ बहती है। उसके नीचे दरिया की तरफ एक आबशार बनी हुई है। सारे किले में उसी जगह से नहर गई है और हर जगह पानी जाने की खिड़कियां इसी बुर्ज में बनी हुई हैं। हर एक पर जहां-जहां पानी जाता है उस जगह के नाम लिखे हुए हैं।

नहर बहिश्त :

शाह बुर्ज के पास से यह नहर निकाली गई है, जो तमाम दीवाने खास और शयनगृह में से होती हुई रंगमहल को चली गई है।

सावन-भादों :

यह दोनों मकान एक ही प्रकार के हैं। ये $48\frac{1}{2} \times 35\frac{1}{4}$ फुट हैं, जो सिर से पैर तक संगमरमर के बने हुए हैं। हयातबख्श बाग के उत्तर का मकान सावन कहलाता है और दक्षिण का भादों। एक चबूतरा कुर्सी देकर बनाया गया है और उस पर 16 खम्भे लगा कर एक दालान बनाया है, जिसमें दो दीवान पूर्व-पश्चिम की ओर हैं और दो बंगले हैं। इनके आगे और पीछे बीचोंबीच एक चौखंडी-सी बनी हुई है। इसमें एक हौज संगमरमर का है। इस मकान में नहर बहिश्त आती है और हौज में चादर होकर पड़ती है और नहर इसमें से निकल कर आगे एक ओर चादर छूटती है और नहर में पड़ती है। इसका नाम भादों है। अब इस मकान में पानी आने का और चादरें छूटने का रास्ता बिल्कुल बंद हो गया है। इस मकान के हौज और चादरों में महराबी छोटे-छोटे ताक बना दिए गए हैं। दिन को उनमें गुलदान रखे जाते थे और रात को रोशनी हुआ करती थी। उसके ऊपर से पानी की चादर पड़ती थी। इसकी छत के चारों कोनों पर भी चार बुर्जियां चौखंडी सुनहरी बनी हुई हैं। सावन का मकान भी भादों की तरह है। उसी प्रकार की चादर बनी हुई है और हौज भी है और उसी तरह गुलदान और चिराग रखने के आले हैं। पानी के गिरने से जो शोर होता है वह सावन की वर्षा के समान होता है। इसीलिए इसका यह नाम पड़ा है।

लालकिला औरंगजेब के जमाने में

शाहजहां के बनाए हुए किले का पूर्ण उदय औरंगजेब के काल में हुआ था। किले की अधिक रक्षा के लिए औरंगजेब ने किले के लाहौरी और दिल्ली दरवाजों

के सामने बुस का घूंघट बनवा दिया था। इसके अतिरिक्त उसने कई अन्य संगमरमर की इमारतें और एक मोती मस्जिद बनवाई। जब दरवाज़ों के सामने औरंगज़ेब ने घूंघट बनवाए तो कैद से शाहजहां ने उसे एक पत्र लिखा था कि तुमने किले को दुल्हन बनाया और उसका घूंघट निकाला।

औरंगज़ेब के बाद किसी अन्य बादशाह ने किले की कोई विशेष तरक्की नहीं की। इस किले की तबाही से पूर्व इसकी जो हालत थी वह इस प्रकार है :—

लाहौरी दरवाज़े से एक लम्बे-चौड़े छज्जे में दाखिल होते हैं, जिसके बीच में एक बड़ा भारी रोशनदान है। इसके दोनों तरफ एक पतली-सी गली निकाली गई है। सीधी तरफ की गली एक बाग में जा निकलती थी। इसके आगे इमारतों के दो ब्लाक थे, जिनमें से एक सिलसिला इमारतों का, जो दक्षिण की ओर था, दिल्ली दरवाज़े तक कुछ ऊपर तीन सौ गज तक चला गया था और दूसरा किले के पश्चिम की ओर फसील से पूर्व की ओर डेढ़ सौ गज लम्बा था। इन दोनों ब्लाकों की इमारतों में साधारण दरजे के ओहदेदार या तो रहते थे या अपनी ड्यूटी पर रहा करते थे। बाएं हाथ की गली आगे बढ़ कर एक आम रास्ते में मिल जाती थी, जिसमें से और गलियां और चौराहे फूटते थे। किले की उत्तर और फसील की तरफ का सारा मैदान इमारतों से पटा पड़ा था, जिनमें कारखाने थे। एक हाल में ज़रदोज़ और कारचोबसाज़ हर वक्त काम में लगे रहते थे, जिन पर एक दारोगा नियत था। दूसरी जगह सुनार ज़ेवर गढ़ा करते थे। तीसरे में नक्काश, चौथे में रंगसाज, पांचवें में लोहार, बढ़ई, खरादी, दरज़ी, मोची आदि, छठे में ज़रबफ्त, किमखाब, रेशमी कपड़ा और बारीक मलमल बनाने वाले तथा दूसरा कपड़ा बनाने वाले जैसे पगड़ियां, सीले, पटके, दोपट्टे और हर प्रकार के फूलदार जनाने कपड़े बनाने वाले। काम वाले लोग अपने-अपने कारखानों में बहुत तड़के अपने काम में लग जाते थे और सारा दिन काम में लगे रहते थे। वे शाम के करीब अपने अपने घरों को चले जाते थे। छज्जे से ठीक पूर्व में नक्कारखाना था। एक सड़क उत्तर से दक्षिण को जाती थी। उसके बीच में आने जाने से इस बड़े सहन के दो भाग बन गए थे। यह सड़क दक्षिण में ऐन सीध में किले के दिल्ली दरवाज़े को चली गई थी और उत्तर की ओर मशहूर महताब बाग था। वहां से यह किले की उत्तरी फसील से जा मिली थी। यह सड़क सात सौ गज लम्बी थी। इसके दोनों ओर मकान बने थे और सामने दुकानें थीं। वास्तव में यह एक बाज़ार था जिससे गर्मियों और बरसात में बड़ा आराम मिलता था क्योंकि सारा बाज़ार पटा हुआ छता है, जिसमें हवा और रोशनी के लिए जगह-जगह रोशनदान हैं। नक्कारखाने से दीवाने आम को जाने का यह रास्ता था। दीवाने आम में उत्तर में शाही रसोईघर था और उसी ओर उससे और आगे बढ़ कर

महताब तथा हयातबख्श बाग थे। उनके सामने नहर दौड़ती थी, जो सीधी पूर्व की ओर शाह बुर्ज को जाती थी और फिर आगे बढ़ कर किले की उत्तरी चारदीवारी से जा मिलती थी। इस हिस्से में शाही घुड़साल थी। दीवाने आम के दक्षिण में शाही महल और बड़े उमराओं के महलात का सिलसिला था, जो किले की दक्षिणी फसील पर जाकर खत्म होता था। इन दो सड़कों के अतिरिक्त किले में दाएं बाएं और बहुत से छोटे-बड़े रास्ते थे, जो राज्य अधिकारियों के मकानों को जाते थे। इन उमराओं की बारी हफ्तेवार आती थी और वे चौबीस घंटे बराबर हाजिर रहते थे। इन उमराओं के मकान भी महल थे। हर एक अमीर इसी उधेड़-बुन में रहता था कि वह हर बात में दूसरे से बढ़-चढ़ कर रहे। शाही महलात में अलहदा-अलहदा खूबसूरत सजे-सजाऐ कमरे थे, जो बहुत लम्बे-चौड़े और शानदार थे और हर एक बेगम की शान के योग्य थे। हर कमरे के आगे हौज और बहता पानी था और हर ओर बाग, साएदार वृक्ष, पानी की नालियां, फव्वारे हुजरे और तहखाने थे, जिनमें गर्मी में आराम मिल सके। दीवाने आम के सहन के उत्तर-पूर्व के कोने में एक महराबदार फाटक था, जिसमें से एक और छोटे सहन में रास्ता निकलता था। इस सहन के अहाते की पूर्वी दीवार में एक और दरवाजा दीवाने खास में जाने का था। इसी सहन के उत्तर में मोती मस्जिद, शाही हम्माम और इसी ओर कुछ आगे बढ़ कर हयातबख्श बाग, शाही बुर्ज और नहर थी। इसके आगे फिर शाही इमारतों का तांता बराबर किले की उत्तरी दीवार तक चला गया था। दीवाने खास के ऐन दक्षिण तथा पश्चिम में और दीवाने आम से मिला हुआ इमतियाज महल और रंगमहल था। किले की दक्षिणी दीवार और उन दोनों महलों के अहातों के बीच में जो जगह थी वह सारी शाही महलों से भरी पड़ी थी। उन्हीं इमारतों के एक कोने में असद बुर्ज था। यह तमाम इमारतें दरिया की ओर थीं।

मोहम्मदशाह के अहद में किले की अन्दर की इमारतों में बड़ा परिवर्तन हुआ। नादिरशाह के दिल्ली के कत्ले आम के बाद किले की बेनजीर इमारतें खराब और खस्ता हालत में हो गई। जो खाली जगह शाहजहां ने छोड़ दी थी, वहां भी बेकायदा मकान बना दिए गए और सब खूबसूरती नष्ट कर दी गई। लोग सारा काम खुरच कर ले गए और सारे कीमती पत्थर उखाड़ कर ले गए। शाही इमारतें उपेक्षा के कारण बरबाद हो गई। उस शानो-शौकत का कहीं पता नहीं रहा, जो शाहजहां और औरंगजेब के जमाने में हुआ करती थी। 1857 ई० के गदर के बाद अंग्रेजों ने किले की इमारतों को तोड़-फोड़ कर अपनी जरूरत के अनुसार बना लिया। किले में अब जगह-जगह बैरकें बन गई और किले की काया ही पलट गई। सब कुछ बरबाद होकर अब चंद शाही इमारतें देखने को बाकी बची हैं, जिनको नक्कार-खाने के दरवाजे से शुरू करके देखने जाते हैं।

मुसलमानों की बारहवीं दिल्ली

(मौजूदा दिल्ली शाहजहांबाद)

लाल किले की तामीर के दस बरस बाद 1648 ई० में शाहजहांबाद शहर की बुनियाद पड़ी, जो अपने पुराने नाम दिल्ली से ही मशहूर है। यह उत्तर में 28°. 38° भूमध्य रेखा पर, पूर्व में 77°. 113° रेखा पर स्थित है जो कन्याकुमारी के करीब-करीब उत्तर में और काहिरा (मिस्र) तथा कैंटन दो प्राचीन शहरों की समरेखा पर पड़ता है। यह पंजाब प्रदेश के दक्षिण-पूर्व में, यमुना नदी तथा अरावली की पहाड़ियों के बीच के भाग में आबाद है। आबादी की शक्ल अर्ध-गोलाकार है। पोलियार ने इसे कमान की शक्ल का बताया है जिसकी तांत का सिरा यमुना है। पूर्व का करीब-करीब आधा भाग किले को समझना चाहिए। इसकी चारदीवारी का घेरा करीब 5½ मील है। वान ऑलिक ने दिल्ली को भारतवर्ष का रोम कहा है और शहर की मस्जिदों, महलों, मंडवों, भवनों, बागों और बादशाहों और उनकी बेगमात की तथा मकबरों की बड़ी प्रशंसा की है। फ्रेंकलिन लिखता है कि शहर और इसकी इमारतों तथा खंडहरात का बेहतरीन दृश्य पहाड़ी पर से होता है, जो शहर से तीन मील पर है। कहा जाता है शहर सात बरस में बन कर तैयार हुआ था। बरनियर, जिसने इस शहर को 1663 ई० में देखा था, लिखता है: "कोई चालीस वर्ष पहले औरंगजेब के पिता शाहजहां ने इस शहर को बनाने का इरादा किया। इसलिए उस बनाने वाले के नाम पर यह शाहजहांबाद या जहांबाद कहलाने लगा। शाहजहां ने आगरे की गर्मी से तंग आकर इस शहर को बसाने का इरादा किया। दिल्ली बिल्कुल एक नया शहर है, जो यमुना के किनारे आबाद है और हमारे शहर लायर के जोड़ का है। दरिया पार जाने को किश्तियों का एक पुल है। शहर के एक तरफ तो दरिया रक्षक है, बाकी तीन ओर पत्थरों की फसील है। लेकिन शहर का घेरा पूरा नहीं है; क्योंकि न तो खाई है न शहर की रक्षा के लिए और कोई प्रबंध किया गया है। अलबत्ता सौ-सौ कदम के अन्तर पर पुराने ढंग का एक-एक बुर्ज और एक-एक मिट्टी का धुस फसील के पीछे एक चबूतरे की शक्ल का बना हुआ है। फसील की चौड़ाई चार या पांच फ्रांसीसी फुट है। यह फसील न केवल शहर के चारों ओर है बल्कि किले के गिर्द भी है। इस शहर के आसपास तीन-चार छोटी-छोटी बस्तियां भी हैं। अगर इन सबको मिला लिया जाए तो शहर का फैलाव बहुत बढ़ जाएगा।" 1803 ई० में जब जनरल लेक ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया तो जनरल आक्टर लोनी ने मरहठों से रक्षा करने को सारी फसील की मरम्मत करवाई और सब काम पुख्ता करवा दिया। मोरचों को बढ़ा कर ऐसा कर दिया कि उन पर नौ-नौ तोपें चढ़ सकें। 1811 ई० में बुर्जों और फसील की मरम्मत फिर की गई और बड़ी-बड़ी घूंघट की दीवारें तोड़ कर छोटे-छोटे मोर्चे बना दिए गए और चारों ओर खाई

खोद दी गई। गाजीउद्दीन खां का मकबरा और मदरसा, जो चारदीवारी के बाहर अर्थात् अजमेरी दरवाजे के बाहर था, उसको भी अन्दर लेकर घेरे को पूरा कर दिया गया। कहा जाता है कि पुरानी फसील 1650 ई० में डेढ़ लाख रुपये से बनी थी। इसमें केवल बन्दूकें छोड़ने की मोरियां बनाई गई थीं। यह फसील चार वर्ष में तैयार हुई थी, लेकिन बरसात में यह गिर पड़ी और फिर सात साल में चार लाख की लागत से बनाई गई। यह फसील 1,664 गज लम्बी, 9 गज ऊंची और 4 गज चौड़ी थी जिसमें तीस-तीस फुट व्यास के सत्ताइस बुर्ज, चौदह दरवाजे और चौदह खिड़कियां थीं। फ्रेंकलिन लिखता है कि उत्तर और पश्चिम की ओर शालामार बाग से, दक्षिण और पूर्व में कुतुब मीनार से और अजमेरी दरवाजे से लेकर कुतुब तक बीस मील का घेरा था। इसकी बाबत बिशप हेबर ने लिखा है—"यह स्थान बरबादी और तबाही का भयानक दृश्य है; जहां तक नजर दौड़ती है, खण्डहर ही खण्डहर, मकबरे ही मकबरे, टूटी-फूटी इमारतें, खारे के पत्थरों के ढेर, संगमरमर के टुकड़े इस भूमि पर, जो पथरिया और चटियल मैदान हैं, बिखरे पड़े हैं।"

यदि हम (1) कश्मीरी दरवाजे से चलें, जो शहर के उत्तर में है, तो नीचे बताए रास्ते से शहर का चक्कर लगा सकते हैं :—

(2) मोरी दरवाजा उत्तर में जो 1867 ई० में ढहा कर मैदान बना दिया गया, (3) काबुली दरवाजा पश्चिम में—यह भी तोड़ दिया गया, (4) लाहौरी दरवाजा—यह भी टूट गया, (5) अजमेरी दरवाजा—दक्षिण-पश्चिम में, (6) तुर्कमान दरवाजा—दक्षिण में, (7) दिल्ली दरवाजा—दक्षिण में, (8) खैराती दरवाजा (मस्जिद घटा) पूर्व में, (9) राजघाट दरवाजा—पूर्व में दरिया की ओर, (10) कलकत्ती दरवाजा उत्तर-पूर्व में था जहां से एक रास्ता 1852 में निकाला गया था। अब दो छोटे-छोटे दरवाजे रेल के नीचे बने हुए हैं जिन पर इसका नाम लिखा है, (11) केला घाट दरवाजा—उत्तर-पश्चिम में दरिया की ओर (12) निगमबोध दरवाजा—उत्तर-पूर्व में दरिया की ओर, (13) पत्थर घाटी दरवाजा—तोड़ दिया गया, (14) बदर रौ दरवाजा—उत्तर-पूर्व में।

इन दरवाजों के अतिरिक्त निम्न 14 खिड़कियां थीं :—

(1) खिड़की जीनत-उल मस्जिद—इस नाम की मस्जिद के नीचे (मस्जिद घटा), (2) खिड़की नवाब अहमद बख्श खां, (3) खिड़की नवाब गाजीउद्दीन खां, (4) खिड़की नसीरगंज, (5) नई खिड़की, (6) खिड़की शाहगंज, (7) खिड़की अजमेरी दरवाजा, (8) खिड़की सैयद भोला, (9) खिड़की बुलन्द बाग, (10) खिड़की फराशखाना, (11) खिड़की अमीर खां, (12) खिड़की खलील खां, (13) खिड़की बहादुर अली खां, (14) खिड़की निगम बोध

दिल्ली शहर भोजला और झोझला नाम की दो पहाड़ियों पर बसाया गया है। भोजला पहाड़ी शहर के बीच में है, झोझला उत्तरी-पश्चिमी चारदीवारी से मिली हुई है। शहर जिस भू-भाग पर बसा हुआ है उसका थोड़ा-सा ढलाव पश्चिम से पूर्व की ओर है अर्थात् पहाड़ी से यमुना की ओर। अली मरदान की नहर काबुली दरवाजे से शहर में दाखिल होकर शहर और किले दोनों में दौड़ती थी और फिर दरिया में जा मिलती थी। किले की फसील से मिले हुए बहुत-से बागात थे, मगर जब बरनियर आया था तो एक ही बाकी बचा था, जिसकी बाबत उसने लिखा है—"यह बाग बारह महीने हरे-भरे पौधों और फलों से सरसब्ज और भरा रहता था, जो किले की फसील के साथ एक खास लुत्फ़ दिखाता था।" सादुल्ला खां वजीर आजम शाहजहां का बनाया हुआ 'चौक शाही' भी था, जिसका जिक्र बरनियर ने यों किया है—"बाग से मिला हुआ चौक शाही है, जिसका एक रुख किले के दरवाजे की तरफ है और दूसरा सिरा दो बड़े बाजारों की तरफ खत्म होता है। इसी चौक के अहाते में उन उमराओं के खेमे लगे रहते हैं, जिनकी नशिस्त की बारी हर सप्ताह आती है। इसी मैदान में बहुत सुबह वे लोग शाही घोड़ों को टहलाते हैं और यहीं सवारों का बड़ा अफ़सर उन घोड़ों का मआयना करता है, जो फौज में भरती किए जाते हैं। यहां एक बहुत बड़ा बाजार है, जिसमें हर प्रकार की वस्तुएं मिलती हैं, जैसे पेरिस में 'पोट नाउफ' में। यहां तमाशाई और सैलानी जमा रहते हैं। हिन्दू और मुसलमान ज्योतिषी और नजूमी भी जमा होते हैं।" अब इस चौक का कहीं पता भी नहीं है। किले के गिर्द दूर-दूर तक सारा मैदान साफ कर दिया गया है। लोग कहते हैं कि किले के लाहौरी दरवाजे के दोनों ओर अर्थात् उत्तर और दक्षिण में यह बाजार था। शहर के दो बड़े बाजार, जो शाही चौक पर आकर खत्म होते थे, उनके बारे में बरनियर लिखता है—"जहां तक निगाह दौड़ती है बाजार ही बाजार नजर आता है, लेकिन वह बाजार, जो, लाहौरी दरवाजे की तरफ है (अर्थात् चांदनी चौक) वह इनसे भी बहुत बड़ा है। दूसरा बाजार शहर के दिल्ली दरवाजे से लेकर शाही चौक तक है (अर्थात् फ़ैज बाजार)। बनावट के लिहाज से दोनों बाजार एक ही प्रकार के हैं। सड़क के दोनों ओर ईंट और चूने की पक्की दुकानें बनी हुई हैं, जिनके बालाखाने (कमरे) बैठने का काम देते हैं। इन बाजारों में दुकानों के अतिरिक्त और कोई इमारत नहीं है। ये सब दुकानें अलहदा-अलहदा हैं। बीच में पार्टीशन लगे हुए हैं। बीच में रास्ता नहीं है। दुकानों में दिन के वक्त कारीगर लोग अपना-अपना काम करते हैं, साहूकार लेन-देन व कारोबार करते हैं। ताजिर अपना माल-असबाब, बरतन, इत्यादि दिखलाते हैं। इन दुकानों और कारखानों के पिछवाड़े सौदागरों के रहने के घर हैं, जिनमें सुन्दर गलियां बन गई हैं। ये मकान आवश्यकतानुसार अच्छे-खासे बड़े, हवादार और आराम देने वाले मालूम लगते हैं, जो सड़क की धूल से दूर हैं। इन मकानों में से दुकानों की छतों पर जाने का रास्ता है, जहां लोग रात को सोते हैं लेकिन सारे बाजार में इस

प्रकार के मकानों का सिलसिला नहीं है। बाजारों के अतिरिक्त शहर के दूसरे हिस्सों में दो मंजिला मकान बहुत कम हैं। (मैंगजीनों के मकान नीचे इसलिए बनाए गए हैं ताकि सड़क पर से पूरी तरह दिखाई न दे सकें।")

सादुल्लाह खां के नाम का भी एक चौक था। वह भी अब नहीं रहा। लेकिन मालूम हो सकता है कि उसके एक तरफ तो किले का दिल्ली दरवाजा और फौजी बाग था और दूसरी तरफ सुनहरी मस्जिद और पुराना कब्रिस्तान, जहां अब मेमोरियल क्रास है। इस चौक के दक्षिण की ओर दो और बाजार आकर मिलते थे। फ़ैज़ बाज़ार उत्तर की ओर शहर के दिल्ली दरवाज़े से किले के दिल्ली दरवाज़े तक था और खास बाज़ार जामा मस्जिद और किले के दरवाज़े के बीच में था। अलबत्ता बीच में कुछ थोड़ा-सा भाग छूटा हुआ था। बरनियर ने जिन दो बाज़ारों का जिक्र किया है, उनमें से एक बड़ा बाजार अर्थात् चांदनी चौक तो शहर के लाहौरी दरवाज़े से किले के लाहौरी दरवाज़े तक था और दूसरा शहर के दिल्ली दरवाज़े से किले के लाहौरी दरवाज़े तक था। इन दोनों बाजारों के भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाते थे। वह भाग, जो किले के लाहौरी दरवाज़े और दरीबे के खूनी दरवाज़े के बीच में है, उर्दू बाजार कहलाता था। इस नाम का कारण यह प्रतीत होता है कि किसी जमाने में शहर के इस भाग में लश्करी लोग रहते थे। खूनी दरवाज़े और कोतवाली के बीच के भाग को फूल की मंडी कहते थे। इस जगह उस जमाने में एक चौक बना हुआ था। कोतवाली और तिराहे के बीच में चौपड़ का बाजार था। तिराहे और उसके नजदीक अशरफी का कटरा वास्तव में चांदनी चौक का सबसे पुररौनक भाग था। चांदनी चौक में घंटा घर वाली जगह एक हौज था। उससे आगे फतहपुरी की मस्जिद तक फतहपुरी बाज़ार कहलाता था। चांदनी चौक के बाज़ार के तमाम मकान ऊंचाई में यकसां थे और दुकानों में महराबदार दरवाजे और रंगीन सायबान थे। उत्तरी दरवाजे से रास्ता जहांआरा बेगम की सराय (मौजूदा कम्पनी बाग) को जाता था और दक्षिणी दरवाज़े से एक रास्ता शहर के एक बहुत आबाद और गुंजान हिस्से को जाता था जो अब नई सड़क कहलाता है। हौज के चारों ओर बहुतायत से फल-फलारी, तरकारियां और मिठाई की दुकानें थीं। धीरे-धीरे यह बाज़ार अपने हिस्सों के साथ चांदनी चौक कहलाने लगा। चांदनी चौक बाज़ार शाहजहां की लड़की जहांआरा बेगम ने 1600 ई० में बनवाया था और उसके कई बरस बाद इसने एक बाग और सराय भी बनवाई थी। किले के लाहौरी दरवाजे से लेकर चांदनी चौक के आखिर तक यह बाज़ार 1520 गज लम्बा और चालीस गज चौड़ा था जिसके बीचोंबीच अलीमर्दा की नहर बहती थी। उसके दोनों ओर सरसब्ज सायेदार वृक्ष लगे हुए थे। अब न नहर रही न वृक्ष (वृक्षों को 1912 में बीडन डिप्टी कमिश्नर ने कटवा दिया।) चांदनी चौक

के पूर्वी सिरे पर किले का लाहौरी दरवाजा था और दूसरे सिरे पर फतहपुरी बेगम की मस्जिद।

बरनियर ने जिस दूसरे बाजार का जिक्र किया है, वह किले के लाहौरी दरवाजे से लेकर शहर के दिल्ली दरवाजे तक था। लाहौरी दरवाजे से चौक सादुल्लाह खां तक इस बाजार का हिस्सा बिल्कुल मामूली था। बाकी हिस्सा जो ऐन उत्तरी हद पर था, उसका जिक्र चौक के साथ आएगा।

एक और दूसरा बड़ा बाजार वह था जो किले के लाहौरी दरवाजे से उन इमारतों तक चला गया था, जिनमें से एक इमारत को जनरल लेक ने दिल्ली फतह करने के बाद रेजीडेंसी बना लिया था। यह बाजार आध मील लम्बा और तीस फुट चौड़ा था और इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक साएदार वृक्ष दोनों ओर ऐसे लगे हुए थे कि एक सुन्दर एवेन्यू बन गया था। खास बाजार का अब कोई हिस्सा बाकी नहीं रहा। 1857 के गदर के बाद जब किले के गिर्द जमीन को इमारतों से साफ किया गया तो चांदनी चौक तथा खास बाजार भी उसकी भेंट चढ़ गए। एक वह जमाना था कि इन दोनों बाजारों में सुबह से रात तक कंधे से कंधा छिलता था और दुकानें माल से खचाखच भरी रहती थीं, जिनमें हर किस्म का बहुमूल्य सामान रहता था। त्योहारों के दिन जामा मस्जिद जब बादशाह की सवारी जाती थी तो इसी बाजार में से गुजरती थी। अब भी फ़ैज़ बाजार का दो-तिहाई भाग बाकी है। बाजार के दोनों ओर दुकानें थीं और बीच में से नहर बहती थी (अब नहीं रही)। जगह-जगह बड़ी-बड़ी इमारतों, महलों और मस्जिदों के खंडहर नजर आते थे। यह बाजार शाहजहां की बेगम अकबराबादी बेगम का बसाया हुआ था, जिसके नाम की एक मस्जिद भी यहां मौजूद थी। यह बाजार ग्यारह सौ गज लम्बा और तीस गज चौड़ा था। यह और उर्दू बाजार साथ-ही-साथ और चांदनी चौक बाजार से पहले बने थे। इनमें जो नहर बहती थी वह चार फुट चौड़ी और पांच फुट गहरी शाहजहां की बनवाई हुई थी। दिल्ली के बाजारों में फ़ैज़ बाजार को यह गर्व प्राप्त था कि यहां की दुकानों में ईराक, खुरासान और दूसरे बन्दरगाहों के बेशुमार माल के अतिरिक्त यूरोप की चीजें भी बहुतायत के साथ मिलती थीं। बरनियर लिखता है—"इस शहर में बेशुमार बाजार और पेच-दर-पेच गलियां हैं। बाजारों की दुकानें समय-समय पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा बनाई गई हैं। इसलिए सब यकसां नहीं हैं। फिर भी कई दुकानें बहुत बड़ी हैं, जिनकी सीधी कतार दूर तक चली गई है। शहर के छत्तीस मुहल्ले हैं, जिनमें से अधिकांश के नाम खास-खास शहरियों के नामों पर रखे गए हैं।" बरनियर लिखता है—"इन मुहल्लों में जगह-जगह न्यायाधीश, अदालतों के कर्मचारी, मालदार व्यापारी और दूसरे लोगों के मकान फैले पड़े हैं।" यहां के एक नमूने के मकान के बारे में बरनियर लिखता है—"ऐसे मकान के सहन में हमेशा बाग, वृक्ष, हौज, फव्वारे व बड़ा सदर दरवाजा और

सुन्दर तहखाने होते हैं, जिनमें बड़े-बड़े फर्राशी पंखे लगे रहते हैं। सबसे बेहतर मकान वह समझा जाता है, जो शहर के बीच में हो, जिसमें एक बड़ा फूल बाग और चार बड़े-बड़े कद आदम ऊंचे चबूतरे भी हों और चारों तरफ से ऐसी हवा भी आती हो कि ठंडक रहे। हर अच्छे मकान में रात को सोने के लिए छतें बनी होती हैं और कोठों पर भी दालान होते हैं ताकि बारिश के वक्त उनमें चले जाएं। उम्दा मकानों में आम तौर पर दरियों का फर्श होता है। दीवारों में बड़े-बड़े ताक बने होते हैं, जिनमें चीनी के फूलदान गमले लगे होते हैं। छतों में या तो मुलम्मा किया होता है या वे रंगीन होती हैं, लेकिन मकानों में कहीं जानवर की या इन्सान की तसवीर नहीं होती क्योंकि यह मुस्लिम धर्म के विरुद्ध है।"

यों तो शहर में बड़े-बड़े रईसों और अमीरों के बेशुमार महल थे, मगर सबसे अधिक विख्यात कमरुद्दीन खां, अली मर्दान, ग़ाज़ीउद्दीन खां, सआदत खां और सफदर जंग के महल थे। करनल पालीर 1793 ई० में कुछ अर्सा शाही मुलाजिम रहा। वह भी किसी एक महल में रहता था। उसकी बाबत उसने लिखा है, "यद्यपि यह महल खस्ता और तबाह हालत में है, लेकिन अब भी इसके बनाने वाले की शान का पता चलता है। इसकी ऊंची चारदीवारी के अन्दर बहुत सारी जमीन घिरी हुई है और मकान के सहन में बड़े-बड़े ऊंचे और शानदार दरवाजे हैं। इस महल में नौकरों के, शागिर्द पेशा, मेहमानों और मुलाकातियों के रहने के लिए अलग-अलग हिस्से हैं। घोड़ों और हाथियों के अस्तबल जुदा-जुदा हैं। दीवान खाना और जनाना महल मकान के यह दो बड़े हिस्से हैं, जिनके बीच में आने-जाने का रास्ता है। हर मकान में हमाम और तहखाने का होना जरूरी है।" बरनियर लिखता है कि इन महलात के साथ-साथ कच्चे और छप्पर के बेशुमार छोटे-छोटे मकान भी होते थे, जिनमें गरीब लोग, छोटे दरजे के मुलाजिम, सिपाही, साईस वगैरा रहते थे जिनकी संख्या का कुछ ठिकाना न था। छप्परों के कारण शहर में अक्सर आग लग जाया करती थी। इन्हीं कच्चे और फूस के घरों से दिल्ली की बस्ती चंद गांवों का संग्रह था या एक छावनी प्रतीत होती थी जिसमें जगह-जगह पर बड़ी-बड़ी इमारतें भी खड़ी थीं।

जामा मस्जिद : (1648 ई०)

शाहजहां की बनाई हुई दीगर इमारतों में दिल्ली की जामा मस्जिद सारे हिन्दुस्तान की मस्जिदों में सबसे बड़ी और सब से सुन्दर है। शाहजहां ने इसे 1648 ई० में बनवाया था लेकिन हिसाब से इसकी बुनियाद 1650 ई० में डाली गई। जनरल कनिंघम के अनुसार दिल्ली शहर की इमारतों में जामा मस्जिद और जीनत-उल मस्जिद यही दो इमारतें बढ़-चढ़ कर हैं। जामा मस्जिद लाल किले से कोई हज़ार गज के अन्तर पर भोजला पहाड़ी पर खास बाज़ार

के पश्चिमी सिरे पर बनी हुई है। मस्जिद लाल पत्थर के एक चबूतरे पर बनी हुई है, जो सतह जमीन से कोई तीस फुट ऊंचा और चौदह सौ मुरब्बा गज है। इसकी तामीर बादशाह के वजीर सादुल्लाह खां और फजलखां की देख-रेख में हुई थी। कहा जाता है कि छः हजार राज, बेलदार, मजदूर और संगतराश छः बरस तक लगातार इसकी तामीर में जुटे रहे और बनाने में दस लाख रुपया खर्च हुआ। इसमें पत्थर की कीमत शामिल नहीं है क्योंकि हर किस्म का पत्थर राजाओं और नवाबों ने बादशाह को नजर किया था। मस्जिद जब बन कर तैयार हुई तो ईदउल-फितर करीब थी। मीर इमारत को शाही हुक्म पहुंचा कि हुजूर ईद की नमाज मस्जिद में पढ़ेंगे। हजारों मन मलबा पड़ा हुआ था। जगह-जगह पाड़ें बंधी हुई थीं। इतनी जल्दी सफाई होना मुमकिन न था। तुरन्त हुक्म हुआ कि जिसके जो चीज हाथ लगे उठा ले जाए। फिर क्या था, जरा-सी देर में मस्जिद साफ हो गई। तिनका तक बाकी न रहा। उसी वक्त झाड़-पूंछ कर फर्श कर दिया गया और सजावट हो गई। बादशाह को सूचना दी गई कि मस्जिद आरास्ता है। सुबह ईद की नमाज का वक्त हुआ। शादियाने बजने लगे। बादशाह की सवारी निकली। किले के दरवाजे से मस्जिद के पूर्वी दरवाजे तक सवारों की कतार खड़ी थी। आगे-आगे नकीब और चोबदार, पीछे-पीछे शाहजादे निहायत शान के साथ मस्जिद में दाखिल हुए। चारों ओर से लोगों की भीड़ लग गई। मस्जिद भर गई। नमाज अदा हुई और जमात होने लगी। इमाम, अजान देने वाला, फरश करने वाला, सब बादशाह की तरफ से मुकर्रर हो गए।

मस्जिद के तीन आलीशान दरवाजे पूर्व, दक्षिण तथा उत्तर में हैं और तीनों तरफ बड़ी लम्बी और चौड़ी-चौड़ी सीढ़ियां हैं। उत्तरी दरवाजे की ओर 39 सीढ़ियां हैं। कुछ समय पहले तक इन सीढ़ियों पर नानबाई और कबाबी बैठा करते थे; तमाशे वालों और कथाकारों का जमघट लगा रहता था, जिनकी कहानियां सुनने को लोगों की टोलियां जमा रहती थीं। दक्षिणी दरवाजे की ओर 33 सीढ़ियां हैं जहां कपड़ा बेचने वाले अपना फर्श बिछा कर बैठा करते थे। इस ओर एक बड़ा मदरसा और एक बड़ा बाजार था, जो गदर के बाद गिरा दिया गया। मस्जिद का पूर्वी दरवाजा बादशाह के आने-जाने के लिए मखसूस था। उसकी 35 सीढ़ियां हैं। यहां शाम के वक्त मुर्गियां, कबूतर आदि बिका करते थे। यह गूजरी का बाजार कहलाता था। अब भी यहां शाम के वक्त खासी भीड़ रहती है। मस्जिद के तीनों तरफ काफी संख्या में दुकानें बनी हुई हैं, जिनमें पारचा फरोश, कबाड़ी, कबाब तथा दीगर सौदा बेचने वाले बैठते हैं। चबूतरे के पश्चिम में मस्जिद की असल इमारत है, जिसके बाकी के तीनों भागों में खुले दालान बने हुए हैं और इन्हीं में हर तरफ एक-एक दरवाजा है, जिनमें से लोग आते-जाते

हैं। इस मस्जिद का नक्शा अरब और कुस्तुनतुनिया की मस्जिदों की तर्ज़ का है। इसकी लम्बाई करीब 261 फुट और चौड़ाई 90 फुट है। मस्जिद के तीन कमरखनुमा गुंबद हैं, जिन पर एक-एक पट्टी संगमूसा की और एक-एक संगमरमर की पड़ी हुई है और ऊपर सुनहरी कलस हैं। यह गुंबद लम्बाई में नब्बे गज और चौड़ाई में तीस गज हैं। मस्जिद के दो बहुत ऊंचे और खूबसूरत मीनार लाल पत्थर के हैं, जिन पर खड़ी पट्टियां संगमरमर की हैं। इनकी ऊंचाई 130 फुट है। अन्दर चक्करदार जीना है, जिसमें 130 सीढ़ियां हैं। मीनार के तीन खंड हैं। हर खंड के गिर्द खुला हुआ बरामदा है। चोटी पर की बुर्जी बारहदरी है। मस्जिद के पीछे चार और छोटी-छोटी बुर्जीदार मीनारें हैं। मस्जिद के बड़ी-बड़ी महराबों के सात दर हैं। मस्जिद के इजारे में तमाम संगमरमर लगा हुआ है। आगे के दालान में ग्यारह दर हैं। दालान 24 फुट चौड़ा है। इनमें की बीच की महराब एक दरवाज़े की तरह चौड़ी और ऊंची है और उसके दोनों ओर पतली-पतली अष्टकोण बुर्जियां हैं। इन दरों के माथों पर संगमरमर की तख्तियां चार फुट लम्बी और ढाई फुट चौड़ी हैं, जिन पर संगमूसा की पच्चीकारी के ग्यारह लेख हैं। इन लेखों में मस्जिद की तामीर के हालात और शाहजहां के राज्य काल की देनें और शाहजहां के गुणों का बखान है। मध्य की महराब पर केवल 'रहबर' खुदा हुआ है।

असल मस्जिद के दालान मस्जिद के फर्श से पांच फुट ऊंचे चबूतरे पर बने हुए हैं, जिनमें पश्चिम, उत्तर और दक्षिण तीनों ओर से तीन-तीन सीढ़ियां चढ़ कर अन्दर दाखिल होते हैं। मस्जिद के अन्दरूनी तमाम हिस्से में संगमरमर का फर्श है, जिसमें संगमरमर के मुसल्ले (नमाज पढ़ने के आसन) संगमूसा का हाशिया देकर बनाए गए हैं। हर आसन तीन फुट लम्बा और डेढ़ फुट चौड़ा है। इनकी संख्या 411 है। बरनियर कहता है कि मस्जिद के पिछवाड़े जो बड़े-बड़े पहाड़ी के नाहमवार पत्थर निकले हुए थे उनको छुपाने के लिए सहन मस्जिद में भराव करके इमारत को बहुत ऊंची कुर्सी दी गई है, जिससे मस्जिद की शान और भी बढ़ गई है। मस्जिद सिर से पैर तक लाल पत्थर की बनी हुई है। बेशक, फर्श, महराब और गुंबद संगमरमर के हैं।

मम्बर के पास एक बड़ी गहरी महराब है। मम्बर चार सीढ़ियों के संगमरमर के एक ही पत्थर में काटा हुआ है। इसमें कहीं जोड़ नहीं है। मस्जिद का सहन चारों ओर से घिरा हुआ है, जिसके हर तरफ महराबदार बीस-बीस चौड़े और उतने ही ऊंचे दालान हैं। इन दालानों के कोनों पर बारह-बारह जिलों के बुर्ज हैं, जिन पर संगमरमर के सुनहरी कलस लगे हुए थे। उत्तरी और दक्षिणी दोनों दरवाजे एक ही प्रकार के अर्ध मुसम्मननुमा हैं। दरवाजे 50 फुट ऊंचे और इतने

ही चौड़े हैं। इनकी गहराई 33 फुट है। इन दरवाजों के अन्दर एक-एक छोटा दरवाजा दोनों ओर दोनों मंजिलों में है। दरवाजों के ऊपर कंगूरे और उन पर एक कतार छोटी संगमरमर की बुर्जियों की है, जिसके दोनों सिरों पर निहायत सुन्दर और नाजुक मीनार है। मस्जिद का सदर दुरवाजा सहन के पूर्व में है। यह दरवाजा बड़ा भारी मुसम्मन शक्ल का गुंबददार 50 फुट ऊंचा, 60 फुट चौड़ा और 50 फुट गहरा है। इसकी चौकोर शक्ल अजला को काट कर अष्ट-पहलू बना दी गई है। बाकी शक्ल-सूरत इस दरवाज़े की वैसी ही है जैसी कि दूसरे दरवाजों की है। मस्जिद के तीनों दरवाजों के पटों पर पीतल की मोटी-मोटी चादरें चढ़ी हुई हैं, जिन पर मुनब्बतकारी का काम है।

मस्जिद के सहन में लाल पत्थर के बड़े-बड़े चौके बिछे हुए हैं, जो 136 गज मुरब्बा हैं। इतना चौड़ा सहन होने पर भी इसमें ढलान इस खूबी से रखी गई है कि इधर वर्षा बरसी और उधर पानी निकला। क्या मजाल कि एक बूंद भी पानी खड़ा रहे। सहन के बीचोंबीच फर्श से एक हाथ ऊंचा, पन्द्रह गज लम्बा और बारह गज चौड़ा खालिस संगमरमर का हौज़ है। कभी इसमें फव्वारे लगे हुए थे। अब वे काम नहीं करते। पहले यह हौज रहट के कुएं से भरा जाता था, जो मस्जिद के उत्तर-पश्चिम के कोने में था। यद्यपि इतनी ऊंचाई थी, फिर भी पानी चढ़ता था और अन्दर-ही-अन्दर मस्जिद के सहन में पहुंच कर उसे लबालब भर देता था। यह कुआं 1803 ई० में खुश्क हो गया, जिसकी मरम्मत उस वक्त के ब्रिटिश रेजीडेंट मि० सैटन ने करा दी थी। यह कुंआ भी शाहजहां ने पहाड़ी काट कर बनवाया था, जिस पर रहट लगा रहता था। अब वह नहीं रहा। अब तो नल द्वारा पानी भरा जाता है। कहते हैं कि मस्जिद के मीनार इस कारीगरी से बनाए गए हैं कि अगर घटनावश कोई मीनार गिर जाए तो सहन में गिरे ताकि मस्जिद की छत और गुंबदों को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे। अनुभव से यह बात कई बार प्रमाणित हो चुकी है। इस मस्जिद की मरम्मत 1817 ई० में अकबर सानी के काल में हुई थी। दूसरी बार 1851 ई० में एक कड़ी टूट गई थी। 1833 ई० में मस्जिद के उत्तरी मीनार पर बिजली गिरने से मीनार और नीचे का फर्श टूट गया था, मगर इमारत को कोई हानि नहीं पहुंची और उसकी मरम्मत ब्रिटिश राज की ओर से हुई। चौथी बार 1895 ई० में दक्षिणी मीनार पर बिजली गिरी और बुर्जी को हानि पहुंची, लेकिन बाकी इमारत सुरक्षित रही। इस बार नवाब बहावलपुर ने चौदह हजार रुपया लगा कर मीनार की मरम्मत करवाई। 1887 से 1902 ई० के अर्से में नवाब रामपुर ने एक लाख पचपन हजार के खर्चे से मस्जिद की पूरी तरह मरम्मत करवाई और उसे नया करवा दिया। ऊपर जाकर मीनारों के ऊपर चढ़ कर देखने से सारा शहर हथेली में नजर आता है। अलविदा के शुक्रवार को नमाज़

पढ़ने बड़ी भारी खलकत जमा होती है। दूर-दूर से मर्द-औरतें नमाज पढ़ने आते हैं। तमाम मस्जिद और तीन तरफ की सीढ़ियां तथा रास्ते नमाजियों से घिर जाते हैं। यह नजारा देखने योग्य होता है। बस सिर-ही-सिर नजर आते हैं। एक कतार में सबका बैठना, उठना और सिजदा करना यह सब एक अजीब दृश्य उपस्थित करता है।

चूंकि अलविदा की नमाज के दिन इस कदर नमाजी जमा होते थे कि मस्जिद में नमाज पढ़वाने वाले की आवाज दूर तक नहीं जा सकती थी इसलिए अकबर द्वितीय के बेटे शाहजादा सलीम ने 1829 ई० में मस्जिद के मध्य द्वार के सामने एक मकबरा संगवासी का बनवा दिया ताकि आवाज दूर तक पहुंच सके।

मस्जिद के सहन में उत्तर-पश्चिम के कोने में संगमरमर पर भूगोल बना हुआ है। इसी तरफ के दालान के एक हुजरे में मोहम्मद साहब के स्मृति चिह्न रखे हुए हैं। पहले ये चिह्न सहन के उत्तर-पश्चिम वाले दालान में मस्जिद के बाएं हाथ रखे हुए थे, जिसके आगे औरंगजेब के अहद में अलमास अली खां ख्वाजा सरा ने लाल पत्थर की चौगिर्दा जाली का पर्दा लगवा कर उसे बंद करवा दिया था। उस पर तामीर करवाने की तारीख खुदी हुई थी। 1842 ई० में आंधी आने से यह पर्दा गिर पड़ा था, जिसको बहादुरशाह ने फिर से बनवाया और अब वहीं मौजूद है।

सहन के दक्षिण-पश्चिमी कोने में एक धूप घड़ी बनी हुई है, जो भूगोल के बिलमुकाबिल है। स्मृति चिह्न बहुत कदीमी बतलाए जाते हैं। बाज अमीर तैमूर को रोम के बादशाह से मिले और बाज कुस्तुनतुनिया से लाए गए। वे इस प्रकार हैं :—

1. कुरान शरीफ के चंद पारे हजरत अली द्वारा लिखित, 2. चंद पारे हजरत इमाम हसन द्वारा लिखित, 3. पूरी कुरान शरीफ इमाम हुसैन द्वारा लिखित, 4. चंद पारे हजरत इमाम जाफर द्वारा लिखित, 5. मवे मुबारिक हजरत मोहम्मद साहब, 6. नयलीन शरीफ, 7. कदम शरीफ, 8. गिलाफ मजार हजरत मोहम्मद साहब, 9. पंजा शरीफ हजरत मौलवी अली शेरखुदा, 10. चादर हजरत फातिमा, 11. गिलाफ काबा शरीफ।

ये सब वस्तुएं औरंगजेब के जमाने में मस्जिद में रखी गई थीं। बादशाह सदा इनके दर्शन को आया करते थे और अलविदा के दिन बारह अशरफियां नजर करते थे।

शाहजहां के बाद हर बादशाह के जमाने में मस्जिद अच्छी हालत में रही, मगर कहते हैं जफर बहादुरशाह के काल में कुछ बदनजमी हो गई। 1857 के गदर

में मस्जिद जब्त कर ली गई थी और नमाज बंद हो गई थी। मस्जिद पर पहरा बिठा दिया गया था। कई बरस यह हाल रहा। नवम्बर 1862 ई० में अंग्रेजी हुकूमत ने इसे मुसलमानों को वापस किया और एक प्रबंधक कमेटी मुकर्रर कर दी।

मस्जिद के उत्तर में शाही औषधालय था और दक्षिण में शाही विद्यालय। ये दोनों इमारतें सत्तावन के गदर से पहले ही खंडहर हो चुकी थीं। गदर के बाद उन्हें गिरा दिया गया। ये मस्जिद के साथ-साथ 1650 ई० में तामीर हुई थीं।

दक्षिणी द्वार के सामने एक बहुत बड़ा और चौड़ा बाजार हुआ करता था, जो इस दरवाजे से शुरू होकर तुर्कमान और दिल्ली दरवाजे तक चला गया था। बाजार अब भी मौजूद है, मगर उस जमाने की सी हालत अब नहीं रही।

जहांआरा बेगम का बाग या मलका बाग (1650 ई०)

जहांआरा बेगम का बनाया हुआ यह बाग चांदनी चौक के मध्य में स्थित है, जिसे 1650 ई० में शाहजहां की इसकी चहेती बेटी ने लगवाया था। अब इसका नाम मलका का बाग पड़ गया है। जमाने के उतार-चढ़ाव के कारण इस बाग की वह शक्ल नहीं रही, जो उस वक्त थी। बाग की लम्बाई 970 गज और चौड़ाई 240 गज थी। इस बाग की वह चारदीवारी अब नहीं, जिसमें जाबजा बुर्ज बने हुए थे। गदर की लूट-खसोट में ये टूट-फूट गए। ये बुर्ज तीस फुट ऊंचे थे और पन्द्रह फुट ऊंचे चबूतरे पर बने हुए थे। कटड़ा नील की तरफ बाग की दीवार में अभी तक उन बुर्जों में से एक बाकी दिखाई देता है। शहर दिल्ली की नहर, जो किसी जमाने में चांदनी चौक के बीच में से गुजरा करती थी, सारे बाग में फैली हुई थी। अब वह बंद हो गई है। इस बाग में तरह-तरह के मकान, सैरगाहें, बारहदरियां और नशीमन बने हुए थे। वे सब खत्म हो गए हैं। सिर्फ एक कमरा 50′ × 20′ का बाकी है, जिसम आनरेरी मजिस्ट्रेट की कचहरी होती है; कभी उसमें पुस्तकालय हुआ करता था। अब तो उस जमाने के बाग की निशानी ही बाकी रह गई है। नाम तक बदल गया है। इसका बहुत बड़ा हिस्सा तो सड़कों की नजर हो गया है। कितनी ही म्युनिसिपल दफ्तरों की इमारतें बन गई हैं। सैकड़ों पुराने वृक्ष काट दिए गए। सरौली के आमों के पेड़ खास मशहूर थे, वे अब देखने को भी नहीं मिलते। ले-देकर रेलवे स्टेशन की ओर और कमेटी के दफ्तर की इमारत के बीच का भाग कुछ अच्छी हालत में है जहां अब गांधीजी की मूर्ति लगा दी गई है। बाकी का बाग तो नाम मात्र का ही है। कौड़िया पुल की तरफ का बहुत बड़ा हिस्सा सड़क में मिल गया, कुछ पर हार्डिंग पुस्तकालय बन गया। जो हिस्सा गांधी मैदान कहलाता है, वहां अब से पच्चीस तीस वर्ष पहले तक बहुत सुन्दर घास लगा मैदान था, जहां क्रिकेट के मैच हुआ करते थे। बड़े-बड़े साएदार

वृक्ष लगे हुए थे। 5 मार्च 1931 को गांधी इर्विन पैक्ट के बाद इस मैदान में कई लाख की संख्या की एक बड़ी भारी सभा हुई थी, जिसमें महात्मा गांधी बोले थे। उन दिनों लाउड स्पीकर चले ही थे। आवाज सुन नहीं पाई। तब ही से इस मैदान का नाम गांधी ग्राउण्ड पड़ा। अब तो इसमें आए दिन मेले, तमाशे, नुमायशें, सभाएं होती रहती हैं। इसलिए घास इसमें जमने ही नहीं पाती। स्टेशन की तरफ का भी बहुत बड़ा हिस्सा सड़क और स्टेशन बढ़ाने में चला गया। उत्तर-पूर्व के कोने में एक कुआं हुआ करता था, वह अब स्टेशन की सड़क के दूसरी तरफ पहुंच गया है। स्टेशन के सामने जो मौजूदा सड़क है वह बाग के अन्दर हुआ करती थी और इस पर आमों के पेड़ लगे हुए थे। फतहपुरी की तरफ का हिस्सा भी कट कर सड़क में मिल गया है। धीरे-धीरे यह बाग सिकुड़ता जा रहा है। बाग के 7 दरवाजे हैं—दो चांदनी चौक बाजार की तरफ, तीसरा फतहपुरी बाजार की तरफ, अहमदपाई की सराय के सामने, चौथा स्टेशन के सामने, पांचवां काठ के पुल के सामने, छठा हार्डिंग पुस्तकालय के सामने और सातवां फव्वारे की तरफ। इनके अतिरिक्त और भी कई छोटे दरवाजे बन गए हैं।

जहांआरा बेगम की सराय (1650 ई०)

बेगम के बाग के साथ यह सराय भी बनी थी। बाग तो खैर उजड़ा-उजड़ा मौजूद भी है, मगर इस सराय का तो कोई पता ही नहीं रहा। 1857 ई० के गदर के बाद सरकार ने इसे ढहा कर सारा मैदान करवा दिया। इस सराय के दो दरवाजे थे। दक्षिणी द्वार चांदनी चौक के सामने था। दूसरा उत्तर में था, जो बाग का भी दरवाजा था। सराय के सहन में दो बड़े-बड़े कुएं और एक मस्जिद थी। सहन के चारों ओर दो मंजिला बड़े-बड़े कमरे थे, जिनमें मुसाफिर बड़ी संख्या में उतरा करते थे और फेरी वाले सौदागर भी दुकानें लगा कर सामान बेचा करते थे। बरनियर ने इस सराय का हाल यों लिखा है : "यह कारवान सराय एक बड़ी चौकोर इमारत है, जिसके चारों तरफ दो मंजिला कमरे बने हुए हैं। कमरों के सामने बरामदे हैं। इस सराय में विदेश से आने वाले व्यापारी ठहरते हैं। वे सराय के कमरों में बड़े आराम से रहते हैं और चूंकि सराय का दरवाजा रात को बंद हो जाता है इसलिए किसी प्रकार का डर भी नहीं रहता।"

फतहपुरी मस्जिद (1650 ई०)

1650 ई० में शाहजहां की बेगमात में से फतहपुरी बेगम ने इस मस्जिद को चांदनी चौक के पश्चिमी सिरे पर बनवाया और उसी के नाम पर इसका नाम फतहपुरी मस्जिद पड़ा। सारे शहर में बस यही मस्जिद एक गुंबद की है, जिसके दोनों तरफ ऊंची-ऊंची मीनारें हैं। यह इमारत निहायत खूबसूरत और मजबूत बनी हुई है, जिसका बड़ा भारी गुंबद दूर से प्रभावशाली दिखलाई देता है। यह मस्जिद

पहले ज़माने में बड़ी पुररौनक थी और जिस स्थान पर यह बनी हुई है वह भी शहर का केन्द्र था। अब भी इसमें काफी संख्या में नमाज़ी जाते हैं। इसके आगे की ओर दोनों तरफ बाज़ार हैं, जहां भीड़ लगी रहती है। पूर्व में चांदनी चौक, दक्षिण में कटड़ा बड़ियां, उत्तर में खारी बावली और पश्चिम में मस्जिद की पुश्त। मस्जिद के तीन बड़े-बड़े दरवाज़े हैं, जिन पर लाल पत्थर का कंगूरा और इधर-उधर बुर्जियां हैं। दरवाज़े से दाखिल होकर अस्सी गज़ मुरब्बा का सहन आता है, जिसमें तमाम लाल पत्थर के चौके बिछे हुए हैं। उत्तर और पूर्व की तरफ का दरवाज़ा सत्ताइस फुट मुरब्बा और दस फुट गहरा है। इस दरवाज़े की ड्योढ़ी आठ फुट चौड़ी और ग्यारह फुट ऊंची है। पश्चिम की तरफ असल मस्जिद के दोहरे दालान हैं, जिनके दाएं-बाएं बड़े-बड़े कमरे हैं। मस्जिद के तीन तरफ बाज़ारों में दुकानों का सिलसिला है, जिसमें से पूर्व और उत्तर की तरफ दुकानों के अतिरिक्त दो मंज़िला बड़े-बड़े कमरे बने हुए हैं। इनमें व्यापारियों के दफ्तर हैं। मस्जिद के सहन में एक बहुत बड़ा हौज़ 16 गज × 14 गज का बना हुआ है। हौज़ और मस्जिद के दरमियान का चबूतरा 130 फुट लम्बा और 90 फुट चौड़ा है। असल मस्जिद 3½ फुट ऊंचे चबूतरे पर बनी हुई है, जिसके दालान 120 फुट × 4 फुट के हैं। सदर महराब बहुत ऊंची है और गहराई में यह 16 फुट है। इस पर भी कंगूरा और दोनों तरफ बड़ी-बड़ी बुर्जियां हैं और उसी तरफ मस्जिद की पछील में चार छोटी-छोटी बुर्जियां हैं। महराब और बुर्जियों पर संगमरमर की पट्टियां पड़ी हुई हैं। मस्जिद का एक ही बड़ा भारी गुंबद है, जिस पर अस्तरकारी की हुई है और स्याह तथा सफेद धारियां पड़ी हुई हैं। गुंबद का बुर्ज चूने गच्ची का है। सदर महराब के दोनों तरफ बारह फुट के अन्तर से दो-दो दालान तीन-तीन दरों के बंगड़ीदार महराबों के हैं, जो तीस फुट ऊंचे और दस फुट चौड़े हैं। इनकी छतों पर भी कंगूरा है। मस्जिद के दोनों मीनार अस्सी-अस्सी फुट ऊंचे हैं, जिनकी बुर्जियां चूने गच्ची की बनी हुई हैं। मस्जिद के दरवाज़े सिर्फ दस-दस फुट ऊंचे हैं, जिन पर कमल बने हुए हैं। कंगूरे के नीचे चौड़ा संगीन छज्जा है। मस्जिद की सदर महराब के तथा दूसरे दरों के सामने तीन-तीन सीढ़ियां हैं। तमाम खम्भों के ऊपरी और निचले हिस्से पर नक्शो-निगार खुदे हुए हैं। मस्जिद का गुंबद फैला हुआ कोठीदार ढंग का है। गुंबद संगखारा का है, जिस पर ऐसी अस्तरकारी की गई है कि दूर से संगमरमर का प्रतीत होता है। मम्बर संगमरमर का है जिसकी चार सीढ़ियां हैं। इस मस्जिद में खालिस संगमरमर की यही एक वस्तु है। मस्जिद की दोनों तरफ लाल पत्थर के स्तूनों की कतारें हैं, जिससे मस्जिद के दो तरफ के दो हिस्से अलहदा-अलहदा हो गए हैं।

कुछ बहुत समय नहीं हुआ कि छत की हालत खराब होती जा रही थी। इसलिए पत्थर के स्तूनों की और दो कतारें बीच में बतौर अड़वाड़ लगा कर मजबूती कर

दी गई है। पुराने स्तून लाल पत्थर के हैं। नए संगखारा के हैं। मस्जिद का बीच का हिस्सा, जो गुंबद के नीचे है, चालीस फुट मुरब्बा है और इसके दोनों तरफ के हिस्से कुछ अधिक लम्बे हैं। मस्जिद के उत्तर और दक्षिण में दोनों ओर से आने-जाने का एक-एक दरवाजा बाद में निकाला गया है, जो 16 फुट ऊंचा और 10 फुट चौड़ा है।

गदर 1857 में इस मस्जिद में फौजें उतारी गई थीं। बाद में यह मस्जिद जब्त कर ली गई थी और उन्नीस हजार रुपये में नीलाम कर दी गई थी, जिसको लाला छुन्नामल ने खरीद लिया था। 1893 ई० में सरकार ने लाला साहब को एक लाख बीस हजार रुपया देकर मुसलमानों को यह मस्जिद वापस दिलवानी चाही, मगर लाला साहब ने मंजूर नहीं किया। मगर 1876 ई० में जब दिल्ली में मलका का दरबार हुआ तो इसे वापस कर दिया गया।

मस्जिद के सहन में चंद कब्रें हैं, जिनमें हजरत नानूशाह और शाह जलाल के मजार भी हैं। हजरत मीरांशाह नानू थानेसर के रहने वाले थे। वह दिल्ली आकर मस्जिद के एक कमरे में रहने लगे थे। तकरीबन अस्सी साल की उम्र में उनकी मृत्यु हुई और इसी मस्जिद के सहन में दफन किए गए। हजरत शाह जलाल नानू शाह के खलीफा थे और उन्होंने उसी कमरे में बैठ कर सारी उम्र ईश्वर भक्ति में गुजार दी। वह भी यहां ही दफन किए गए।

मस्जिद में अरबी जबान का एक मदरसा भी चला करता था, जिसमें धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। मस्जिद का सहन बहुत खुला हुआ है, जिसमें पश्चिम को छोड़ कर तीन तरफ दालान बने हुए हैं। उत्तर में बाजार की तरफ पन्द्रह दर का दो मंजिला दालान है, जिसमें मदरसा है। इसके सामने बड़ियों के कटड़े की तरफ दक्षिणी दरवाजा है, जिसके दोनों तरफ आठ-आठ दर के दालान और कमरे हैं। पूर्वी द्वार चांदनी चौक की तरफ है, जिस पर सफेद संगमरमर की तख्ती पर फतहपुरी लिखा हुआ है। इस दरवाजे के दोनों तरफ चौदह-चौदह दर के दालान हैं। सहन के बीच में संगमरमर का आलीशान हौज है, जिसमें पहले नहर का पानी आता था; अब इसमें नल का पानी भरते हैं। हौज के पास नानूशाह और जलाल शाह के एक अहाते के अन्दर बने हुए मजार हैं।

मस्जिद सरहदी (1650 ई०)

इस मस्जिद को शाहजहां की बेगमात में से सरहदी बेगम ने 1650 ई० में दिल्ली शहर के लाहौरी दरवाजे के सामने की तरफ खारी बावली के अन्त में बनवाया था। मस्जिद के तीन दर बंगड़ीदार महराबों के हैं जिन पर कंगूरा बना हुआ है। मस्जिद 46 फुट लम्बी और 17½ फुट ऊंची है और छत की ऊंचाई 22 फुट है। दरों की

महराबें 19 फुट ऊंची हैं। छत पर कंगूरा है। मस्जिद के तीन गुंबद लाल पत्थर के कलसदार हैं। बीच का गुंबद 20 फुट ऊंचा है और इधर-उधर के पन्द्रह-पन्द्रह फुट ऊंचे हैं। मस्जिद पत्थर और चूने की पुख्ता बनी हुई है। अन्दर की दीवारें लाल पत्थर की बनी हुई हैं। जिस चबूतरे पर मस्जिद बनी हुई है उस पर ईंटों का खड़जा लगा हुआ है और उस पर प्लास्टर हुआ है।

मस्जिद अकबराबादी (1650 ई०)

यह मस्जिद फैज बाजार (दरियागंज) में थी, जो गदर के बाद गिरा दी गई। उस जगह अब एडवर्ड पार्क बना हुआ है। जिस वक्त बाग की खुदाई की जा रही थी तो मस्जिद का चबूतरा और बुनियादें देखने में आई थीं। वे ढक दी गई। इस मस्जिद को शाहजहां की एक और बेगम एजाजउलनिसा बेगम ने 1650 ई० में बनवाया था। इस बेगम का खिताब अकबराबादी महल था। इसी सबब यह मस्जिद उस नाम से मशहूर हुई। इस मस्जिद के तीन गुंबद और सात दर थे। मस्जिद की इमारत 63 गज लम्बी और 16 गज चौड़ी थी। यह लाल पत्थर की बनी हुई थी। अब तो उसका नाम ही बाकी रह गया है।

रोशनारा बाग (1650 ई०)

यह बाग शहर के बाहर सब्जी मण्डी की तरफ है। इस बाग को शाहजहां की बीबी सरहदी बेगम और छोटी लड़की रोशनारा ने बनवाया था। रोशनारा औरंगजेब की चहेती बहन थी और अपने भाई दाराशिकोह की जानी दुश्मन थी। बरनियर ने लिखा है कि यह अपनी बहन जहांआरा से कम सुन्दर और कम बुद्धिमान थी। रोशनारा ने इस बाग को 1650 ई० में उसी समय बनवाया था जब शाहजहां ने दिल्ली बसाई और उमरा तथा रिश्तेदारों को इसके हिस्से तकसीम किए। औरंगजेब की सल्तनत के तेरहवें वर्ष में 1663 ई० में रोशनारा की मृत्यु दिल्ली में हुई और उसे उसके बाग में दफन किया गया।

बाग में इस अर्से में भारी परिवर्तन हुआ है। इसका बड़ा हिस्सा रेल की नजर हो गया है, जो इसकी पुश्त की तरफ जाती है। इस वक्त इसका रकबा 130 एकड़ है। पुरानी खंडहर इमारतें हटा दी गई हैं लेकिन नहर और बाग का पूर्वी द्वार अभी देखने में आता है। बाग में शाही जमाने की कोई चीज देखने में नहीं आती, सिवा रोशनारा के मजार के, जो अभी तक मौजूद है।

इस मकबरे की छत हमवार है। मकबरे का चबूतरा 159 फुट मुरब्बा और तीन फुट ऊंचा है। मकबरे के चारों तरफ चार-चार सीढ़ियां चढ़ कर चबूतरे पर आते हैं। चबूतरे के गिर्द दो फुट ऊंची मुंडेर है। इस मुंडेर से मकबरा 45 फुट के फासले पर है और 69 फुट मुरब्बा तथा 21 फुट ऊंचा है। इसमें छत पर की

चार फुट ऊंची मुंडेर भी शामिल है। मकबरे के चारों कोनों पर चार मंजिला कमरे हैं और बीच का हाल है। इस बीच के हाल तथा कोनों के कमरों के बीच बरामदा है। कोनों के कमरों में चारों ओर से रास्ता है और दो मंजिले पर, जिसका जीना दीवार में है, इसी किस्म के और भी कमरे हैं। कोनों के कमरों के बीच में चार भारी-भारी स्तून हैं जिन पर बंगड़ीदार महराबें हैं और निहायत उम्दा अस्तरकारी की हुई है। स्तूनों की अगली कतार से छः फुट के फासले पर इसी प्रकार के स्तूनों की और चार कतारें हैं। छत के चारों कोनों पर चोखी बुर्जियां पांच या छः फुट मुरब्बा हैं, जिनके कलस पत्थर के हैं और गिर्द एक चौड़ा छज्जा है। इमारत के बीच में एक चौकोर कमरे में रोशनारा बेगम की कब्र है, जिसका दरवाजा दक्षिण की ओर है और बालीन कब्र उत्तर की ओर है। बाकी तरफ पत्थर की जालियां लगी हुई हैं, जिन पर अब प्लास्टर किया हुआ है। कब्र वाला कमरा दस फुट मुरब्बा है और उसका फर्श संगमरमर का है। कब्र के तावीज के बीच कच्ची मिट्टी है और कब्र उसी ढंग की है जैसी इसकी बहन जहांआरा की है। कब्र 6 फुट 5 इंच लम्बी और 2½ फुट ऊंची है, जिसके सिरहाने संगमरमर का ताक बना हुआ है। बाग के फव्वारों और नालियों में, जो किसी जमाने में इसकी सुन्दरता को बढ़ाते होंगे, अब सिवा एक बड़े हौज के, जो बाग और मकबरे के पूर्व में है, कुछ बाकी नहीं रहा। हौज 277 फुट लम्बा और 124 फुट चौड़ा है।

बाग के तीन तरफ अब घनी बस्ती हो गई है। बाग में एक बड़ी झील भी बन गई है और एक क्लब बना हुआ है। बाग में आसपास की बस्तियों के काफी सैलानी आते रहते हैं।

शालामार बाग (1653 ई०)

यह बाग मौजा आजादपुर और बादली की सराय से आगे जाकर करनाल रोड पर बाएं हाथ पड़ता है। इसे शाहजहां ने 1653 ई० में बनवाया था। कश्मीर जाते वक्त उसका पहला मुकाम इसी बाग में हुआ था। इसी बाग में औरंगजेब की ताजपोशी का जश्न हुआ था। गदर 1857 में इसे तबाह कर दिया गया। 1803 ई० के बाद दिल्ली का रेजीडेंट गर्मी के दिनों में इस बाग में रहा करता था। बाग के अन्दर अब भी कश्मीर के शालामार बाग के नमूने का एक अन्दाजा देखने में आता है। अब यह वीरानगी की हालत में पड़ा हुआ है। लोगों को इस बात का पता ही नहीं है कि दिल्ली में भी कभी शालामार बाग था। इसका रकबा 1075 बीघे का था। 1857 के गदर के बाद इसे नीलाम कर दिया गया था। इसकी मौजूदा हालत एक जंगल जैसी है गो दिल्ली के तरह-तरह के फलदार वृक्ष इसमें लगे हुए हैं—आम, अमरूद, जामुन, कमरख, फालसे आदि। पुराने जमाने की नहरें

और फव्वारे सब टूट फूट गए हैं। सिर्फ एक बारहदरी बाकी है, जो ईंट और लाल पत्थर की बनी हुई है। वह भी आज खस्ता हालत में है।

औरंगज़ेब का शासनकाल (1658 से 1707 ई०)

मई 1658 में अपने भाइयों को परास्त करके और अपने बाप को नजरबंद करके औरंगजेब ने राज्य का भार अपने हाथ में लिया और अपना लकब आलमगीर रखा। उस वक्त उसकी उम्र चालीस वर्ष की थी। यह मामलात सल्तनत, मुल्की और फौजी में निपुण था और मजहबी मामलों में कट्टर मुसलमान। इसका राज्यकाल अकबर की तरह पचास बरस से केवल एक वर्ष कम रहा।

औरंगजेब के शासन-काल पर एक नजर डालने से यह प्रतीत होता है कि उसके शुरू के दस वर्ष अपने को अच्छी तरह कायम करने में बीते, अगले बीस साल में यद्यपि देश में एक प्रकार से अमन रहा, मगर वह हिन्दुओं को कुचलने में लगा रहा और इस प्रकार इस अर्से में उसने अपनी द्वेषपूर्ण प्रकृति के कारण अनेक शत्रु पैदा कर लिए। नई-नई शक्तियां उसका मुकाबला करने के लिए खड़ी हो गईं। आखिर के बीस साल उसके उन शक्तियों का दमन करने में गुजरे मगर वह सफल न हो सका और महान निराशा साथ लेकर इस संसार से विदा हुआ। जिस मुगलिया सल्तनत को अकबर ने लोगों के दिलों पर काबू करके इस देश में फैलाया था, यद्यपि औरंगजेब ने मुल्की लिहाज से सल्तनत उससे भी अधिक फैलाई, मगर वह लोगों के दिलों के टुकड़े करके, और इसलिए उसकी मृत्यु को सौ साल भी बीतने न पाए थे कि मुल्क एक गैर कौम के हाथ में चला गया और मुगलिया सल्तनत का ताश के पत्तों के घर की तरह खात्मा हो गया।

औरंगजेब को अव्वल तो अपने बाप की तरह इमारतें बनाने का शौक ही न था, मगर जो कुछ उसने बनवाईं वे अधिकांश हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ कर। उसका निर्माण मस्जिदें कायम करने तक सीमित रहा। उसने हिन्दुओं के उत्तर प्रदेश के अनेक तीर्थस्थानों का खंडन किया और काशी, मथुरा, अयोध्या, आदि स्थानों पर मन्दिरों को तोड़ कर मस्जिदें बना डालीं। यही उसकी यादगारें हैं। दिल्ली में वह बहुत कम अर्से ठहर पाया। उसने यहां जो कुछ तामीर किया, वह लाल किले में, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है। और कोई इमारत उसकी बनाई हुई यहां देखने में नहीं आती। चंद यादगारें बेशक ऐसी हैं जो उसके जमाने में कायम हुईं।

सूफ़ी सरमद का मज़ार और हरे भरे की दरगाह (1659-60 ई०)

जामा मस्जिद के पूर्वी दरवाजे की सीढ़ियों के नीचे उतर कर थोड़ा उत्तर में सड़क के किनारे ही नीम के पेड़ के नीचे सूफ़ी सरमद की कब्र लाल रंग के कटघरे

के अन्दर है और उनके सिरहाने सब्ज रंग के लकड़ी के कटघरे में हरे भरे साहब की कब्र एक चबूतरे पर है। सिरहाने की तरफ एक आला चिराग जलाने को बना हुआ है। कहते हैं यह सरमद के गुरु थे और 1654–55 ई० में अपने देश सब्जवार से दिल्ली आए थे। सरमद एक यहूदी थे। दिल्ली में जब ये रहते थे तो इन्होंने इस्लाम कबूल कर लिया था। ये दारा शिकोह के भक्त और साथी थे और उन्होंने उसकी तारीफ में कई कसीदे लिखे। इनकी कविता दिल्ली वालों में बहुत प्रचलित थी। औरंगजेब दाराशिकोह का साथ देने पर इनसे नाराज हो गया और बादशाह के हुक्म से हिजरी 1070 में इन पर कुफ्र का फतवा लगा कर इनका सर कलम कर दिया गया और रिवायत है कि उसी दिन से तैमूर खानदान का पतन शुरू हो गया।

कहते हैं दाराशिकोह के कत्ल के पश्चात जब शहर में अमन कायम हो गया तो औरंगजेब ने सरमद को बुलवा भेजा और पूछा कि क्या यह सच है कि उसने दिल्ली का राज्य दारा को दिलवाने का वचन दिया हुआ है। सरमद ने उत्तर दिया, "हां, मैंने उसे अनन्त राज्य का वचन दिया हुआ था।" इनके कत्ल का समाचार सुन कर बरनियर ने लिखा था, "मैं एक अर्से तक एक नामी फकीर के व्यवहार से बड़ा कुढ़ा करता था, जिसका नाम सरमद था और जो दिल्ली की गलियों में उसी तरह नंगा फिरा करता था जैसा कि वह दुनिया में पैदा होने के समय था। वह औरंगजेब की धमकियों और मिन्नतों, दोनों को हिकारत की निगाह से देखता था और आखिर कपड़ा न पहनने के जिद्दी इन्कार की सजा उसे मृत्युदंड के रूप में भुगतनी पड़ी।" सरमद ईश्वर भक्ति के रंग से रंगा हुआ एक पवित्र आत्मा माना जाता था। दिल्ली के लोग आज भी उसके मजार पर नजर-नियाज चढ़ाते हैं।

हरे भरे शाह के मजार के पास दक्षिण की तरफ एक और कब्र है, जो जमीन में धंस गई है। इसे सैयद शाह मोहम्मद उर्फ हींगा मदनी की बताते हैं, जो सरमद के खलीफा बताए जाते हैं।

उर्दू मन्दिर या जैनियों का लाल मन्दिर

किले के लाहौरी दरवाजे के पास, लाजपत राय मार्केट के सामने, जैनियों का जो लाल मन्दिर है, इसका असल नाम उर्दू का मन्दिर है। इसे शाहजहां के अहद का बताया जाता है। इसे रामचंद जैनी ने बनवाया, बताते हैं। चूंकि यह मन्दिर बादशाही जैनी फौजियों का था, इसलिए यह उर्दू का मन्दिर कहलाने लगा। कहा जाता है कि एक बार औरंगजेब ने यहां की नौबत बन्द करवा दी थी, लेकिन शाही हुक्म के बावजूद नौबत बजती रही, मगर कोई शख्स नौबत बजाता दिखाई नहीं देता था। बादशाह खुद देखने गया। जब उसे यकीन हो गया कि बजाने वाला मन्दिर में नहीं है तो हुक्म मिल गया कि नौबत बिना रोक-टोक

बजा करे। मन्दिर बनाने की रिवायत इस प्रकार है कि यह मन्दिर लशकरी था और सिर्फ एक राम्रोटी में किसी जैनी सिपाही ने अपनी निजी पूजा के लिए एक मूर्ति रख ली थी। बाद में यहां मन्दिर की इमारत बन गई। जैनी इस मन्दिर को बड़ा पवित्र मानते हैं। इसमें बहुत-सी तब्दीलियां हो गई हैं। बाएं हाथ की तरफ जो एक बड़ा मन्दिर बना हुआ है वह सम्वत् 1935 में संगमरमर का बनाया गया और उसमें जो मूर्तियां हैं, वे पुरानी नहीं हैं। जो पुराना मन्दिर है, उसमें तीन मूर्तियां हैं। बीच वाली पारसनाथ की है। ये तीनों सम्वत् 1548 की हैं। इस मन्दिर के साथ मिला हुआ पक्षियों का एक हस्पताल जैनियों ने खोल दिया है और मन्दिर की निचली मंजिल में एक पुस्तकालय है।

गुरुद्वारा सीसगंज (1675 ई०)

यह स्थान चांदनी चौक में कोतवाली के पास बना हुआ है। इसे 1675 ई० में गुरु तेगबहादुर की याद में बनाया गया था, जिसमें उनकी समाधि है और 'ग्रंथ साहब' यहां रखे हुए ह। गुरु तेगबहादुर का सिर 11 नवम्बर 1675 ई० पौष सुदी पंचमी सम्वत् 1632 में दिन के 11 बजे औरंगजेब के हुक्म से कलम किया गया था। औरंगजेब ने गुरु साहब को चालीस दिन कैद में रखा, मगर ये बराबर 'ग्रंथ साहब' का पाठ करते रहे। वे गुरु हरगोविन्द जी के पुत्र और सिखों के नवें गुरु थे। गुरु हरिकिशन जी की मृत्यु के बाद बड़े झगड़ों से उन्हें गद्दी पर बिठाया गया था। इनका नाम अपने पिता से भी अधिक चमक उठा। गद्दी पर बैठने के लिए इनके भतीजे रामराय ने इनका मुकाबला किया था, मगर जब वह सफल न हो सका तो उसने बादशाह से जाकर यह चुगली खाई कि तेगबहादुर के इरादे सल्तनत के विरुद्ध हैं। बादशाह ने तेगबहादुर को दिल्ली बुलवा भेजा, लेकिन जयपुर के राजा की सिफारिश से उनकी जान बच गई और ये दिल्ली से पटना जाकर पांच-छः वर्ष रहे। इसके बाद ये फिर पंजाब लौटे और औरंगजेब ने इन्हें गिरफ्तार करवा कर सिर कलम करवा दिया। बड़ का वृक्ष, जहां सर कलम हुआ था, उसी जमाने का है। नई इमारत बनने पर वृक्ष काट दिया गया, उसका तना शीशे की अलमारी में रखा है। गुरु जी का चित्र गुरुद्वारे में लगा हुआ है। जहां-जहां उनके खून के कतरे गिरे, सिख लोग उस स्थान को बहुत पवित्र मानते हैं। उनके सिर को उनका एक शिष्य औरंगाबाद दक्खन ले गया और धड़ रिकाबगंज के गुरुद्वारे में दफन किया गया, जो नई दिल्ली में बना हुआ है।

गुरुद्वारा सीसगंज को अब करीब-करीब नया ही बना दिया गया है। यह बाहर से लाल पत्थर का और अन्दर से संगमरमर का बना हुआ है। सैकड़ों सिख और हिन्दू रोज दर्शनों को आते हैं और गुरुद्वारे में भीड़ लगी रहती है। संगमरमर की सीढ़ियां चढ़ कर प्रवेश द्वार है। सामने बहुत बड़ा दालान है, जिसके

चारों ओर परिक्रमा है, ऊपर की मंजिल में चौगिरदा सहनची भी बना है। अन्दर की सारी इमारत संगमरमर की है। दालान के पश्चिम में चबूतरे पर 'ग्रंथ साहब' रखे हैं। ऊपर छतरी बनी है। इस चबूतरे की पुश्त पर सीढ़ियां उतर कर नीचे एक छोटी-सी कोठरी है, जिसमें गुरु साहब की समाधि है। गुरु जी का चित्र भी उसमें लगा है।

गदर के समय इस गुरुद्वारे को मस्जिद बना दिया गया था। बाद में यह गुरुद्वारा बना। मौजूदा इमारत कुछ वर्ष हुए बनी है। यह कई मंजिला है। ऊपर की बुर्जी पर सुनहरी पानी चढ़ा है। यहां गुरु नानक का जन्म दिन और गुरु तेगबहादुर दिवस मनाए जाते हैं।

शीशगंज गुरुद्वारे के अतिरिक्त दिल्ली में सिखों के आठ अन्य पवित्र स्थान हैं, जो मुस्लिम काल के ही हैं और जिनकी सिखों में बड़ी मान्यता है। उनका विवरण इस प्रकार है।

गुरुद्वारा रिकाबगंज (1675 ई०)

यह नई दिल्ली में राष्ट्रपति भवन और लोक-सभा भवन के बिल्कुल नजदीक है। यह शीशगंज से चार मील के फासले पर है। इस नाम का यहां गांव था, उस पर ही इसका नाम रिकाबगंज पड़ा।

जैसा कि ऊपर बताया गया है, औरंगजेब ने गुरु तेगबहादुर की गरदन उतरवा ली थी। उनकी शहादत के बाद उनके सर को आनंदपुर ले जाया गया, जहां उस पर समाधि बन गई और धड़ को यहां रिकाबगंज में लाकर समाधिस्थ किया गया। यह कैसे हुआ, उसकी भी रिवायत है कि लक्खीशाह नाम का एक व्यापारी गुरु जी का भक्त था। इत्तफाक से जिस दिन गुरु साहब का शरीरान्त हुआ, वह चांदनी चौक से अपना एक काफला लेकर गुजर रहा था, जिसमें बहुत-से माल से भरे छकड़े थे। मौका पाकर वह गुरु जी के शरीर को अपने एक छकड़े में रख कर रिकाबगंज में अपने घर ले आया। शरीर को गुप्त रूप से दफन करने के लिए और कोई निशानी बाकी न रहे इसका ध्यान करके उसने अपने घर में आग लगा दी। थोड़ी देर बाद, बादशाह के अहलकार तहकीकात करने आए मगर वहां मकान को आग लगी देख कर और घर वालों को रोता देख कर अफसोस जाहिर करते लौट गए। मौजूदा गुरुद्वारा उसी घर के स्थान पर बना हुआ है। पहला गुरुद्वारा 1857 के गदर में मिसमार हो गया था और मुसलमानों ने यहां मस्जिद बना ली थी। 1861 में हाईकोर्ट के हुक्म के अनुसार यह स्थान सिखों को वापिस लौटा दिया गया। अब यह नए सिरे से बन रहा है।

इस गुरुद्वारे में 11 एकड़ जमीन है। बीच में आठ फुट ऊंची कुर्सी देकर 120—120 फुट का चबूतरा बनाया गया है, जिसकी दस सीढ़ियां संगमरमर की

हैं। चबूतरे के मध्य में बड़ी विशाल इमारत बनाई जा रही है, जो अन्दर से 60×60 फुट है। इसकी ऊंचाई पचास फुट है। अन्दर के भाग में पुराने जमाने का समाधि स्थान बना हुआ है, जो एक कमरे की शक्ल का है। उसके चारों ओर द्वार हैं, ऊपर गुंबद है। कमरे में गुरु महाराज की समाधि है।

पोह बदी सप्तमी को यहां गुरु गोविंदसिंह का जन्म दिन मनाया जाता है। गुरु गोविंदसिंह के निम्न हथियार यहां रखे हुए हैं :—

एक तलवार, एक दोधारा खंडा, एक खंजर और दो कटारें। ये हथियार आनन्दपुर से यहां माता साहिबकौर लेकर आई थीं। मृत्यु के समय उन्होंने इन हथियारों को माता सुन्दरी को दे दिया और उन्होंने मरते समय जीवन सिंह को इन हथियारों को इस गुरुद्वारे में दे दिया।

गुरुद्वारा बंगला साहब

दिल्ली में सिखों के नौ पवित्र स्थानों में से दो गुरु नानक देव के माने जाते हैं, दो गुरु तेगबहादुर के, दो गुरु गोविंदसिंह के, दो गुरु हरिकिशन जी के और एक माता सुन्दरी का। यह गुरुद्वारा आठवें गुरु हरिकिशन जी का माना जाता है। शीशगंज से यह करीब ढाई मील पड़ता है। कहते हैं गुरु महाराज यहां आकर ठहरे थे। इसकी रिवायत इस प्रकार है :—

जब गुरु महाराज यहां आए तो इस स्थान पर अम्बेर के राजा जयसिंह का महल था। गुरु हरराय ने अपने बड़े लड़के रामराय जी से नाखुश होकर, जो औरंगजेब से प्रभावित होकर अपने सही मार्ग से हट गए थे, अपने छोटे लड़के हरिकिशन जी को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था। इस बात से रामराय जी की तमाम योजनाएं बेकार हो गई और उन्होंने मुगल बादशाह औरंगजेब के सामने, जो उन पर मेहरबान था, अपना मुकदमा पेश किया। सम्राट् ने दोनों पक्षों को दिल्ली बुलाया। रामराय जी तो दिल्ली चले आए मगर हरिकिशन जी को दिल्ली बुलाना आसान न था, क्योंकि उनके पिता ने उन्हें सम्राट् से मिलने की मनाही कर दी थी। राजा जयसिंह ने इस कठिनाई को इस प्रकार दूर किया कि उन्होंने गुरु हरिकिशन जी को अपने बंगले पर, जो रायसीना में था, निमन्त्रित कर लिया। उस वक्त गुरु जी की आयु मुश्किल से आठ-वर्ष की थी। बादशाह ने उनकी बुद्धिमत्ता की परीक्षा लेनी चाही। चुनांचे जयसिंह के महल की महिलाओं ने उन्हें घेर लिया, जिनमें बांदियों को भी रानियों का लिबास पहना कर बैठा दिया गया। बाल गुरु से कहा गया कि वह महारानी को छांट कर बता दें। गुरु ने उनके चेहरों की ओर देखा और तुरंत ही महारानी को पहचान लिया। बादशाह ने यह देख कर फैसला दे दिया कि गुरु बनने की योग्यता हरिकिशनराय में है, रामराय में नहीं है।

जिन दिनों गुरु महाराज जयसिंह के महल में ठहरे हुए थे, शहर में हैजा फैल उठा। बहुत-से लोग गुरु महाराज का आशीर्वाद लेने आ पहुंचे। उनको महल के कुएं से पानी निकाल कर दिया गया जो अब चौबच्चा साहब कहलाता है। श्रद्धालु जन अब भी मानते हैं कि इस कुएं के पानी में बीमारियों को अच्छा करने की शक्ति है।

जुलाई मास में गुरु हरिकिशन जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। उनके यहां पधारने की तारीख विक्रम संवत् 1721 दी हुई है। गुरुद्वारा करीब पांच एकड़ भूमि पर बना हुआ है। डेढ़ एकड़ में गुरुद्वारा है और साढ़े तीन एकड़ में स्कूल। यहां भी करीब छः फुट ऊंची कुर्सी दी गई है। सीढ़ी चढ़ कर बड़ा सहन आता है। दाएं हाथ कमरे बने हुए हैं। बाएं हाथ भी इमारतें हैं। आगे जाकर फिर छः सीढ़ियां आती हैं, उन्हें चढ़ कर मुख्य द्वार है, जो पचास फुट ऊंचा है। द्वार के दाएं-बाएं दो कमरे बाहर की ओर बने हुए हैं। अन्दर जाकर बड़ा हाल है, जो सौ फुट लम्बा और पचास फुट चौड़ा है। दालान के दोनों बाजू पर आठ-आठ फुट की बालकनी है, जिस पर ऊपर की मंजिल में कमरे बने हुए हैं। दालान के बीच में एक चबूतरे पर 'ग्रंथ साहब' रखे हैं, जिनके ऊपर काठ की छतरी बनी है। चबूतरे के चारों ओर कटघरा लगा है। मौजूदा इमारत 1954 में बन कर तैयार हुई थी।

गुरुद्वारा बाला साहब

गुरु हरिकिशनराय जी के नाम से दूसरा स्थान गुरुद्वारा बाला साहब माना जाता है, जो शीशगंज से पांच मील भोगल में निजामुद्दीन स्टेशन के पास पड़ता है। यह स्थान कई कारणों से पवित्र समझा जाता है। पहले यह कि गुरु हरिकिशन जी के जब 'माता' निकली तो उन्हें यहां लाकर रखा गया और यहीं उनका शरीरान्त हुआ। जहां उनकी चिता जलाई गई थी, वह स्थान अब भी वहां मौजूद है।

माता साहिबकौर और माता सुन्दरी की, जो गुरु गोविंदसिंह की पत्नियां थीं, मृत्यु के बाद उनका दाह संस्कार इस गुरुद्वारे में किया गया। प्रत्येक पूर्णिमा के दिन यहां गुरु हरिकिशन जी की याद में मेला लगता है, खास कर चैत्र पूर्णिमा के दिन।

यह गुरुद्वारा भी खुले मैदान में बना हुआ है। यह 1945 में नया ही बना है। सीढ़ियां चढ़ कर दालान आता है, जो लगभग 65×60 फुट का है। बीच में चबूतरा है, जहां गुरु महाराज की समाधि है। उस पर छतरी बनी हुई है। दोनों ओर बालकनी है। मुख्य द्वार के पास कमरे में वह स्थान है जहां माता साहिबकौर की समाधि है। बाहर एक दूसरा दालान है, उसमें माता सुन्दरी की समाधि है।

गुरुद्वारा दमदमा साहब

यह स्थान गुरु गोविंदसिंह जी की यादगार है। यह हुमायूं के मकबरे को ऐन पुश्त पर मकबरे से मिला हुआ है। इमारत छोटी-सी है। द्वार से दाखिल होकर अन्दर एक सायबान पड़ा है। उसके नीचे जो कमरा है, उसमें गुरु महाराज, बहादुर-शाह के काल में एक बार आकर ठहरे थे। इस स्थान का नाम इसीलिए दमदमा साहब पड़ा, चूंकि गुरु महाराज ने यहां आकर विश्राम लिया था। यहां बादशाह की फौज ने अपने कुछ करतब दिखाए थे, जिन्हें बादशाह और गुरु साहब ने बहुत पसंद किया था। बादशाह ने कहा, क्या ही अच्छा होता यदि उनकी फौज ने भी अपने कुछ करतब दिखाए होते। रिवायत है कि गुरु ने एक भैंसे को मंगा भेजा और बादशाह के मस्त हाथी से उसका मुकाबला करवा दिया, जिसमें जीत भैंसे की हुई। यहां हर वर्ष होला मोहल्ला मनाया जाता है। यहां गुरु महाराज के बैठने की बैठक है और एक स्थान में 'ग्रंथ साहब' रखे हैं।

गुरुद्वारा मोती साहब

यह स्थान भी गुरु गोविंदसिंह की याद में कायम हुआ है। जब वह यहां ठहरे थे, उसकी रिवायत इस प्रकार है कि उनका ज़फ़रनामा जिसमें हुकूमत की गलतियों की बड़े कड़े शब्दों में आलोचना की गई थी, औरंगजेब ने तब पढ़ा, जब कि वह दक्षिण में था तो उसने गुरुजी को मुलाकात के लिए दक्षिण में आने के लिए आमंन्त्रित किया। यह बात शुरू सन् 1707 की है। गुरु साहब बादशाह से मिलने रवाना हो गए। जब वह राजपूताने में बघोर मुकाम पर थे तो बादशाह की मृत्यु का समाचार उन्हें मिला। गुरु साहब ने इस समाचार को सुन कर अपना विचार बदल दिया और वह दिल्ली चले आए। यहां वह औरंगजेब के बड़े लड़के बहादुरशाह से मिले, जो पेशावर से तख्त पर कब्जा करने के लिए लौटा ही था। बादशाह उनके व्यक्तित्व से बड़ा प्रभावित हुआ और उनसे मित्रता करनी चाही। गुरु साहब ने उसे आशीर्वाद दिया और उसकी अपने भाई से जो लड़ाई चल रही थी, उसमें उसे सफलता मिली। फतह के बाद बादशाह और गुरु साहब दिल्ली लौट आए। गर्मी के मौसम में करीब तीन मास तक गुरु साहब दिल्ली में ठहरे और बादशाह से सुलह सफाई की बातचीत होती रही, मगर बादशाह को फिर दक्षिण जाना पड़ा और सुलह में बाधा पड़ गई, लेकिन यह देख कर कि सुलह होनी कठिन है, गुरु साहब सितम्बर 1707 में दक्षिण में नंदे चले गए।

गर्मियों के दिनों गुरु साहब के ठहरने की याद में यहां बड़ा मेला होता है। यह गुरुद्वारा नई दिल्ली से छावनी को जाने वाली सड़क पर पड़ता है।

माता सुन्दरी गुरुद्वारा

यह गुरुद्वारा इरविन हस्पताल की पुश्त पर बना हुआ है। यहां गुरु गोविंद-सिंह की दोनों धर्म पत्नियां माता सुन्दरी और माता साहिबकौर रहा करती थीं। माता सुन्दरी गोविंदसिंह जी के बड़े लड़के जीतसिंह जी की माता थीं और माता साहिबकौर ब्रह्मचारिणी थीं। इन्हें खालसा की माता कहा जाता है। गुरु महाराज ने इन दोनों को, जब उन्होंने आनन्दपुर साहब छोड़ा तो भाई मतीसिंह के साथ दिल्ली भेज दिया था। दिल्ली आकर कुछ अर्से वे मटिया महल में रहीं। यहां ही माता सुन्दरी ने एक छोटे लड़के अजीत सिंह को गोद लिया था, जो बेवफा साबित हुआ और उसे हटा दिया गया। मटिया महल आकर माता सुन्दरी यहां रहने लगीं और उन्होंने जीवन के बाकी दिन यहां ही गुजारे। उनका स्वर्गवास 1747 में हुआ।

यह गुरुद्वारा भी नया ही बनाया गया है। खुले मैदान में एक बहुत बड़ा चबूतरा है। 23 सीढ़ियां चढ़ कर बड़ा द्वार आता है, उसमें दाखिल होकर 80×100 फुट का बड़ा दालान है। सामने चबूतरे पर 'ग्रंथ साहब' रखे हैं। इस दालान में भी दो तरफ बालकनी है। चबूतरे के पीछे की तरफ 23 सीढ़ियां उतर कर एक तयखाना आता है, जहां एक कमरा बना हुआ है। इसमें माता जी भजन किया करती थीं।

गुरुद्वारा मजनूं का टीला

यह गुरुद्वारा यमुना के किनारे मैगजी रोड पर बना हुआ है। इसका नाम मजनूं के टीले के पास होने के कारण पड़ा है। इसकी विशेषता यह है कि यहां गुरु नानक देव 1505 में सिकंदर लोदी के काल में आकर ठहरे थे। गुरु महाराज कुरुक्षेत्र, पानीपत, आदि स्थानों की यात्रा करते हुए यहां पहुंचे थे। उनकी यह यात्रा धर्म प्रचार के लिए हुई थी। मजनूं भी एक संत थे। उनके साथ गुरु महाराज अर्से तक यहां ठहरे थे। वह एक बाग में ठहरे हुए थे, पास ही सिकंदर लोदी का अस्तबल था। रात को कहते हैं उन्होंने रोने की आवाज सुनी। मरदाना को पता लगाने भेजा। पता लगा कि बादशाह का हाथी मर गया है और महावत रो रहा है कि उसकी नौकरी छूट जाएगी। गुरु महाराज ने पानी छिड़क कर हाथी को जिन्दा कर दिया। सिकंदर को जब पता लगा तो वह दौड़ा आया मगर उसे यकीन नहीं आया। उसने गुरु महाराज से कहा कि हाथी को मार कर फिर जिन्दा करो। गुरु महाराज ने ईश्वर के नाम पर वैसा ही कर दिखाया। तब बादशाह ने वह स्थान उनकी सेवा के लिए दे डाला।

छठे गुरु हरगोविंद सिंह भी जब बादशाह जहांगीर से मिलने दिल्ली आए थे तो यहां ही ठहरे थे। जहांगीर सिखों की तहरीक को अपने राज्य के लिए खतर-नाक समझता था। चुनांचे बादशाह ने उन्हें इसी स्थान से गिरफ्तार करवा लिया

और ग्वालियर के किले में बंद कर दिया। 1612 से 1614 तक दो वर्ष वह कैद में रहे। बाद में संत मियांमीर के कहने से उन्हें रिहा किया गया। ग्वालियर से लौटते वक्त गुरु हरगोविंद जी फिर यहां मजनूं के टीले पर ठहरे। गुरु हरराय के बड़े लड़के रामराय जी भी यहां ठहरे थे, जिनके नाम से यहां एक कुआं बना हुआ है।

यहां एक दालान बना हुआ है, जो द्वार में प्रवेश करने पर मिलता है। दालान में बैठक बनी हुई है। कुछ वर्ष हुए रामसिंह कावली ने पास ही एक बहुत बड़ा दालान बनवा दिया है, जो 40 × 30 फुट का होगा। बीच में 'ग्रंथ साहब' का स्थान है। यहां बैसाखी के दिन बड़ा मेला लगता है।

मजनूं का टीला

मजनूं का टीला दिल्ली में मशहूर स्थान है। लैला-मजनूं की कथा तो आम प्रचलित है मगर यह मजनूं ईश्वर भक्त हुए हैं जो गुरु नानक के समकालीन थे, और जब नानक देव जी दिल्ली आए तो इनके साथ ही ठहरे थे। यह टीला यमुना के किनारे, चंद्रावल वाटर वर्क्स के पास है, इस पर एक पचास-साठ फुट ऊंची बुर्जी बनी हुई है, इसी को मजनूं का टीला कहते हैं।

आजकल यहां एक संत बाबा गोपाल दास शाह रहते हैं, जो सिंधी हैं और 1948 में पाकिस्तान से दिल्ली आए। उनका यहां दरवेश आश्रम है। यह रोहड़ी जिला सक्कर, सिंध के रहने वाले हैं। इनके गुरु नेमराजशाह एक बड़े संत हो गए हैं। वह सरकारी स्कूल में मास्टर थे। एक बार लड़कों की परीक्षा के दिन वे वह स्कूल जा नहीं सके। मगर जब विद्यार्थी उनसे मिलने आए तो बड़े खुश थे कि उनकी बदौलत सब पास हो गए। वह हैरान कि स्कूल वह गए ही नहीं, यह काम कैसे हो गया। हेडमास्टर के पास गए, उसने भी वही बात कही और उनकी हाजरी के दस्तखत दिखा दिए। उसी वक्त से वह ईश्वर भक्त बन गये और उन्होंने सारा जीवन भक्ति में ही काटा।

आश्रम बड़ा सुन्दर बना रखा है। यमुना पर तीन पक्के घाट बने हुए हैं। यात्रियों के ठहरने के लिए पचास-साठ कमरे हैं, एक मन्दिर है और उसमें एक नीची गुफा, जिसमें नेमराजजी की मूर्ति है। आश्रम में एक सुन्दर बगीचा है। एक दवाखाना, भंडार घर, प्याऊ आदि कई मकान बने हुए हैं। सिंधी यहां बहुत आते हैं। बैसाखी को बड़ा भारी मेला होता है। 16 मई से आठ दिन तक बड़ा भजन-कीर्तन होता है। हर शनिवार को भी रात भर कीर्तन होता है। आश्रम के बीच में खुला सहन है और चबूतरा है। उसी पर मजनूं बाबा की बुर्जी है।

गुरुद्वारा नानक प्याऊ

सब्जी मंडी के बाहर यह नानक देव के नाम से प्याऊ बनी हुई है। कहते हैं गुरु नानक जब दिल्ली आए थे तो वह यहां बैठ कर पानी पिलाया करते थे। मजनूं के टीले से जाते समय वह यहां ठहरे। गर्मी के दिन थे, मुसाफिर जो उधर से गुजर रहे थे उन्होंने गुरु महाराज से कुएं से पानी निकाल कर पिलाने को कहा। कुछ अर्से वह यहां पानी पिलाते रहे। गर्मी में यहां अब भी प्याऊ लगती है। यहां बगीचा भी है।

मकबरा जहांआरा (1681 ई०)

निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह के अहाते में कई यादगारें हैं, जिनमें से हर एक के चौगिर्दा संगमरमर की जाली लगी हुई है। दरवाजे के पास वाली यादगार मिरज़ा जहांगीर की कब्र है, जो शाही खानदान के शाहज़ादों में से थे। उसके बिल-मुकाबिल दिल्ली के बादशाह मोहम्मदशाह रंगीले की यादगार है और इसकी पुश्त की तरफ जहांआरा बेगम की कब्र है जो, शाहजहां की चहेती बेटी थी। जहांआरा, मोहम्मदशाह और मिरज़ा जहांगीर, मुगल खानदान की तीन विभिन्न घटनाओं के दर्शक हैं। जहांआरा ने मुगल सल्तनत का उन्नति काल पूर्ण चन्द्र के रूप में देखा, मगर जब उसकी मृत्यु हुई तो उसकी अवनति शुरु हो चुकी थी। मोहम्मदशाह के शासन काल में नादिरशाह के हमले ने सल्तनत मुगलिया की बुनियाद हिला दी और मिरज़ा जहांगीर के ज़माने में बादशाहत सिर्फ नाम की रह गई थी। उसकी शानो-शौकत का पता नहीं था और बादशाहत अपमानजनक खात्मे की ओर बढ़ रही थी।

जहांआरा बेगम के जीवन की घटनाओं को इतिहासकारों ने बहुत तोड़-मरोड़ कर बयान किया है। एक तरफ उसको आदर्श महिला के रूप में दिखाया गया है और दूसरी ओर बरनियर ने, जो उस ज़माने में दरबार शाही में मौजूद रहा करता था, उसके जीवन पर कई ऐब लगाए हैं, जिनका ज़िक्र करना ज़रूरी नहीं है। जब औरंगज़ेब ने 1658 ई० में दाराशिकोह को आगरे से नौ मील के अन्तर पर सम्भूगढ़ स्थान पर पराजित करके अपने पिता शाहजहां को गद्दी से उतार कर नज़रबन्द कर दिया तो शाहजहां की दो लड़कियों में से जहांआरा बाप की तरफ हो गई और रोशनआरा अपने भाई की तरफ। बाप के साथ आगरे के किले में जहांआरा भी मुकीम रही। रोशनआरा भाई की सलाहकार थी और सदा औरंगज़ेब को शाहजहां के दरबार में जाने से रोकती थी और इसी के सलाह-मशवरे से दाराशिकोह कत्ल किया गया और इसने अपने भाई औरंगज़ेब की सफलताओं में हिस्सा लिया। जहां-आरा बेगम सुन्दरता और बुद्धिमत्ता में अपने काल में मशहूर थी और औरतों में जो गुण होने चाहिएं, वे सब ईश्वर ने उसमें कूट-कूट कर भर दिए थे। वह औरंगज़ेब

की हरकात से इस कदर घृणा करती थी, जितनी एक औरत अपनी प्रकृति के अनुसार करने में समर्थ हो सकती है और वह अपनी नाराजगी का इजहार करने में कभी न चूकती थी। औरंगजेब ने इस अपमान को सहन न करके जहांआरा की संचित सम्पत्ति में कमी कर दी थी। शाहजहां की 1666 ई० में मृत्यु हुई। बाप की मृत्यु के पांच बरस बाद रोशनआरा का देहान्त हुआ और सोलह बरस बाद 1681 ई० में जहांआरा का शरीरान्त हुआ। यह मालूम न हो सका कि आगरे से दिल्ली जहांआरा स्वयं चली आई थी या औरंगजेब के हुक्म से उसे वहां आना पड़ा, लेकिन भाई-बहन की आपसी रंजिश का इसमें हाथ जरूर था।

जहांआरा ने अपना मकबरा अपने जीवन काल में ही बनवा दिया था। कब्र संगमरमर की बनी हुई है। तावीज के बीच में मिट्टी भरी रहती है, जिस पर हरियाली उगी हुई है। कब्र एक संगमरमर की चारदीवारी के अन्दर है और उसमें दाखिल होने का एक ही दरवाजा है, जिसके किवाड़ लकड़ी के हैं। हर दीवार में तीन-तीन दिले निहायत नफीस संगमरमर की जाली के हैं। जिस दीवार में दरवाजा है उस तरफ दो ही दिले हैं, तीसरे दिले की जगह दरवाजा है। दीवारों पर संगमरमर का उम्दा जालीदार कटघरा था, जो गिर गया। अब सिर्फ एक तरफ की दीवार पर उसका कुछ हिस्सा बाकी है, जिससे उसकी नफासत का अनुमान लग सकता है। अहाते के चारों कोनों पर छोटी-छोटी बुर्जियां हैं, जिनमें से दो गिर गई हैं। अब दो बाकी हैं। जहांआरा की कब्र अहाते के बीचोंबीच है, जिसके सिरहाने एक पतली-सी संगमरमर की तख्ती कोई छः फुट लम्बी खड़ी है। इस पर अरबी जबान में संगमूसा की पच्चीकारी से बड़े सुन्दर अक्षरों में एक लेख लिखा हुआ है, जिसका मतलब यह है : "सिवा सब्ज घास के और कुछ मेरी कब्र को ढकने के लिए न लगाया जाए। घास ही मस्कीनों की कब्रों को ढकने के लिए सर्वोत्तम वस्तु है।"

जहांआरा की कब्र के दाहिने हाथ शाह आलम बादशाह के लड़के मिरजा नीली की कब्र है और बाएं हाथ अकबर द्वितीय की लड़की जमालुनिसा की।

जीनत-उल-मसाजिद (1700 ई०)

औरंगजेब का जहां तक बस चल सका, उसने अपनी लड़कियों और बहनों से ब्रह्मचर्य का पालन करवाया और इस बेजा नीति का शिकार होने वालियों में औरंगजेब की लड़की जीनत-उल-निसा बेगम थी। 1700 ई० में उसने इस मस्जिद की तामीर करवाई और अपने नाम पर इसका नाम रखा, जो जामा मस्जिद के बाद अपनी किस्म की दिल्ली की बेहतरीन इमारतों में से एक है। यह दरियागंज म खैराती घाट या मस्जिद घाट दरवाज़े पर है, जो सड़क के बाएं हाथ बेला रोड पर जाते वक्त पड़ती है। किसी ज़माने में इस दरवाजे के बाहर यमुना नदी बहा करती थी और दरवाजे के सामने ही किश्तियों का पुल पार जाने को बना हुआ था। यमुना के

उस पार से जिस इमारत का दृश्य दूर से दिखाई देता है, उसमें यह सबसे आगे है। यह कोसों दूर से नजर आती है। पहले तो इसकी कुर्सी बहुत ऊंची है, फिर दरिया के किनारे इसके आगे कोई इमारत नहीं है। यह मस्जिद शहर की फसील से कोई तीस गज के फासले पर दरिया की तरफ, सतह जमीन से चौदह फुट ऊंची है, मगर शहर की तरफ सड़क के बराबर है। यह सारी-की-सारी लाल पत्थर की बनी हुई है। इसका सहन 195 फुट लम्बा और 110 फुट चौड़ा है, जिसमें लाल पत्थर के चौके बिछे हुए हैं। बीच में एक हौज है, जो 43 फुट लम्बा और 33 फुट चौड़ा है। मस्जिद के तीनों गुंबद संगमरमर के बने हुए हैं, जिनमें संगमूसा की धारियां बनाई गई हैं। इनके कलस सुनहरे हैं। मस्जिद 150 फुट लम्बी और 60 फुट चौड़ी है। मस्जिद के सात दर हैं। बीच वाला दर बहुत बड़ा है और इधर-उधर के तीन-तीन दर छोटे हैं। दरिया के रुख पर जो चबूतरा है, उसमें दो सयदरियां हैं और तीन महराबदार हुजरे हैं और बाकी पत्थर की चौखटों की कोठरियां हैं। ये कमरे भिन्न-भिन्न लम्बाई-चौड़ाई के हैं और इनमें से कुछ में एक-दूसरे से रास्ता है और कुछ में नहीं। इन कमरों के उत्तर तथा दक्षिण में महराबदार दो दरवाजे हैं, जिनमें सतरह-सतरह सीढ़ियां बनी हुई हैं, जो मस्जिद के सहन तक पहुंचती हैं। कमरों की बुलन्दी सतह जमीन से सहन मस्जिद के फर्श तक चौदह फुट है और उसके ऊपर आठ फुट ऊंचा कटघरा है। दक्षिण की ओर का दरवाजा मस्जिद घाट दरवाजा फसील के पास है और उत्तर की ओर का बंद कर दिया गया है। इन दोनों दरवाजों में लकड़ी के किवाड़ चढ़े हुए हैं। मस्जिद में आने-जाने का सदर दरवाजा दक्षिण की ओर था, जो सड़क की तरफ है। अब आने-जाने के वास्ते एक छोटा दरवाजा मस्जिद की पछील की दीवार में निकाल लिया गया है, जो शायद पहले खिड़की रही हो।

जीनत-उल-निसा बेगम ने अपने जीवन काल में ही अपना मजार इस मस्जिद में बनवा लिया था, जिसमें उसे 1700 ई० में दफन किया गया। यह मकबरा गदर के बाद तुरंत गिरा दिया गया था, संगमरमर की यादगार वहां से हटा दी गई थी और कब्र भी जमीन के साथ मिला दी गई थी। मकबरा मस्जिद के उत्तर में था। यह खारे के पत्थर का बना हुआ था, अन्दर के कमरे में संगमरमर का फर्श था और कब्र के गिर्द संगमरमर का एक नीचा कटघरा था। कब्र के सिरहाने की तरफ एक कुतना लिखा हुआ है।

झरना (1700 ई०)

कुतुब साहब का झरना उनकी दरगाह के पास है। पहले-पहल फीरोजशाह ने यहां एक बंध बनवाया था। चुनांचे झरने की दीवार वही बंध है, जो अब तक मौजूद है। हौज शमशी का पानी रोक कर नौलक्खी नाले में डाला गया। वहां से यही पानी तुगलकाबाद के किले में पहुंचाया गया था। कुछ अर्से के बाद वह किला

वीरान हो गया और पानी वहां जाना बंद हो गया। हौज शमसी का पानी इस बंध से निकल कर जंगल में बेकार जाने लगा तो 1700 ई० में नवाब गाजीउद्दीन खां फीरोजजंग ने इस बंध के आगे हौज और नहर, चादरें और फव्वारे बनवा दिए। बरसात के मौसम में अब भी हौज में पानी भर जाता है और चादर छूटने लगती है। फूल वालों की सैर के मौके पर यहां खूब बहार रहती है।

पश्चिम की ओर बंध की दीवार से लगा लाल पत्थर का एक संयदरा दालान $17\frac{1}{4} \times 3\frac{3}{4}$ फुट का बना हुआ है। झरना इसी मकान को कहते हैं। दालान की छत लदाओं की है, जो $11\frac{1}{2}$ फुट ऊंची है। इसके आगे एक हौज बना हुआ है। छत पर से लोग कूदते हैं और हौज में तैरते हैं। इस दालान की छत अन्दर से खाली है, जिसके छज्जे के नीचे तेरह फव्वारे लगे हुए हैं। इस छत पर भी पानी चढ़ता था और फव्वारों में से धारें छट कर हौज में गिरती थीं। इसके नीचे चिराग जलाने के ताक बनाए हैं। हौज 26 फुट मुरब्बा और साढ़े सात फुट गहरा है। इसका दहाना 1 फुट 7 इंच का है, जिसमें से इस हौज में पानी आता है। हौज के सामने एक नहर बाईस फुट लम्बी, छः फुट चौड़ी और साढ़े तीन फुट गहरी बनी हुई है। इस नहर का पानी चादर पर जाकर गिरता है। यही बड़ी चादर है। दो छोटी चादरें उत्तर और दक्षिण में आमने-सामने और हैं, जो ढाई फुट चौड़ी हैं और दो फुट की ऊंचाई से गिरती हैं। इन चादरों के आगे साढ़े तीन फुट लम्बे मुनब्बतकारी के सलामी पत्थर लगा दिए हैं, जिनके खारों में मछली की तरह पानी जाता है। इन तीनों चादरों के सामने नहरें हैं। बड़ी चादर के सामने की नहर बत्तीस फुट लम्बी, छः फुट चौड़ी और फुट भर गहरी है। इस नहर के सामने लाल पत्थर का एक बारहदरा मंडवा $12 \times 9\frac{1}{2}$ फुट का बना हुआ है। सहन में कई प्रकार के वृक्ष लगे हुए हैं। छोटी नहरों के सामने की नहरें 151 फुट लम्बी, $2\frac{3}{4}$ फुट चौड़ी और आठ इंच गहरी हैं। अब चादरें और फव्वारे टूट-फूट गए हैं और इस स्थान की एक कहानी ही शेष रह गई है।

उत्तर की ओर एक दोहरा दालान पुख्ता और संगीन बना हुआ है, जो $31\frac{3}{4}$ फुट लम्बा और 24 फुट चौड़ा है। इस दालान को अकबर शाह सानी ने अपने जमाने (1806–37 ई०) में बनवाया था, जो अब भी मौजूद है। इससे मिला हुआ एक सयदरा $33\frac{3}{4} \times 11\frac{3}{4}$ फुट का और है।

दक्षिण की ओर एक सयदरा दालान है, जिसकी बगली में दो दर और हैं। इसे शाहजी के भाई सैयद मोहम्मद ने शाहआलम सानी (1759–1806 ई०) के काल में बनवाया था, जिसका निशान अब नहीं है। अलबत्ता बहादुरशाह ने (1837–57 ई०) जो बारहदरी बनवाई थी, वह मौजूद है।

पूर्व की ओर कोई मकान नहीं है, उधर पहाड़ है। मगर मोहम्मदशाह (1719–48 ई०) ने एक फिसलवां पत्थर जिस पर लोग फिसलते थे, वहां रखवा दिया था। यह पत्थर $18\frac{1}{4} \times 7\frac{1}{2}$ फुट का है। यह भी अब टूट गया है।

यहीं पास में बहुत-से आम के वृक्ष हैं, जो 'अमरखा' मशहूर है। सैरे गुल-फ़रोशां के वक्त इसमें झूले पड़ते हैं।

मकबरा जेबुलनिसा बेगम (1702 ई०)

जेबुलनिसा औरंगजेब की बड़ी लड़की थी। इसकी मृत्यु 1702 ई० में हुई। इसका मकबरा औरंगजेब के जमाने में दिल्ली शहर के काबुली दरवाजे के बाहर, जहां तीस हजारी का मैदान है, बनाया गया था, मगर रेल की सड़क निकालने से वह मिसमार कर दिया गया। यह आलमगीर की पहलौंठी की बेटी थी। इसकी मां का नाम नवाब दिलरस बानों बेगम था। इसके जन्म पर शाही तरीके से जशन मनाया गया। बेशुमार जवाहरात लुटाए गए। मुद्दत तक गरीबों को इनाम तकसीम किए गए। इसने बड़े होकर फारसी और अरबी में काफी महारत हासिल कर ली थी। वह अरबी के शेर कहा करती थी। फिर वह फारसी की तरफ झुक गई। दीवान मख्फी इसकी यादगार है। यह बहुत सादा मिजाज थी और बड़ी मिलनसार थी। औरंगजेब अपनी विद्वान् बेटी को बहुत चाहता था। इसने शादी नहीं की। जब इसकी मृत्यु हुई तो बाप की आंखों में आंसू निकल ही आए।

शाहआलम बहादुरशाह (1707–1712 ई०)

औरंगजेब का मरना था कि उसके लड़कों में खानाजंगी छिड़ गई। उसका बेटा शाहजादा मोहम्मद मौजन काबुल से आगरे आन पहुंचा और आगरे के पास उसी मुकाम जाजऊ पर, जहां उसके बाप ने दाराशिकोह को पराजित किया था, उसकी अपने भाई शाहजादा मोहम्मद आजम सूबेदार दक्खन से भारी लड़ाई हुई। दोनों तरफ के लोग मिला कर पैंसठ हजार कहे जाते हैं। मौजन की फतह हुई और यही शाहआलम बहादुर के नाम से गद्दी पर बैठा। तीसरे भाई कामबख्श ने चाहा कि शाहआलम से राज्य छीन ले, मगर असफल रहा और जख्मी होकर मारा गया। इस बादशाह के काल में कोई विशेष बात नहीं हुई। सिखों के साथ ही लड़ाई में इसने मुकाबला करते हुए 1712 ई० में लाहौर में वफात पाई। उसके शव को दिल्ली लाया गया और कुतुब साहब की दरगाह में दफन किया गया। इसकी बनाई हुई एक ही इमारत महरौली की मोती मस्जिद है, जिसे इसने 1709 ई० में बनवाया था।

महरौली की मोती मस्जिद (1709 ई०)

हजरत ख्वाजा साहब की दरगाह की उत्तरी दीवार और मौहतिदखां के मजार की दक्षिणी दीवार के दरमियान जो रास्ता है यह पश्चिमी दरवाजे से निकल कर

एक अहाते में जा निकलता है। यहीं बाएं हाथ की तरफ मोती मस्जिद है, जिसको शाहआलम ने 1709 ई० में तामीर कराया। मस्जिद के सहन में संगमरमर के आसन बने हुए हैं, जिन पर संगमूसा का हाशिया है। सहन 45×51 फुट है। चबूतरा दो फुट ऊंचा है। मस्जिद सयदरी 45×13 फुट की है। मस्जिद के दोनों तरफ दो कमरे हैं, जिनमें उत्तर की ओर का कमरा नया बना हुआ है। पहले कमरों का रास्ता मस्जिद के अन्दर था। मस्जिद तमाम संगमरमर की निहायत सुन्दर बनी हुई है, जिसमें जगह-जगह संगमूसा के लेख बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। जब यह बनी होगी तो संगमरमर बहुत साफ रहा होगा। तब ही इसका नाम मोती मस्जिद पड़ा। मस्जिद के तीन गुंबद हैं, जो कमरख की तर्ज के निहायत खूबसूरत दिखाई देते हैं। गाओदुम मीनार छः छः फुट ऊंचे मस्जिद के इधर-उधर हैं और इसी तरह छोटी-छोटी चार बुर्जियां निहायत नाजुक मस्जिद की फसील की दीवार में हैं। मीनारों पर बुर्जियां थीं, लेकिन पुरानी हो जाने से गिरने का अन्देशा था, इसलिए सराजुद्दीन बादशाह ने 1846 ई० में इन्हें उतरवा दीं। शाह आलम सानी के काल में मस्जिद का बीच का गुंबद बैठ गया था। उसने तुरन्त उसकी मरम्मत करवा दी, जो मालूम भी नहीं होती। गुंबदों के कलस टूट गए हैं। मस्जिद में मकबरा नहीं है। मस्जिद की दक्षिणी दीवार की तरफ पांच सीढ़ियां चढ़ कर एक पक्का दरवाजा है, जिसके बाहर एक अहाता है। उस अहाते के पूर्व और पश्चिम की तरफ पक्की दीवारें हैं और दक्षिण की ओर महराबदार कमरे हैं। उत्तर की ओर एक सहन है, जिसमें दिल्ली के बादशाह की कब्रें हैं। उत्तरी अहाते का फर्श संगमरमर का है। इसकी लम्बाई 21 फुट और चौड़ाई 6 फुट है। इस अहाते की संगमरमर की दीवारें दस फुट ऊंची हैं। अहाते का दक्षिणी द्वार दीवार के पश्चिम में है।

मकबरा तथा मदरसा गाजीउद्दीन खां (1710 ई०)

गाजीउद्दीन खां निजामुल मुल्क का लड़का था, जिसने हैदराबाद के निजाम खानदान की बुनियाद डाली। यह औरंगजेब और उसके लड़के आलमशाह के दरबार के अमीरों में बड़ा रुतबा रखता था। यह मकबरा उसने अपने जीवन काल में ही बनवा दिया था और जब अहमदाबाद में 1710 ई० में उसकी मृत्यु हुई तो उसके शव को दिल्ली लाकर इसमें दफन किया गया था। यह इमारत अजमेरी दरवाजे के बाहर दिल्ली की मशहूर और दिलकश इमारतों में है।

यह इमारत चौकोर और दो मंजिला है। तमाम इमारत लाल पत्थर की बनी हुई है, जिसका चौड़ा अहाता तीन सौ गज मुरब्बा है। इसके तीन दरवाजे बड़े आलीशान और सुन्दर बने हुए हैं, खासकर पूर्व की ओर का सदर दरवाजा। सदर दरवाजा पूर्व की दीवार में है, जिसके दोनों ओर दो छोटे-छोटे दरवाजे हैं, जिनका रास्ता सदर दरवाजे से आ मिलता है। अन्दर जाकर एक सहन 174 फुट मुरब्बा

मिलता है, जिसके तीन जानिब दो मंजिला पक्के कमरे बने हुए हैं। पश्चिम में एक निहायत सुन्दर मस्जिद है, जो सिर से पैर तक लाल पत्थर की बनी हुई नजर आती है। मस्जिद के तीन दालान है और तीन-तीन दर। मस्जिद के चौतरफा पत्थर का कटघरा है। मस्जिद की कुर्सी ढाई फुट ऊंची है। मस्जिद का सहन 88 फुट लम्बा और 44 फुट चौड़ा है। पूर्व में पांच सीढ़ियां हैं। मस्जिद के तीन गुंबद चूने गच्ची के हैं। बीच का गुंबद बड़ा है और इधर-उधर के छोटे हैं, जिनके कलस टूट गए हैं। सिर्फ बीच के गुंबद का एक कलस बाकी है। मस्जिद के सहन में एक हौज 72″ लम्बा-चौड़ा था। वह अब पाट दिया गया है। मस्जिद के उत्तर और दक्षिण में ऊपर और नीचे दो चबूतरे दो-दो फुट ऊंचे हैं। उत्तरी चबूतरे के ऊपरी हिस्से के नीचे तहखाना है। ऊपर के चबूतरे के उत्तरी हिस्से में लाल पत्थर का दोहरा दालान तीन दर का है। नीचे के चबूतरे पर भी एक दालान है, जो पांच दर का है। यह दालान उस्तादों और उलेमा के रहने के थे। ऐसे ही दालान दक्षिण की तरफ भी हैं। दक्षिणी हिस्से के ऊपर के चबूतरे पर संगमरमर का खुला हुआ मकबरा है, जिसके चौगिर्दा संगमरमर की चार-चार बारीक काम की जालियां लगी हुई हैं। फर्श संगमरमर का है। दो तरफ उत्तर और दक्षिण में खुले हुए दरवाजे हैं। उत्तर का दरवाजा मस्जिद की दीवार के करीब है और दक्षिणी दरवाज़े के सामने दो सीढ़ियां संगमरमर की हैं। मकबरे के अन्दर का चबूतरा 2 फुट 4 इंच ऊंचा है। इसके चारों ओर जालीदार संगमरमर का कटघरा लगा है। अन्दर तीन कब्रें बराबर-बराबर हैं, जिनमें बीच की कब्र मीर शहाबुद्दीन गाजीउद्दीन खां बानी मदरसा की है। दाहिनी तरफ उसके बेटे की और बाईं तरफ उसके पोते की कब्रें हैं।

मदरसे की इमारत में उत्तर और पश्चिम में चालीस-चालीस कमरे हैं, जिनके सामने चौड़ा बरामदा है। पूर्व की ओर बीच में दरवाज़ा है। बीच में एक गुंबदनुमा हाल है, जिसके दाएं और बाएं रुख पर दो मंजिला चालीस कमरों की एक कतार थी, जिनकी पछील की दीवार एक ही थी। इनमें से बीस कमरों का रुख पूर्व को था और बीस का इमारत के अन्दरवार दक्षिण को। इन कमरों में विद्यार्थी रहा करते थे। इमारत के चारों कोनों पर चार बुर्ज हैं। इस इमारत के सामने एक बहुत बड़ा मैदान अजमेरी दरवाजे तक था, उत्तर-पश्चिम और दक्षिण की तरफ दूसरी शानदार इमारतें और उमरा के मकबरे थे। इन्हीं इमारतों में मौलाना फखरुद्दीन का मदरसा भी था, जहां उन्होंने 1799 ई० में इंतकाल किया।

1803 ई० में जब लार्ड लेक ने दिल्ली फतह की तो मरहठों के हमलों का बड़ा डर लगा रहता था। ऐसी हालत में इतनी बड़ी इमारत का शहर की फसील से बाहर रहना खतरनाक समझा गया। इसलिए मदरसे को और आसपास की इमारतों को ढहा कर मैदान साफ कर देने का हुक्म हुआ। बहुत-सा हिस्सा ढहा

दिया गया, मगर इमारत पुख्ता थी। आसानी से ढह न सकी। इसलिए एक खंदक खुदवा कर इसे शहर की हद में ले लिया गया। अब शहर की फसील और बुर्ज तोड़ कर मैदान साफ कर दिया गया है। सिर्फ अजमेरी दरवाजा खड़ा है। मस्जिद के पीछे एक बुर्ज था, जो अकबर शाह का बुर्ज कहलाता था। 1825 ई० में हुकमत ने इस इमारत में ओरियण्टल कालेज खोला, जो 1842 ई० तक इस इमारत में रहा। बाद में कश्मीरी दरवाजे रेजिडेंसी में चला गया। फिर इसमें यूनानी शफाखाना खोला गया। गदर के बाद यह इमारत पुलिस को मिल गई। फरवरी 1890 ई० तक पुलिस लाइन इसमें रही। बाद में इसमें अरबी स्कूल खोल दिया गया, जो कालेज बन गया था, मगर 1947 ई० के बलवे में वह खत्म हो गया और अब इसमें दिल्ली कालेज है। कम्पाउण्ड के दरवाजे के दोनों ओर संगमरमर की दो तख्तियां लगी हुई हैं, जिन पर अंग्रेजी में दाएं हाथ लिखा है, "1890 ई० से ऐंग्लो-अरेबिक स्कूल पुलिस लाइन 1860 से 1890 ईस्वी। बाएं हाथ लिखा है, 'मकबरा फीरोजजंग प्रथम मदरसा 1790 से 1857 ईस्वी।"

शाहआलम बहादुरशाह की कब्र (1712 ई०)

महरौली में कुतुब साहब की दरगाह में मोती मस्जिद के साथ शाहआलम की कब्र है, जिसकी मृत्यु 1712 ई० में हुई। यह औरंगजेब का सबसे बड़ा लड़का था और आलमगीर की मृत्यु के बाद तख्त के दावेदारों में सबसे योग्य यही था। इसने सिखों का खूब मुकाबला किया और मरहठों को भी उभरने न दिया। मुगलिया सल्तनत इसी के जमाने तक टिकी रही। इसके बाद उसका जवाल शुरू हो गया। सत्तर बरस छः महीने की उम्र में इसका इंतकाल हुआ। इसके मकबरे को इसके लड़के जहांदार शाह ने बनवाया, जिसकी लम्बाई 18 फुट और चौड़ाई 14½ फुट है। चौगिर्दा संगमरमर के जिले और जालियां लगी हुई हैं। जहांदार शाह खुद हुमायूं के मकबरे में दफन किए गए। शाहआलम सानी, मोहम्मद अकबर सानी दोनों इसी जगह दफन किए गए। इस अहाते में पांच कब्रें हैं— 1. अकबर शाह सानी, 2. शाहआलम सानी, 3. खाली, जो बहादुरशाह जफर ने अपने लिए रखाई थी, 4. बहादुरशाह पिसर आलमगीर सानी, 5. मिरजा फखरूवली अहद, जिनकी मृत्यु हैजे से हुई थी।

शाहआलम के बाद जहांगीरशाह 1712 ई० में तख्त पर बैठे मगर चंद महीने ही रहे। इनके बाद फर्रुखसियर आए जो 1713 से 1719 ई० तक रहे। फर्रुखसियर ने महरौली में ख्वाजा साहब की दरगाह में एक मस्जिद बनवाई थी।

मोइसउद्दीन मोहम्मद जहांगीरशाह (1719-48 ई०)

मोहम्मद जहांगीरशाह उर्फ मुहम्मदशाह रंगीले ने 1719 से 1748 ई० तक राज्य किया। दिल्ली की मुगल सल्तनत अब तक बहुत कमजोर हो

गई थी। ईरान के बादशाह नादिरशाह की दिल्ली पर पुरानी निगाह थी। 1738 ई० में छत्तीस हज़ार सवारों का लश्कर लेकर वह दिल्ली के लिए चल पड़ा। मोहम्मदशाह की फौज भी दिल्ली से निकल कर करनाल के मैदान में जा पड़ी। नादिरशाह को किसी सख्त मुकाबले का मौका ही न हुआ, क्योंकि निज़ामुलमुल्क ने पेशावर और लाहौर को पहले ही गांठ लिया था कि वे उसका मुकाबला न करें। करनाल पर दोनों लश्करों का आमना-सामना हुआ, मगर चंद दिनों तक लड़ाई न हुई। दोनों ओर खामोशी रही। फिर लूटमार शुरू हुई, जिसने जंग की सूरत अख्तियार कर ली। मोहम्मदशाह की फौज ने, जो दो लाख थी, शिकस्त पाई। जब मोहम्मदशाह ने देखा कि निज़ामुलमुल्क का झुकाव नादिरशाह की तरफ है तो लाचार होकर उसने नादिरशाह की अताइत कबूल कर ली। नादिरशाह ने मोहम्मदशाह की उतनी ही इज्जत की जितनी कि एक बादशाह के योग्य थी, लेकिन सल्तनत की तरफ से बेखबरी का ताना देकर उसे आड़े हाथों जरूर लिया। उसको यह विश्वास दिलाया कि उसका मंशा राज्य छीनने का नहीं है। लेकिन जब तक तावान वसूल न हो जाए, दिल्ली पर उसका कब्ज़ा रहेगा। 9 मार्च, 1739 को पहले मोहम्मदशाह शहर में पहुंचा और उसके पीछे नादिरशाह किले में दाखिल हुआ। मोहम्मदशाह सिर्फ शाह बुर्ज में रहा, नादिरशाह सारे किले में फैल गया। नादिरशाह ने हुक्म दे दिया था कि शहरियों से किसी किस्म का झगड़ा न किया जाए, लेकिन दसवीं तारीख की शाम के वक्त पहाड़गंज में बनियों से कुछ दंगा-फिसाद हो गया और इसके साथ यह अफवाह उड़ गई कि नादिरशाह मारा गया। फिर क्या था? दंगे ने बलवे की सूरत अख्तियार कर ली। दूसरे दिन सुबह नादिरशाह बलवा रोकने किले से निकल कर चांदनी चौक में कोतवाली के चबूतरे के करीब रोशनुद्दौला की सुनहरी मस्जिद में पहुंचा। बलवइयों में से किसी ने नादिरशाह पर गोली चलाई, मगर वह बाल-बाल बच गया। यह होना था कि नादिरशाह गुस्से से भर गया और उसने फौरन कत्ले आम का नादिरी हुक्म जारी कर दिया। जौहरी बाज़ार से पुरानी ईदगाह तक और जामा मस्जिद के पास चित्तली कब्र से लेकर तेलीवाड़े की मंडी में मिठाई के पुल तक कयामत बर्पा हो गई। सुबह आठ बजे से शाम के तीन बजे तक बराबर लूटमार, गारतगरी और कत्ल का बाज़ार गर्म रहा। मोहम्मदशाह ने अपना सफीर नादिरशाह की खिदमत में भेजा, जिसने जाकर क्षमा मांगी, तब कहीं कत्ल से हाथ रुका। एक लाख से ऊपर जानें तलवार के घाट उतर चुकी थीं, जिनमें आटे के साथ घुन भी पिस गया और बहुत सी औरतें और बच्चे भी मारे गए। तेरह तारीख को फिर फिसाद हुआ, मगर कम। शहर की गलियां मुरदों से अट गईं। जहां देखो शवों के ढेर लगे हुए थे। शवों को उठाने और गलियों को साफ करने में कई दिन लगे। सुनहरी मस्जिद के गिर्द कई बरस तक परिन्दा पर नहीं मारता था। ऐसा भयानक समां था। उधर से गुज़रते

डर लगता था। दरीबे का दरवाज़ा तभी से खूनी दरवाज़ा कहलाने लगा। यहां से ही कत्ले आम शुरू हुआ था। तावान जंग की रक़म नियत करने में कई दिन लगे। नादिरशाह की मांग पहले चार करोड़ की थी। मोहम्मदशाह को बदस्तूर बादशाह करार रखा, मगर नादिरशाह ने उसे निज़ामुलमुल्क से खबरदार रहने को कह दिया। नादिरशाह के बेटे की शादी औरंगज़ेब की पोती से रचाई गई। शहर में मातम मचा हुआ था। मगर ज़बरदस्त मारे और रोने न दे। लोगों को धूमधाम में शरीक होना पड़ा। पांच मई को नादिरशाह दिल्ली से दफा हुआ। उसने ईरान का रुख किया और पहली मंज़िल शालामार बाग में हुई। जो माल अस्बाब नादिरशाह लूट कर ले गया, उसका अंदाज़ा अस्सी करोड़ किया गया। तख्त ताऊस जो ले गया, वह इसके अतिरिक्त था। दरिया सिंध का पश्चिमी इलाका भी उसकी नज़र किया गया। माल-दौलत के अलावा सब मिलाकर दो लाख जानें पटड़ा हो गईं। नादिरशाह ने दिल्ली वालों को निचोड़ लिया और नाकों चने चबवा दिए। जब लोगों ने सुना कि यह बला यहां से दफा हुई तो उनकी जान-में-जान आई। मोहम्मद शाह ने इससे भी सबक हासिल न किया। धीरे-धीरे बंगाल, बिहार, उड़ीसा और रुहेलखंड सब अपनी-अपनी जगह आज़ाद हो गए।

नादिरशाह की बला कठिनाई से टली थी कि उत्तर से एक दूसरा हमला दुर्रानी अफगान अहमदशाह अब्दाली ने 1747 ई० में हिन्दुस्तान पर कर दिया। इसके मुकाबले पर नवाब मंसूरअली सफदरजंग सिपहसालार बन कर गया, मगर वह असफल रहा। नवाब कमरुद्दीन खां वज़ीर आम गोली लगने से मारे गए। वज़ीर का मरना था कि बादशाह का दाहिना हाथ टूट गया और उसे ऐसा सदमा हुआ कि वह गश खाकर गिर पड़ा और मृत्यु को प्राप्त हुआ। यह घटना अप्रैल, 1748 में हुई। इसको दरगाह हज़रत निज़ामुद्दीन में दफन किया गया।

इस बादशाह के शासन काल में जन्तर-मन्तर बनाया गया और इसकी बेगम कुदसिया ने कश्मीरी दरवाज़े के बाहर एक बाग मय इमारत के बनवाया।

रोशनउद्दौला की पहली सुनहरी मस्जिद (1721 ई०)

यह छोटी-सी मस्जिद चांदनी चौक में कोतवाली के साथ रोशनउद्दौला (ज़फरखां) की बनवाई हुई है, जिसे उसने 1721 ई० में शाहभीक के लिए बनवाया था। इसी मस्जिद की सीढ़ियों पर बैठ कर नादिरशाह ने अपनी तलवार निकाली थी और कत्ले आम का हुक्म दिया था। यह मस्जिद 48 फुट लम्बी और 19 फुट चौड़ी है। इसका चबूतरा ज़मीन की सतह से 11 फुट ऊंचा है। यह सड़क के किनारे बनी हुई है। कोतवाली के पश्चिम में यह मस्जिद और पूर्व में सिखों का गुरुद्वारा है। मस्जिद का दरवाज़ा कोतवाली के अहाते में से होकर जाता है। यहां से आठ तंग

सीढ़ियां चढ़ कर मस्जिद के सहन में जाते हैं, जहां भूरे पत्थर के चौके बिछे हैं। मस्जिद का सहन पचास फुट लम्बा और बाइस फुट चौड़ा है। मस्जिद के तीन महराबदार दर हैं। बीच की महराब के इधर-उधर पतले दो मीनार हैं। ऊपर अष्टकोण बुर्जियां और कलस हैं, जो सुनहरी हैं। मस्जिद के दोनों तरफ पैंतीस-पैंतीस फुट बुलन्द मीनार हैं, जिनके कलस सुनहरे हैं। मस्जिद के दालान के तीन भाग हैं और तीनों दालानों पर तीन सुनहरी गुंबद हैं, जिनमें बीच का गुंबद अन्य दोनों से बड़ा है। बीच का गुंबद मस्जिद की छत से अठारह फुट ऊंचा है और इधर-उधर के पन्द्रह-पन्द्रह फुट बुलन्द है।

यद्यपि यह मस्जिद नवाब रोशनउद्दौला की बनाई हुई है, मगर उन्होंने इस मस्जिद को और इसी नाम की एक दूसरी मस्जिद को, जो फैज बाजार में है, शाह मीर के नाम पर बनवाया था। रोशनउद्दौला का असल नाम ख्वाजा मुजफ्फर था। यह शाह आलम के लड़के रफीउलशान की मुलाजमत में दाखिल हुए थे। बढ़ते-बढ़ते जफरखां का खिताब मिला। बाद में मुलाजमत छोड़ कर शाहभीक की तरफ रजू हो गया और उनके हुक्म से फर्रुखसियर के पास चले गए, जिसने इन्हें रोशन-उद्दौला का खिताब दिया। इनके नाम का एक कटड़ा भी कोतवाली के पीछे की तरफ किनारी बाजार में है। इनका देहान्त 1736-37 में हुआ। शाहभीक का असली नाम सैयद मोहम्मद सईद था। यह बड़े करामाती थे। रोशनउद्दौला इनके भक्तों में थे।

जन्तर-मन्तर (1724 ई०)

इसको आम्बेर के राजा जयसिंह ने 1724 ई० में बनवाया था। यह नई दिल्ली में पार्लियामेंट स्ट्रीट पर कनाट प्लेस से नजदीक ही स्थित है। जामा मस्जिद से यह कोई दो मील के फासले पर पड़ता है। महाराज जयसिंह की बेवक्त मृत्यु के कारण इसका काम पूरा नहीं हो सका। बनने से पचास बरस के अन्दर-ही-अन्दर जाटों ने इसका बिल्कुल सत्यानाश कर दिया। उन्होंने न केवल लूट मचाई, बल्कि जो यंत्र बचे हुए थे उनको भी तोड़-फोड़ डाला। नई दिल्ली बनने के बाद अब इसकी शक्ल बदल गई है। पहले जो जयसिंहपुरा था, वह तो अब नहीं रहा। अब दीवार खींच कर इसको अलग कर दिया गया है। इसमें ग्रहों और नक्षत्रों को देखने के लिए छः यन्त्र लगे हुए हैं, जिनमें से एक का नाम सम्राट यन्त्र है। दो का नाम है राम यन्त्र, दो का जयप्रकाश यंत्र और एक का मिश्रा यन्त्र। इनके अतिरिक्त एक चक्रनियत काम का है। एक का नाम कर्कराशि वलय है और एक यंत्र का नाम है दक्षिणोवृत्ति। सितारों की बुलन्दी, नक्षत्रों की चाल, ग्रह का पता इन यन्त्रों से लग जाता है। ज्योतिष के जानने वालों के लिए यह बहुत दिलचस्पी की चीज है।

हनुमान जी का मन्दिर

जन्तर-मन्तर के आसपास का सारा इलाका जयपुर महाराज की मिलकियत था और जयसिंहपुरा कहलाता था। इरविन रोड पर जो हनुमान जी का मन्दिर है, वह भी उसी ज़माने का बना प्रतीत होता है। यद्यपि हनुमान जी की मूर्ति को महाभारत काल की बताते हैं। मौजूदा मन्दिर गदर के बाद का बना प्रतीत होता है। जब से दिल्ली में शरणार्थी आए हैं, इस मन्दिर की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई है। हर मंगलवार को यहां मेला लगता है और खूब रौनक रहती है।

मन्दिर के बाहर मैदान है, चंद दुकानें बनी हुई हैं। मन्दिर के आगे कौलोनेज पड़ा हुआ है। मुख्य द्वार दो हैं। द्वारों के दोनों तरफ बाहर चबूतरे बने हुए हैं। आठ सीढ़ियां चढ़ कर मन्दिर में प्रवेश करते हैं। बीच में सहन है और चारों ओर दालान बने हुए हैं। सहन के बीच में वृक्ष लगा है। दाएं हाथ के दालान में हनुमान जी का मन्दिर है। दालान की लम्बाई 20 फुट और चौड़ाई 10 फुट है। दालान में सामने की दीवार के साथ तीन मन्दिर हैं, पहला मन्दिर राधाकृष्ण का, बीच में राम, लक्ष्मण, सीता जी का, और फिर हनुमान का। पहले दो मन्दिरों की मूर्तियां संगमरमर की हैं। हनुमान की मूर्ति सिंदूर से ढकी हुई है। तीनों मन्दिरों के आगे चांदी के चौखटे लगे हुए हैं।

काली का मन्दिर

इसी इलाके में बेयर्ड रोड पर सड़क के साथ ही एक प्राचीन काली का मन्दिर भी है, जो छोटा-सा है। यह संगमरमर का बना हुआ है। साथ में छोटी-सी बागीची है। आजकल इस मन्दिर की मान्यता भी अधिक है।

फखरुल मस्जिद (1728-29 ई०)

कश्मीरी दरवाजे के पास बाजार में यह मस्जिद सड़क के किनारे पर है। यह मस्जिद कनेज फातमाह उर्फ फखरुलनिसा बेगम ने अपने पति शुजाअतखां की यादगार में 1728-29 ई० में बनवाई थी। शुजाअतखां औरंगजेब के अहद में बड़े उमराओं में से थे। इसका असल नाम रौद अंदाज़ बेग था। शुजाअतखां का इसे खिताब मिला था। यह अफगानों की लड़ाई में मारा गया था।

मस्जिद का चबूतरा 40×41 फुट का है और आठ फुट ऊंचा है। मस्जिद के पूर्व की ओर पांच दुकानें सड़क की तरफ बनी हुई हैं। सहन में संगमरमर का फर्श है, जिसके गिर्द एक छोटी-सी मुंडेर है। सहन तीन ओर से घिरा हुआ है और चौथी ओर पश्चिम में मस्जिद बनी हुई है। उत्तर और दक्षिण में सयदरियां 23×18 फुट की हैं, और आठ फुट ऊंची हैं। इन सयदरियों में एक हुजरा भी है। सहन से मस्जिद ढाई फुट ऊंची है। इसके तीन दर बंगड़ीदार

महराबों के हैं। मस्जिद के आगे के भाग में तमाम संगमरमर लगा हुआ है, जिसमें लाल पत्थर की पट्टियां पड़ी हैं। छत के आगे भी संगमरमर का कंगूरा है। मस्जिद के दो मीनार हैं। इन पर अठपहलू बुर्जियां और सुनहरी कलस हैं। मस्जिद के अन्दर का फर्श संगमरमर का है और मुसल्लों पर लाल पत्थर की तहरीर है। फर्श जमीन से 4½ फुट तक दीवारों में संगमरमर लगा हुआ है। इससे ऊपर भूरा पत्थर है। 1857 ई० के गदर में चूंकि कश्मीरी दरवाज़े पर बड़ा मारका था और यह मस्जिद वहीं करीब में है इसलिए गोलों की मार से यह बच न सकी। मस्जिद का सदर फाटक उत्तर-पूर्व के कोने में है। मस्जिद की आठ सीढ़ियां हैं। कुछ सीढ़ियां दरवाज़े की छत में आ गई हैं। दरवाज़े की बीच की महराब पर मस्जिद का नाम और एक कुतबा लिखा हुआ है।

मस्जिद पानीपतियां

यह छोटे कश्मीरी दरवाज़ा बाज़ार की सड़क के दाएं हाथ है, जो नसीरगंज की सड़क कहलाती है। यह मस्जिद पहले एक अहाते के अन्दर थी। इस मस्जिद को लुत्फ-उल्लाह खां सादिक ने 1725-26 ई० में बनवाया था। अब तो यह पक्की बन गई है। इस मस्जिद में मदरसा अमीनियां नाम का मुस्लिम धार्मिक स्कूल चलता है।

महलदारखां का बाग (1728-29 ई०)

दिल्ली के उत्तर-पश्चिम में कोई चार मील पर सब्जीमंडी से आगे महलदार खां का बाग था, जिसमें किसी ज़माने में ईद के बाद टर का मेला लगा करता था। महलदार खां मोहम्मदशाह के ज़माने में सम्मानित ओहदेदार था। उसने इस बाग को 1728-29 ई० में बनवाया था, जो करनाल सड़क के बिल्कुल किनारे था। बाग बहुत बड़ा कई एकड़ ज़मीन में फैला हुआ था। सदर दरवाज़ा सड़क के किनारे था, जिसकी दो महरावें 14 फुट ऊंची, 9 फुट चौड़ी और 35 फुट गहरी थीं। इसकी छत्ते में दो-दो कमरे इधर-उधर बने हुए थे। दरवाज़ा पूरा लाल पत्थर का बना हुआ था। बारहदरी के चारों कोनों पर चार कमरे थे और उनके बीच में तीन-तीन दरों के दालान थे जिनके बीच में एक चौकोर कमरा था। बारहदरी का बेहतरीन हिस्सा लाल पत्थर का बना हुआ था। चबूतरे के चारों तरफ सीढ़ियां थीं। छत्ते की मुंडेर के अलावा चारों तरफ चौड़ा छज्जा था। बारहदरी के पास ही लाल पत्थर का एक गहरा हौज 90 फुट मुरब्बा था। इसमें दिल्ली की नहर से पानी आया करता था। यह बाग महलदारखां के बाज़ार की पूर्वी हद पर था। बाग और बाज़ार के दरमियान एक बहुत चौड़ा अहाता था। इसकी उत्तरी और दक्षिणी दीवारों में तीन दरवाज़े थे जो तिरपोलिया के नाम से मशहूर थे। उत्तरी दरवाज़ा अब तक करनाल की सड़क पर मौजूद है, जिसको देख कर लोग समझते हैं कि शहर शुरू हो

गया। इसके जोड़ का दूसरा दरवाजा सड़क से हटा हुआ बाएं हाथ कुछ फासले पर है। पहले और दूसरे दरवाजे के बीच 250 गज का फासला है। इन दरवाजों पर संगमरमर की तख्ती पर संगमूसा की पच्चीकारी से लिखा हुआ एक कुतबा है। दूसरा दरवाजा भी कुछ थोड़े फर्क से इसी प्रकार का बना हुआ है। सिर्फ फक इतना है कि दरवाजों में जो कमरे हैं उनमें से एक-दूसरे में जाने-आने के रास्ते भिन्न-भिन्न प्रकार से बनाए गए थे। इस दूसरे दरवाजे की बगली में दो छोटे-छोटे मीनार भी थे, जो पहले दरवाजे में नहीं हैं। अब इस बाग की जगह इमारतें बन गई हैं।

शेख कलीमउल्लाह शाह का मजार (1729 ई०)

यह मजार जामा मस्जिद और किले के बीच में है। मौलाना आजाद की कब्र में एक सब्ज चोटी कटहरा नजर आता है। कब्र दोहरे चबूतरे पर है। ऊपर के चबूतरे पर शेख साहब की कब्र है। कब्र तावीज संगमरमर का है। ये एक फकीर आदमी थे। अभी हाल में इनके मजार की फिर से मरम्मत हो गई है। आजकल इनकी बड़ी मान्यता है। इनका उर्स भी होने लगा है।

रोशनउद्दौला की दूसरी सुनहरी मस्जिद (1744-45 ई०)

यह मस्जिद फैज बाजार के उत्तरी भाग मौहल्ला काजी वाड़े में सड़क के किनारे बनी हुई है, जिसे रोशनउद्दौला ने इसी नाम की चांदनी चौक वाली मस्जिद के चौबीस बरस बाद 1744-45 ई० में बनाया था। यह फैज बाजार की सड़क से नौ फुट ऊंचे चबूतरे पर बनाई गई है, जो 57×32 फुट है। सदर दरवाजा पूर्वी दीवार में 11 फुट ऊंचा, 16 फुट चौड़ा और 6 फुट गहरा है। सात सीढ़ियों का दोतरफा जीना चढ़कर मस्जिद के सहन में दाखिल होते हैं, जो चूने गच्ची का है। छत पर चढ़ने का जीना है। मस्जिद के उत्तर और दक्षिण में विद्यार्थियों के रहने के दालान बने हुए थे। मस्जिद तीन दर की है, जिसके दोनों तरफ दो कमरे थे। मस्जिद के तीन गुंबद हैं—बीच का बड़ा, इधर-उधर के छोटे। गुंबदों पर सुनहरी पत्तर का खोल चढ़ा हुआ था। इसी से सुनहरी नाम पड़ा। यह खोल उतार कर कोतवाली के पास वाली मोती मस्जिद पर जड़ दिया गया और गुंबद लुचे-खुचे रह गए। मस्जिद बहुत खस्ता हालत में है।

कुदसिया बाग (1748 ई०)

यह बाग कश्मीरी दरवाजे के बाहर यमुना के किनारे बना हुआ था। अब यमुना दूर चली गई है और उसकी जगह रिंग रोड है। बाग बहुत लम्बा चौड़ा और बहुत बड़े रकबे में फैला हुआ है। इसे नवाब कुदसिया बेगम महल मोहम्मद शाह बादशाह ने जो अहमदशाह बादशाह की माता थी, 1748 ई० में बनवाया

था। उसका असली नाम उधमबाई था। यह बेगम बड़ी बुद्धिशाली थी, मगर मोहम्मदशाह की ऐशपसन्दी ने इसे भी गारत कर दिया। कहा जाता है कि बेगम साहबा को यह बाग बना-बनाया मिल गया था, जिसको उन्होंने अपने शौक और सलीके से खूब बनाया-संवारा। आलीशान इमारतें बनवा कर खड़ी कर दीं। नहरें और फव्वारे बनवाए, जिनके खम्बों के निशानात अब भी दिखाई देते हैं। अब तो न वह महल रहे न वे इमारतें और न बारहदरी। एक सदर दरवाजा और दो बारहदरियां और चंद गिरी पड़ी कोठड़ियां बेशक पुराने जमाने की याद दिलाती हैं। दरवाजा जो पश्चिम में बना हुआ है 39 फुट ऊंचा, 74 फुट लम्बा और 55 फुट चौड़ा है। पूर्व की ओर एक मस्जिद बनी हुई है—जिसका मुंह रिंग रोड की ओर है।

किसी जमाने में यमुना का पानी बाग के साथ टकराया करता था। अब वह बहुत दूर चली गई है। इस बाग में अंग्रेजों ने फ्री मैसन लाज बनवाई थी जो अभी मौजूद है। उसकी इमारत बाग के बीच वाले दरवाजे के नज़दीक ही है।

1748 ई० से 1806 ई० तक की यादगारें

नाजिर का बाग (1748 ई०)

यह बाग कुतुब साहब के झरने के पास है। इसमें मकान बने हुए हैं। फूल वालों की सैर में हजारों आदमियों का जमघटा यहां रहता है। उस बाग को नाजिर रोज अफजूं ने मोहम्मदशाह बादशाह के काल में बनवाया था। इस बाग के गिर्दागिर्द फसीलनुमा कंगूरेदार निहायत मजबूत चारदीवारी है और अन्दर चारों तरफ मकान लाल पत्थर के बने हुए हैं। एक मकान बाग के बीचोंबीच बना हुआ है। सदर दरवाजा पश्चिम में है, जिसकी ऊंचाई 22 फुट है। दो तरफ छब्बीस-छब्बीस सीढ़ियों का जीना है। दरवाजे के अन्दर दो तरफा दो मंजिला सयदरी है। अब यह उजड़ चुका है। नाम ही बाकी रह गया है।

चरनदास की बागीची—मुगल बादशाह मोहम्मदशाह के जमाने में दिल्ली में चरनदास जी एक बहुत पहुंचे हुए संत हुए हैं, जिनका जन्म विक्रम सं० 1760 में हुआ और मृत्यु 1829 में। ये शुकदेव जी के अनुयायी थे। कहते हैं इन्हें उनके दर्शन भी हुए थे। नादिरशाह के आने की खबर छः मास पहले से ही इन्होंने बादशाह को दे दी थी। इनकी ख्याति सुन कर नादिरशाह इनसे मिला भी था और कहते हैं इनसे प्रभावित होकर वह ईरान लौट गया।

हौज काजी के पास एक गली में अन्दर जाकर मुहल्ला दस्सां में इनकी समाधि है। द्वार में प्रवेश करके एक बड़ा अहाता आता है। ड्योढ़ी पार करके चार सीढ़ी उतर कर आंगन में बाएं हाथ एक अष्ट पहलू छतरी बनी हुई है, जिसके दो द्वार

हैं। छतरी के बीच तीन फुट चबूतरी पर श्री शुकदेव जी और चरनदास जी के चरन बने हुए हैं। यही उनकी समाधि है। छतरी की छत में मीनाकारी हुई है। द्वार पर छतरी बनाने का संवत् 1840 लिखा हुआ है। इस पर 1100 रुपये लागत आई। सहन के दाएं हाथ फूलों की क्यारी है और बाएं हाथ एक चबूतरा है। सामने की ओर सीढ़ी चढ़ कर एक पचास-साठ फुट लम्बा दालान है, जिसके अगले भाग में आठ फुट चौड़ा सायबान पड़ा है। फर्श पक्का है। फिर दोहरा दालान है। अन्दर के भाग के तीन हिस्से हैं। बीच में चरनदासजी की गद्दी है, जिस पर छोटा-सा मन्दिर बना हुआ है। दाएं-बाएं तीन-तीन दर की दो बैठकें बनी हैं। मंदिर में श्री शुकदेव जी तथा चरनदास जी के चित्र हैं। दो-ढाई-फुट ऊंची चबूतरी पर मन्दिर है, जिसमें गद्दी बिछी है और तकिए रखे हैं इस पर चरनदास जी की चौगोसी टोपी रखी है, जो वह पहना करते थे इसके अतिरिक्त उनकी माला तथा कुबड़ी, जिसके सहारे वह बैठते थे, और मृग छाला भी है। सायबान में एक सूखे वृक्ष का तना है। कहते हैं उन्होंने दो दातुन जमीन में लगा दिए थे जो हरे होकर वृक्ष बन गए थे। चरनदास जी का चोगा भी है। वह उनके शिष्य गुलाबदास जी के पास है। सहन में पीपल, शहतूत और बट के वृक्ष लगे हैं। मन्दिर में एक कुआं भी है, जिस पर प्याऊ लगी हुई है। चरनदास जी का पंथ चलता है। उनके अनुयायी चरनदासिए कहलाते हैं।

भूतेश्वर महादेव का मन्दिर—समाधि के साथ ही एक बैठक में बाहर की तरफ गली में भूतेश्वर महादेव का मन्दिर है। यह संगमरमर का बना है। मूर्ति भी संगमरमर की है। यह मन्दिर अभी हाल में बना बताते हैं।

चौमुखा महादेव—इसी गली के पास ही एक और पुराना मंदिर चौमुख महादेव जी का है। यह एक छोटा सा मन्दिर है। सीढ़ी चढ़ कर मन्दिर में प्रवेश करते हैं। दाएं हाथ एक बैठक में नीचे चौमुखी शिवजी की पिंडी है।

मोहम्मदशाह का मकबरा (1748 ई०)

निजामुद्दीन औलिया की दरगाह में जहांआरा के मकबरे के पूर्व में मोहम्मदशाह बादशाह का मकबरा है। जिसकी मृत्यु 1748 में हुई। इसकी कब्र का अहाता चौबीस फुट लम्बा और सोलह फुट चौड़ा है। चारदीवारी आठ फुट से कुछ ऊंची है, जिसके चारों कोनों पर संगमरमर की छोटी-छोटी मीनारें हैं। दरवाज़ा और उसके सामने के जिले भी संगमरमर के हैं। दीवारों में संगमरमर की जालियां हैं। इन्हीं के बीच दरवाज़ा है, जिसके किवाड़ भी संगमरमर के हैं। इस अहाते में छः कब्रें हैं। सबसे बड़ी मोहम्मदशाह बादशाह की है। दाहिनी ओर इनकी बेगम की; उनके पास नादिर-शाह की बहू की, दाहिनी तरफ उसकी मासूम लड़की की। एक कब्र मिरज़ा जहांगीर मोहम्मदशाह के पोते की और एक मिरज़ा आशोरी की है। यह मकबरा मोहम्मदशाह ने खुद अपने जीवनकाल में तैयार करवाया था।

मोहम्मदशाह रंगीले के बाद अहमद शाह (1748 से 1754 ई०), आलमगीर द्वितीय (1754 से 1759 ई०), जलालुद्दीन (1759 से 1806 ई०) बादशाह हुए। पर वे सब बहुत सीमित क्षेत्र के राजा थे और दिल्ली का प्रभाव उन दिनों बहुत कम हो गया था।

सुनहरी मस्जिद (1751 ई०)

अहमदशाह के काल में, जब मुगलिया सल्तनत का चिराग टिमटिमा रहा था, जावेदखां नामी एक मशहूर और प्रभावशाली अमीर हुआ है। यह कुदसिया बेगम का, जो अहमदशाह की मां और मोहम्मदशाह की बीवी थी, सलाहकार था। उसने अहमदशाह के जमाने में बड़ा महत्व पाया। यह मस्जिद उसने 1751 ई० में लाल किले के दिल्ली दरवाजे के बाहर कोई सौ गज के फासले पर बनवाई थी। इसके गुंबद और मीनारों पर पीतल की चादरें चढ़ी हुई हैं। इसीसे इसका नाम सुनहरी मस्जिद पड़ा। यह इस नाम की तीसरी मस्जिद है; दो का जिक्र ऊपर आ चुका है।

मस्जिद सिर से पैर तक संगवासी की बनी हुई है। दोनों मीनार भी उसी पत्थर के हैं। तीन गुंबद हैं। ये लकड़ी के बना कर, उनके ऊपर मोटी-मोटी चादरें चढ़ाई गई थीं और चादरों पर सोने के पत्ते मढ़ दिए गए थे। बुर्जियां और कलसियां भी इसी तरह सुनहरी हैं। इसी तरह अन्दर की दीवार पर भी पत्ते चढ़े हुए थे। वर्षा के कारण गुंबदों का काठ गल कर बुर्ज टेढ़े पड़ गए थे। 1852 ई० में बहादुरशाह सानी के हुक्म से ये बुर्ज उतार कर पुख्ता चूने गच्ची के बनवा दिए गए। बुर्जियां वैसी ही बनी हुई हैं। यद्यपि यह एक छोटी-सी मस्जिद है, पूर्व से पश्चिम तक 50 फुट और उत्तर से दक्षिण तक 15 फुट, मगर सुन्दरता में यह लाजवाब है। यह मुगलिया काल की इमारतों का एक आखिरी नमूना है। तीन गुंबदों के इधर-उधर तीन खंड की दो मीनारें साठ-साठ फुट ऊंची बनी हुई हैं जिन पर अष्टकोण सोने के कलस की बुर्जियां हैं। किसी जमाने में यह आबादी में होगी। अब तो यह अकेली सड़क के किनारे तिराहे पर खड़ी है। इसका दरवाजा पूर्व की ओर है। दरवाजे की महराब पर संगतराशी का उम्दा काम बना हुआ है। दरवाजे के बीच में नौ सीढ़ियां हैं, जिन पर चढ़ कर मस्जिद के सहन में पहुंचते हैं। दालान के तीन हिस्से हैं। हर हिस्से पर गुंबद बना है, जिस पर सुनहरी कलस चढ़ा है। सहन में पत्थर के चौके बिछे हैं।

सफदरजंग का मकबरा (1753 ई०)

अबुल मंसूरखां, जिसको सफ़दरजंग के लकब से पुकारा जाता था, अवध के वायसराय सआदतअली खां का भतीजा और जानशीन था। पैदायश से वह

ईरानी था और अपने चचा के बुलाने पर, जिसकी लड़की से इसने शादी की, वह हिन्दुस्तान आया था। जब नादिरशाह के हमले के बाद हिन्दुस्तान में शान्ति स्थापित हुई, मंसूरखां दिल्ली के दरबारियों में बारसूख बन गया और जब निजामुलमुल्क ने बादशाह अहमदशाह का वजीर बनने से इन्कार कर दिया, तो मंसूरखां को वजीर बनाया गया और सफ़दरजंग का खिताब दिया गया। वह हकूमत के मामलात में साधारण योग्यता का आदमी था, लेकिन जिन नालायकों ने बादशाह को उसे वजीर बनाने की सलाह दी थी, उनमें वह बुद्धिशाली माना जाता था। शायद वह मक्कारी कम जानता था, अपने विद्वेषी निजामुलमुल्क के लड़के गाजीउद्दीन खां से तो बिलाशक वह उन्नीस साबित हुआ। इसलिए मजबूरन उसे दिल्ली में अपना सम्मान का स्थान छोड़ना पड़ा और मृत्यु तक, जो 1753 ई० में हुई, वह साजिशों का शिकार बना रहा। उसे कुतुब के रास्ते में दिल्ली से कोई छः-सात मील मकबरा सफ़दरजंग में दफ्न किया गया। यह मकबरा बहुत-सी बातों में हुमायू के मकबरे जैसा ही है और खयाल भी यही था कि हूबहू इसे वैसा ही बनाया जाए। यह एक बहुत बड़े बाग के दरमियान में एक ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है, जिसके नीचे महराबदार कोठरियां हैं। इसका गुंबद संगमरमर का है, जिसके चारों ओर कोनों पर चार बुर्जियां हैं, लेकिन यह मकबरा शानो-शौकत में हुमायू के मकबरे से कम है। मिस्टर केन ने कहा है कि "यह मुगलों की इमारत बनाने की कला का अन्तिम प्रयत्न है"।

यह मकबरा दिल्ली से कुतुब जाते हुए करीब छः मील पर सड़क के दाएं हाथ पड़ता है। बाग, जिसमें मकबरा बना हुआ है, करीब तीन सौ गज मुरब्बा है। मकबरे का दरवाजा बाग के पूर्व में है, जिसमें मकबरे की निगहबानी करने वालों के लिए कमरे बने हुए हैं। अहाते की तीन तरफ की दीवारों के बीच में दालान बने हुए हैं, जो दर्शकों के लिए आरामगाह का काम देते हैं। बाग के चारों कोनों पर अठपहलू बुर्ज बने हुए हैं, जिनके चारों तरफ दरवाजे को छोड़ कर लाल पत्थर की जालियां लगी हुई हैं। दरवाजे की पुश्त पर जरा उत्तर की तरफ तीन गुंबदों की एक मस्जिद है, जिसके तीन महराबदार दरवाजे हैं। ये पूरे लाल पत्थर के बने हुए हैं।

चबूतरा, जिस पर मकबरा बना हुआ है, बाग की सतह से 10 फुट ऊंचा है और 110 फुट मुरब्बा है। चबूतरे के बीच में एक तहखाना है, जिसमें सफ़दरजंग की कब्र है। कब्र के ऊपर की इमारत 60 फुट मुरब्बा और नब्बे फुट ऊंची है। इसके दरमियान में 20 फुट मुरब्बा का एक कमरा है, जिसमें कब्र का खूबसूरत तावीज है। तावीज संगमरमर का बना है। इसका पत्थर निहायत साफ और पच्चीकारी के काम से आरास्ता है। दरमियानी कमरे के गिर्द आठ कमरे और हैं, जिनमें चार चौकोर और चार अठपहलू हैं। गुंबद के अन्दर का फर्श और दीवारें रजारे तक संगमरमर

की हैं। बीच के कमरे पर जो गुंबद है, वह अन्दर की ओर 40 फुट ऊंचा है। जिस तरह पहली मंजिल में कमरे हैं, उसी के जोड़ के कमरे ऊपर की मंजिल में भी हैं। गुंबद कोठीदार संगमरमर का है, जिसके कोनों पर संगमरमर की मीनारें हैं। गुंबद चारों ओर एक ही प्रकार के और एक ही तरह की सजावट के हैं, जिनमें संगमरमर की पट्टियां पड़ी हुई हैं। गुंबद के सामने एक पक्की संगबस्त की नहर अब भी मौजूद है, जिसके फव्वारे टूट गए हैं।

यह मकबरा सफ़दरजंग के बेटे शुजाउद्दौला नायब सल्तनत अवध ने मोहम्मदखां की निगरानी में तीन लाख रुपये की लागत से बनवाया था। मकबरे के पूर्व की तरफ़ के गुंबद पर एक कुतबा लिखा हुआ है।

मकबरे का बाग अच्छी हालत में रखा हुआ है। इसका नाम मदरसा भी है। इसके पास ही वेलिंगडन हवाई अड्डा भी बन गया है। मकबरे के सामने से एक सीधी सड़क हुमायूं के मकबरे को गई है। जब कुतुब की सैर करने वाले पैदल कुतुब की सड़क पर जाया करते थे, तो आराम के लिए यहां ठहर जाते थे। अब तो यहां सामने की तरफ़ खासी अच्छी बस्ती हो गई है। बहुत-सी कोठियां बन गई हैं। पुराने जमाने की एक पियाऊ का मकान अब भी सड़क के किनारे बना हुआ है। आलमगीर द्वितीय (1756–59 ई०) के समय की कोई यादगार नहीं है।

आपा गंगाधर का शिवालय (1761 ई०)

यह शिवालय जलालउद्दीन के जमाने का लाल किले के नजदीक जैनियों के लाल मन्दिर से मिला हुआ चांदनी चौक के दक्षिण हाथ को बना हुआ है। दिल्ली पर जब मराठों का कब्ज़ा था, उस वक्त यह बना था। इसे सिंधिया महाराज की मुलाज़मत करने वाले एक मराठे ब्राह्मण आपा गंगाधर ने बनवाया था। दिल्ली वालों के लिए यह एक ही प्रतिष्ठित मन्दिर है। दिल्ली में यों तो हिन्दुओं के सैंकड़ों मन्दिर हैं, मगर कोई प्राचीन मन्दिर ऐसा नहीं है, जिसकी विशेषता रही हो; क्योंकि इस शहर को जब शाहजहां ने बसाया तो उससे पहले के मन्दिरों का कोई जिक्र देखने में नहीं आता। यह मन्दिर गौरीशंकर के नाम से मशहूर है।

मन्दिर सड़क के किनारे पर है। मन्दिर एक मंज़िल चढ़कर है। इसके दो दरवाज़े हैं। सीढ़ियां चढ़ कर अन्दर जाते हैं। दक्षिण की ओर चार मन्दिर बने हुए हैं। बीच में एक बड़ा कमरा है, जिसके दो भाग हैं। अन्दर के हिस्से में गौरीशंकर का मंदिर है। एक चबूतरे पर, जो चार फुट ऊंचा है, सफेद पत्थर की शिव और पार्वती की मूर्तियां हैं। चबूतरे के सामने कमरे के बीच में शिवलिंग की पिंडी, पार्वती, गणपति, नन्दी तथा गरुड़ की मूर्तियां हैं। एक आले में हनुमान जी की मूर्ति है। इस कमरे में तीन तरफ़ शीशेकारी का काम है। बाहर के हिस्से में दर्शनार्थी खड़े

होते हैं। कमरे के तीन ओर दरवाजे हैं। सामने की ओर चौड़ा चबूतरा है, जिस पर सायबान पड़ा हुआ है। मन्दिर का और चबूतरे का फर्श संगमरमर या संगमूसा का है। इस मन्दिर की दाहिनी तरफ एक छोटा-सा मन्दिर राधाकृष्ण का बना हुआ है। बाएं हाथ यमुना जी का मंदिर है और एक नया मंदिर सत्यनारायणजी का बना है। इस मंदिर की बड़ी मान्यता है। भक्त लोग इसमें कुछ न कुछ बनवाते रहते हैं। अपने-अपने नाम से संगमरमर की शिलाएं तो जगह-जगह लगाते ही रहते हैं। अब सड़क की तरफ एक कमरा गीता भवन का बन रहा है। दस्तकारी के लिहाज से इसमें कोई विशेषता नहीं है। श्रावण के दिनों में यहां बड़ी भीड़ रहती है। प्रबंध के लिए एक कमेटी बनी हुई है।

लाल बंगला (1779 ई०)

जो इमारत वूल्जले रोड पर गोल्फ क्लब में खड़ी है, वह लाल बंगले के नाम से मशहूर है। यह पता नहीं चलता कि इसे किसने और किस लिए बनवाया था। मगर शाह आलम बादशाह की माता लाल कंवर का जब देहान्त हुआ, तो उन्हें इस इमारत के एक गुंबद में दफन किया गया, तब ही से यह लाल बंगला कहलाने लगा। इसके बाद उनकी बेटी बेगम जान का देहान्त हुआ तो उसे इस इमारत के दूसरे गुंबद में दफन किया गया। फिर तो तैमूरिया खानदान की बहुत-सी कब्रें इस इमारत में बनीं। चुनांचे मिरजा सुल्तान परवेज, मिरजा दाराबख्त, मिरजा दाऊद, नवाब फतहाबादी, मिरजा बूलाकी और बहादुरशाह के कितने ही कुटुम्बी यहां दफन किए गए।

दोनों गुंबद लाल पत्थर के बने हुए हैं, जिनके चारों ओर चारदीवारी है। अहाते की लम्बाई 177 फुट और चौड़ाई 160 फुट है, दीवार करीब 9 फुट बुलन्द है। बंगले का दरवाजा अहाते के उत्तर पूर्वी कोने में है और उसके आगे एक पोषस बना हुआ है। दोनों गुंबद दरवाजे के पास हैं। पहला शाह आलम की माता का है, जो लाल पत्थर के 52½ फुट मुरब्बा और एक फुट ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ है। यह गुंबद 30 फुट मुरब्बा है, जिसके चारों कोनों पर एक-एक कोठरी छः-छः फुट मुरब्बा है। इन कोठड़ियों के बीच में सयदरियां हैं, जो दो संगीन और दो दीवार-दोज स्तूनों पर कायम हैं। इमारत का बीच का कमरा 12 फुट मुरब्बा है। इस कमरे में तीन कब्रें हैं और एक पश्चिमी कमरे में है।

नजफखां का मकबरा (1781 ई०)

नादिरशाह के हमले के बाद (1739 ई०) मुगलिया खानदान की बुनियाद ऐसी हिल गई कि कोई इन्सानी ताकत उसे बहाल नहीं कर सकती थी। ले-दे-के नजफखां ही एक ऐसा व्यक्ति रह गया था, जिससे कुछ आशा बंधी हुई थी। उसके मरने से वह उम्मीद भी खत्म हो गई। इसमें शक नहीं कि मुगल

राज्य के अन्तिम दिनों में जो नाम नजफखां ने पैदा किया, वह किसी को नसीब न हुआ। यह बड़ा योग्य व्यक्ति था। पैदायश से वह ईरानी था और खानदान का सैयद था। मिस्टर केन ने अपनी किताब 'मुगल एम्पायर' में लिखा है कि राज्य के तमाम काम और ताकत उसके हाथ में थी, जिसको उसके गुणों और बुद्धिमत्ता ने संभाल रखा था। वह नायाब वज़ीर था और फौज का कमांडर-इन-चीफ भी। तमाम राजस्व का प्रबंध उसके नीचे था और मालगुजारी वसूल करना, दाखिल-खारिज सब उसके अधीन था। इसके अलावा जिला अलवर और कुछ हिस्सा ऊपरी दोआबे का भी उसके सुपुर्द था। उसकी मृत्यु 1782 में हुई बताई जाती है, मगर कब्र पर 1781 ई० लिखा हुआ है।

सफ़दरजंग के मकबरे से थोड़ा आगे बढ़ कर कुतुब रोड के बाएं हाथ की तरफ अलीगंज की बस्ती में नजफखां का मकबरा है। यह नब्बे फुट मुरब्बा है और दो फुट ऊंचे चबूतरे पर लाल पत्थर का बना हुआ है। इमारत की छत दस फुट ऊंची है, जिस पर एक अठपहलू गुंबद 12 फुट व्यास के चारों कोनों पर बने हुए हैं। छत सपाट है और कब्र अन्दर तहखाने में बनी हुई है। नजफखां की कब्र के दाएं हाथ उसकी लड़की फातमा की कब्र है। दोनों के तावीज संगमरमर के हैं, जो दो फुट ऊंचे, नौ फुट लम्बे और आठ फुट चौड़े हैं। सिरहाने की तरफ जो संगमरमर के पत्थर लगे हैं, उन पर खुतबे लिखे हैं।

नजफखां की मृत्यु के पच्चीस वर्ष के अन्दर ही तथाकथित दिल्ली की बादशाहत हिन्दुस्तान में कायमशुदा अंग्रेजों की सल्तनत में मिल गई और उसकी खुद मुखतारी का टिमटिमाता हुआ दीपक भी बुझ गया। जनरल लेक, जिसने दिल्ली के बादशाह को सिंधिया के चंगुल से निकाला था और फ्रांस वालों के अपमान से बचाया था, उसे राजधानी में ब्रिटिश हुकूमत का पेंशनख्वार बना कर छोड़ गया और दिल्ली को फतह करने के तेरह दिन बाद 24 सितम्बर, 1803 को करनल आक्टर लोनी को दिल्ली का दीवानी और फौजी हाकिम नियुक्त किया गया। इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु को सौ वर्ष भी होने न पाए थे कि मुगलिया सल्तनत का इस जल्दी से खात्मा हो गया, जिसका कोई अनुमान भी नहीं कर सकता था।

शाह आलम सानी की कब्र (1806 ई०)

शाह आलम को महरौली में कुतुब साहब की दरगाह में दफनाया गया था। मोती मस्जिद के पास शाह आलम बहादुर जिस अहाते में दफन है, इसी में इसको भी 1806 ई० में दफन किया गया। इस के दाहिनी तरफ इसके बेटे अकबर सानी की कब्र है। इसकी कब्र छः फुट लम्बी 1-1½ फुट चौड़ी और

1-1½ फुट ऊंची है। मकबरा संगमरमर का बना हुआ है और कब्र भी संगमरमर की ही है। कब्र के सिरहाने एक खुतबा लिखा हुआ है और कब्र के तावीज पर कुरान की आयतें दर्ज हैं। इसकी कब्र और अकबर शाह सानी की कब्र के बीच में बहादुरशाह की कब्र के लिए, जो मुगलिया खानदान के आखिरी बादशाह थे, जगह छूटी हुई थी, लेकिन 1857 ई० के गदर के हालात के परिणामस्वरूप बादशाह गद्दी से उतार कर रंगून भेज दिया गया, जहां उसकी मृत्यु हुई और उसे दफन किया गया।

इस प्रकार शाहजहां के काल से, जब कि मौजूदा दिल्ली आबाद हुई, और शाह आलम के जमाने तक, जब कि दिल्ली अंग्रेजों के हाथों में चली गई, हालात देखने से पता चलता है कि शाहजहां तो औरंगजेब द्वारा कैद किए जाने तक दिल्ली में ही रहता रहा। औरंगजेब अपनी सल्तनत के शुरू काल में दिल्ली में रहा। उसके दरबार में दो विदेशी बरनियर और टेवर्नियर आए जिन्होंने दिल्ली का हाल लिखा है और उसी जमाने में अर्थात् 1666 ई० के करीब शिवाजी दिल्ली आए जो मुगल सल्तनत के सही बर्बाद करने वाले कहे जा सकते हैं। चांदनी चौक ने यदि कोई सब से बढ़कर दर्दनाक और शोकप्रद दृश्य देखा है, तो दारा-शिकोह की गिरफ्तारी के बाद उसकी नुमाइश का, और उससे भी बढ़कर उसके शव के दर्दनाक प्रदर्शन का।

अकबरशाह सानी (1806-1837 ई०)

ख्वाजा साहब की दरगाह में मोती मस्जिद के पास अकबरशाह सानी को अपने बाप शाह आलम बहादुर की कब्र के पास दफन किया गया। इसकी कब्र का तावीज संगमूसा का है। यह तावीज पहले कासमअली हरली की कब्र का था, जिसके पांवों की तरफ ख्वाजा कासमअली खुदा हुआ था। उसे छील दिया गया। कब्र 5 फुट लम्बी, 1 फुट 7 इंच चौड़ी और पांच इंच ऊंचाई में है। तावीज पर कुरान की चंद आयतें तथा शेख सादी का एक शेर लिखा हुआ है।

लाल किले के सामने से एक पैदल का रास्ता उत्तर की तरफ यमुना को चला गया है। पहले यह गाड़ी का रास्ता था। पुराने जमाने में यमुना स्नान के लिए शहर से लोग इसी रास्ते से आया करते थे। शहर के मुरदे भी इधर ही से जाया करते हैं। यह रास्ता उस नहर के नीचे से होकर गया है, जो किले में जाती थी। वहां सड़क पर दरवाजा बना हुआ है। इस ओर दाएं-बाएं कई मन्दिर, बागीचियां और धर्मशालाएं थीं। इनमें माधोदास की बागीची खास कर बहुत प्राचीन है। यह मन्दिर कोई दो सौ बरस पुराना कहा जाता है। इस मन्दिर में चरन हैं। कहा जाता है कि अकबर शाह सानी एक बार माधोदास के पास आया और देखा कि बहुत-सी चक्कियां स्वयं चल रही हैं। बादशाह को यह करामात देख कर बहुत

आश्चर्य हुआ और उसने महात्मा जी को कुछ देना चाहा, मगर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। मन्दिर में बागीची तो नहीं है, मगर कई मन्दिर बने हुए हैं। कई सीढ़ियां चढ़ कर मन्दिर में दाखिल होते हैं, जिसकी चारदीवारी है और एक दरवाजा पुश्त की तरफ है। सहन में कई मन्दिर हैं। एक रामजी का मन्दिर है, जिसमें लक्ष्मण और सीताजी की मूर्तियां भी हैं। रामजी की मूर्ति काले पत्थर की और दूसरी दो संगमरमर की हैं। रामजी के मन्दिर के सामने रामेश्वर महादेव का मन्दिर है, जिसमें पार्वती और नन्दी की मूर्तियों के अलावा शिवलिंग की पिण्डी भी है। महन्त माधोदास की गद्दी है, जिसमें बलराम और रेवती की मूर्तियां हैं। बलराम की मूर्ति बहुत सुन्दर बनी हुई है। चौथा मन्दिर यमुना का है, फिर सत्यनारायण और गंगा का मन्दिर है।

सेंट जेम्स का गिरजा (1826-36 ई०)

इसे जेम्स स्किनर ने 1826-36 ई० में बनवाया था। यह शख्स पहले महाराजा ग्वालियर की मुलाजमत में था। जब महाराजा ग्वालियर अंग्रेजों से लड़ने को तैयार हुए तो इसने उनकी नौकरी छोड़ दी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मुलाजमत कर ली। गिरजा 1826 से 1836 तक दस वर्ष में नब्बे हजार की लागत से बन कर तैयार हुआ। इमारत बहुत सुन्दर बनी हुई है। गुम्बद कमरखी है। उस पर सुनहरी सलीब लगी है। कमरों में संगमरमर का फर्श है। गदर में गोलाबारी से गुम्बद को नुकसान पहुंचा था और वह गिर गया था। 1865 में उसे दुरुस्त करवाया गया। गदर में गिरजा पर एक तांबे का गोला लगा हुआ था, जो 1883 ई० में उतार कर नीचे रख दिया गया। इसमें 79 सूराख गोलियों के हैं और सलीब में चौदह हैं। यह एक चबूतरे पर रखा हुआ है।

गिरजा के सहन में कमिश्नर फ्रेजर की कब्र है, जो 1835 ई० में कतल हुआ था। यह कब्र संगमरमर की है, जिस पर दो शेर बैठे हैं और लोहे का कटघरा चारों ओर लगा है। फ्रेजर की कब्र से मिली हुई पीछे की सड़क पर एक चबूतरे पर गदर में कतल किए गए अन्य व्यक्तियों की यादगार है। गिरजे के उत्तर-पूर्वी कोने में मटकाफ़ की कब्र है। यह गदर के जमाने में मजिस्ट्रेट था। इसी ने मटकाफ़ हाऊस बनवाया था। इसके अतिरिक्त स्किनर खानदान वालों की कई कब्रें इस गिरजे के सहन में बनी हुई हैं।

गिरजे के पीछे फसील के साथ के मकान सवा डेढ़ सौ बरस के बने हुए हैं। कचहरी के साथ वाला मकान 1845 ई० में स्मिथ का मकान कहलाता था। इसमें डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का दफ्तर था। इस मकान में कई तहखाने हैं। सेंट जेम्स के बुर्ज के पास दिल्ली गजट की इमारत थी, जिसमें दिल्ली गजट अखबार छपता था। यहीं से 'इण्डियन पंच' भी निकला था। इस मकान के सामने जो खुला हुआ मैदान था, वह रेजिडेंसी

का बाग था। बाद में यहां गवर्नमेंट कालेज और फिर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्कूल बना। अब पोलीटैक्नीक स्कूल है। कश्मीरी दरवाज़े से मिला हुआ निकलसन रोड के साथ जो मकान है, उसमें बंगाल बैंक हुआ करता था। यहां सेंट स्टीफेन कालेज था और उसके पीछे अहमदअली खां का मकान था।

गिरजे से आगे बढ़ें तो बाएं हाथ को, फिर एक सड़क आती है। यह चौराहा है। बीच में एक छोटा पार्क है। सड़क के बाएं हाथ स्टीफेन कालेज का बोर्डिंग हाउस था और दाहिने हाथ कालेज की इमारत। पहले जो कालेज था, उसकी इमारत 1877 में तोड़ दी गई थी। यह कालेज 1890 ई० में कायम हुआ। पहले अलनट पादरी ने इसे बनवाया। फिर सी० एफ० ऐन्ड्रूज साहब रहे, फिर रुद्रा साहब प्रिंसिपल रहे। इस कालेज की दाएं हाथ की दो मंजिला इमारत में जो सड़क के साथ है, रुद्रा साहब रहा करते थे। उस जमाने में 1915 से 1921 तक ऊपर के कमरे में रुद्रा साहब के साथ महात्मा गांधी ठहरते रहे। अब यह कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय में चला गया है। यहां पोलीटैक्नीक स्कूल है।

मोहम्मद बहादुरशाह सानी (1837-1857 ई०)

बहादुरशाह मुगल खानदान के आखिरी बादशाह थे। इन्हीं के जमा में 1857 ई० का गदर हुआ, जिसके बाद ये गिरफ्तार हुए और इन्हें रंगून में भेज दिया गया, जहां इनकी मृत्यु हुई और वहीं ये दफन किए गए। ये उसी वर्ष (1837 ई०) तख्त पर बैठे, जिस वर्ष लंदन की मलिका विक्टोरिया वहां के तख्त पर बैठी थीं। ये तो नाम के ही बादशाह थे, बाकी हुकूमत अंग्रेजों की थी। वर्ष में दो मास ये महरौली में ख्वाजा साहब की दरगाह के पास जाकर रहा करते थे, जहां इनका महल था। अब तो वह सब खंडहर बन गया है। उसका सदर दरवाज़ा अभी मौजूद है, जो बहुत बुलंद है और लाल पत्थर का बना हुआ है। इनके गुरु मौलाना मोहमद फखरुद्दीन थे, जिनका संगमरमर का मजार ख्वाजा साहब की दरगाह में बना हुआ है। जब ये जलावतन किए गए और रंगून भेजे गए तो जाते वक्त उन्होंने अपनी बेकसी को यों बयान किया था :—

न किसी की आंख का नूर हूं, न किसी के दिल का करार हूं
जो किसी के काम न आ सके, वह मैं एक मुश्ते गुबार हूं।

मैं नहीं हूं नगमाए जां फिज़ा, मेरी सुन के कोई करेगा क्या
मैं बड़े बियोगी की हूं सदा, और बड़े दुखी की पुकार हूं।

न किसी का हूं मैं दिलरुबा, न किसी के दिल में बसा हुआ
मैं ज़मीं की पीठ का बोझ हूं, और फलक के दिल का गुबार हूं।

मेरा वक्त मुझसे बिछुड़ गया, मेरा रूप-रंग बिगड़ गया
जो चमन खिजां से उजड़ गया, मैं उसी की फसले बहार हूं।

पै फातिहा कोई आए क्यों, कोई शमां ला के जलाए क्यों
कोई चार फूल चढ़ाए क्यों, मैं तो बेकसी का मजार हूं।

न अख्तर मैं अपना हबीब हूं, न अख्तरों का रकीब हूं
जो बिगड़ गया वह नसीब हूं, जो उजड़ गया वह दयार हूं।

माधोदास की बागीची

बहादुरशाह के काल की सबसे बड़ी यादगार तो 1857 का गदर है जिसने हिन्दुस्तान की सल्तनत का तख्ता ही पलट दिया था। वरना उस जमाने की ईंट-पत्थर की कोई खास यादगार नहीं है। अलबत्ता मुगल काल के चंद हिन्दू और जैन मन्दिर अवश्य हैं जिनका सही काल अनुमान से ही किया गया है। उन में से कुछ एक का वर्णन यहां दिया जाता है।

झंडेवाली देवी का मन्दिर

मौजूदा देशबन्धु रोड की चढ़ाई चढ़ कर बाएं हाथ की सड़क जाकर यह मन्दिर आता है। यह मन्दिर एक प्राचीन देवी का मन्दिर है, जिसे झंडेवाला मन्दिर कह कर पुकारते हैं। यह झंडेवाली पहाड़ी पर बना हुआ है। चारदीवारी के अन्दर प्रवेश करके एक बागीचा है, जिसमें कई मकान बने हुए हैं। बाएं हाथ एक बहुत पुराना कुआं है, जिसका ठंडा पानी मशहूर है। सीढ़ियां चढ़ कर एक पक्का चबूतरा बना है, जिस पर बीच में देवी का मन्दिर है। मन्दिर अठपहलू है। देवी की मूर्ति संगमरगर की है, जो चबूतरे पर बैठी है। चबूतरे की चार सीढ़ियां हैं। मन्दिर के आगे एक दालान बना हुआ है। मन्दिर की परिक्रमा भी है। मन्दिर डेढ़ सौ वर्ष पुराना बताया जाता है।

मन्दिर के साथ कई धर्मशालाएं बनी हुई हैं। एक हनुमान का मन्दिर भी है। इस देवी की मान्यता बहुत है। बहुत से दर्शनार्थी रोज ही यहां आते हैं, खासकर अष्टमी के दिन तो खासी भीड़ हो जाती है। उसमें भी नौरात्रों में और भी अधिक इस इलाके का नाम मोतिया खान भी है। पुराने जमाने में यहां पहले दो मेले हुआ करते थे—अषाढ़ी पूर्णिमा के दिन पवन परीक्षा का मेला, बरसात कैसी होगी, इसकी खास परीक्षा की जाती थी। दूसरा मेला होता था श्रावण शुक्ला तीज को, जो तीजों का मेला कहलाता था। यह लड़कियों का मेला था। यहां झूले डालकर लड़कियां झूला करती थीं। पाकिस्तान बनने के बाद यहां पर मेले होने बन्द हो गए। अब ये मेले रामलीला के मैदान में होने लगे हैं।

चंद्रगुप्त का मंदिर

चंद्रगुप्त रोड पर एक अहाते में यह चंद्रगुप्त का एक पुराना मन्दिर है। द्वार से प्रवेश करके सहन है। बीच में दालान बना है। उसमें आले में चंद्रगुप्त की मूर्ति रखी है। कायस्थों में इसकी मान्यता अधिक है।

घंटेश्वर महादेव:—कटड़ा नील में घंटेश्वर महादेव जी का मठ एक मन्दिर है जो काफी पुराना है। इस में महादेवजी की पिण्डी है।

राजा उग्गर सेन की बावली:—हेली रोड की एक गली में यह बावली पठान काल की बताई जाती है। यह कब बनी, इसका सही पता नहीं है, मगर अनुमान है कि सिकंदर लोदी के जमाने में यह बनी थी। कुछ लोग इसे हजार वर्ष पहले की बनी बताते हैं। अब तो यह पुराने खंडहरात में शुमार है।

बावली खारे के पत्थर की बनी हुई है। करीब दस गज चौड़ी और पचास गज लम्बी होगी। इस की कोई पचास सीढ़ियां हैं। सामने की ओर पुख्ता कुआं है। पानी इसका आजकल हरा है। इसमें लोग तैरना सीखने जाते हैं। राजा उग्गर सेन ने इसे बनवाया, बताते हैं। बावली के ऊपर एक चबूतरा और बैठक भी बनी हुई है।

विष्णु पद:—तीमारपुर में जो चन्द्रावल की पहाड़ी है, उसमें मेगजीन रोड की तरफ एक स्थान पर चरन चिह्न बने हुए हैं। कुतुब की लाट के पास जो लोहे की कीली है, उस पर खुदे हुए लेख में जिस विष्णु पद पहाड़ी का जिक्र है, कि यह लौह-स्तम्भ उस पर लगा हुआ था, कहते हैं यह स्थान वही है। इस पहाड़ी का नाम विष्णु पद था। इसको 1600 वर्ष हो चुके हैं।

दिल्ली में गदर से पहले के कितने ही जैन मन्दिर भी मौजूद हैं, जिनमें से कई तो अच्छे मशहूर हैं।

दिगम्बर जैन मन्दिर, दिल्ली गेट:—यह एक गली में स्थित है। इसे लाल मन्दिर भी कहते हैं। इसमें सबसे प्राचीन मूर्ति 1773 की बताई जाती है। मन्दिर में चित्रकारी की हुई है। कहा जाता है कि किले के पास वाले लाल मन्दिर के बन जाने के बाद जैन समाज में कुछ मतभेद हो गया था, इस कारण इस मन्दिर की स्थापना हुई। मन्दिर की इमारत पक्की है।

श्वेताम्बर जैन मन्दिर, नौ घरा:—यह मन्दिर किनारी बाजार, मुहल्ला नौघरा में स्थित है। इसे शाहजहां के काल का बना हुआ बताते हैं। श्वेताम्बरों का यह सबसे प्राचीन मन्दिर माना जाता है। इसका पुनर्निर्माण सन् 1709 में हुआ था। प्रतिमा सुमति नाथ जी की है। भवन में स्वर्ण चित्रकारी का काम है।

महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर:—यह नई सड़क से जाकर वैद्यवाड़े में स्थित है। इसका निर्माण 1741 में हुआ बताते हैं। मंदिर में लगभग 200–250 मूर्तियां हैं। मन्दिर के शास्त्र भंडार में कई हस्तलिखित ग्रंथ हैं।

जैन पंचायती मन्दिर:—यह गली मस्जिद खजूर में स्थित है। इसका निर्माण मोहम्मद शाह द्वितीय के सैनिक ग्राज्ञामल ने 1743 में करवाया, बताया जाता है। यह पांडेजी का मन्दिर भी कहलाता है। इसमें पारसनाथ जी की श्यामवर्ण मूर्ति है, जो 4 फुट 6 इंच ऊंची और तीन फुट पांच इंच चौड़ी है। कई रत्न प्रतिमाएं भी हैं। सबसे प्राचीन मूर्ति सन् 1346 की और अन्य दस-बारह मूर्त्तियां 1491 की कही जाती हैं।

मन्दिर में करीब 3,000 अप्राप्य हस्तलिखित शास्त्रों का तथा अन्य मुद्रित ग्रंथों का संग्रह है।

जैन नया मन्दिर धर्मपुरा:—इसे राजा हरसुखराय जी ने, जो शाही खजांची थे और भरतपुर महाराज के दरबारी थे, सन् 1800 में आठ लाख की लागत से बनवाया था। यह सात वर्ष में बन कर पूरा हुआ। मन्दिर में आदि नाथ जी की सन् 1607 की मूर्ति है।

मन्दिर की वेदी मकराना के संगमरमर की बनी है, जिसमें सच्चे बहुमूल्य पाषाण की पच्चीकारी का और बेल-बूटों का काम बड़ी कारीगरी का बना हुआ है। जिस कमल पर प्रतिमा विराजमान है, उसकी लागत दस हजार बताई जाती है और मन्दिर की लागत सवा लाख बताई जाती है। यहां के पच्चीकारी के काम को कितने ही बाहर वाले भी देखने आते हैं। शास्त्र भंडार में लगभग 1800 हस्तलिखित ग्रंथ हैं।

जैन बड़ा मन्दिर कूचा सेठ:—इस मन्दिर का निर्माण सन् 1828 से 1834 में हुआ बताते हैं। मूर्ति भगवान ऋषभदेव की है। मूर्ति की प्रतिष्ठा सन् 1194 की मानी जाती है। मन्दिर की इमारत पक्की बनी हुई है। सीढ़ियां चढ़ कर मन्दिर में प्रवेश होता है। शास्त्र भंडार में 1400 हस्तलिखित ग्रंथ हैं।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त जैनियों के दसियों अन्य मन्दिर, चैत्यालय, स्थानक आदि तीर्थ स्थान दिल्ली में स्थित हैं, जिनमें से कई काफी प्राचीन हैं।

जैन पार्श्व मन्दिर :

इरविन रोड से जो अन्दर की ओर जैन मन्दिर रोड गई है, यह मन्दिर उसी सड़क पर थोड़ा अन्दर जाकर पड़ता है। यह इलाका भी जयसिंह पुरा ही कहलाता था। यह खंडेलवाल अथवा बड़े मन्दिर के नाम से मशहूर है।

इस मन्दिर की सही निर्माण तिथि का तो पता चल नहीं पाता मगर रिवायत है कि यह पार्श्व नाथ मन्दिर है, जहां सन् 1659 ई० में अजित पुराण की रचना की थी और जिसकी अन्तिम प्रशस्ति में इस मन्दिर का भी उल्लेख है। यह भी कहा जाता है कि इसी मन्दिर में सांगानेर निवासी श्री खुशहाल चंद जी काला ने स्थानीय श्री गोकुलचंद जी ज्ञानी के उपदेश से सन् 1723 से 1743 तक हरिवंश पुराण आदि अनेक ग्रंथों की रचना की थी। अनुमान है कि यह स्थान औरंगजेब के समय के पूर्व निर्मित हुआ था।

मन्दिर में प्रतिमा भगवान महावीर स्वामी की है, जो भट्टारक जिनचंद्र द्वारा प्रतिष्ठित की गई है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई प्राचीन मूर्तियां यहां प्रतिष्ठित हैं। मन्दिर बहुत बड़ा है। अहाते में कुछ मकान रिहायशी बने हुए हैं। प्रवेश द्वार पत्थर का बना हुआ है। अन्दर जाकर बड़ा चौक है। उसके चारों ओर दालान हैं। उनमें से दो में मन्दिर हैं।

अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर

यह मन्दिर पार्श्व मन्दिर से लगा हुआ है और छोटे मन्दिर के नाम से पुकारा जाता है। इसका निर्माण राजा हरसुखराय के सुपुत्र राजा सगुनचन्द्र ने 1807 में करवाया था। मन्दिर में मूर्ति अष्टम तीर्थंकर भगवान चंद्रप्रभु की है। मन्दिर में स्वर्ण चित्रकारी बहुत सुन्दर की हुई है। इस मन्दिर में लगभग एक हजार मुद्रित ग्रंथों का जैन शास्त्र भंडार है।

जैन निशी मन्दिर

यह हार्डिंग रोड पर स्थित है। यह निशी अथवा नशियांजी के नाम से प्रसिद्ध है। इसका निर्माण भी मुगल काल में हुआ। इसके चारों ओर परकोटा है और चार कोनों पर गुम्बद हैं। पश्चिमी दीवार से लगा गुम्बदरूप मन्दिर है, जिसके तीन भाग हैं। मध्य भाग में एक पक्की वेदी बनी हुई है, जिसमें प्रतिमा विराजी जाती हैं। पूर्वकाल में अग्रवाल मन्दिर से मूर्ति लाकर वर्ष में तीन बार यहां स्थापित की जाती थी।

दादा बाड़ी

यह कुतुब साहब में अशोक विहार के नजदीक सड़क से अन्दर जाकर जैनियों का तीर्थ है। यहां आठ सौ वर्ष हुए, सन् 1166 में श्री जिनचंद्र सूरी का, जो जैनियों के गुरु थे, अग्नि संस्कार हुआ था। एक बहुत बड़ी बागीची में उनका मंदिर है। और भी कई मन्दिर, धर्मशाला, कुआं आदि स्थान हैं।

पंचकुई मार्ग होकर झंडे वाले जाते हुए पुराने जमाने के चंद अन्य हिन्दू मन्दिर देखने को मिलते हैं, जिनकी नई दिल्ली के बनने से शक्ल बदल

गई है। पंचकुई रोड पर पहले पांच कुएं हुआ करते थे। अब भी वहां कम्युनिटी हाल के पास एक बागीची है और एक पुराना मन्दिर है। सिघाड़े पर मरघट के पास पहाड़ी पर भैरों का एक मन्दिर है, जो काल भैरों का मन्दिर कहलाता है और 52 भैरों में से है। और भी कई मन्दिर इधर-उधर देखने को आते हैं। इनमें से एक मन्दिर सती केला का है। कहते हैं पृथ्वीराज चौहान के काल में एक राजपूत यहां लड़ाई में मारा गया था, उसकी पत्नी डाला सती हुई थी।

दिल्ली की बर्बादी : 1857 ई०-का गदर :—

अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय स्वाधीनता की पहली लड़ाई, जिसे अंग्रेजों ने बगावत और गदर कह कर मशहूर किया, दस मई 1857 ई० के दिन मेरठ से शुरू हुई। इसका लम्बा इतिहास है, जो अनेक लेखकों ने प्रायः अंगेजों को खुश करने के लिए लिखा है, मगर सही हालात अब लिखे जा रहे हैं। इसके कारण अनेक बताए जाते हैं, मगर यह वास्तविकता है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने जमाने में हिन्दुस्थान में बसने वालों के साथ जो-जो जुल्म किए, उनका परिणाम यदि गदर हुआ तो कुछ भी आश्चर्य की बात न थी। दिल्ली में जो घटनाएं घटीं, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

10 मई के दिन मेरठ में फौज के सिपाहियों ने बगावत की और अपने अफसरों को मार डाला और वहां से दिल्ली की तरफ रवाना हो गए। चुपके-चुपके सब तैयारियां पहले से ही हो चुकी थीं। 11 मई मुकर्रर की गई थी, गदर एक दिन पहले शुरू हुआ। बगावत शुरू होने का कारण यह बताया गया कि पचास सिपाहियों को इस बात पर सजाएं दी गई थीं कि उन्होंने परेड के वक्त कारतूस मुंह से काटने से इन्कार कर दिया था; क्योंकि उनको पता चला था कि कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगाई गई थी, यह बात आग की तरह चारों ओर फैल गई कि चर्बी उनका ईमान खोने और जात बिगाड़ने को जानबूझ कर मिलाई गई थी। इस बात से फौजी एकदम भड़क उठे और खुल्लमखुल्ला गदर मच गया। दिल्ली के चारों ओर ऊधम मच गया और शहर पर बागियों का कब्जा हो गया। 11 मई की सुबह तक दिल्ली में कोई गैर-मामूली घटना नहीं घटी, न किसी प्रकार का भय था। गर्मी के दिन थे। कारोबार हस्बमामूल जारी था। यकायक यह खबर फैली कि बागी मेरठ से आन पहुंचे हैं और उन्होंने यमुना का किश्ती का पुल तोड़ दिया है तथा चुंगी की चौकी जला दी है। उनको रोकने के लिए कलकत्ती दरवाजा बन्द कर दिया गया है। मटकाफ़, जो उस वक्त मजिस्ट्रेट था, छावनी की तरफ, जो पहाड़ी के पीछे थी, इमदाद के लिए दौड़ा मगर गोरों की फौज वहां थी ही नहीं। ब्रिगेडियर ग्रेविज ने दो तोपें और एक इंफैंट्री बलवा रोकने को भेजीं। जितने सिविल अफसर थे, उन्होंने बलवाइयों को शान्त करने का प्रयत्न किया। बागी राजघाट के रास्ते शहर में पहले ही दाखिल हो चुके थे। उन पर समझाने-बुझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे इन पर टूट पड़े और

यह पार्टी किले के लाहौरी दरवाजे की तरफ भागी। मटकाफ़ तो बच कर निकल गया, बाकी तीन ज़ख्मी हुए और किले में ले जाकर उनका काम तमाम कर दिया गया। अब बागी सिपाही मकानों में घुस गए और पादरी जनिंग तथा उसकी लड़की को एक और महिला सहित कत्ल कर दिया। उधर कश्मीरी दरवाज़े पर जो अंग्रेज थे, उनको बागियों ने खत्म कर दिया और जो हिन्दुस्तानी सिपाही थे वह बागियों के साथ आ मिले। इस वक्त सुबह के नौ बजे थे। चार बजे तक छावनी और सिविल लाइन में कुछ गड़बड़ी न थी। छोटी-मोटी टुकड़ियां फौज की कश्मीरी दरवाज़े से लेकर छावनी तक आ-जा रही थीं। शहर में बलवे को रोकने का कोई प्रबंध नहीं था। जो अंग्रेज दरियागंज में रहते थे, वे सब मारे गए। जो पकड़ लिए गए थे, वे भी पांचवें दिन किले के नक्कारखाने के सहन में एक छोटे से हौज के पास एक वृक्ष के नीचे समाप्त कर दिए गए। बारूदखाने का इंचार्ज वलीबी था। उसके पास थोड़े आदमी थे। उसका खयाल था कि मेरठ से मदद आ जाएगी, लेकिन यदि न आ सकी और बारूदखाना बलवाइयों के हाथ पड़ गया तो बड़ी हानि होगी। उधर बलवाई भी मेरठ से मदद मिलने की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे। इतने में खबर लगी की मेरठ से अंग्रेजों की मदद को कोई नहीं आ रहा। इस खबर के मिलते ही बलवाइयों के हौसले बढ़ गए और वे एकदम टूट पड़े। अब बारूदखाने वालों को बचने की कोई आशा न रही और उन्होंने उसमें आग लगा दी। बड़े धड़ाके के साथ बारूदखाना उड़ गया और साथ ही रक्षक अंग्रेज भी। शहर हिल गया। लोगों के दिल हिल गए। बलवाइयों ने यह देख कर छावनी का रुख किया। कश्मीरी दरवाज़े की तरफ अंग्रेज अधिक रहते थे। उन पर गोलियां बरसने लगीं। बलवाई यदि कचहरी के खज़ाने को लूटने में न लग जाते तो सब अंग्रेजों को साफ कर दिया होता। अंग्रेज बड़ी बेताबी से मेरठ की तरफ मदद की आशा में आंखें लगाए बैठे थे। उधर शहर में तिलंगों ने लूट मचा दी और वहां जो अंग्रेज मिला उसे काट गिराया। सारे बंगलों को फूंक दिया। मटकाफ़ हाउस भी आग की नजर हुआ। अम्बाले का तार खुला था, उसके जरिए यहां के हालात उधर भेजे गए। शिमले तक तार न था। एक आदमी तार लेकर कमाण्डर-इन-चीफ के पास शिमले गया। तार देख कर वह चौंक पड़ा, मगर मामले की गम्भीरता पर उसका ध्यान नहीं गया। वह मेरठ पर भरोसा किए बैठा रहा। जब वहां से पूरे समाचार आए तब वह चेता और उसने पंजाब से फौजें दिल्ली की तरफ रवाना करनी शुरू कीं। उधर मेरठ से भी लश्कर रवाना हुआ और गाज़ीउद्दीन नगर पहुंचा, जो अब गाज़ियाबाद कहलाता है। गाज़ियाबाद में 30 मई को बागियों से मुठभेड़ हुई, जिसमें उनको काफी हानि पहुंची। 4 जून को अंग्रेज़ी फौज ने अम्बाले के लश्कर से मिलने की गर्ज से अलीपुर की तरफ कूच किया, जो दिल्ली से 12 मील के अन्तर पर है। 6 को फिल्लौर से और 7 को मेरठ से फौज आन पहुंची और सब ने मिल कर दिल्ली की

तरफ कूच किया। 8 जून को यह लश्कर, जिसमें सात सौ सवार, ढाई हजार पैदल और बाईस तोपें थीं, अपने कैम्प से चल कर पौ फटते बादली की सराय पर आन पहुंचा और बागियों से मुकाबला हुआ, जिसमें बागियों की हार हुई। 9 को फिर लड़ाई हुई और 10 तथा 11 जून को भी हमले हुए। 12 तारीख को बागियों ने बड़े जोर का हमला किया, मगर ऐन वक्त पर अंग्रेजों की मदद आन पहुंची और बागियों को सफलता नहीं मिली। मटकाफ़ हाउस पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। इस प्रकार हर रोज एक दूसरे पर हमले होने लगे। कभी अंग्रेजों का पांसा भारी हो जाता, कभी बागियों का। 16 तारीख को बागियों ने अंग्रेजी फौज को भारी नुक्सान पहुंचाया। 21 तारीख को बागियों को जालन्धर और फिल्लौर से मदद मिली और अंग्रेजों का पांसा नीचे रहा। 23 जून 1857 को पलासी की लड़ाई को पूरे सौ साल हो चले थे और यह मशहूर था कि उस दिन अंग्रेजों की सल्तनत का खात्मा हो जाएगा। इसलिए उस दिन सब्जीमंडी में बड़ी भारी लड़ाई हुई और अंग्रेजों की जान पर बन आई। रोजाना मुठभेड़ हो रही थी। बागियों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी। पहली जुलाई को रुहेलखण्ड के बागी यमुना पार करके आन पहुंचे। अब बागियों की संख्या पन्द्रह हजार हो गई थी और अंग्रेज साढ़े पांच-छः हजार थे। अंग्रेजों के साथ जो हिन्दुस्तानी सिपाही थे, उन पर विश्वास नहीं था कि वे उनका साथ देते रहेंगे। उनका बागियों के साथ मिलने का खतरा लगा रहता था। 8 जुलाई को नहर और नजफगढ़ के नाले पर कई पुल उड़ा दिए गए। सारी जुलाई इसी प्रकार हमलों में गुजरी। अगस्त के शुरू में लड़ाई का मैदान जोर पकड़ गया। 7 अगस्त को बागियों का कारतूसों का कारखाना उड़ गया, जिससे उनको बहुत नुक्सान पहुंचा। उसी दिन जोन निकलसन जो पंजाब की फौज का कमाण्डर था, आन पहुंचा। उसने हालात को देखा और 11 को वापस चला गया। बागियों ने आठ तारीख को मटकाफ़ हाउस पर गोलाबारी शुरू कर दी। 12 को अंग्रेजों के तरफदारों ने लुडलो केसल के पास पड़े हुए बागियों को तलवार के घाट उतार दिया मगर इससे बागियों की हिम्मत पस्त नहीं हुई। उन्होंने बमों की बौछार शुरू कर दी और गोलियां बरसाते रहे। एक सप्ताह बाद उन्होंने दरिया के पार भारी तोपों का तोपखाना जमा किया, जो अंग्रेजी तोपखाने की मार से सुरक्षित था। 14 अगस्त को निकलसन अपनी फौज लेकर लौट आया। 24 को बागियों ने फिर जोर पकड़ा। वे बड़ी संख्या में मुकाबले के लिए निकले। उनकी संख्या छः हजार थी और तोपें उनके साथ थीं। अंग्रेजों को जब इसका पता चला तो उधर से निकलसन, फौज के एक बड़े दस्ते को लेकर आजादपुर की तरफ पहुंचा, जो पांबारी के नहर के पुल के उस पार था। मूसलाधार पानी पड़ रहा था। वर्षा के कारण चलना बहुत कठिन था। शाम के वक्त एक बाग के नजदीक दोनों फौजों का मुकाबला हुआ और बाग अंग्रेजों के हाथ आ गया। 26 की सुबह को बागियों ने फिर शहर से

निकल कर अंग्रेज़ी कैम्प पर हमला किया। इस प्रकार तमाम अगस्त मुकाबला करते बीता मगर कोई नतीजा नहीं निकला। कभी अंग्रेज़ हावी हो जाते, कभी बागी। अब अंग्रेज़ों ने शहर का घेरा डालने की तैयारियां शुरू कर दीं और सामान जमा करने लगे। फीरोज़पुर से फौज के आने की प्रतीक्षा थी। 4 सितम्बर को घेरा डालने के लिए तोपें आन पहुंची, जिन्हें हाथी घसीट कर ला रहे थे। अब पूरी तैयारी हो चुकी थी। कई देशी रियासतों की फौजें अंग्रेज़ों का साथ देने आ चुकी थीं। इधर की फौज की संख्या बारह हज़ार हो चुकी थी। 7 की रात से तोपें चलनी शुरू हो गईं। बड़ा शोर-गुल था। मगर बागियों की तरफ से कोई खास जवाब नहीं दिया गया। रातों-रात कुदसिया बाग और लुडलो कैसल पर कब्ज़ा कर लिया गया। 8 की सुबह को मोरी दरवाज़े के बुर्ज से मुकाबले में तोपें दगने लगीं। अब बागी भी मुकाबले के लिए पूरी तरह तैयार हो चुके थे। शहर की फसीलों पर तोपें चढ़ी हुई थीं। अंग्रेज़ी फौज का सारा ज़ोर कश्मीरी दरवाज़े की तरफ से था और वे इस दरवाज़े को उड़ा कर इधर से शहर में दाखिल होने की पूरी तैयारी कर रहे थे। 11 सितम्बर की सुबह किला शिकन तोपों से गोलाबारी शुरू कर दी गई। फसील जगह-जगह से टूटने लगी, मगर बागी बड़ी हिम्मत के साथ मुकाबला कर रहे थे। उधर मोरी दरवाज़े और काबुली दरवाज़े पर जंग जारी थी। दो दिन इसी प्रकार और गुज़रे। 12 की रात को अंग्रजों ने देख लिया की अब हमला किया जा सकता है। चुनांचे 13 की सुबह अभी पौ फटने न पाई थी कि हमले की तैयारी शुरू हो गई। कालम बनने लगे। हर कालम में एक हज़ार सिपाही थे। हमला कश्मीरी दरवाज़े पर तीन तरफ से शुरू हुआ। निकलसन कमाण्डर था। कश्मीरी दरवाज़े को उड़ा दिय गया और अंग्रेज़ी सेना शहर में घुस गई। मगर बागी अपनी जगह से नहीं हिले। वे बड़ी बहादुरी के साथ मुकाबला कर रहे थे। गवर्नमेंट कालेज, नवाब अहमद अली खां के महल और स्कीनर साहब के मकान पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो गया था, मगर मैगज़ीन पर बागियों का कब्ज़ा था और उन्होंने हर एक गली पर, जिधर से अंग्रेज़ी फौज के घुसने का डर था, तोपें लगा रखी थीं। कालम नम्बर तीन जामा मस्जिद तक पहुंच गया था मगर चांदनी चौक की तरफ से बागियों ने आन कर उसे उड़ा दिया। कालम नम्बर एक और दो काबली दरवाज़े की फसील के गिर्द से आगे न बढ़ सके और यहां ही निकलसन सख्त ज़ख्मी होकर गिरा। चौथा कालम बिल्कुल असफल रहा। उस दिन अंग्रेज़ों की तरफ के ग्यारह सौ सत्तर आदमी काम आए। अगर नुक्सान इसी तरह होता रहता तो अंग्रेज़ों को घेरा उठाना पड़ता और उनके कदम उखड़ जाते। पांच दिन बराबर लड़ाई जारी रही। अंग्रेज भारी तोपें शहर में ले आए और गोलाबारी शुरू कर दी। सोलह की सुबह अंग्रेज़ों ने मैगज़ीन पर कब्ज़ा कर लिया और किशनगंज को बागियों ने खाली कर दिया। 17 सितम्बर को दिल्ली बैंक (चांदनी चौक) पर गोलाबारी हुई। फौजी नाकों के बीच जो भी मकान आते थे, ढहा दिए जाते थे।

आहिस्ता-आहिस्ता आधे शहर पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। अब बागियों के पैर उखड़ गए। कहां तक मुकाबला करते । वे बहुत संगठित तो थे नहीं। उनका कोई ढंग का कमाण्डर भी न था। फिर भी वे कदम-कदम पर लड़े। अब शहर में भगदड़ पड़ गई। जिसे देखो, शहर छोड़ कर भागने लगा। 19 की शाम को लाहौरी दरवाजे के बाहरी हिस्से बर्न बेस्टन पर भी अंग्रेजों का कब्जा हो गया। दीवाने खास में हैड क्वार्टर बनाया गया। इक्कीस सितम्बर की सुबह दिल्ली फतह होने का ऐलान कर दिया गया। इस प्रकार सवा चार महीने तक भारतीय स्वतन्त्रता के बहादुर सिपाही अपने देश को आजाद करवाने के लिए अपनी जानों की आहुति देते रहे, मगर देशद्रोहियों की कमी न थी, इसलिए उन्हें सफलता न मिल सकी और देश पर अंग्रेजों का राज्य कायम हो गया।

बहादुरशाह बादशाह भी बागियों के साथ शहर छोड़ कर निकल खड़े हुए और हुमायूं के मकबरे में जा बैठे। उसी दिन अर्थात् 21 सितम्बर को हडसन ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। यद्यपि सारा मकबरा बादशाह के साथियों से और हथियारबन्द सिपाहियों से खचाखच भरा हुआ था, लेकिन अंग्रेजों के कुल पचास सवारों ने बादशाह को घेर लिया और आत्म-समर्पण करने को कहा गया। वह पहले ही अधमुए हो रहे थे, किसी ने उनका साथ न दिया। क्या करते, अपने को अंग्रेजों के हवाले करना पड़ा। उन्हें चुपचाप किले में पहुंचा दिया गया।

अगला दिन प्रलयंकारी था। हडसन फिर मकबरे में पहुंचा और तीन शाहजादों मिरजा मुगल, मिरजा खिजर सुलतान और मिरजा अबुबकर को गिरफ्तार करके उन्हें सवारों की हिरासत में किले भेज दिया और खुद बादशाह के साथियों से हथियार लेने ठहर गया। अब विरोध करने वाला था ही कौन ? अपना काम पूरा करके हडसन किले की तरफ मुड़ा। मगर रास्ते में देखा कि शाहजादों को ले जाने वाले सिपाहियों को खलकत ने घेर रखा है। इस ख्याल से कि खलकत उन्हें छुड़ा न ले, तीनों शहजादों को तमंचा मार कर हडसन ने वहीं ही खत्म कर दिया। कहते हैं कि उनके शवों को कोतवाली के चबूतरे के सामने लटका दिया गया। मगर सही बात यह है कि उनके सिरों को काट कर एक थाली में लगा कर बादशाह के सामने भेजा गया था।

दिल्ली को फतह करने के बाद यहां मार्शल ला (फौजी कानून) जारी किया गया और एक फौजी गवर्नर मुकर्रर हुआ। सारे शहर में घर-घर तलाशियां होने लगीं। हजारों लोग गिरफ्तार हुए और फांसी पर चढ़ाए गए। सैकड़ों को काले पानी भेजा गया। कोतवाली के सामने फांसियां लगी हुई थीं। तैमूर और नादिरशाह ने कत्लेआम करके एकदम खात्मा कर दिया था, इसके विपरीत अंग्रेजों ने काफी समय यह सिलसिला जारी रखा। जिन देशी सिपाहियों ने अपने देश के साथ गद्दारी की थी, उनको छः छः महीने का वेतन भत्ते के रूप में इनाम दिया गया, जिसका

एक हिस्सा केवल अड़तीस रुपये हुआ। बहुत से लोग लूले, लंगड़े और लुंजे हो गए। एक जख्मी सिपाही ने चाक मिट्टी से दीवार पर लिख दिया था :—

"दिल्ली फतह हो गई, हिन्दुस्तान बचा लिया गया। कितने में? केवल अड़तीस रुपये में या एक रुपया ग्यारह आने आठ पाई में।"

शहर के तमाम बाशिन्दों को गोरों को मार डालने के इलजाम में शहर से बाहर निकाल दिया गया। कुछ दिनों इस बात पर बहस चलती रही कि क्यों न सारे शहर को या कम-से-कम जामा मस्जिद और लाल किले को मिसमार करके जमीन के साथ मिला दिया जाए। मगर दिल्ली मिसमार होने से बच गई।

यद्यपि दिल्ली फतह हो गई थी, मगर मुल्क में अभी अमन कायम नहीं हुआ था और बागी जहां-तहां अपना काम कर रहे थे। 1859 ई० में हिन्दुस्तानी फौज की छावनी दरियागंज में बना दी गई और किले में गोरों की पलटन और तोपखाने के लिए बैरक बना दी गई। पांच-पांच सौ गज का मैदान इमारतें ढहा कर साफ कर दिया गया।

मुगल काल की यादगारें

हुमायूं काल की यादगारें :—

1.	जमाली कमाली की मस्जिद और दरगाह	1528 ई०
2.	पुराना किला दीनपनाह	1533 ई०
3.	शेरगढ़ अथवा शेरशाह की दिल्ली	1540 ई०
4.	मस्जिद किला कोहना	1541 ई०
5.	शेरमंडल	1541 ई०
6.	शेर शाही दिल्ली का दरवाजा	
7.	सलीमगढ़ या नूरगढ़	1546 ई०
8.	ईसाखां की मस्जिद और मकबरा	1547 ई०
9.	अरब की सराय	1560 ई०

अकबर काल की यादगारें :—

10.	खैर उलमनाज़िल	1561 ई०
11.	ऊधम खां का मकबरा या भूल-भूलैयां और मस्जिद	1561 ई०
12.	हुमायूं का मकबरा	1565 ई०
13.	मकबरा नौबत खां—नीली छतरी	1565 ई०
14.	आजम खां का मकबरा	1566 ई०
15.	दरगाह ख्वाजा बाकी बिला	1603 ई०

जहांगीर काल की यादगारें :—

16.	फरीदा खां की कारवां सराय (पुरानी दिल्ली जेल तोड़ कर आजाद मैडिकल कालेज बना दिया गया)	1608 ई०
17.	बारह पुला	1612 ई०
18.	फरीदबुखारी का मकबरा	1615 ई०
19.	मकबरा फाहिम खां या नीला बुर्ज	1624 ई०
20.	मकबरा अज़ीज कुकलताश या चौंसठ खम्भा	1624 ई०
21.	मकबरा खान-खाना	1626 ई०

शाहजहां और औरंगजेब काल की यादगारें :—

22.	लाल किला	1636–48 ई०
23.	दिल्ली दरवाजा	

24. लाहौरी दरवाजा
25. नक्कार खाना
26. हथिया पोल दरवाजा
27. दीवाने आम
28. सिंहासन का स्थान
29. दीवाने खास
30. तख्त ताउस
31. हम्माम
32. हीरामहल (बहादुर शाह द्वारा) 1824 ई०
33. मोती महल
34. मोती मस्जिद (औरंगजेब द्वारा) 1659–60 ई०
35. बाग हयाबख्श
36. महताब बाग
37. जफर महल या जलमहल (बहादुरशाह द्वारा) 1842 ई०
38. बावली
39. मस्जिद (बहादुरशाह द्वारा)
40. तस्बीहखाना, शयनगृह, बड़ी बैठक
41. बुर्जतिला या मुसम्न बुर्ज या खास महल
42. खिजरी दरवाजा
43. सलीम गढ़ दरवाजा
44. रंगमहल या इमतियाज महल
45. संगमरमर का हौज
46. दरिया महल
47. छोटी बैठक
48. मुमताज महल
49. असद बुर्ज
50. बदर रौ दरवाजा
51. शाह बुर्ज
52. नहर बहिश्त
53. सावन भादों
54. जामा मस्जिद 1648 ई०
55. जहांआरा बेगम का बाग या मलका का बाग 1650 ई०
56. फतहपुरी मस्जिद 1650 ई०
57. मस्जिद सरहदी 1650 ई०

58. मस्जिद अकबराबादी 1650 ई०
59. रौशनारा बाग 1650 ई०
60. शालामार बाग 1653 ई०
61. सूफी सरमद का मजार और हरे भरे की दरगाह
62. उर्दू मन्दिर या जैनियों का लाल मन्दिर . . 1659-60 ई०
63. गुरुद्वारा शीशगंज 1675 ई०
64. गुरुद्वारा रिकाबगंज 1675 ई०
65. गुरुद्वारा बंगला साहब . . . .
66. गुरुद्वारा बाला साहब . . . .
67. गुरुद्वारा दमदमा साहब . . . .
68. गुरुद्वारा मोती साहब . . . .
69. गुरुद्वारा माता सुन्दरी . . . .
70. गुरुद्वारा मजनूं का टीला . . .
71. मजनूं का टीला . . . .
72. गुरुद्वारा नानक प्याऊ . . . .
73. मकबरा जहांआरा 1681 ई०
74. जीनत उलमसाजिद 1700 ई०
75. झरना 1700 ई०
76. मकबरा जेबुलनिसा बेगम . . . 1702 ई०

शाह आलम बहादुर शाह के जमाने की यादगारें :—

77. महरौली की मोती मस्जिद . . . 1709 ई०
78. मकबरा तथा मदरसा गाजीउद्दीनखां . . . 1710 ई०
79. शाह आलम बहादुर की कब्र . . . 1712 ई०
80. रौशनउद्दौला की पहली सुनहरी मस्जिद . . 1721 ई०
81. जन्तर मन्तर 1724 ई०
82. हनुमान जी का मन्दिर . . . .
83. काली का मन्दिर . . . .
84. महलदार खां का बाग . . . 1720–29 ई०
85. शेख कलीम उल्लाह का मजार . . . 1729 ई०
86. रौशन उद्दौला की दूसरी सुनहरी मस्जिद . 1744–45 ई०
87. कुदसिया बाग 1748 ई०
88. नाजिर का बाग 1748 ई०
89. चरनदास की बगीची व भूतेश्वर महादेव और चौमुखा महादेव के मंदिर

90. मोहम्मद शाह् का मकबरा 1748 ई०
91. सुनहरी मस्जिद 1751 ई०
92. सफदर जंग का मकबरा 1753 ई०
93. आपा गंगाधर का शिवाला . . . 1761 ई०
94. लाल बंगला 1779 ई०
95. नजफ खां का मकबरा 1781 ई०
96. शाह् आलम सानी की कब्र . . . 1806 ई०
97. माधोदास की बागीची . . . .
98. सेंटजेम्ज का गिरजा . . . 1826–36 ई०
99. झंडे वालीदेवी का मंदिर
100. चन्द्रगुप्त का मंदिर . . . .
101. घंटेश्वर महादेव . . . .
102. राजा उग्गरसेन की बावली . . .
103. विष्णुपद . . . . .
104. दिगम्बर जैन मन्दिर दिल्ली गेट . . .
105. श्वेताम्बर जैन मंदिर . . .
106. महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर . . .
107. जैन पंचायती मन्दिर . . . .
108. जैन नया मन्दिर धर्मपुरा . . .
109. जैन बड़ा मन्दिर कूचा सेठ . . . .
110. जैन पार्श्व मंदिर . . . .
111. अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर . . .
112. जैन निशी मंदिर . . . .
113. दादा बाड़ी . . . .

4-ब्रिटिश काल की दिल्ली

(1857—1947 ई०)

यों तो दिल्ली में ब्रिटिश हुकूमत 1857 के गदर के बाद शुरू हुई, मगर उसका आगाज सन् 1803 से ही हो गया था जब लार्ड लेक ने मुगल सम्राट् शाह आलम को पटपड़ गंज की लड़ाई में मराठों के हाथों से छुड़ाया था। शाह आलम की तरफ से एक अंग्रेज रेजीडेंट प्रबंध करने के लिए नियुक्त किया गया था। सन् 1822 में रेजीडेंट की जगह एजेंट नियुक्त कर दिया गया। सन् 1842 में फिर एक एजेंसी नियुक्त की गई और दिल्ली को, जिसमें बल्लभगढ़ और झज्जर की देशी रियासतें शामिल नहीं थीं उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की हुकूमत के मातहत कर दिया गया। सन 1857 के गदर के बाद बल्लभगढ़ और झज्जर के राजा और नवाब की रियासतों को, जिन्हें बागी करार देकर फांसी दी गई थी, दिल्ली के साथ मिला कर पंजाब के सूबे के नीचे कर दिया गया जहां, लेफ्टिनेंट गवर्नर हुकूमत करता था। सन् 1803 से 1857 तक जिन अंग्रेजी शासकों ने दिल्ली पर हुकूमत की उनके नाम इस प्रकार हैं।

1. सर डेविड अक्तरलोनी .	1803–1806	रेजीडेंट तथा चीफ कमिश्नर
2. आर० जी० सेटन .	1806–1810	”
3. चार्ल्स मटकाफ .	1810–1818	”
4. सर डेविड अक्तरलोनी .	1818–1821	”
5. एलेक्जंडर रोज .	1822–1823	गवरनर जनरल का एजेंट
6. विलयम फ्रेजर . .	1823	
7. चार्ल्स इलियट . .	1823	
8. चार्ल्स मटकाफ . .	1823–1828	रेजीडेंट
9. ई० कोल ब्रुक . .	1828	
10. विलयम फ्रेजर . .	”	
11. श्री हौकिंज . .		
12. श्री मार्टिन . .	1832	
13. विलयम फेजर . .	1832–35	एजेंट और उत्तर पश्चिम प्रान्त का कमिश्नर
14. टामस मटकाफ . .	1835–53	”
15. सायमन फ्रेजर . .	1853–1857	”

गदर के बाद, मिरजा इलाहीबख्श को, जिसने देशद्रोह करके अंग्रेजों का साथ दिया था और बादशाह के खिलाफ गवाही दी थी, खानदान तैमूर का वारिस करार दिया गया। वह औरंगजेब के लड़के शाह आलम प्रथम की पांचवी पुश्त में था। इलाहीबख्श और उसके खानदान को 27,827 रुपये 6 आना सालाना की पेंशन दी गई। इलाहीबख्श को 13,278 रुपये 8 आने तो अपने खानदान वालों को बांटने पड़ते थे और 14,548 रुपये 14 आनें उसके लिए बाकी बचते थे। सन् 1878 में मिरजा इलाहीबख्श की मृत्यु हो गई। उसने तीन लड़के छोड़े। बड़ा लड़का सुलेमान शाह 1890 में और छोटा लड़का मिरजा सुरैया शाह 1913 में मर गया। अर्से तक खानदान की विरासत पर झगड़ा चलता रहा, जो सन् 1925 में खत्म हुआ। उसी वर्ष मोहम्मदशाह का भी देहान्त हो गया। उसके कोई नर औलाद न होने से आगे के लिए कोई वारिस न रहा। इस प्रकार मुगल खानदान का खात्मा हो गया।

सन् 1857 के गदर का बदला बड़ी ही क्रूरता और बरबादी के साथ लिया गया। उसमें अंग्रेजों ने कोई कसर नहीं छोड़ी। दिल्ली ने तैमूर लंग को भी देखा था और नादिरशाह को भी, मगर वे लुटेरों की तरह आए और चले गए। मगर ये अंग्रेज तो यहां शासन करने आए थे और वह भी सात हजार मील दूर बैठ कर चंद गोरों के द्वारा। चुनांचे उन्होंने दिल्ली को इस बुरी तरह नोचा-खसोटा कि इसे मिट्टी में मिला दिया। तमाम मुसलमानों को शहर बदर कर दिया गया और हिन्दू भी वही बचे जो अंग्रेजों की वफादारी का दम भरते थे। वरना उनके घर-बार भी तबाही से बच न सके। चारों ओर लूट-मार और गारतगरी मची हुई थी। कोतवाली पर फांसियां लटकी हुई थीं। फौजी अदालत ने तीन हजार लोगों पर मुकदमे चलाए और एक हजार को फांसी पर चढ़ा दिया। शाही खानदान वालों, उमरा और रईसों के जितने महलात और हवेलियां थीं, वे जब्त कर ली गई और कौड़ियों के मोल नीलाम कर दी गईं। वही हवेलियां कालान्तर में बड़ी-बड़ी गंदी बस्तियों के कटड़े बन गए।

लोग जब दोबारा शहर में आकर आबाद हुए तो लोथियन रोड के इलाके के तमाम मकान, चांदनी चौक के दरीबे तक के मकान और उधर जामा मस्जिद तक के तमाम मकान और बाजार गिरा कर मिस्मार कर दिए गए, कोई दो मंजिला मकान बाकी रहने नहीं दिया गया ताकि किले पर से तोप के गोले फेंकने में रास्ते में रुकावट न पैदा हो। कुछ मस्जिदें भी गिरा दी गईं और जामा मस्जिद तथा फतहपुरी मस्जिद को जब्त कर लिया गया। फतहपुरी मस्जिद में फौजें रखी गईं और जामा मस्जिद में घोड़े बांधे गए। खौफ और आतंक का यह आलम था कि काले सिपाही की लाल पगड़ी से लोग कांप उठते थे, गोरे की तो बात ही क्या। और यह हालत एक दो

बर्ष नहीं पचास वर्ष तक ऐसी रही कि दिल्ली जीते-जागतों की आबादी न रह कर शहरे खमोशां हो गया। एक डिप्टी कमिश्नर था, जिसकी सब तरफ हुकमत चलती थी और लोग उसकी खुशनूदी हासिल करने के लिए लालायित रहते थे। उससे जो मिलने जाते थे, वे खड़े रहते थे। बाद में जिन लोगों को कुर्सी पर बैठने की इजाजत मिलने लगी, वे कुर्सीनशीन कहलाने लगे। यह बात भी सन् 1913 में जाकर शुरू हुई जब दिल्ली राजधानी बन गई थी। उससे पहले तो क्या हिन्दू और क्या मुस्लिम सब अंग्रजों के गुलाम थे। हर एक की यही कोशिश होती थी कि साहब बहादुर उसकी तरफ मुस्करा कर देख भर लें। आत्मसम्मान की गिरावट की हद हो गई थी।

अंग्रेजों ने सिविल लाइन को अपनी दिल्ली बना लिया था और शहर की ओर वे कहर की दृष्टि से देखते थे। सिविल लाइन में उनके बड़े-बड़े आलीशान बंगले थे, उनकी अपनी क्लब थी, जिसमें हिन्दुस्तानी शरीक नहीं हो सकते थे, सब प्रकार की सुविधा और साधन वहां मौजूद थे और दिल्ली बेकसी की हालत में थी। शहर की सफाई और सेहत की हालत यह थी कि मलेरिया और मौसमी बुखार तो फैला ही रहता था, प्लेग का भी हमला हो जाता था। किसी प्रकार की तरक्की के अवसर यहां मिलने कठिन थे। इसी कारण यहां की आबादी बढ़ने नहीं पाती थी। अगर दिल्ली को राजधानी बनाने की हिमाकत अंग्रजों ने न की होती तो यहां की हालत सुधरने की कोई सूरत न थी, मगर सन् 1911 में जब शाह जार्ज पंजम का दिल्ली में दरबार हुआ तो उसने कलकत्ते से राजधानी हटा कर दिल्ली को राजधानी घोषित कर दिया। लाचार अंग्रेजों को भी दिल्ली की दुरुस्ती की ओर ध्यान देना पड़ा। यह कोई हिन्दुस्तानियों पर इनायत करने के लिए न था, बल्कि खुद अपने को खतरे से बचाने के लिए था; क्योंकि दिल्ली की सेहत खराब रहने से उनको अपने लिए खतरा था।

इसलिए दिल्ली में अंग्रेजी शासन के तीन भाग किए जा सकते हैं; (1) सन् 1803 से 1857 तक, जिसका जिक्र ऊपर किया गया है; (2) सन् 1857 से 1911 तक और (3) सन् 1912 से 1947 तक जब भारत में अंग्रेजी शासन समाप्त हुआ और 16 अगस्त को लाल किले पर यूनियन जैक की जगह तिरंगा झंडा लहराने लगा। सन् 1857 से 1911 तक दिल्ली, पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर के तहत में रही। सारी हुकूमत पंजाब से ही होती थी। न्याय, पुलिस, नहर, पढ़ाई, सब कुछ पंजाब के अधीन था, पंजाब के ही कायदे कानून यहां लागू होते थे। दिल्ली में दो तहसीलें थीं, बल्लभगढ़ और सोनीपत। डिप्टी कमिश्नर यहां का शासक हुआ करता था और उसके साथ पुलिस कप्तान। चीफ कमिश्नर तो बाद में जाकर यहां का शासक बना।

सन् 1911 तक के अंग्रेजी काल की यादगारें इस प्रकार हैं:—

दिल्ली नगर निगम:—गदर के छः वर्ष बाद 1863 ई० में दिल्ली नगर निगम की बुनियाद पड़ी। उसकी पहली सभा 1 जून 1863 के दिन हुई। सन् 1881 में इसे प्रथम दर्जे की म्युनिसिपल कमेटी बना दिया गया। उस वक्त इसके 21 सदस्य थे जो सब नामज़द थे। उनमें 6 सरकारी और 15 गैर सरकारी थे। गैर सरकारी सदस्यों में 3 अंग्रेज, 6 हिन्दू और 6 मुसलमान थे। डिप्टी कमिश्नर चेयरमैन हुआ करता था। सन् 1863 में कमेटी की आय केवल 98,276 रु० थी।

टाउन हाल (1866 ई०):—मलका के बुत के पीछे टाउन हाल की इमारत है, जिसमें आजकल दिल्ली म्युनिसिपल कार्पोरेशन का दफ्तर है। यह इमारत 1863 ई० में बननी शुरू हुई और 1866 में बन कर तैयार हुई। इस पर 1,60,000 रुपये की लागत आई थी। पहले यह शहर का बड़ा भवन था। इसमें जलसे हुआ करते थे। अंग्रेज शासकों के बड़े-बड़े तैल चित्र इसके हाल में लगे हुए थे। एक भाग में पुस्तकालय था, जो अब हार्डिंग पुस्तकालय बन गया है। उत्तरी भाग के एक कमरे में अजायबघर बना हुआ था। टाउन हाल के उत्तर की तरफ बाग में एक टैरेस बना हुआ है। उस तरफ के बाग के हिस्से में एक चबूतरे पर किसी जमाने में पत्थर का हाथी खड़ा हुआ था, जो बाद में लाल किले में चला गया। उसकी जगह तोप रख दी गई थी। अब वहां फव्वारा है। उसी तरफ स्टेशन की ओर अभी हाल में गांधी जी की तांबे की बनी हुई एक बड़ी मूर्ति लगाई गई है, जिसका मुंह टाउन हाल की तरफ है और जो ऊंचे चबूतरे पर खड़ी है।

मोर सराय (1861–62 ई०):—सुभाष मार्ग से बाएं हाथ को जो रास्ता रेलवे स्टेशन को गया है, उस पर जहां अब बाएं हाथ रेलवे के मकान बने हुए हैं, वहां 1861-62 में हैमिलटन डिप्टी कमिश्नर ने एक लाख के खर्चे से एक सराय बनवाई थी। बाद में मोर साहब इंजीनियर ने इसकी बुर्जियों पर मोर लगवा दिया। तबसे यह मोर की सराय कहलाने लगी। सन् 1901 में इसे पौने दो लाख में ईस्ट इंडिया रेलवे के हाथ बेच दिया गया और कालान्तर में यहां रेलवे क्वार्टर बना दिए गए।

घंटाघर (1868 ई०):—इसे चांदनी चौक में मलका के बुत के सामने सड़क के ऐन बीच में लॉर्ड नोर्थ ब्रुक के जमाने में 22,134 रु० की लागत से बनाया गया था। कुछ वर्ष हुए इसके ऊपरी भाग में से पत्थर टूट कर नीचे गिरा, जिससे कई आदमी जख्मी हुए, और कुछ मर भी गए। इसलिए उसे खतरनाक करार देकर गिरा दिया गया और उसकी जगह एक चबूतरा बना दिया गया। बादशाही काल में वहां नहर का हौज हुआ करता था।

घंटाघर की इमारत खूबसूरत मुरब्बा मीनार की शकल की थी, जिसके नीचे चारों ओर डाट लगी हुई थी, और मीनार के चारों ओर घंटे लगे हुए थे।

सेंट मेरी का कैथोलिक गिरजाघर:—यह सुभाष रोड के बाएं हाथ के कोने पर बना हुआ है, रेलवे क्वार्टरों के पास। मौजूदा गिरजाघर सन् 1865 में बनकर तैयार हुआ था। इसके साथ एक स्कूल भी चलता है। इस गिरजे पर 77,000 रुपया खर्च हुआ था।

रेलवे

पश्चिम रेलवे, जो गदर के समय बिछ रही थी, पहली अगस्त सन् 1864 को खुली और दिल्ली में पहली जनवरी 1867 को, जब यमुना का पुल बन कर तैयार हुआ, पहुंची। रेल की डबल लाइन 1902 में गाजियाबाद से दरिया तक तैयार हुई और 6 मार्च, 1913 को जब कि यमुना का दूसरा पुल बन कर तैयार हुआ, दिल्ली तक पहुंची। दिल्ली-अम्बाला-कालका लाइन पहली मार्च, 1891 को खुली। छोटी लाइन रिवाड़ी से दिल्ली तक 14 फरवरी, 1873 को खुली। दक्षिण पंजाब भटिंडा रेलवे 10 नवम्बर, 1897 को खुली। दिल्ली-आगरा लाइन दिल्ली सदर से कोसी तक 15 नवम्बर, 1904 को और आगरे तक, उसी साल 3 दिसम्बर को खुली। दिल्ली सदर से दिल्ली जंकशन तक 1 मार्च 1905 को आई, इन्हीं दिनों में सदर का पुल बना, मोरी गेट का डफरिन पुल 1884-88 में बना। तभी फराशखाने का काठ का पुल और कश्मीरी गेट का लोथियन पुल बना। शाहदरा-सहारनपुर लाइन मई 1907 में खुली।

इस प्रकार शहर की बहुत बड़ी आबादी का खासा बड़ा हिस्सा, जो कश्मीरी दरवाजे और चांदनी चौक के बीच में पड़ता था, रेल की नजर हो गया। काबुली दरवाजे से लाहौरी दरवाजे तक की फसील का बहुत बड़ा हिस्सा इसी काम के लिए तोड़ दिया गया। तीस हजारी और रोशनआरा बाग का बड़ा हिस्सा रेल के काम में आ गया। रेल निकालने के लिए कई सड़कें भी निकाली गईं। डफरिन पुल के पूर्व में रेल के साथ लोथियन रोड की ओर जो हैमिल्टन रोड गई है वह 1870 में निकली। दिल्ली रेलवे के बड़े स्टेशन के साथ कम्पनी बाग के सामने जो क्वीन्ज रोड है, वह भी उन्हीं दिनों निकली। तीस हजारी के साथ सब्जीमंडी को जो बुलवर्ड सड़क गई है, वह 1872 में बनी।

कोतवाली के सामने का फव्वारा (1872-74 ई०):—चांदनी चौक के कोतवाली के तिराहे पर जो फव्वारा लगा है, यह लार्ड नार्थब्रुक की दिल्ली में आमद की यादगार में सन् 1872–74 में बनाया गया था। इस पर दस हजार रुपया खर्च हुआ था। फव्वारा भूरे पत्थर का बना हुआ है।

दिल्ली टेलीफून:—दिल्ली में टेलीफून सन् 1880 में आया।

दिल्ली डिस्ट्रिक्ट बोर्ड:—दिल्ली में सन् 1883 में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड कायम हुआ। इसके 21 सदस्य थे। डिप्टी कमिश्नर इसका सदर हुआ करता था। जब दिल्ली नगरपालिका बनी तो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड हटा दिया गया।

डफरिन अस्पताल (1892–93 ई०):—जामा मस्जिद के पास जो डफरिन अस्पताल था, 1885–89 में लार्ड डफरिन ने उसका शिलान्यास किया था। यह 1892–93 में बन कर तैयार हुआ। दिल्ली में यह पहला अंग्रेजी अस्पताल था। इसकी एक मंजिल जमीनदोज थी, एक ऊपर। जब इरविन अस्पताल बना तो यह अस्पताल वहां चला गया और यहां डिस्पेंसरी रह गई।

गदर से पहले लाल किले के पास लाल डिग्गी में, मौजूदा हैपी स्कूल के पास एक छोटा सा अस्पताल आठ बिस्तरों का हुआ करता था, मगर गदर में वह खत्म हो गया था।

सेंट स्टीफेंस अस्पताल (1884 ई०):—इस अस्पताल को चांदनी चौक में जहां अब सेंट्रल बैंक है, श्रीमती विटर की याद में सन् 1884 में औरतों के लिए बनाया गया था। डचेस आफ कनाट ने 8 जनवरी को इसका शिलान्यास किया था और 1885 में लेडी डफरिन ने इसका उद्‌घाटन किया था। यह इमारत लाल पत्थर की बनाई गई थी, जो दो मंजिला थी। कुछ ही वर्ष में इसकी इमारत छोटी पड़ गई, तब तीस हजारी में फूंस की सराय के सामने 1906 में लेडी मिंटो ने एक दूसरे अस्पताल का शिलान्यास किया। जनवरी 1909 में लेडी लेन ने उसका उद्‌घाटन किया। जी० पी० एस० और केम्ब्रिज मिशन इस अस्पताल को चलाते हैं। चांदनी चौक वाली अस्पताल की इमारत बंगाल बैंक ने खरीद ली थी, जहां वह बहुत अर्से चलता रहा। बंगाल बैंक, स्टेट बैंक बन कर भागीरथ पैलेस के बाहर वाली इमारत में चला गया और बंगाल बैंक की इमारत सेंट्रल बैंक ने खरीद कर उसमें अपनी नई इमारत सन् 1932 के करीब बना ली।

हरिहर उदासीन आश्रम बड़ा अखाड़ा:—यह अजमेरी दरवाजे के बाहर कमला मार्केट के नजदीक बाबा संध्या दास जी के शिष्य बाबा मंगल दास जी, जिन्हें हरिहर बाबा कहते थे, की स्मृति में 1888 ई० में बनाया गया था। यहां एक छोटी-सी बागीची है और टीन का छप्पर है। अन्दर कई मन्दिर शिव, देवी, राधा-कृष्ण, आदि देवताओं के बने हुए हैं। एक धूनी भी जलती रहती है। यह उदासी साधुओं का स्थान है। यहां भंडारा भी हुआ करता है।

कपड़े की मिल:—दिल्ली में पहली कपड़े की मिल सन् 1893 में कृष्णा मिल के नाम से पुल मिठाई के पास नहर के किनारे खोली गई थी।

दिल्ली वाटर वर्क्स:—दिल्ली में वाटर वर्क्स सन् 1889 में बनना शुरू हुआ और 1895 में बन कर तैयार हुआ। उसके बाद शहर में नल लगने शुरू हुए। शुरू-शुरू में नल का पानी अशुद्ध माना जाता था। पीने के काम में कुओं का पानी आता था। पुराने संस्कारों के लोग नल का पानी नहीं पीते थे।

ओखले की नहर:—इसी वर्ष ओखले की नहर खोली गई। यह दिल्ली शहर से आठ मील पड़ती है। यह यमुना की नहर कहलाती है। ओखला सैर के लिए एक सुन्दर स्थान बन गया है, खास कर बरसात के दिनों में।

दिल्ली में हाउस टैक्स:—पहली जनवरी 1902 से शुरू हुआ।

मलका का बुत:—मलकाबाग, चांदनी चौक में टाउन हाल के सामने मलका विक्टोरिया का जो तांबे का बुत लगा हुआ है, इसे जे॰ सी॰ स्कीनर ने 1801 में बनवाया था। इसे विलायत के एक कारीगर ने बनाया था। इसे 26 दिसम्बर, 1902 को चार्ल्ज रिवाज ने द्वितीय दिल्ली दरबार के अवसर पर खोला था। बुत संगमरमर के चबूतरे पर रखा है। चारों ओर कटहरा लगा हुआ है। दाएं-बाएं फव्वारे लगे हैं।

बिजली की रोशनी:—दिल्ली में बिजली 2 जनवरी, 1903 के दिन जारी हुई और 1905 में ट्रामवे लाइन पड़नी शुरू हुई, जो लाहौरी दरवाजे से शुरू होकर खारी बावली, चांदनी चौक, एस्प्लेनेड रोड, जामा मस्जिद, चावड़ी बाजार, हौजकाजी, लाल कुआं, कटड़ा बड़ियां होती हुई फतहपुरी पर जा मिलती थी। दूसरी लाइन लाहौरी दरवाजे से सदर बाजार और हिन्दु राव के बाड़े तक जाती थी, एक सब्जीमंडी घंटाघर तक जाती थी। अब यह लाइन करीब-करीब बंद हो चुकी है। इसकी शुरुआत 3 जून, 1908 के दिन हुई थी।

विक्टोरिया जनाना अस्पताल:—1904 ई॰ दिल्ली में औरतों के इस जनाने अस्पताल का शिलान्यास 19 फरवरी, 1904 को लेडी रिवाज द्वारा जामा मस्जिद के पास मछलीवालां में किया गया था। अब तो यह बहुत बढ़ गया है। दिल्ली में औरतों के तीन अस्पताल हैं। एक यह, दूसरा फूंस की सराय पर मिशनरीज का, जो पहले चांदनी चौक में, जहां सेंट्रल बैंक है, हुआ करता था और तीसरा लेडी हार्डिंग अस्पताल।

निकलसन बाग:—कश्मीरी दरवाजे के बाहर कुदसिया बाग के सामने अलीपुर रोड पर जो छोटा बाग है, वह निकलसन पार्क कहलाता था। यह सन् 1861 में बना था। अब उसका नाम तिलक बाग है। यहां निकलसन का बुत लगाया गया था, जिसका लार्ड मिंटो ने 6 अप्रैल, 1906 को उद्घाटन किया था। निकलसन ने 14 सितम्बर, 1857 के दिन कश्मीरी दरवाजे की ओर से दिल्ली पर हमला

किया था। काबुली दरवाजे पर हमला करते समय उसके गोली लगी और 23 सितम्बर को उसकी मृत्यु हो गई। इस पार्क के साथ वाले कब्रिस्तान में उसे दफन किया गया। उसका बुत हाथ में तलवार लिए कश्मीरी दरवाजे की ओर मुंह करके एक ऊंचे चबूतरे पर खड़ा किया गया था। लड़ाई के वक्त वह जो कोट पहने था, उसे लाल किले में प्रदर्शन के लिए रखा गया था। कश्मीरी गेट की फसील के साथ जो सड़क गई है, उसका नाम निकलसन रोड रखा गया था। निकलसन को दिल्ली का विजेता घोषित किया गया था। अब वह बुत वहां से हटा दिया गया है।

ग्रेसिया पार्क:—यह कश्मीरी दरवाजे के पास सेंट जेम्स चर्च के सामने सिवाड़े पर बना हुआ है। सन् 1905 में यह बना था। इसे यहां के डिप्टी कमिश्नर ने अपनी पत्नी की याद में बनवाया था।

दिल्ली के दरबार:—दिल्ली में अंग्रेजी शासन काल में तीन दरबार हुए। पहला दरबार सन् 1877 में हुआ, जब मलका विक्टोरिया को शाहंशाह की पदवी दी गई। लार्ड लिटन 23 दिसम्बर, 1876 को दिल्ली में दाखिल हुए। रेलवे स्टेशन से उनका जुलूस रवाना हुआ, जो क्वीन्स रोड, लाहौरी दरवाजा, आदि सड़कों से गुजर कर सिविल लाइन में रिज पर जाकर समाप्त हुआ था। वहां कैम्प लगाया गया था। दरबार ढाका दहीपुर के नजदीक वाले मैदान में लगा था।

दूसरा दरबार सन् 1903 में हुआ। यह लार्ड कर्जन का दरबार कहलाता है। एडवर्ड सप्तम की जब ताजपोशी हुई उस वक्त यह दरबार हुआ था। यह भी पुरानी छावनी में, जहां ढाका दहीपुर गांव है, मौजूदा हरिजन कॉलोनी से आगे, हुआ था। उसकी याद में एक पार्क बना हुआ था। उसी वक्त कर्जन के ठहरने के लिए एक कोठी बनी थी। वहां अब विश्वविद्यालय है। यह कर्जन हाउस कहलाती थी।

(1911 से 1947 तक की दिल्ली)

तीसरा दरबार 1911 में हुआ जो सबसे मशहूर है। यह जार्ज पंजम का दरबार कहलाता है। इंगलिस्तान का यह पहला बादशाह था, जो हिन्दुस्तान आया था। यह सलीमगढ़ पर उतरा था और लाल किले से इसकी सवारी रवाना हुई थी, जो आठ दिसम्बर को निकली थी। लाल किले से जामा मस्जिद होती हुई उसकी सवारी परेड के मैदान, चांदनी चौक, आदि दिल्ली के बड़े-बड़े बाजारों में से गुजरी थी। राजाओं और नवाबों के शिविर सिविल लाइन में माल रोड पर लगे थे, जहां

किंग्जवे कैम्प है। जहां अब तपेदिक का अस्पताल है, वहां रेल का स्टेशन था। बादशाह कर्जन हाउस में ठहरा था। 12 दिसम्बर को उसने ढाके से आगे जाकर जो मैदान है वहां दरबार किया था। वहां 170 मुरब्बा फुट का चबूतरा बना हुआ है, जिसकी 31 सीढ़ियां हैं। इसी चबूतरे पर बैठ कर जार्ज ने दरबार किया था। चबूतरे पर पचास फुट ऊंची एक लाट उस दिन की याद में खड़ी है। सारा चबूतरा और सीढ़ियां संगवासी की हैं। लाट के पांच हिस्से हैं। निचले हिस्से में अंग्रेजी जबान में उस दिन की घटना का वर्णन लिखा हुआ है।

इसी चबूतरे पर बैठ कर जार्ज पंजम ने कलकत्ते की बजाय दिल्ली को राजधानी बनाने की घोषणा की थी। तभी से दिल्ली की काया फिर से पलटनी शुरू हुई और अंग्रेजों ने दिल्ली के प्रति जो लापरवाही अब तक दिखाई थी, उसमें परिवर्तन आया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि दिल्ली वायसराय के रहने और काम करने का स्थान बन गया और दिल्ली को एक अलग सूबा बना दिया गया। बल्लभगढ़ और पानीपत की तहसीलों को दिल्ली में से निकाल दिया गया। उसकी जगह यमुना पार के गाजियाबाद तहसील के गांव दिल्ली में शरीक कर दिए गए। 17 सितम्बर, 1912 से दिल्ली अलहदा सूबा बनाया गया। महरौली, जो बल्लभगढ़ तहसील में थी, वह दिल्ली में ही रही। दिल्ली का कुल रक़बा 573 मील हो गया।

पहला वायसराय लार्ड हार्डिंग था। वह 1912 में दिल्ली आया और उसने कर्जन हाउस में रिहायश अख्तियार की। दिल्ली जब राजधानी बनी तो अंग्रेजों के लिए चंद अपशकुन हुए, बताते हैं। सबसे पहले तो जब जार्ज पंजम विलायत से चले तो कुछ दुर्घटना हुई, दिल्ली में दरबार करके आए तो उनके खेमे में आग लग गई। जब लार्ड हार्डिंग स्टेशन से चल कर हाथी पर जुलूस में निकल रहे थे तो चांदनी चौक में धूलिया वाले कटड़े के सामने उन पर बम फेंका गया, जिससे वह बाल-बाल बच गए। उसके पीछे जो छत्रधारी दरवान बैठा था, वह मारा गया। हार्डिंग के भी थोड़ी चोट आई। हार्डिंग 1912 से 1916 तक दिल्ली में रहा। उसके बाद 1916 से 1921 तक लार्ड चेम्सफोर्ड, 1921 से 1926 तक लार्ड रीडिंग, 1926 से 1931 लार्ड इरविन, 1931 से 1936 लार्ड विलिंगडन, 1936 से 1943 लार्ड लिनलिथिगो, 1943–47 लार्ड वेवल, 1947 अप्रैल से अगस्त तक लार्ड माउंटबैटन वायसराय रहे।

लार्ड माउंटबैटन आखिरी वायसराय थे, जो स्वतन्त्र भारत के पहले गवरनर जनरल बने। फिर श्री राजगोपालाचार्य को गवरनर जनरल पद सौंप कर और हिन्दुस्तान से अंग्रेजी सत्ता की निशानी खत्म करके वे इंग्लैण्ड चले गए। अंग्रेजी काल में 1911 से 1947 तक जो यादगारें कायम हुईं उनका विवरण इस प्रकार है:—

एडवर्ड पार्क:—यह जामा मस्जिद के नजदीक ठंडी सड़क पर स्थित है। इसका शिलान्यास 8 दिसम्बर 1911 को जार्ज पंजम ने किया था। उसके चार दरवाजे हैं, एक मछलीवालों की तरफ, दूसरा दरियागंज की तरफ, तीसरा ठंडी सड़क पर, और चौथा जामा मस्जिद वाली सड़क पर। बाग के बीच में एक चबूतरा है। उस पर ऊंचे चबूतरे पर काले घोड़े पर एडवर्ड का तांबे का बुत खड़ा किया गया है। बाग के चारों ओर लोहे का कटहरा है, और बाग में साएदार वृक्ष और फूलों के पेड़ हैं। जहां यह बाग बना है, वहां कहते हैं, गदर से पहले एक मस्जिद बनी हुई थी।

लेडी हार्डिंग कालेज तथा हस्पताल:—इस अस्पताल की स्थापना सन् 1912 में लेडी हार्डिंग ने की। उसी के नाम से इसे चलाया गया। करीब तीस लाख रुपया इसके लिए राजाओं तथा अन्य लोगों से जमा किया गया। कालेज के साथ इसमें दो सौ मरीजों को रखने के लिए अस्पताल भी खोला गया। साथ में एक नरसिंग स्कूल और सौ छात्रों के लिए छात्रावास भी खोला गया। इस पर कुल लागत 33,91,301 रु० आई।

हार्डिंग पुस्तकालय (1913 ई०):—मलका के बाग के पूर्व में कोड़िया पुल की सड़क की तरफ फ़व्वारे से कुछ आगे बढ़ कर हार्डिंग पुस्तकालय की इमारत है जिसे लार्ड हार्डिंग की यादगार में 1913 ई० में बनाया गया था। पहले दिल्ली का पुस्तकालय टाउन हाल में हुआ करता था। इस पुस्तकालय में कई हजार पुस्तकें हैं, बहुत सी पुराने जमाने की हैं। हार्डिंग पुस्तकालय के दक्षिण में एक बहुत बड़ा मैदान है, जो गांधी ग्राउंड कहलाता है। 5 मार्च, 1930 को जिस दिन गांधी-इर्विन समझौता हुआ, इस मैदान में एक विराट सभा हुई थी, जिसकी उपस्थिति कई लाख की थी। गांधी जी का उसमें व्याख्यान हुआ था। उस वक्त की आबादी के लिहाज से इतनी बड़ी सभा फिर नहीं हुई। तभी से इस मैदान का नाम गांधी ग्राउंड पड़ा। पहले इस मैदान में घास लगी हुई थी और साएदार वृक्ष थे। इसमें क्रिकेट के मैच हुआ करते थे। शाम को इसमें स्कूल के बच्चे खेला करते थे। अब इसमें घास का नामो-निशान नहीं रहा। इस मैदान में हर वर्ष रामलीला भी होती है।

बाग में कई क्लब भी बने हुए हैं। गांधी जयन्ती के दिन फतहपुरी बाजार की तरफ के हिस्से में एक बहुत बड़ा मेला लगता है, जो तीन दिन चलता है। होली के बाद दुलहंडी के दिन भी इस बाग में मेला लगता है।

टेलर का बुत:—मोरी दरवाजे के बाहर चौराहे पर लाल पत्थर का जो चबूतरा बना हुआ है, वहां 1914 में टेलर के खानदान वालों ने उसका बुत लगवाया था। इसने 1857 की लड़ाई में भाग लिया था। अब वह बुत वहां से हटा दिया गया है।

यूरोप का महान युद्ध

अगस्त 1914 में यूरोप का प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ। नई दिल्ली की इमारतें बननी शुरू तो हो गई थीं, लेकिन युद्ध के कारण काम में शिथिलता आ गई। सरकारी दफ्तरों के लिए अलीपुर रोड पर खैबरपास के निकट आरजी इमारतें बनाई गईं और यहीं वायसराय की असेम्बली का हाल बना। खैबरपास नाम इसलिए पड़ा कि माल रोड पर पहाड़ी काट कर दो रास्ते बनाए गए थे, जिनके ऊपर दरबार के लिए माल ढोने की रेलगाड़ी चलती थी। बाद में यह पहाड़ी तोड़ दी गई। खैबरपास पर अंग्रेज़ी बाजार भी था। उसकी निशानी चंद दुकानें अब भी बाकी हैं। कौंसिल आफ स्टेट मटकाफ़ हाउस में लगा करती थी। उसी में उसके सदस्यों के रहने का प्रबंध भी था।

नई दिल्ली बसाने के लिए दिल्ली दरवाज़े और अजमेरी दरवाजे के बाहर से लगा कर कुतुब तक का नक्शा ही बदल गया और जहां खेत, पहाड़ियां, और जंगल हुआ करते थे वहां बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी होने लगीं, चौड़ी-चौड़ी सड़कें निकलने लगीं और सैकड़ों-हज़ारों कोठियां और बंगले बनने लगे। यह अंग्रेज़ों की दूसरी दिल्ली थी। पहली दिल्ली सिविल लाइन में थी, जो सोलहवीं दिल्ली थी। और यह नई दिल्ली सत्रहवीं थी। नई दिल्ली को सर एडविन लिटन और हरबर्ट बेकर ने बनाया जो अपने ज़माने के विख्यात टाउन योजनाकार थे। मशहूर इमारतों में वायसरिगल इस्टेट और भवन, उसके साथ सेक्रेटेरियट के उत्तरी और दक्षिणी कक्ष, असेम्बली की विशाल गोलाकार इमारत, कवींजवे (राजपथ) और उसके दोनों बाजू की नहरें खुले मैदान, विशाल विजय चौक और उस में लगे फ़व्वारे हैं। ये सब इमारतें, जो लाल और सफेद पत्थर की बनी हैं, सुन्दरता में संसार की उच्च कोटि की हैं। वायसराय का भवन रायसीना की पहाड़ी पर बनाया गया था। वर्षों तक हज़ारों मज़दूर और मेमार लुहार और खाती, संगतराश और अन्य कारीगर इन इमारतों को बनाने के लिए काम करते रहे। जन्तर-मन्तर के पास जो जयसिंहपुरे की आबादी हुआ करती थी, उसे हटा कर कनाट सरकस का विशाल बाज़ार बना कर खड़ा कर दिया गया। रेल का रुख भी बदलना पड़ा, उसको सड़कों के ऊपर से ले जाने के लिए हार्डिंग ब्रिज और मिंटो ब्रिज बने। सदर का स्टेशन तोड़ दिया गया और नई दिल्ली का बड़ा आलीशान स्टेशन उसकी जगह पहाड़गंज में बना दिया गया। इन तमाम इमारतों को बनते-बनाते 18 साल लग गए। 15 फरवरी 1931 के दिन लार्ड इरविन ने नई दिल्ली का उद्घाटन किया। 29,000 मज़दूर इसके बनाने में लगे रहे और इसके बनाने पर 15 करोड़ रुपया खर्च हुआ।

लार्ड हार्डिंग के बाद लार्ड चेम्सफोर्ड वायसराय बन कर आए, जो 1916 से 1921 तक दिल्ली में रहे। इनके ज़माने की यादगार तो केवल चैम्सफोर्ड क्लब ही

है, जो रफी मार्ग पर स्थित है। पहले यह गोरों के लिए थी, बाद में उनकी जीमखान क्लब बन गई और यह हिन्दुस्तानियों की हो गई। वैसे चेम्सफोर्ड काल की बहुत सी घटनाएं स्मरणीय हैं। यूरोप का पहला युद्ध, जो 1914 में शुरू हुआ था, 11 नवम्बर 1918 के दिन बंद हुआ। उसका बड़ा भारी जशन मनाया गया। मगर युद्ध समाप्त होते ही अंग्रेजों ने आजादी की मांग को दबाना शुरू कर दिया और रौलेट बिल पास किया, जिसे काला कानून कहा जाता है। उसके विरोध में गांधी जी का 1919 का सत्याग्रह शुरू हुआ। दिल्ली में 30 मार्च,1919 के दिन बड़ी भारी हड़ताल हुई, जिसमे हिन्दू-मुसलमान दोनों ही शरीक थे। उस दिन चांदनी चौक में गोली चली और कई आदमी मारे गए। फिर 6 अप्रैल को हड़ताल हुई, जो 17 अप्रैल तक चलती रही। दिल्ली के वे दिन बड़े ऐतिहासिक थे। हजारों नर-नारी जेल में गए, लाठियों और गोलियों के शिकार हुए। इसी प्रकार चेम्सफोर्ड काल दमन का काल गुजरा। इसी जमाने में दिल्ली में इन्फ्लुएंजे की महामारी फैली, जिसमें करीब साठ हजार लोग मृत्यु को प्राप्त हुए।

चेम्सफोर्ड के बाद लार्ड रीडिंग वायसराय, बन कर आए, जो 1921 से 1926 तक रहे। इनके जमाने की यादगार नई दिल्ली में रीडिंग रोड है और हिन्दु राव के बाड़े में लेडी रीडिंग स्वास्थ्यकेन्द्र हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय की स्थापना भी इनके काल में हुई।

लार्ड रीडिंग का जमाना भी स्मरणीय है। 1922, में प्रिंस आफ वेल्ज हिन्दुस्तान आया, जो बाद में इंग्लैण्ड का बादशाह एडवर्ड अष्टम के नाम से पुकारा गया। गांधी जी ने प्रिंस आफ़ वेल्ज के आगमन का बहिष्कार करवाया, जिससे देश भर में हड़तालों की लहर फैल गई। उसका बदला अंग्रेजों ने देश में हिन्दू-मुस्लिम फिसाद करवा कर लिया। इस फिसाद ने बड़ा भयंकर रूप धारण कर लिया। उसी वर्ष गांधी जी को गिरफ़्तार किया गया और उन्हें छः वर्ष कारावास की सजा दी गई, मगर 1924 में, जब उनका एपेंडिसाइटिस का आपरेशन हुआ तो उन्हें रिहा कर दिया गया। रिहाई के बाद गांधीजी ने कोहाट के कौमी दंगे के बाद दिल्ली में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए 21 दिन का उपवास किया, जिसकी शुरुआत चेलों के कूचे में मौलाना मोहम्मद अली के मकान पर हुई थी और खात्मा मल्कागंज रोड पर लाला रघुबीर सिंह की कोठी पर हुआ था। ये दिन भी बड़े ऐतिहासिक थे।

दिल्ली विश्वविद्यालय:—सिविल लाइन में जो फ्लैग स्टाफ बाओटा है उसके चारों ओर चार सड़कें हैं। पश्चिमी मार्ग से नीचे उतरें तो एक चौराहा आता है, जिसके दाएं-बाएं विश्वविद्यालय मार्ग है और सामने की ओर विश्वविद्यालय का मुख्य प्रवेश द्वार है। विश्वविद्यालय की स्थापना 1 मई, 1922 के दिन हुई। डा० हरिसिंह गौड़ पहले वाइस चांसलर नियुक्त किए गए। विश्वविद्यालय की स्थापना

अलीपुर रोड और फ्लैग-स्टाफ रोड के नुक्कड़ पर एक बंगल में हुई थी। बाद में वह कर्जन हाउस में चला गया।

विश्वविद्यालय दस मील के घेरे में फैला हुआ है। मौरिस ग्वायर जब उपकुलपति बने तो उन्होंने दिल्ली के समस्त महाविद्यालयों को विश्व विद्यालय के घेरे में आने का आदेश निकाल दिया। चुनांचे सेंट स्टीफेंस कालेज, हिन्दू कालेज, रामजस कालेज, किरौड़ी मल कालेज, लड़कियों का मिरांडा हाउस, और प्रमिला कालेज, ये सब इस विश्वविद्यालय के घेरे में ही स्थित हैं। इनके अतिरिक्त कितने ही अन्य शिक्षालय और छात्रावास भी इसी घेरे में स्थित हैं। विश्वविद्यालय का अपना विशाल पुस्तकालय है। पुराने महाविद्यालयों में दो ही कालेज हैं। सेंट स्टीफेंस कालेज और हिन्दू कालेज जो कश्मीरी दरवाज़े के साथ थे। हिन्दू कालेज 1899 में कायम हुआ था। वहां गदर से पहले कर्नल स्किनर की हवेली थी। यह 1955 में विश्वविद्यालय के घेरे में चला गया।

लार्ड रीडिंग के पश्चात 1926 में लार्ड इरविन आए, जो 1931 तक दिल्ली में रहे। इनके नाम से दिल्ली दरवाज़े के बाहर इरविन अस्पताल कायम हुआ जो दिल्ली का सबसे बड़ा अस्पताल है और यह फैलता ही जा रहा है।

वायसराय भवन अथवा राष्ट्रपति भवन:—इस इस्टेट का रकबा 330 एकड़ है, जिसके चार पक्ष हैं। राष्ट्रपति भवन के दो मुख्य प्रवेश द्वार हैं, जिनके बीच में 32 सीढ़ियां चढ़ कर दरबार हाल बना हुआ है, जो पूरा संगमरमर का है और जिसका डायमीटर 75 फुट है। अन्दर जाकर नाचघर है। इसकी छत मुगल काल के नमूने की चित्रकारी की बनी हुई है। नाचघर के मुख्य द्वार के सामने ड्राइंग रूम है। उसके साथ भोजन कक्ष है। इनके अतिरिक्त राष्ट्रपति भवन में 45 सोने के कमरे हैं और पुश्त पर सुन्दर बाग है, जिसे मुगल बाग कहते हैं। बीच में बड़ा भारी घास का मैदान है, जिसमें जगह-जगह फव्वारे लगे हुए हैं। इस खुले सहन में बाहर से आने के लिए दाएं-बाएं कई द्वार हैं। भवन के ऊपर तांबे का गोल गुंबद अपनी भव्यता दिखा रहा है।

राष्ट्रपति भवन के आगे की ओर भी बीच में खुला मैदान है, जिसके दोनों बाज़ू सड़कें हैं और सड़कों के अन्त पर लोहे के किवाड़ चढ़े हुए हैं, जहां पहरा रहता है। इसके बाद सेक्रेटेरियट की इमारत शुरू हो जाती है, जिसके दो पक्ष हैं, उत्तरी और दक्षिणी। इनमें एक हज़ार दफ़्तर के कमरे बने हुए हैं। इन कमरों में ही मन्त्री और अधिकारी हुकूमत का काम करते हैं। दक्षिण की ओर पहले प्रधान मन्त्री का विभाग आता है, फिर रक्षा मन्त्री का और फिर गृह मन्त्री का। उत्तर की ओर शिक्षा मंत्रालय, आवास मंत्रालय और वित्त मंत्रालय तथा अन्य कई मंत्रालय हैं।

लोक-सभा भवन:—राष्ट्रपति के उत्तर-पश्चिम में लोक-सभा का गोलाकार विशाल भवन है, जो सफेद पत्थर का बना हुआ है और जिसमें 144 खम्भे 27 फुट ऊंचाई के लगे हुए हैं। ब्रिटिश काल में इसके तीन भाग थे। एक में असेम्बली, दूसरे भागमें कौंसिल आफ स्टेट और तीसरे में चेम्बर आफ प्रिंसेज के अधिवेशन होते थे। असेम्बली का उद्घाटन 18 जनवरी, 1927 के दिन लार्ड इरविन ने किया था। असेम्बली हाल में लोक-सभा और कौंसिल आफ स्टेट हाल में राज्य-सभा लगती है। प्रिंसेज चेम्बर में पुस्तकालय है। तीनों भवनों के बीच में केन्द्रीय भवन है, जिस पर 90 फुट ऊंचा गुंबद बना हुआ है। इस भवन में 15 अगस्त, 1947 की रात्रि के 12 बजे भारत की स्वतन्त्रता स्थापित हुई थी और लार्ड माउंटबेटन स्वतन्त्र भारत के पहले गवर्नर जनरल नियुक्त हुए थे। इस भवन में संविधान सभा बैठी और 1950 में भारत का संविधान तैयार हुआ। बाबू राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के प्रधान थे। दोनों सभाओं की जब भी सम्मलित बैठक करनी होती है तो इसी भवन में हुआ करती है।

इरविन का जमाना भी बहुत ऐतिहासिक है। इसे टुंडा वायसराय कहा करते थे। क्योंकि इसका एक हाथ खराब था। जब यह दिल्ली आ रहा था तो इसकी ट्रेन पर बम्ब फटा। यह बाल-बाल बचा। इसके जमाने में सायमन कमीशन हिन्दुस्तान में आया। उसका भी बड़े जोर के साथ बहिष्कार किया गया। दिल्ली में असेम्बली की दीवारों पर 'सायमन वापस जाओ' लिखा गया। इसी के जमाने में भगत सिंह कांड हुआ और 31 दिसम्बर, 1929 की रात्रि के 12 बजे रावी के किनारे श्री जवाहर लाल ने पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा करते हुए कौमी झंडा लहराया। 26 जनवरी, 1930 से स्वतन्त्रता दिवस मनाया जाने लगा, जो स्वराज मिलने पर गणतन्त्र दिवस में तब्दील हो गया। 12 मार्च, 1930 को गांधीजी ने डांडी मार्च शुरू की और 6 अप्रैल से नमक सत्याग्रह शुरू हुआ। दिल्ली में सत्याग्रह की लड़ाई बड़ी तेजी के साथ चली। 5 मार्च, 1931 को ऐतिहासिक गांधी-इरविन समझौता हो गया, मगर भगत सिंह की जान न बच सकी। उन्हें 25 मार्च को फांसी दे दी गई। इसके बाद ही इरविन का कार्यकाल समाप्त हो गया।

इरविन अस्पताल:—यद्यपि इसका शिलान्यास 1930 में लार्ड इरविन द्वारा हुआ था मगर यह बनना शुरू हुआ 1934 में और अप्रैल 1935 में बन कर तैयार हुआ। करीब छब्बीस लाख रुपया इस पर खर्च आया। इसमें 320 मरीजों की गुंजायश रखी गई थी। 20 पारिवारिक वार्ड बनाए गए और दस विशेष वार्ड। अब तो यह अस्पताल बहुत बढ़ गया है। इसके कई नए कक्ष बनाए गए हैं। मरीजों के बैड दुगुने स भी अधिक हो गए हैं। एक कक्ष पंडित पंत के नाम से बनाया गया है।

इरविन के बाद 1932 में लार्ड विलिंगडन आया, जो 1936 तक दिल्ली में रहा। इसके जमाने की यादगार विलिंगडन अस्पताल है। यह नई दिल्ली में गोल डाकखाने के पास स्थित है। इसके जमाने की दूसरी यादगार अखिल भारतीय युद्ध स्मारक है, जो राजपथ पर बीच में बना हुआ है। यह एक सफेद पत्थर का 13 फुट ऊंचा और 40 फुट चौड़ा द्वार है। द्वार के ऊपरी भाग में दोनों ओर गेट-वे आफ इंडिया लिखा हुआ है। इसे इंडिया गेट कह कर पुकारते हैं। 10 फरवरी, 1921 के दिन ड्यूक आफ कनाट ने इसका शिलान्यास किया था। 1933 में यह बन कर तैयार हुआ। 1914-18 तक के युद्ध में जो हिन्दुस्तानी फौजी आहत हुए उनके नाम इसकी दीवारों पर लिखे हुए हैं। इंडिया गेट के दोनों ओर मैदान में फव्वारे लगे हैं। इस इंडिया गेट के पश्चिम में किंग जार्ज पंजम का संगमरमर का कद्दे आदम बुत लगा हुआ है, जिसके ऊपर छतरी है और नीचे फव्वारा।

विलिंगडन का जमाना भी ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण रहा है। इरविन ने जो समझौता किया था उसके अनुसार गांधीजी गोल मेज परिषद् में शरीक होने इंग्लैण्ड गए, मगर वहां से वह दिसम्बर के अन्त में निराश होकर लौटे और आते ही फिर से सत्याग्रह युद्ध छिड़ गया, जो 1933 तक चला। विलिंगडन ने पूरे दमन की नीति बरती। गांधीजी से इसका कोई समझौता न हो सका।

1936 में लार्ड लिनलिथगो आया, जो 1943 तक वायसराय रहा। यह किसान वायसराय कहा जाता है। इसके जमाने की कोई यादगार दिल्ली में नहीं है। मगर इसका काल खास कर ऐतिहासिक है, क्योंकि इसके जमाने में 1939 का द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ और 1940 में गांधीजी का व्यक्तिगत संग्राम तथा 1942 के अगस्त मास में भारत की आजादी का आखिरी युद्ध—'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन शुरू हुआ, जो 1945 तक चलता रहा। 9 अगस्त 1942 के दिन गांधीजी और अन्य समस्त नेताओं की गिरफ्तारी हुई और सारे देश में बड़े पैमाने पर स्वतन्त्रता संग्राम चला। कई लाख नर-नारी जेल गए। कई सौ मारे गए। इस जमाने में बड़े-बड़े अत्याचार हुए मगर हिन्दुस्तानी अविचलित रहे। 15 अगस्त 1942 के दिन आगाखां महल में गांधीजी के निजी सचिव महादेव देसाई की अकस्मात् मृत्यु हो गई।

शुरू-शुरू में गांधीजी की लिनलिथगो के साथ अच्छी पटी। 1937 में भारत में विधान सभाओं का पहला चुनाव हुआ, जिसमें कांग्रेस ने हिस्सा लिया और सूबों में वज़ारतें बनाईं मगर द्वितीय महायुद्ध के शुरू होते ही आपसी मतभेद बढ़ता गया, क्योंकि कांग्रेस ने युद्ध में सहायता देने से इन्कार कर दिया।

लक्ष्मीनारायण का मन्दिर:—इसके जमाने में रीडिंग रोड पर नई दिल्ली के तीन विख्यात उपासना स्थान तैयार हुए, जिनमें लक्ष्मीनारायण का मन्दिर सबसे मशहूर है। इसे बिरला मन्दिर भी कहते हैं। इसे सेठ जुगल किशोर बिरला ने

बनवाया। इसका उद्‌घाटन 18 मार्च, 1939 को गांधीजी ने किया था। मुसलमानों के अतिरिक्त अन्य समस्त धर्मावलम्बी इसमें जा सकते हैं।

मन्दिर सड़क के किनारे ही बना हुआ है। संगमरमर की सीढ़ियां चढ़ कर खुला सहन आता है और फिर मन्दिर द्वार, जिसमें प्रवेश करके एक लम्बा-चौड़ा दालान है और सामने की ओर तीन मन्दिर। बीच में विष्णु भगवान और लक्ष्मी का मन्दिर है और दाएं-बाएं शिव और दुर्गा के मन्दिर हैं।

मन्दिर के साथ मिला हुआ गीता भवन है, जिसमें कृष्ण भगवान की खड़ी मूर्ति है। भवन में भजन-कीर्तन होता रहता है।

मन्दिर में जगह-जगह गीता के तथा उपनिषदों और अन्य धर्म ग्रन्थों के श्लोक दीवारों पर खुदे हुए हैं। जगह-जगह चित्र भी बने हुए हैं।

मन्दिर की पुश्त पर पहाड़ी के साथ एक बहुत लम्बा-चौड़ा खुला उद्यान है, जिसमें पानी के फव्वारे छूटते रहते हैं और घास लगी हुई है। यह दर्शनार्थियों के लिए आराम करने का सुन्दर स्थान है।

मन्दिर के साथ यात्रियों के लिए एक छोटी धर्मशाला भी है, जहां भोजन का प्रबंध भी है।

इस मन्दिर की ख्याति दिनों दिन बढ़ रही है। वर्ष के कई उत्सव यहां होते हैं, खासकर जन्माष्टमी के दिन, जब सारा मन्दिर बिजली से रोशन किया जाता है।

बुद्ध मन्दिर:—लक्ष्मीनारायण के मन्दिर से मिला हुआ भगवान बुद्ध का मन्दिर है। मन्दिर में बुद्ध भगवान की मूर्ति है, जो सुनहरी रंग की है और संगमरमर के चबूतरे पर बैठी हुई है। बौद्ध भिक्षुओं का यह पीठ है, इसका भी 18 मार्च, 1939 को महात्मा गांधी ने उद्‌घाटन किया था। मन्दिर का हाल 40×30 फुट है। दीवारों पर बुद्ध भगवान के जीवन के चित्र बने हुए हैं।

काली मन्दिर:—बुद्ध मन्दिर के साथ काली माता का मन्दिर है, जो बंगालियों का तीर्थस्थान है। इसमें काली की मूर्ति है। दाएं हाथ धर्मशाला भी है। आश्विन के नौ रात्रों में यहां देवी की पूजा बड़े पैमाने पर होती है। मन्दिर अठपहलू है, चार द्वार और चार पाती लगे हैं। मन्दिर में 12 सीढ़ी चढ़ कर पहुंचते हैं। मन्दिर के ऊपर गोपुर है।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त इस सड़क पर कई और इमारतें भी बनी हुई हैं हिन्दू महासभा भवन, आर्यसमाज मन्दिर और कई स्कूलों की इमारतें फैली हुई हैं।

इस सड़क पर आगे जा कर एक गिरजा आता है और उसके साथ वाल्मीकि मन्दिर, जिसमें 1946 और 1947 में गांधीजी अंग्रेजों से भारत की आजादी

का फैसला करने के सिलसिले में आकर ठहरते रहे। दाएं हाथ जाकर चित्रगुप्त रोड पर भगवान रामकृष्ण परमहंस का मन्दिर है।

1943 में लार्ड वेवल वायसराय बन कर आया जो 1947 तक रहा। यह हिन्दुस्तान का पहला फौजी वायसराय था। इसकी यादगार में दिल्ली के बड़े स्टेशन क सामने फौजियों के लिए वेवल कैंटीन खोली गई थी, जिसमें 1947 के साम्प्रदायिक दंगे में शरणार्थी रहे और अब वहां सार्वजनिक पुस्तकालय है।

लार्ड वेवल का काल भी ऐतिहासिक घटनाओं से पूर्ण है। इसके जमाने में महायुद्ध ने भयंकर रूप धारण कर लिया। गांधीजी ने आगाखां महल में 21 दिन का उपवास रखा। माता कस्तूरबा की 22 फरवरी, 1943 के दिन आगाखां महल में ही मृत्यु हो गई। वहां महादेव भाई और माता कस्तूरबा की समाधियां बनी हुई हैं। मई 1945 में गांधीजी को रिहा किया गया। महायुद्ध भी समाप्त हो गया और इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की हुकूमत आ गई, जिसने भारत को आजादी देना मंजूर किया और उसी की तैयारियां होने लगी। लार्ड वेवल के जमाने की सबसे बड़ी घटना बंगाल का अकाल था, जिसमें 30 लाख लोग भूख से मर गए।

इसी के समय में भारत की इंटेरिम हुकूमत बनी। श्री जवाहरलाल नेहरू इसके पहले प्रधान मन्त्री बनाए गए।

लार्ड माउंटबैटन:—ये भारत के अन्तिम वायसराय थे, जो अप्रैल 1947 से अगस्त 47 तक केवल पांच मास इस पद पर रहे। इनके यह पांच मास विशेष महत्व रखते हैं। भारत को आजाद करने की घोषणा की गई। साथ ही देश का बंटवारा भी हो गया और पाकिस्तान बन गया। 15 अगस्त 1947 भारत के इतिहास में वह स्मरणीय दिवस है, जिस दिन लार्ड माउंटबैटन ने अपने हाथ से यूनियन जैक उतार कर आजाद भारत के तिरंगे झंडे का आरोहण किया और इस प्रकार भारत से तीन सौ वर्ष पुराना अंग्रेजी शासन सदा के लिए समाप्त हो गया। लार्ड माउंटबैटन की यही सबसे बड़ी यादगार दिल्ली में रहेगी। इनका गांधीजी से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ और इनके यहां आना-जाना होता रहता था।

15 अगस्त के बाद ये भारत के पहले गवरनर जनरल बनाए गए। अंग्रेज शासन काल की चंद इमारतें और भी हैं, जिनको यादगार में शुमार किया जा सकता है।

टी० बी० अस्पताल:—दो अस्पताल तपेदिक के हैं। एक है किंग्जवे कैम्प सड़क पर जूबिली अस्पताल, जहां 1911 में रेल का स्टेशन हुआ करता था। दूसरा महरौली के पास, सड़क पर है। दिल्ली में दिक के मरीजों की संख्या के लिहाज से ये दोनों अस्पताल काफी नहीं है।

जामियामिलिया:—1921 में, जब गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन चलाया तो सरकारी विद्यालयों का भी बहिष्कार किया गया। उस वक्त अलीगढ़ मुस्लिम

विश्वविद्यालय से, जो लड़के निकले, उनके लिए दिल्ली में करौलबाग में कौमी मुस्लिम यूनिवर्सिटी कायम की गई, जिसका नाम जामियामिलिया रखा गया, बाद में ओखले के करीब ज़मीन लेकर यह मुस्लिम विश्वविद्यालय वहां ले जाया गया। यह इमारत बहुत बड़ी है। साथ में जामिया नगर भी बना दिया गया है। डा० अन्सारी को और शफीक उलरहमान को यहां ही दफनाया गया था।

नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी—शुरू में इसका नाम, इम्पीरियल कमेटी था फिर रायसीना कमेटी पड़ा। पूरे अधिकार वाली नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी 1931-32 में बनी। टाउन हाल का शिलान्यास 14 मार्च, 1932 को दिल्ली के अंग्रेज़ चीफ कमिश्नर जान टाम्सन ने किया था और 17 अगस्त, 1933 को वाय-सराय ने टाउन हाल का उद्‌घाटन किया था।

नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी का कुल रकबा 31.7 एकड़ था। दिल्ली नगर निगम के बनने पर इसे घटा कर 16.4 एकड़ कर दिया गया।

1931 में नई दिल्ली की आबादी 64,844 थी, जो 1932 में बढ़ कर 2,64,000 हो गई। और इस वक्त 2,75,000 है।

टाउन हाल की इमारत ईंटों की बनी हुई है। मुख्य द्वार पर एक घंटाघर भी बना हुआ है। इसकी इमारत अभी हाल में और बढ़ गई है। यह जन्तर-मन्तर के सामने पार्लियामेंट स्ट्रीट् पर स्थित है।

पूसा इंस्टीट्यूटः—1933 में जब बिहार में भूकम्प आया तो वहां जो खेती बाड़ी का इंस्टीट्यूट था वह बेकार हो गया। दिल्ली में करौल बाग के पास कई-सौ एकड़ जमीन लेकर खेतीबाड़ी के प्रयोग करने के लिए यह पूसा इंस्टीट्यूट यहां खोला गया। बाद में यहां एक बहुत बड़ी प्रयोगशाला भी बना दी गई, जो नेशनल फिजिकल लेबारेटरी के नाम से पुकारी जाती है।

सेंट्रल एशियाटिक म्युज़ियमः—नई दिल्ली में गेट वे आफ इंडिया के पास लाल पत्थर की एक और इमारत है, जिसमें पुरातत्व विभाग की ओर से एशिया की पुरानी वस्तुओं का संग्रह है।

इमामबाड़ाः—यह पंचकुई रोड पर शिया मुसलमानों की इबादतगाह है, जो करीब सोलह-सतरह वर्ष पूर्व बना है। यह एक पक्की इमारत है। एक बड़ा हाल है, जिसमें बालकनी है और ऊपर की मंजिलों में कमरे हैं।

रेडियो स्टेशनः—पार्लियामेंट स्ट्रीट पर आकाशवाणी का विशाल भवन है। यहां से संसार भर के लिए रेडियो कार्यक्रम प्रसारित होते हैं।

5–स्वतन्त्र भारत की दिल्ली

(अठारहवीं दिल्ली)

15 अगस्त 1947 को भारत आज़ाद हो गया, मगर उसके साथ ही देश के दो टुकड़े भी हो गए। पाकिस्तान बना, जिसमें उत्तर-पश्चिम सूबा, सिंध और बिलोचिस्तान तथा बंगाल का पूर्वी भाग और पंजाब का पश्चिमी भाग शामिल कर दिए गए। बाकी के भाग हिन्दुस्तान में रहे। देश के दो टुकड़े क्या हुए, हिन्दू-मुसलमानों के दिलों के भी दो टुकड़े हो गए। कल तक जो भाई-भाई थे, वे आज एक-दूसरे के खून के प्यासे बन बैठे। देश में हाहाकार मच उठा, चारों ओर मारकाट और लूट खसोट का बाज़ार गर्म था। खून की नदियां बह रही थीं और मनुष्यता से गिरे हुए जितने भी काम हो सकते थे, वे सब बरपा हो रहे थे।

दिल्ली भी इस आग से न बच सकी। अभी आज़ादी का जशन पूरी तरह पूरा भी होने न पाया था कि पंजाब से हौलनाक खबरें आने लगीं और दिल्ली दंगे-फिसाद, मार-काट का गढ़ बन गई। खुले आम कत्ल और लूट-मार होने लगी। तुरन्त ही कर्फ्यू लगा दिया गया, मगर अगस्त का आखिरी सप्ताह और सितम्बर का पहला सप्ताह रात-दिन जागते बीता। किसी की जान महफूज़ न थी, किसी की इज्जत सुरक्षित न थी। लोग घरों में बंद थे और जो बाहर निकलते थे वे मुश्किल से घर लौट कर आते थे। चारों ओर भगदड़ मच गई। मुसलमान शहर छोड़-छोड़ कर भागने लगे और पंजाब के शरणार्थी हिन्दू यहां आने लगे। उन दिनों की याद से कलेजा मुंह को आता है। अपनी ही हुकूमत और यह हाल !

आखिर, तार भेज कर गांधीजी को दिल्ली बुलाया गया। वे कलकत्ते के दंगे से निपटे ही थे। हालात सुन कर वह तुरन्त दिल्ली के लिए रवाना हो गए और 9 सितम्बर को दिल्ली पहुंचे। भंगी कालोनी, जहां वह ठहरते थे, शरणार्थियों से भरी पड़ी थी। लाचार उन्हें बिरला भवन में ठहरना पड़ा। उनके आने से दिल्ली में शान्ति तो अवश्य हो गई, मगर उनके मन की शान्ति काफूर हो गई। उन्होंने 125 वर्ष तक जीने की बात मन से निकाल ही दी। वह उन हालात को सहन करने में असमर्थ थे, जो उनके देखने में आ रहे थे। जब उनसे अधिक सहन न हो सका तो उन्होंने आमरण व्रत रख लिया ताकि दोनों कौमें समझ जाएं और गुमराही का रास्ता छोड़ दें। उनके उपवास का प्रभाव होना तो लाज़मी था। दंगे फिसाद बंद भी हो गए, मगर दिल के ज़हर न धुल सके, फटे दिल फिर जुड़ न सके। उसके परिणाम स्वरूप सारी कौम को एक ऐसा कलंक लगा गया, जिसे कभी धोया नहीं जा सकता।

30 जनवरी की शाम के पांच बज कर सत्रह मिनिट पर जब कि वह प्रार्थना-स्थान पर पहुंचने ही वाले थे, एक हिन्दू ब्राह्मण ने गोली मार कर उनका शरीरान्त कर दिया। सारा देश शोक सागर में डूब गया और हाथ मलता रह गया, "अब पछताए क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं खेत।"

31 जनवरी को गांधी जी की अर्थी निकली। लाखों नर-नारी नौ-नौ आंसू रो रहे थे। चारों ओर हिरास और निराशा फैली हुई थी। दिल्ली दरवाज़े के बाहर बेला रोड पर राजघाट का मैदान दाहसंस्कार के लिए चुना गया था। शाम के पांच बजे दाह संस्कार हुआ और इस तरह भारत का सबसे उज्ज्वल सितारा सदा के लिये अस्त हो गया।

राजघाट समाधि:—उस खुले मैदान में, जिस चबूतरे पर दाह संस्कार हुआ था गांधीजी की समाधि बना दी गई मगर आज जो समाधि है वह तो असल से नौ-दस फुट ऊंची है। असल-समाधि नीचे दबी पड़ी है। 15 वर्ष में इस स्थान की शकल ही बदल गई है। मौजूदा समाधि बंगलौर ग्रेनाइट के नौ चौकोर काले पत्थरों की बनी हुई है। ये पत्थर 9×9 फुट के हैं और डेढ़ फुट ऊंचे हैं। समाधि ज़मीन से छह इंच ऊंची है। नीचे का चबूतरा ग्रेनाइट का 28×28 फुट का है। चारों ओर 18½ फुट लम्बा, 9½ इंच मोटा और तीन फुट ऊंचा संगमरमर का कटहरा लगा है। फिर चारों ओर खुला मैदान है जिसमें घास लगेगी और उसके बाद चारों ओर धौलपुर के चौड़े ग्रेनाइट पत्थर का 257×257 फुट का खुला सफेद चबूतरा है। उसके बाद पत्थरों की 42 गुफाएं बनाई गई हैं, जिनके चारों दिशाओं में चार प्रवेश द्वार हैं। गुफाओं, के पीछे ऊंचाई जिनको अन्दर से 9 फुट और बाहर से 13 फुट है, ढालवां मिट्टी डाल कर मैदान बनाया गया है उसके बाद बगीचा है। चारों कोनों पर साए के लिए तीन-तीन सीमेंट की बठकें हैं। अभी यहां निर्माण कार्य जारी है। पहली मंजिल भी अभी पूरी नहीं हो पाई है। पूरी मंजिल तक पहुंचने में अभी कई वर्ष लगेंगे, जबकि अन्दर और बाहर नहरें होंगी और हरेभरे वृक्ष होंगे। अभी बहुत काम बाकी है। समाधि का क्षेत्रफल 71 एकड़ में है, जो बाद में 171 एकड़ हो जाएगा। साथ में 38 एकड़ की नर्सरी है।

समाधि स्थान पर हर शुक्रवार की शाम को, जो गांधी जी का निधन दिवस है, प्रार्थना होती है और 30 जनवरी को एक सुबह बड़ा समारोह होता है। उस दिन प्रार्थना और सूत्र यज्ञ होता है। दो अक्तूबर और आश्विन कृष्णा द्वादशी के दो दिन गांधी जयन्ती मनाई जाती है। उन दोनों दिन भी प्रार्थना और सूत्र यज्ञ होता है। सुबह से शाम तक हजारों दर्शनार्थी नित्य प्रति देश-देशान्तर से समाधि पर आते रहते हैं। यहां के प्रबंध के लिए लोक-सभा की ओर से एक समिति नियुक्त है, जो यहां की व्यवस्था करती है।

समाधि के अतिरिक्त दिल्ली में गांधीजी के पांच-छः और स्मारक हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है :

(1) **गांधी स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय:**—इसकी शुरुआत गांधीजी के निधन के तीन वर्ष पश्चात् कोटा हाउस के निकट की चंद बैरकों में हुई थी। बाद में यह मानसिंह रोड पर ले जाया गया।

वर्तमान संग्रहालय का भवन राजघाट समाधि के निकट दिल्ली दरवाजे से आने वाली सड़क पर रिंग रोड पर स्थित है, जो 1951 में बन कर तैयार हुआ। भवन की इमारत दो मंजिला है, जिसके चार कक्ष हैं और बीच में 50× 36 फुट का भवन है। प्रवेश द्वार में घुस कर बाएं हाथ वाले कक्ष में पुस्तकालय और वाचनालय है, जिसमें दस हजार पुस्तकों का संग्रह किया जा चुका है। दाएं कक्ष में गांधीजी की रचनात्मक प्रवृत्तियों का प्रदर्शन है।

ऊपर के दोनों कक्षों में से एक में संग्रहालय है, जिसमें गांधीजी के अन्तिम समय के कपड़े और अन्य सामग्री रखी गई है। गांधीजी की जीवन-कथा के 201 चित्रों की एक गैलेरी भी है, जिसमें उनकी बाल्य अवस्था से लेकर उनके अन्तिम समय तक का चित्र-दर्शन है, दूसरे भाग में आडीटोरियम है, जहां गांधी जी की जीवन-कथा के चलचित्र दिखाए जाते हैं।

संग्रहालय की इमारत धौलपुर के सफेद पत्थर की बनी है। अन्दर की ओर संगमरमर लगाया गया है। इस पर दस लाख रुपये की लागत आई है। संग्रहालय का प्रबंध एक कमेटी द्वारा किया जाता है।

(2) **हरिजन निवास:**—यह किंग्जवे रोड पर ढाका गांव के पास हरिजन कार्य का मुख्यालय है, जिसका शिलान्यास 2 जनवरी, 1935 को गांधीजी ने किया था। पहले तो गांधीजी के ठहरने के लिए यहां एक दो मंजिला मकान बनाया गया था। धीरे-धीरे इसमें इमारतें बननी शुरू हुईं। हरिजन निवास तथा उद्योगशाला एवं अतिथि भवन और कार्यालय की इमारत बनाई गई। महादेव भाई के स्मारक में भी एक मकान बनाया गया और बीच के बगीचे में एक लाल पत्थर का ऊंचा स्तम्भ खड़ा किया गया, जिस पर गीता के श्लोक अंकित हैं। गांधीजी कितनी ही बार इस निवास में ठहरे थे। लेखक की माता की स्मृति में जो प्रार्थना मन्दिर बना हुआ है, उसका शिलान्यास और उद्घाटन गांधीजी के कर कमलों द्वारा ही हुआ था।

(3) **गांधी ग्राउंड:**—चांदनी चौक फव्वारे के पास जो कम्पनी बाग का भाग है वह गांधी मैदान के नाम से पुकारा जाता है। पहले यह खेल कूद का मैदान था, घास लगी हुई थी और उसमें क्रिकेट मैच हुआ करते थे। मार्च 1932 में जब गांधी-इरविन समझौता हुआ तो 6 मार्च को गांधीजी ने इस मैदान में कई लाख की

जनसंख्या के सामने भाषण दिया था। उन दिनों की आबादी के लिहाज से उतनी बड़ी मीटिंग पहले कभी नहीं हुई थी। तब ही से इस मैदान का नाम गांधी मैदान पड़ गया।

(4) **गांधीजी की मूर्ति:**–दिल्ली में रेलवे के बड़े स्टेशन की तरफ का जो कम्पनी बाग का हिस्सा है उस के एक कक्ष में, जो पार्क की शकल में है, गांधीजी की ब्रोंज धातु की साढ़े सात फुट लम्बी एक मूर्ति इक्कीस फुट ऊंचे संगमरमर के चबूतरे पर लगाई गई है, जिसके चौगिरदा पांच फव्वारे लगे हैं।

(5) **बापू समाज सेवा केन्द्र:**–रीडिंग रोड की भंगी कालोनी के नजदीक ही, जहां गांधीजी ठहरा करते थे, पंचकुईयां रोड पर, उनके निधन के पश्चात राजकुमारी अमृत कौर के प्रयास से फोर्ड फाउंडेशन ने भारत सरकार को राष्ट्रपिता की स्मृति में चार लाख रुपये का अनुदान देकर अप्रैल 1954 में बापू समाज सेवा केन्द्र का निर्माण करवाया। केन्द्र में एक बालवाड़ी, एक प्राथमिक पाठशाला, प्रौढ़ शिक्षा विभाग, पुस्तकालय एवं वाचनालय, बाल क्लब, युवक क्लब, औषधालय आदि हैं। इसका संचालन नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी द्वारा किया जाता है। इमारत में एक बहुत बड़ा हाल है, जिसके दोनों बाजू बालकनी है। सामने ऊंचा प्लेटफार्म है। हाल के साथ ही अन्य कितने ही कमरे और स्थान हैं, जिनमें विभिन्न गतिविधियां चलती हैं।

तिब्बिया कालेज:–आयुर्वेदिक और यूनानी तिब्बिया कालेज और अस्पताल जिसे आम तौर से तिब्बिया कालेज कह कर पुकारते हैं, एक बहुत बड़ी संस्था है। इसे 1878 ई० में दिल्ली के खानदानी हकीम अब्दुल माजिद खां साहब ने स्थापित किया था। इसकी शुरुआत गली कासिम जान, बल्लीमारान में हुई। बाद में यह चूड़ीवालान में चला गया। इसमें लड़कियों की शिक्षा का भी प्रबंध किया गया था। हकीम अब्दुल माजिद खां की मत्यु के पश्चात् उनके लड़के हकीम अजमल खां साहब ने, जो दिल्ली के महशूर नेता भी थे, इस संस्था को अपने हाथ में लिया और 1915 में तिब्बिया ट्रस्ट सोसायटी कायम करके करोल बाग में चालीस एकड़ जमीन के टुकड़े पर 29 मार्च, 1916 को लार्ड हार्डिंग द्वारा कालेज और अस्पताल का शिलान्यास करवाया। इमारत को बनने में पांच वर्ष लग गए। इसमें अध्ययन स्थान, अस्पताल, प्रयोगशाला, रिसर्च विभाग, फार्मेसी, छात्रावास और कर्मचारियों के निवास स्थान बनाए गए। भारत में आयुर्वेद और यूनानी तरीकों की यह पहली ही सम्मिलित संस्था कायम की गई थी, जिसका उद्घाटन 13 फरवरी, 1921 को महात्मा गांधी ने किया था। कालेज और अस्पताल के अतिरिक्त बल्लीमारान में हिन्दुस्तानी दवाखाना और कालेज में आयुर्वेदिक रसायनशाला भी खोली गई थी। लेकिन इसका अभ्युदय काल हकीम अजमल खां के जीवन काल तक ही रहा। उनकी मृत्यु के बाद वह बात न रही।

दिल्ली में गांधी जी कहाँ ठहरे ?

गांधीजी 1915 में दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान लौटे थे। 1915 से 1948 तक के 33 वर्षों के अर्से में उन्हें बीसियों बार दिल्ली आना पड़ा। दिल्ली आकर जहां-जहां वह ठहरे, वे स्थान भी गांधीजी के स्मारक रूप ही हैं, इसलिए उनकी जानकारी दिलचस्पी से खाली न होगी।

1915–18 शुरू-शुरू में गांधीजी जब दिल्ली आते थे तो वह अपने दोस्त सी० एफ० एंड्र्यूज के साथी प्रिंसिपल रुद्र के साथ कश्मीरी दरवाजे सेंट स्टीफेंस कालेज में ठहरा करते थे। सड़क के साथ ऊपर की मंजिल में उनका कमरा था, जहां वह ठहरा करते थे। फरवरी 1918 में वह दिल्ली आए थे और फिर अप्रैल में लेखक का पहली बार उनसे परिचय हुआ।

1919 1919 के मार्च में रौलेट कानून के खिलाफ गांधीजी का सत्याग्रह शुरू हुआ। 13 अप्रैल को जलियांवाला का काला कांड घटित हुआ। गांधी जी ने यह मुनासिब नहीं समझा कि रुद्र साहब को राजनीति में घसीटा जाए, चुनांचे उन्होंने डा० अन्सारी की कोठी नं० 1 दरिया-गंज में ठहरना शुरू कर दिया। अक्तूबर 1919 में पंजाब जाते समय वह दिल्ली से गुजरे।

1920–21 1920 में खिलाफत आन्दोलन शुरू हुआ, जो गांधीजी की देख-रेख में चलता था। होम रूल लीग के प्रेसीडेंट भी वही थे। दिल्ली में जलियांवाला काण्ड की जांच के लिए हंटर कमेटी भी बैठी हुई थी। उधर गांधीजी ने असहयोग का आन्दोलन भी शुरू कर दिया था। हकीम अजमल खां और डा० अन्सारी उन दिनों दिल्ली के मुख्य नेताओं में से थे। कांग्रेस और खिलाफत की बहुत सी बैठकें हकीम साहब के घर पर बल्लीमारान में हुआ करती थीं। गांधीजी को बार-बार दिल्ली आना पड़ता था। इन दिनों वह डा० अन्सारी की कोठी पर ठहरा करते थे।

1922–23 10 मार्च, 1922 को गांधीजी गिरफ्तार कर लिए गए और 18 मार्च को उन्हें छः वर्ष कैद की सजा हो गई। 1923 के अन्त तक वह जेल में रहे।

1924 5 फरवरी 1924 के दिन गांधीजी रिहा हुए। इसी साल देश के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गए, जिनमें कोहाट का दंगा सबसे भयंकर था। गांधीजी कोहाट जाने के लिए सितम्बर 1924 में

दिल्ली आए और मौलाना मोहम्मद अली के मकान पर कूचा चेलान में ठहरे, जहां 'हमदर्द' अखबार का दफ्तर भी था। यहीं उन्होंने 21 दिन का उपवास कौमी एकता के लिए शुरू किया। पहले सप्ताह वह मौलाना के मकान पर रहे, फिर उन्हें मलकागंज रोड सब्जीमंडी में लाला रघुवीर सिंह की कोठी दिलकुशा में ले जाया गया। वहां उनका उपवास समाप्त हुआ। दिल्ली से वह सर्वदलीय कान्फ्रेंस में शरीक होने नवम्बर के तीसरे सप्ताह में बम्बई चले गए।

1925 इस वर्ष गांधीजी कांग्रेस के प्रेसीडेंट थे। उन्होंने इस वर्ष देश का दौरा किया और वह कई बार सर्वदलीय कान्फ्रेंस के सिलसले में दिल्ली आए। इन दिनों वह लाला रघुवीर सिंह जी की कोठी पर कश्मीरी दरवाजे ठहरते रहे।

1926 इस वर्ष गांधीजी करीब-करीब साबरमती आश्रम में ही रहे और जैसा कि कानपुर कांग्रेस के समय दिसम्बर 1925 में उन्होंने कहा था, उन्होंने एक वर्ष तक सियासत में कोई भाग नहीं लिया।

1927 मार्च मास में वह गुरुकुल कांगड़ी की रजत जयन्ती में शरीक होने हरिद्वार गए थे। वापसी पर उन्हें दिल्ली होकर साबरमती जाना था। चंद घंटों के लिये वह लेखक के मकान कटड़ा खुशहाल राय में ठहरे। इस मकान पर वह पहली बार 1924 के उपवास के पश्चात् नवम्बर में आए थे और फिर 8 मार्च 1931 के दिन आए। 7 अप्रैल को वह फिर एक बार अपने मन्त्री कृष्ण दास को देखने आए, जो बीमार पड़े थे। 10,11,12,14 दिसम्बर 1933 को गांधी जी इस मकान पर लेखक को देखने आते रहे। लेखक उन दिनों सख्त बीमार था। 27 अक्तूबर 1936 की 5 नवम्बर को उन्हें लार्ड इरविन से मिलने फिर एक बार दिल्ली आना पड़ा, उस वक्त वह डा० अन्सारी की दरियागंज की कोठी पर ठहरे थे। सुबह गांधीजी लेखक की माता को देखने इस घर पर आए थे। यह उनका इस मकान पर अन्तिम आगमन था।

1928 इस वर्ष सर्वदलीय कान्फ्रेंस की कई बैठकें दिल्ली में हुईं, जिनमें शरीक होने फरवरी, मार्च और मई में गांधीजी को दिल्ली आना पड़ा। तीनों बार वह चांदनी चौक, नटवों के कूचे में सेठ जमनालाल बजाज के मित्र सेठ लक्ष्मीनारायण गाडोदिया के मकान पर ऊपर की मंजिल में ठहरे।

1929 फरवरी महीने में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में शरीक होने गांधीजी जब दिल्ली आए तो वह विट्ठलभाई पटेल की कोठी नं० 20 अकबर

रोड नई दिल्ली पर ठहरे। विट्ठलभाई उन दिनों असेम्बली के अध्यक्ष थे। मार्च मास में बर्मा जाते समय थोड़ी देर के लिए वह हरिजन निवास में ठहरे थे।

5 जुलाई को कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में शरीक होने वह फिर दिल्ली आए और दो दिन कूचा नटवां में सेठ लक्ष्मीनारायण के घर ठहरे। 23 दिसम्बर को गांधीजी लार्ड इरविन से मिलने फिर एक बार दिल्ली आए। इस बार वह नं० 1 औरंगज़ेब रोड पर ठहरे।

1930 जनवरी के प्रथम सप्ताह में लाहौर कांग्रेस से लौटते समय गांधीजी जब साबरमती जा रहे थे तो एक दिन के लिए वह सेठ लक्ष्मीनारायण की गोशाला रामपुरा गांव में ठहरे थे।

इसी वर्ष गांधी जी ने नमक भंग का सत्याग्रह चलाया। 12 मार्च से डांडी यात्रा की और 6 अप्रैल को नमक कानून तोड़ा। 5 मई को वह कराडी में गिरफ्तार कर लिए गए। शेष सारा वर्ष वह जेल में रहे।

1931 गांधीजी 26 जनवरी को यरवदा जेल से रिहा हुए और 17 फरवरी को दिल्ली आए। इस बार वह डा० अन्सारी की कोठी पर ठहरे। 4 मार्च को गांधी-इरविन समझौता हुआ। 8 मार्च को वह दिल्ली से चले गए। 19 मार्च को वह कराची कांग्रेस में शरीक होने फिर दिल्ली आए और डा० अन्सारी की कोठी पर ही ठहरे। कराची से वापसी पर 2 अप्रैल को वह फिर दिल्ली आए और डा० अन्सारी के घर पर दरियागंज में ठहरे।

24 अप्रैल को लार्ड विलिंगडन से मिलने शिमले जाते हुए वह दिल्ली से गुजरे और दूसरे ही दिन वह गोल मेज़ कान्फ्रेंस में शरीक होने बम्बई के लिए रवाना हो गए, जहां से वह 29 अप्रैल को लंदन के लिए रवाना हुए। 28 दिसम्बर को वह विलायत से लौट कर आए और 31 दिसम्बर की रात को फिर से सत्याग्रह शुरू करने का प्रस्ताव पास कर दिया।

1932 गांधीजी 4 जनवरी की सुबह गिरफ्तार कर लिए गए और सारा वर्ष जेल में ही रहे।

1933 8 मई को गांधीजी जेल से रिहा किए गए। उन्होंने 21 दिन का उपवास शुरू कर दिया था।

10 दिसम्बर को गांधीजी हरिजन यात्रा के सिलसिले में दिल्ली आए। इस बार वह डा० अन्सारी की कोठी पर ठहरे। 14 दिसम्बर को वह यहां से लौट गए।

1934 अक्तूबर मास में जो कांग्रेस अधिवेशन बम्बई में हुआ था, उसमें गांधीजी कांग्रेस से अलग हो गए और उन्होंने चार आने की सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया। वह 29 दिसम्बर को दिल्ली आए और इस बार एक मास के लिए वह हरिजन निवास किंग्जवे कैम्प में ठहरे।

1935 2 जनवरी के दिन गांधीजी ने हरिजन निवास का शिलान्यास किया। 28 जनवरी को वह वर्धा चले गए।

1936 चौदह मास के पश्चात् 8 मार्च के दिन गांधीजी फिर दिल्ली आए और हरिजन निवास में ही ठहरे तथा 27 मार्च को कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में शरीक होने चले गए।

30 अप्रैल से गांधीजी सेवाग्राम में रहने चले गए, जिसका नाम पहले सेगांव था। 27 अक्तूबर को इलाहाबाद से वर्धा जाते समय दिन भर के लिए गांधीजी हरिजन निवास में ठहरे।

1937 4 अगस्त को गांधीजी लार्ड लिनलिथगो से मिलने फिर एक बार दिल्ली आए और हरिजन निवास में ठहरे।
मार्च मास में दिल्ली में आल इंडिया कन्वेंशन हुआ था जिसमें शरीक होने गांधीजी दिल्ली आए और 15 से 22 मार्च तक हरिजन निवास में ठहरे।

1938 मई में गांधीजी ने खान अब्दुल गफ्फार खां के साथ सरहदी सूबे की यात्रा की। वह आते जाते समय दिल्ली से गुजरे।

20 सितम्बर को वह दिल्ली आए और हरिजन निवास में ठहरे, जहां 25 सितम्बर को उन्होंने लेखक की माता श्रीमती जानकी देवी की स्मृति में एक मन्दिर का शिलान्यास किया। 4 अक्तूबर को वह सरहदी सूबे की यात्रा के लिए यहां से निकले, जो 9 नवम्बर को समाप्त हुई। वहां से वह सेवाग्राम चले गए।

1939 राजकोट के आमरणव्रत के पश्चात् गांधीजी 15 मार्च को दिल्ली आए और इस बार वह बिरला सदन में अबुकर्क रोड नई दिल्ली में ठहरे। 7 अप्रैल को वह राजकोट लौट गए।

इसी वर्ष 3 सितम्बर को दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया और गांधी जी को 4 और 25 सितम्बर को तथा 5 अक्तूबर को लार्ड लिनलिथगो से मिलने दिल्ली होकर शिमले जाना पड़ा। पहली नवम्बर को गांधीजी दिल्ली आए और बिरला भवन में ठहरे। दूसरी नवम्बर को उन्होंने जानकी देवी मंदिर का हरिजन निवास में जाकर उद्घाटन किया। जिसका 25 सितम्बर 1938 के दिन उन्होंने शिलान्यास किया था।

1940 5 फरवरी को वायसराय से मिलने गांधीजी फिर दिल्ली आए और बिरला भवन में ही ठहरे।

29 जून को वायसराय से मिलने शिमले जाते समय गांधी जी दिन भर के लिए दिल्ली में बिरला भवन में ठहरे। 30 जून को वह शिमले से लौट आए और इस बार वह 7 जुलाई तक राजपुर रोड नं० 32 पर डा० शौकतुल्लाह अन्सारी के साथ ठहरे। 26 सितम्बर को गांधीजी फिर से दिल्ली आए और दिन भर के लिए बिरला भवन में ठहरे। रात को वह वायसराय से मिलने शिमले चले गए, जहां से वह 1 अक्तूबर को लौट कर बिरला भवन में ठहरे और शाम को ही वर्धा चले गए।

1942-44 1942, मार्च की 11 तारीख को महायुद्ध की स्थिति बहुत भयंकर हो गई थी, ब्रिटिश मिशन की नियुक्ति हुई। 25 मार्च को स्टेफर्ड क्रिप्स दिल्ली आए और 27 को गांधीजी से मिले। गांधी जी 5 अप्रैल तक बिरला भवन में ठहरे।

8 अगस्त 1942 को बम्बई में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ और 9 अगस्त को वह बिरला हाउस बम्बई से गिरफ्तार कर लिए गए। उन्हें आगाखां महल पूना में रखा गया जहां से वह 6 मई 1944 को रिहा किए गए।

1945 गांधीजी सवा तीन वर्ष बाद 17 जुलाई की सुबह शिमले में लार्ड वेवल से मिल कर दिल्ली आए थे। वह इस बार भी दिन भर के लिये बिरला भवन में ठहरे और शाम को ही वर्धा लौट गए।

1946 गांधीजी ने निश्चय किया था कि भविष्य में वह भंगी कालोनी में ठहरा करेंगे। अब महायुद्ध समाप्त हो चुका था और इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी सत्ता पर आ गई थी, जिसने हिन्दुस्तान को स्वराज देने का फैसला कर लिया था और हिन्दुस्तान में इसकी तैयारी करने कबिनेट मिशन भेजा गया था। गांधीजी पहली अप्रैल के दिन बम्बई से

दिल्ली आए और निजामुद्दीन स्टेशन पर उतरे। इस बार उन्हें बाल्मीकि मन्दिर में उतारा गया, जो नई दिल्ली में रीडिंग रोड पर है।

बाल्मीकि मंन्दिर :—यह स्थान रीडिंग रोड के अन्त पर पंचकुइयां रोड की तरफ अन्दर जाकर भंगी कालोनी के साथ ही है। गांधीजी के कारण यह स्थान ऐतिहासिक बन गया है। सड़क जो नई दिल्ली की वर्कशाप के साथ-साथ अन्दर गई है, उस पर अन्दर जाकर बाएं हाथ घूमना होता है। वहां करीब 150 फुट लम्बे और 100 फुट चौड़े एक अहाते में चारदीवारी के अन्दर एक सहन है, जिसके बीच में बाल्मीकि ऋषि का मन्दिर है और मन्दिर के दाएं-बाएं दो कमरे बने हुए हैं। बाएं हाथ वाले कमरे में जो 15-20 फुट लम्बा और 10-12 फुट चौड़ा होगा और जिसके दो दरवाजे हैं, गांधीजी के ठहरने का प्रबन्ध किया गया था। साथियों के ठहरने के लिए डेरे लगाए गए थे। एक और कमरे में, जो सदर दरवाजे के साथ है, भोजनालय बनाया गया था। सहन के दाएं हाथ एक चबूतरे पर प्रार्थना का प्रबन्ध किया गया था, जो हर शाम के समय होती थी और उसके साथ वाले मैदान में हजारों नर-नारी जमा होते थे।

कैबिनेट मिशन में भारत सचिव श्री पैथिक लारेंस, सर स्टेफर्ड क्रिप्स और श्री ए० वी० एलेग्जेंडर आए थे।

गांधीजी पूरा अप्रैल मास यहां ठहरे। गर्मी का मौसम होने से वह पहली मई को शिमले चले गए। वहां से 27 मई को वह मसूरी गए, वहां 8 जून तक वह ठहरे और वहां से दिल्ली बाल्मीकि मन्दिर में लौट आए। वहां वह 28 जून तक ठहर कर पूना चले गए।

26 अगस्त को गांधीजी फिर दिल्ली आए और बाल्मीकि मन्दिर में ठहरे। 2 सितम्बर को भारत की अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार बनी, जिसमें श्री जवाहरलाल नेहरू प्रधान मन्त्री बनाए गए। उस दिन सोमवार का दिन था, गांधीजी का मौन दिवस। शपथ लेने से पूर्व राष्ट्रीय हुकूमत के मंत्री गांधीजी से आशीर्वाद लेने आए। गांधीजी ने कागज के एक टुकड़े पर लिख कर मन्त्रियों को चार बातें करने का आदेश दिया था : (1) नमक कर का अन्त करो; डांडी कूच को मत भूलो, (2) एकता प्राप्त करो। (3) छुआछूत को दूर करो (4) खादी सबको मिल सके, ऐसा प्रयत्न करो।

28 अक्तूबर को गांधीजी नोआखली जाने के लिए कलकत्ते के लिए रवाना हो गए।

1947-48 पांच मास बाद गांधीजी वायसराय लार्ड माउंटबैटन से मिलने और अन्तर-एशियाई कान्फ्रेंस में शरीक होने 31 मार्च को फिर से दिल्ली आए और बाल्मीकि मन्दिर में ठहरे। 12 अप्रैल को वह बिहार चले गए। 1 मई को उन्हें कांग्रेस कार्य समिति की बैठक में शरीक होने फिर से दिल्ली आना पड़ा। वह बाल्मीकि मन्दिर में ही ठहरे और 8 मई को कलकत्ते लौट गए।

25 मई को श्री जवाहर लाल के बुलावे पर गांधीजी को फिर दिल्ली आना पड़ा। वह बाल्मीकि मन्दिर में ही ठहरे। 5 जुलाई को वायसराय की पत्नी लेडी माउंटबेटन गांधीजी से मिलने बाल्मीकि मन्दिर में आईं। यह पहली वायसराय की पत्नी थीं, जो इस प्रकार आई थी। 30 जुलाई को गांधीजी कश्मीर गए, जहां से 6 अगस्त को वह लाहौर आए और यहां से सीधे कलकत्ता चले गए। बाल्मीकि मन्दिर में गांधीजी का यह अन्तिम बार ठहरना था। गांधीजी के बार-बार यहां ठहरने से उनकी सुविधा के लिए मंदिर के सामने चबूतरा बना दिया गया था। मन्दिर के दाएं-बाएं दो और कमरे सीमेंट की चादरों की छत के बना दिए गए थे। जिस चबूतरे पर गांधीजी प्रार्थना किया करते थे उसको अब संगमरमर का बना दिया गया है। यह अब गांधी स्मारक में शरीक है। इसकी सात सीढ़ियां हैं। चबूतरा दस फुट लम्बा, 6 फुट चौड़ा और पांच फुट ऊंचा है। जहां पास वाले मैदान में लोग बैठते थे उसमें भी घास लग गई है।

नौ सितम्बर को उन्हें कलकत्ते से दिल्ली लौटना पड़ा। दिल्ली में हिन्दू-मुस्लिम फिसाद की आग भड़की हुई थी और कर्फ्यू लगा हुआ था। बाल्मीकि मंदिर शर्णार्थियों से भरा पड़ा था। इसलिए गांधीजी को बिरला भवन में ठहाराया गया, जहां वह अपने देहावसान के अन्तिम दिन 30 जनवरी 1948 तक ठहरे रहे।

बिरला भवन :—नई दिल्ली में अल्बुकर्क रोड पर सेठ घनश्याम दास बिरला की यह कोठी है। अब उस सड़क का नाम '30 जनवरी मार्ग' हो गया है।

कोठी कई एकड़ जमीन पर बनी है, मुख्य द्वार से घुस कर बीच के भाग में मकान है। दो कक्षों के बीच एक छोटा सहन है। उसमें जो गैलरी अन्दर जाती है उसके साथ एक बड़े कमरे में गांधीजी के ठहरने का प्रबन्ध था। कमरे के बाहर की ओर एक और कमरा है और फिर खुला बाग। गांधीजी इसी कमरे में दीवार के साथ बैठा करते थे और उनके साथी पास वाले कमरे में। रात्रि को गांधीजी पास वाले कमरे में सोते थे।

कोठी के साथ पिछवाड़े की तरफ एक बहुत बड़ा लान है। उसमें एक बरसाती कमरा बना हुआ है। यहां बैठकर गांधीजी शाम के वक्त प्रार्थना किया करते थे। लोग खुले मैदान पर बैठते थे। 30 जनवरी की शाम के 5 बजकर 17 मिनट पर जब गांधीजी प्रार्थना करने लान पर से गुजर रहे थे तो गोडसे की गोली से उनका शरीरान्त हुआ।

इस लान को अब सारी कोठी से झाड़ियों द्वारा अलग कर दिया गया है और पुश्त की ओर से एक द्वार निकाल दिया गया है।

जहां गांधीजी का निधन हुआ, उस स्थान पर धौलपुर के सफेद पत्थर का एक चौकोर छः इंच ऊंचा चबूतरा बना कर उस पर चारों ओर कटहरा और बीच में पत्थर का तुलसी का एक गमला लगा दिया गया है। जिस बरसाती में गांधीजी बैठ कर प्रार्थना किया करते थे, उसकी दीवारों पर उनके जीवन की घटनाओं के रंगीन चित्र काढ़ दिए गए हैं।

हर 30 जनवरी को सुबह पांच बजे गांधी जी के निधन स्थान पर पर बैठकर प्रार्थना होती है और शाम के 5 बज कर 17 मिनट पर फिर प्रार्थना होती है, जो गांधीजी का सही निधन काल है।

जनवरी 1950 तक स्वतन्त्र भारत का दर्जा ब्रिटिश कामन वैल्थ में डोमिनियन का रहा। लार्ड माउंटबेटन को पहला गवर्नर-जनरल बनाया गया था। वह जून 1948 तक रहे। जुलाई 1948 से 25 जनवरी 1950 तक चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य गवर्नर जनरल रहे। 26 नवम्बर 1949 को स्वतन्त्र भारत का विधान बन कर तैयार हुआ और उसके अनुसार 26 जनवरी 1950 को भारत में गणतन्त्र राज्य स्थापित हो गया जिसके पहले राष्ट्रपति उस तारीख को डा० राजेन्द्र प्रसाद जी बने और श्री जवाहर लाल नेहरू प्रधान मन्त्री। इस अर्से में सभी देशी रियासतें गृह मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल के प्रयत्न से भारत में विलीन हो गई थीं। 1952 में हिन्दुस्तान में गणतन्त्र राज्य का पहला आम चुनाव हुआ। 13 मई, 1952 को श्री राजेन्द्र प्रसाद जी राष्ट्रपति चुने गए। श्री जवाहरलाल नेहरू प्रधान मन्त्री रहे। दूसरा आम चुनाव अप्रैल, 1957 में हुआ। उसके बाद भी 10 मई को श्री राजेन्द्र बाबू पुनः राष्ट्रपति बने और प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू रहे। तीसरा चुनाव फरवरी, 1962 में हुआ। उसके बाद प्रधान मन्त्री तो पंडित नेहरू ही रहे, मगर राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् को चुना गया। इस 12 वर्ष के अर्से में हिन्दुस्तान के कई नेता, जिन्होंने गांधीजी के साथ रहकर स्वराज्य प्राप्त किया था, चल बसे। सरदार वल्लभभाई पटेल मौलाना आजाद, रफी अहमद किदवई, दिल्ली के आसफ अली, पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त और 1 मार्च 1963 को बाब राजेन्द्र [प्रसाद हमसे बिछुड़ गए। ये सब ही पुराने नेताओं में से थे।

इन बारह-पन्द्रह वर्षों में दिल्ली में कई तब्दीलियां हो गईं। हुकूमत के लिहाज से पहले ग्राम चुनाव के समय दिल्ली में विधानसभा बनी थी मगर वह पांच वर्ष ही रही। बाद में उसे तोड़ कर यहां म्युनिसिपल कमेटी की जगह नगर निगम की स्थापना कर दी गई और चीफ कमिश्नर को यहां का प्रशासक बना दिया गया। नए मकानों के लिहाज से यहां की गंदी बस्तियों की ओर सरकार का ध्यान गया और प्रान्त के लिए एक मास्टर प्लान तैयार की गई। कई नये उपनगर बन कर तैयार हो गए। दिल्ली फैलने में तो दक्षिण में महरौली और तुगलकाबाद तक पहुंच गई है, पश्चिम में नजफगढ़ तक और पूर्व में सारा शाहदरा भी खूब बढ़ गया है। चारों ओर मकान और बस्तियां ही देखने को मिलेंगे। ग्रोखले पर एक इंडस्ट्रियल इस्टेट खोल दी गई। नजफगढ़ रोड पर और शाहदरा में कितने ही कारखाने लग गए और लगते जा रहे हैं। हजारों एकड़ नई जमीन को मकान बनाने के लिए दुरुस्त किया जा रहा है। कितनी ही नई सड़कें तैयार हो गई है। पालम का हवाई अड्डा भी बहुत बढ़ा दिया गया है और सफदर जंग का अड्डा साधारण काम के लिए रह गया है।

नई दिल्ली में लोक-सभा और राज्य-सभा के सदस्यों के लिए सैकड़ों नए मकान खड़े हो गए हैं। दक्षिणी और उत्तरी दोनों कक्षों में और मन्त्रालयों के लिए चार कक्ष नए बन गए है। कृषि भवन, उद्योग भवन, रेल भवन, और हवा भवन बन गए हैं; और भी दो भवन बनने वाले हैं। प्रधान मन्त्री तीन मूर्ति वाले उस मकान में रहते हैं, जहां अंग्रेजों का कमांडर-इन-चीफ रहा करता था। वह भी एक विशाल भवन है। छावनी का भी अब बहुत बिस्तार हो गया है।

नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी:—जब से नगर निगम बना, नई दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी का क्षेत्रफल काफी घट गया है। इसके चार गैर सरकारी नामजद सदस्य है और 6 सरकारी। कमेटी भवन पार्लियामेंट स्ट्रीट पर स्थित है।

आबादी के बढ़ने से सभी चीजें छोटी पड़ गई हैं। सड़कें चौड़ी की जा रही हैं, वाटर वर्क्स बढ़ाया जा रहा है। अब एक नया बिजली घर बन गया है। दो नए पुल यमुना पर बन रहे हैं और कई पुराने पुल चौड़े किए जा रहे हैं। इस तरह अस्पतालों को भी बढ़ाया जा रहा है। इरविन अस्पताल काफी बढ़ गया है, उसमें एक विंग पंडित पन्त के नाम से बना है तपेदिक का अस्पताल, जो किंग्जवे कैम्प में है, उसे भी बहुत बढ़ा दिया गया है और उसके अतिरिक्त एक दूसरा तपेदिक का अस्पताल अब महरौली में खुल गया है। सफदरजंग का जो अस्पताल पिछली लड़ाई में अमरीकियों ने फौजियों के लिए खोला था, वह अब जनता के लिए खुल गया है और उसका भी बहुत विस्तार हुआ है। उसके अतिरिक्त एक मेडिकल इंस्टीट्यूट खुल गया है। तीन बड़े अस्पताल गैर सरकारी हैं (1) सेन का नरसिंग होम, (2) तीरथ राम अस्पताल तथा (3) सर गंगाराम अस्पताल।

कई पार्क नए बन गए हैं। नई दिल्ली में लोदी बाग और तालकटोरा बाग तो पुराने हैं ही, अब राष्ट्रपति भवन में मुगल बाग और नई रिज पर बुद्ध जयन्ती पार्क खास देखने योग्य हैं।

दिल्ली में कई पौलीटैकनिक शिक्षण संस्थाएं भी हैं, जिनमें से एक ओखले में पंडित पन्त की स्मृति में बनी है और एक अरब की सराय में है। काश्मीरी दरवाजे पर तो एक पौलीटैकनिक है ही।

दिल्ली में कई फिजिकल लेबारेटरीज भी खुली हैं, जिनमें से एक नेशनल फिजिकल लेबारेटरी पूसा इंस्टीट्यूट में है।

नई दिल्ली का रेलवे स्टेशन बहुत छोटा था, जो पहाड़गंज के पुल के नीचे बना हुआ था। अब एक बहुत विशाल जंक्शन पहाड़गंज में बन गया है और दिल्ली का पुराना जंक्शन भी अब बहुत बढ़ गया है।

इसी प्रकार हर तरह से दिल्ली का विस्तार होता जा रहा है। सरकारी कर्मचारियों के लिए जो बस्तियां बनी हैं, उनमें से कई तो इतनी बड़ी हैं कि अपने आप में एक छोटा नगर बन गई हैं। विनय नगर, किदवई नगर, रामकृष्णपुरम, मोती बाग, लोदी कालोनी, सेवा नगर, आदि बस्तियों में तो हजारों की संख्या में कर्मचारी रहते हैं। अफसरों के लिए भी काका नगर कालोनी बनी है। और भी कालोनियां आए दिन बन ही रही हैं। इन सबका कहां तक जिक्र किया जाए। जो खास-खास स्थान हैं, उनका कुछ विवरण यहां दे देना काफी होगा।

चाणक्यपुरी:—स्वराज्य काल की दिल्ली यद्यपि पन्द्रह वर्ष से शुरू हुई है, मगर इस अर्से में ही यहां की शकल कुछ से कुछ हो गई है। जो सबसे बड़ी बात हुई है वह यह कि संसार भर के प्रमुख देशों के राजदूत अब दिल्ली में रहने लगे हैं। हर मुल्क का राजदूत है और उसका अपना दूतावास है। पहले तो उनमें से कुछ उन मकानों में रहते रहे, जो राजा लोगों ने अपने निवास के लिए बनवाए थे, मगर ये उनके लिये काफी न थे। चुनांचे नई दिल्ली में सरदार पटेल मार्ग पर कई सौ एकड़ के क्षेत्र में राजदूतों के लिए अलग ही बस्ती बसाई गई है, जिसका नाम चाणक्यपुरी है। इसमें अमरीका, रूस और इग्लैण्ड के दूतावास तो बहुत ही विशाल बने हैं। दूसरों ने भी अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार अच्छे दूतावास बनाए हैं।

सेक्रेटेरिएट के नए भवन:—भारत सरकार का काम ब्रिटिश काल की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ गया है। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने जो सेक्रेटेरिएट बनाया था, वह छोटा पड़ गया और उसको बढ़ाने के लिए राजपथ के दाएं-बाएं चार कक्ष और

बनवाए गए, जिनके नाम हैं कृषि भवन, उद्योग भवन, रेल भवन और हवा भवन। ये कई-कई मंजिला इमारतें हैं, जिनमें सैकड़ों कमरे हैं और हजारों लोग काम करते हैं।

योजना भवन:—इसी प्रकार योजना कमीशन के लिए भी पार्लियामेंट स्ट्रीट पर एक विशाल भवन बना है, जिसका नाम योजना भवन है। यह इमारत भी कई मंजिला है और इसमें सैकड़ों कमरे हैं। यहां भी कई सौ कर्मचारी काम करते हैं।

विज्ञान भवन:—नई दिल्ली में ऐसा कोई भवन नहीं था, जहां हजार दो हजार आदमियों की सभा हो सके। इस कमी को पूरा करने के लिए मौलाना आजाद मार्ग पर कई लाख की लागत से एक विशाल भवन का निर्माण किया गया, जिसमें एक साथ कई हजार आदमी आराम से बैठ सकते हैं। यह इमारत कई मंजिला है और इसमें कितने ही कमेटी रूम हैं। इसका द्वार बुद्ध विहार की तर्ज का बनाया गया है। असल में यह यूनेस्को की कान्फ्रेंस के लिए बना था।

सप्रू हाउस:—बारह खम्भा रोड पर सर तेज बहादुर की याद में यह इमारत अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की भारतीय परिषद ने बनाई है। इसी सड़क पर एक संगीत भवन और एक अकादमी भवन भी बनाया गया है।

दिल्ली की दीवानी अदालत:—दिल्ली की अदालतें अंग्रेजों के जमाने में कश्मीरी दरवाजे फसील के साथ वाली इमारतों में लगा करती थीं। फिर वे हिन्दू कालेज की इमारत में चली गई थीं। मगर यहां काम इतना बढ़ गया था कि एक बड़ी जगह की जरूरत महसूस की जाने लगी। इसको पूरा करने के लिए तीस हजारी में दिल्ली की कचहरियों का शिलान्यास उस वक्त के गृहमन्त्री डा० कैलाशनाथ काटजू ने किया और दो वर्ष में यह पांच मंजिला इमारत बन कर तैयार हुई। इस पर करीब एक करोड़ की लागत आई है। आजकल दीवानी अदालतें तथा फौजदारी अदालतों के भी कई विभाग इस इमारत में काम करते हैं। और भी कई सरकारी विभाग इस में आ गए हैं।

सरकिट कोर्ट:—दिल्ली का हाई कोर्ट पहले पंजाब में हुआ करता था। यह अब भी वहां ही है, लेकिन दिल्ली में काम बहुत बढ़ गया है, इस लिए दिल्ली में सरकिट कोर्ट खोल दिया गया है, जो आजकल राजपुर रोड की कोठी नं० 17 में लगता है।

सुप्रीम कोर्ट:—यह भारत का उच्च न्यायालय है। 1950 में यह कायम हुआ। प्राथमिक अवस्था में यह लोक-सभा के एक कक्ष में कायम किया गया था। 1955 में मथुरा रोड पर पर तिलक ब्रिज के पास इसकी इमारत बननी शुरू हुई, जिसका उद्घाटन 15 अगस्त, 1958 को राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद ने किया। यह इमारत लाल पत्थर की दो मंजिला बनी है। इसकी शकल कांटे के पलड़ों जैसी है। इसको

बनने में चार वर्ष लगे और 99 लाख रुपया इस पर खर्च आया । इमारत बड़ी शानदार बनी है । साथ में एक छोटा-सा पार्क भी है ।

बाल भवन:—कोटला रोड पर आजाद मेडिकल कालेज के पीछे एक बड़े अहाते में यह बच्चों के खेल-कूद के लिए भवन बनाया गया है । इसमें बच्चों की आधा मील लम्बी रेल भी है, जिसके स्टेशन का नाम खेल गांव है । रेल का टिकट 15 नए पैसे है । सारा प्रबंध बच्चे ही करते हैं ।

बच्चों का पार्क:—इंडिया गेट के पास जो बहुत बड़ा खुला मैदान पड़ा है, उसके एक भाग में बच्चों के खेल-कूद के लिए जापानी तर्ज का यह पार्क बनाया गया है ।

अशोक होटल तथा जनपथ होटल:—दिल्ली में बाहर से आने वालों के लिए ठहरने को कोई अच्छा होटल नहीं था । चुनांचे सरकार ने दो विशाल होटल बनाए हैं । चाणक्यपुरी में अशोक होटल और जनपथ पर जनपथ होटल खोले गए हैं अशोक होटल तो पूरा महल ही है ।

चिड़िया घर:—दिल्ली में यों तो बहुत सी चीजें देखने को थीं, मगर यहां चिड़िया घर नहीं था । इस कमी को पूरा करने के लिए पुराने किले के साथ 250 एकड़ जमीन के टुकड़े पर एक बड़ा चिड़िया घर खोला गया है, जिसमें देश-विदेश के, भांति-भांति के पशु-पक्षी लाकर रखे गए हैं । एक हजार से ऊपर पशु यहां रखे गए हैं । शेर, हाथी, घोड़े, ऊंट, रीछ, बघेरे, नीलगाय, आदि और करीब दो सौ प्रकार के पक्षी हैं । पुराने किले की इमारत को भी इसी काम में लाया जा रहा है । जहां भारत, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका, आदि देशों के पशु-पक्षी देखने को मिलेंगे । चार एकड़ जमीन में एक झील बनाई गई है । यहां तरह तरह के वृक्ष भी लगाए गए हैं ।

अजायब घर:—दिल्ली में चिड़िया घर की तरह एक अच्छे अजायब घर की भी जरूरत थी । वैसे तो अगस्त 1949 में राष्ट्रपति भवन के बाहर के बड़े कमरे में इसकी स्थापना कर दी गई थी, मगर इसके अपने भवन का शिलान्यास 12 मई 1955 को श्री जवाहरलाल नेहरू ने जनपथ मार्ग पर किया । इसका उद्‌घाटन 19 दिसम्बर 1960 को हुआ । यह धौलपुर के पत्थर की एक विशाल इमारत है । इसमें एक आडीटोरियम है, पुस्तकालय है, प्रदर्शनी की गैलरी है, जिसमें सिक्के, हस्तलिखित पुस्तकें, शस्त्र, सजाने की चीजें, जवाहरात, गहने, कपड़े, लकड़ी और हाथी दांत का सामान, धातु और संख का सामान तथा अन्य अनेक वस्तुएं रखी हुई हैं ।

आजाद कालेज:—दिल्ली में एक मेडिकल कालेज की भी बड़ी जरूरत थी । चुनांचे मौलाना आजाद की स्मृति में इस कालेज की स्थापना हुई । दिल्ली दरवाजे के बाहर, जहां पहले जेलखाना हुआ करता था, उसको तोड़ कर इस कालेज की इमारत बनाई गई है ।

M67DPD|63

इंजीनियरिंग कालेजः—यह दिल्ली का पहला इंजीनियरिंग कालेज है, जिसकी यहां बड़ी जरूरत थी। महरौली जाते हुए वहां से करीब दो मील इधर बाएं हाथ को यह बनाया जा रहा है। मलका एलिजाबिथ के पति प्रिंस फिलिप ने अपनी भारत यात्रा के समय इसका उद्‌घाटन किया था

बुद्ध जयन्ती पार्कः—ऊपर रिज रोड पर शंकर रोड के रास्ते से दो मील के फासले पर सत्तर एकड़ जमीन पर जून 1959 में बुद्ध जयन्ती के अवसर पर यह पार्क बनाया गया है। इसमें तरह-तरह के वृक्ष और फूलों के पौधे लगाए गए हैं। 2300 फुट लम्बी और 20 फुट चौड़ी एक नहर बनाई गई है। इसमें 6 झरने हैं और 100 फुट का दस फुट गहरा एक हौज है।

तिहाड़ जेलः—दिल्ली गेट पर जो जेल थी, उसे वहां से हटा कर तिहाड में एक आधुनिक नमूने की यह जेल बनाई गई है।

दुग्ध कालोनी :—दिल्ली की 27 लाख की आबादी के लिए अच्छे दूध का मिलना बहुत कठिन हो गया था। सरकार ने बम्बई के नमूने पर यहां 7000 मन रोजाना दुग्ध के वितरण के लिए एक कालोनी बनाई है, जिसका प्लांट हालैण्ड सरकार ने दिया है। यह पटेल नगर में बनाई गई है। इसमें अभी पशु नहीं रखे गए हैं। केवल दूध का प्रबंध है, जिसके लिए शहर के विभिन्न भागों में बूथ खोल दि गए हैं।

ओखला इंडस्ट्रियल इस्टेटः—ओखला स्टेशन के पास ही सैकड़ों एकड़ जमीन को सरकार ने लेकर यहां इंडस्ट्रियल इस्टेट कायम की है।

प्रदर्शनी स्थानः—दिल्ली में आए वर्ष प्रदर्शनी होती रहती है, जिसमें संसार भर के मुल्क शरीक होते हैं। सरकार ने एक बहुत बड़ा मैदान इसी काम के लिए अलहदा रख दिया है, जो तिलक ब्रिज के पास मथुरा रोड पर पुराने किले से मिला हुआ है। प्रायः हर वर्ष यहां प्रदर्शनी लगती रहती है।

नेताओं के बुतः—जब अंग्रेजी शासन था तो नई दिल्ली में कई बुत लगाए गए, जिनमें इंडिया गेट पर जार्ज पंजम का संगमरमर का सबसे बड़ा बुत है और कई बुत गवर्नर जनरलों के लगाए गए, मगर आजादी के बाद इन बुतों का महत्व खत्म हो गया। अब तो भारत के नेताओं के बुत लगाए जा रहे हैं। तिलक ब्रिज के पास एक घे` में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की मूर्ति स्थापित की गई है, दिल्ली दरवाजे और अजमेरी दरवाजे के बाहर दिल्ली के दो नेताओं आसफ अली साहब और देशबन्धु गुप्ता की खड़ी मूर्तियां लगाई गई हैं। और मई 1963 में लोक-सभा भवन के बाहर के बगीचे में पंडित मोतीलाल नेहरू की खड़ी मूर्ति स्थापित की गई है। पार्लियामेंट स्ट्रीट और अशोक रोड के चौराहे पर सरदार पटेल की खड़ी मूर्ति स्थापित की गई है।

इण्डिया इण्टर नेशनल केन्द्र : यह केन्द्र लोदी स्टेट में स्थित है। यह पांच एकड़ जमीन पर बनाया गया है और इस पर पचपन लाख रुपए की लागत आई है। रुपया अमरीका के रोक फैलर फण्ड से तथा पब्लिक से जमा किया गया था। इसका शिलान्यास 30-11-60 के दिन जापान के युवराज ने किया था और 22-1-62 के दिन राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन जी ने इसका उद्घाटन किया था। इसमें अन्तर राष्ट्रीय देशों से जो लोग भारत में अध्ययन करने आते हैं वह ठहरते हैं। इमारत निहायत खूबसूरत बनी हुई है। इसमें मेहमानों के ठहरने के कमरों के अतिरिक्त एक ऑडोटोरियम, कांफ्रेंस रूम और एक पुस्तकालय है। इसका प्रबन्ध एक गैर सरकारी समिति द्वारा किया जाता है।

लद्दाख बुद्ध बिहार :—इसका उद्घाटन 1963 में प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने किया था। यह बौद्ध बिहार कुदसिया घाट पर जमुना के किनारे करीब एक एकड़ जमीन पर बना है। रिंग रोड से प्रवेश द्वार पर जाते हैं, जिसका नमूना सांची स्तूप का है। द्वार के दाएं बाएं कोनों पर एक-एक कमरा बना है और उत्तर पश्चिम में दो मंजिला इमारत है, जिसमें ऊपर और नीचे साधुओं के और अतिथियों के ठहरने को कमरे बने हुए हैं। कमरों के सामने चौड़ा बरांडा है। पूर्व की ओर बीच में बुद्ध भगवान का मन्दिर है। पत्थर की आठ सीढ़ियां चढ़ कर मन्दिर के द्वार में प्रवेश करते हैं। भवन के दो भाग हैं, बाहरी भाग बैठने को है, जिसके उत्तर पश्चिम में द्वार है और फर्श संगमरमर का है। छतें सब जगह खपरैल की हैं। भवन के अन्दर के भाग में भगवान बुद्ध की पीतल की मूर्ति है। बीचों बीच संगमरमर का एक चबूतरा है, जिस पर काठ का एक सुन्दर मण्डप बना है और उसमें भगवान बुद्ध की पीतल की मूर्ति है। दो और मूर्तियां दाएं बाएं खड़ी हैं। मन्दिर में रोज पूजा होती है। मन्दिर के सामने बीच में खुला सहन है, जिसमें घास लगी है। इस मन्दिर को पण्डित जी के परामर्श से लद्दाख के बौद्ध भिक्षुओं के लिए बनवाया गया है।

दिल्ली दिनों दिन फैलती जाती है। यहां हर वर्ष सैकड़ों हजारों इमारतें नई बनती जाती हैं। सबका वर्णन करना कठिन ही नहीं, असम्भव सा प्रतीत होता है। इसलिए अब इतना ही बस है। हां स्वराज्य काल की दो घटनाएं ऐसी हैं, जो इतिहास के पन्नों में अमर कहानी बनकर सदा गूंजती रहेंगी। एक है 30 जनवरी 1948 के दिन गांधी जी का अपूर्व बलिदान, जिसकी स्मृति में राजघाट पर उनकी समाधि बनी और दूसरी है नेहरू जी का 17 वर्ष तक भारत का प्रधान मन्त्री रह कर 27 मई 1964 के दिन देह विसर्जन करना। उनकी स्मृति है शान्ति-वन।

शान्ति वन :

इस पुस्तक के छपते छपते इसमें देश के प्यारे, प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू का स्मारक विवरण शामिल करना पड़ रहा है, जिनका देहावसान 27 मई 1964 बुधवार के दिन एक बज कर पचपन मिनट पर तीनमूर्ति मार्ग पर प्रधान मन्त्री भवन में हुआ और उनके शव को 28 मई की दोपहर बाद बड़े समारोह के साथ गांधी जी की समाधि से करीब आधा मील उत्तर में एक बड़े मैदान में ले जाया गया। चिता के लिए पांच फुट ऊंचा इंटों का चबूतरा बनाया गया था, जिस पर 4-35 पर उनके पार्थिव शरीर को उनके दौहित्र संजय ने अग्नि माता की गोद में समर्पण कर दिया। जीवन भर वह चक्रवर्ती महाराज अशोक की तरह प्रेम और शान्ति का उपदेश देते रहे। इसीलिए इस स्थान का नाम शान्ति-वन रखा गया है। यहां पण्डित जी की समाधि के चारों ओर घना बन होगा, जो हमारे पूर्व कालीन खाण्डव वन और वृन्दावन की याद दिलाया करेगा और वहां हिरण निर्भय होकर कलोलें किया करेंगे और पक्षी उस महान पुरुष की अमर गाथा का गायन किया करेंगे। आइए हम भी इस शान्ति पाठ को बोल कर उनका स्मरण ताजा रखें।

> द्यौ : शान्तिरन्तरिक्ष ऀ शान्ति :
> पृथिवीशान्तिराप : शान्ति रोषधय :
> शान्ति र्वनस्पतय : शान्तिर्विश्वेदेवा
> शान्तिर्ब्रह्म शान्ति :, सर्वं शान्ति : शान्तिरेव शान्ति :
> सामा शान्ति रेधि ॥ ओम् शान्ति : शान्ति : शान्ति :

6—अठारह दिल्लियों की प्रदक्षिणा

पाठक गण ! "दिल्ली की खोज" नाम की यह संक्षिप्त कहानी पढ़ कर आपका मन इस बात के लिए अवश्य लालायित हो उठा होगा कि जिस भूखंड ने अपने शासकों को कभी सुख चैन की नींद सोने न दिया, बनना और बिगड़ जाना जिसका स्वभाव रहा है और जिस ने एक बार नहीं अठारह बार सल्तनतों के उतार-चढ़ाव देखे हैं, ऐसे भूखंड की एक बार प्रदक्षिणा जरूर करनी चाहिए। किसी जमाने में दिल्ली की बाकायदा फेरी लगा करती थी और उसका एक इन्दरपत महात्मा भी बना हुआ था। आप भी चाहें तो अपनी फेरी लाल किले से शुरू कर दें, जो दिल्ली का केन्द्र गिना जाता है। पहले शहर की चारदीवारी के अन्दर-अन्दर घूम लें, बाद में शहर के बाहर निकल कर चारों दिशाओं का भ्रमण कर लें, यकीन है आपकी यह खोज खाली न जाएगी, और इन सैंकड़ों नए-पुराने खंडहरात को देखकर गत पांच हजार वर्षों का इतिहास आपकी आंखों के सामने घूम जाएगा।

लालकिले का झंडा चौक : लालकिला चांदनी चौक के पूर्वी सिरे पर स्थित है, जिसमें प्रवेश करने के लिए सबसे पहले उस झंडा चौक में जाना होता है, जो किले के पैरापिट (धोवस) के सामने पड़ता है और जिस पर खड़े होकर हर वर्ष 15 अगस्त को भारत के प्रधान मन्त्री प्रात: आठ बजे 31 तोपों की सलामी के साथ राष्ट्र ध्वजा का आरोहण करते हैं। उस दिन हजारों नर-नारी राष्ट्र गान गा कर उसका अभिवादन करते हैं। चौक से किले में जाने के लिए लाहौरी दरवाजे से प्रवेश करना होता है। अन्दर जाने के लिए टिकट लगता है। किले में निम्न स्थान देखने को मिलेंगे।

1. लाहौरी दरवाजा 2. छत्ता 3. नक्कारखाना 4. दीवाने आम 5. सिंहासन का स्थान 6. दीवाने खास 7. मुसम्मन बुर्ज 8. नहर बहिश्त 9. तस्वीरखाना या शयनगृह या बड़ी बैठक 10. बाग हयात बख्श 11. महताब बाग 12. हीरा महल 13. मोती महल 14. रंग महल 15. मोती मस्जिद 16. हम्माम 17. सावन-भादों 18. शाह बुर्ज 19. असद बुर्ज 20. मुमताज महल 21. छोटी बैठक 22. दरिया महल 23. जल महल 24. संगमरमर का हौज 25. दिल्ली दरवाजा 26. हतिया-पोल दरवाजा 27. बावली 28. बहादुरशाह की मस्जिद 29. खिजरी दरवाजा 30. सलीमगढ़ दरवाजा 31. बदररों दरवाजा।

इनमें से कितनी जगह के तो नाम ही रह गए हैं, जो बाकी हैं वे देखने को मिल जाएंगे। देखने के स्थान इस प्रकार हैं :—

लाहौरी दरवाजे में प्रवेश करके दाएं हाथ झंडा लहराने का स्थान है। पैरेपिट पर जाने के लिए सीढ़ियां हैं। बाएं हाथ किले का दरवाजा है। शाहजहां ने दरवाजे के आगे की ओट नहीं बनवाई थी, वह औरंगजेब ने बनवाई। सदर फाटक में प्रवेश करके छत्ता आता है, जिसमें दोनों ओर दुकानें हैं। उसे पार करके खुला मैदान है, जिसके दोतरफा इमारतें बनी हुई हैं। अब यहां फौजी रहते हैं। सामने की ओर नक्कारखाने या नौबतखाने की इमारत है। यहां से ही किले की इमारतें शुरू होती हैं, नौबतखाने को पार करके फिर खुला मैदान आता है, जिसके पूर्व की ओर सामने ही दीवाने आम की आलीशान इमारत है। बीच में सिंहासन स्थान है, जहां बादशाह बैठता था। नीचे वजीर का तख्त स्थान है। दीवाने आम की पुश्त पर फिर खुला मैदान है। सामने की ओर यमुना की तरफ इमारतों का सिलसिला है। सबसे पहले दक्षिण के कोने में मुमताज महल की इमारत है, जिसमें अजायब घर है। उसके बाद खाली स्थान छोड़ कर दीवाने आम के पूर्व में रंग महल या इम्तियाज महल की बड़ी इमारत है, जिसमें नहर बहिश्त का स्थान भी दिखाई देता है इसके एक भाग को शीश महल भी कहते हैं। इसके उत्तर में फिर खुला स्थान है और उसके बाद मुसम्मन बुर्ज की इमारत है, जिसके विभिन्न भागों के भिन्न-भिन्न नाम, जैसे खास महल, तस्बीहखाना, बड़ी बैठक शयन-गृह, आदि, फिर खुला सहन है और उसके बाद दीवाने खास। उसी में तख्त ताऊस का स्थान भी है। दीवाने खास के बाद हम्माम की इमारत आती है, फिर शाह बुर्ज। इधर की बीच की इमारतें गदर के बाद तोड़ दी गई थीं। अब दक्षिण-पश्चिम से शुरू करें तो सावन की इमारत फिर जलमहल और फिर भादों की इमारत आ जाती है। रंगमहल के मैदान में संगमरमर का एक हौज रखा हुआ है। हयात बख्श बाग, महताब बाग यह सब स्थान अब नाबूद हो चुके हैं।

लाल किले से बाहर निकल कर उत्तर की ओर एक पैदल का रास्ता यमुना नदी को गया है, जिस पर आगे जाकर माधोदास की बगीची पड़ती है। इसका जिक्र मुस्लिम काल में आया है। अब सुभाष मार्ग की सड़क से चलें तो बाएं हाथ पर पहले लाजपतराय मार्केट है। 1857 के गदर से पहले यह उर्दू बाजार कहलाता था। यहां डाकखाना हुआ करता था, गदर के बाद बाजार साफ करके मैदान बना दिया गया। इस जगह जो कुआं है, उसका नाम पत्थर वाला है। उसका पानी शहर में पीने के लिए जाया करता है। 1918 में कांग्रेस अधिवेशन इसी मैदान में हुआ था।

मार्केट से आगे चलकर पनचक्की की ढलान आती है। पुराने जमाने में जब नहर चला करती थी तो इसी रास्ते होकर वह किले में जाया करती थी और यहां आटा पीसने की पनचक्कियां लगी हुई थीं। उसी पर से पनचक्की की ढलान नाम पड़ गया। यहां बाएं हाथ पर 'रोमन कैथलिक चर्च है, और दाएं हाथ पर फौज की भर्ती का कार्यालय है।

ढलान उतर कर, चौराहा आता है और फिर रेलवे के पुल की महराब, जिसका नाम लोथियन ब्रिज है। चौराहे से बाएं हाथ की सड़क कम्पनी बाग और रेलवे जंक्शन होती हुई, नहर सआदत खां के सामने से काबुली दरवाजे को चली गई है। इस पर दाएं हाथ की ओर रेलवे लाइन है और बाएं हाथ सेंटमेरी कैथोलिक चर्च है, मोर सराय जहां अब रेलवे क्वाटर हैं, कम्पनी बाग, उसके सामने की ओर रेल का बड़ा स्टेशन है। फिर आगे जा कर बाएं हाथ क्लाथ मार्केट, सआदत खां नहर, जहां अब सिनेमा और दूसरे मकान बन गए हैं, आते हैं। बाएं हाथ की सड़क कलकत्ती दरवाजे को, जो अब टूट चुका है, गई है और सलीमगढ़ होती हुई यमुना के पुल को चली गई है। यमुना के किनारे किसी जमाने में इधर पक्के घाट हुआ करते थे। अब तो हनुमान मन्दिर के पास निगम बोध दरवाजे के बाहर एक पुराना घाट देखने में आता है, जिसका जिक्र हिन्दू काल में आ चुका है। सब घाट जो निगम बोध घाट और कलकत्ती दरवाजे के बीच में बने हुए थे, डिप्टी कमिश्नर बीडन के जमाने में तोड़ दिए गए थे और बेला रोड, जो लाल किले की तरफ से आ रही है, निकाल दी गई थी। अब वह रिंग रोड बन गई है। जो सड़क यमुना के पुल को गई है उसके बाएं हाथ नीचे की ओर नीली छतरी का मन्दिर दिखाई देता है। इसका जिक्र भी हिन्दू काल में आ चुका है। पुल द्वारा यमुना पार करके सड़क शाहदरे को चली गई है।

लोथियन ब्रिज की महराब पार करके दाएं हाथ एक पैदल का रास्ता निगम बोध दरवाजे को गया है, जिसके सिरे पर अंग्रेजों का सबसे पुराना कब्रिस्तान है। यह 1885 ई० में छोड़ दिया गया। इसमें सबसे पुरानी कब्र 1808 की है। नया कब्रिस्तान कश्मीरी दरवाजे के बाहर तिलक पार्क के सामने बना दिया गया था। यहां से सीधी सड़क कश्मीरी दरवाजे के बड़े डाकखाने को चली गई है, जिसके सामने के हिस्से में वह मुकाम है, जहां 1857 में अंग्रेजों का बारूद का घर हुआ करता था।

मैगजीन

इसे लार्ड लेक ने बनवाया था। यह शहर की फसील तक बना हुआ था। यहां गोला बारूद का बड़ा गोदाम था, जो उत्तरी हिन्द में सबसे बड़ा था। सर चार्ल्स नेपियर ने, जो उस वक्त कमाण्डर-इन-चीफ था, इतनी अधिक सामग्री एक ही स्थान में जमा करने का बहुत विरोध किया था और इसी कारण यहां से बारूद और कारतूस का एक बड़ा भाग पहाड़ी वाले मैगजीन पर ले गए थे, जहां अब डाकघर बन गया है। वहां असलाखाना था, उसके पास ही बारूद का कोठा था और उस मैदान में, जहां तारघर था तोपें रखी जाती थीं। इसके पीछे दो छोटे मैगजीन और थे। अंग्रेज रक्षकों ने इस मैगजीन को आग लगा कर उड़ा दिया था और खुद उसमें मर गए थे। जो दो दरवाजे यादगार के बने हुए हैं और जिन पर तोपें रखी हैं

वहां वर्कशाप थी। मैगजीन उड़ने में नौ अंग्रेज काम आए। यह भी 11 मई को ही उड़ाया गया था।

तार घर

यहां से आगे बढ़कर बाएं हाथ को जो सड़क गई है, वह केला घाट का रास्ता था। यह दरवाजा अब नहीं है। इस मार्ग से जाने से रिंग रोड मिलती है, जिस पर सामने ही श्मशान भूमि है और दाएं हाथ घूम कर फसील के साथ हनुमान मन्दिर है। यह हिन्दू काल का माना जाता है। फसील में निगम बोध का दरवाजा है। मार्ग से दाएं हाथ एक घास लगे चबूतरे पर पत्थर का एक स्तून खड़ा है। यह स्थान दिल्ली का कदीम डाक बंगला था और उसी में तार घर था। 1857 के गदर में वह तार घर नहीं रहा। 11 मई 1857 को यहां दो तार भेजने वाले मारे गए थे। वह अम्बाले तार भेज रहे थे। 11 मई को यह तार भेजा गया था—"हमें दफ्तर छोड़ना जरूरी है। मेरठ के सिपाही सारे बंगले जला रहे हैं। यह लोग आज सुबह यहां पहुंचे। हम जा रहे हैं। आज घण्टी न बजाना। हमारा ख्याल है कि सी०टाड मर गया है। वह आज सुबह बाहर गया था। अभी तक वापस नहीं लौटा। हमने सुना है कि नौ अंग्रेज मारे गए। अच्छा रुखसत।" इसी तार पर पंजाब से मदद आई थी।

पुस्तकालय दाराशिकोह

यहां से आगे बढ़ कर बाएं हाथ का मार्ग हैमिलटन रोड को जाता है, जो रेल के साथ-साथ जाकर मोरी दरवाजे के डफरन ब्रिज पर जा मिला है और सीधा कश्मीरी दरवाजे को पहुंचता है, जिसके दाएं हाथ पौलीटैकनिक स्कूल की इमारत आती है। यहां शाहजहां के वक्त में उसके बड़े लड़के दाराशिकोह का खास पुस्तकालय 1637 ई० में था। 1639 ई० में इस मकान में अली मरदान खां रहा, जो पंजाब का सूबेदार था। जब 1803 ई० में दिल्ली पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया, तो यह स्थान अंग्रेजों की रेजीडेंसी बन गया। इसमें डेविड अक्तर लोनी रहता था। 1804 से 1877 ई० तक, इसमें गवर्नमेंट कालेज था। 1877 से 1886 तक यह जिला मदरसा रहा, 1886 से 1904 तक इसमें म्युनिसिपल बोर्ड स्कूल रहा, बाद में यहां गवर्नमेंट स्कूल रहा।

यहां से आगे सड़क के दाएं हाथ सेंट स्टीफेन कालेज का बोर्डिंग हाउस था और दाहिने हाथ कालेज की इमारत। पहले जो कालेज था, उसकी इमारत 1877 में तोड़ दी गई थी। यह कालेज 1890 ई० में कायम हुआ। पहले अलनट पादरी ने इसे बनवाया। फिर सी० एफ० एन्ड्रुज साहब, फिर रुद्रा साहब प्रिंसिपल रहे। इस कालेज की दाएं हाथ की दो मंजिला इमारत में, जो सड़क के साथ है, रुद्रा साहब रहा करते थे। उस जमाने में 1915 से 1921 ई० तक ऊपर के कमरे में रुद्रा साहब के साथ महात्मा गांधी ठहरते रहे। अब यह कालेज दिल्ली विश्व विद्यालय में चला गया है। यहां पोलीटैकनीक स्कूल है।

यहां से आगे बढ़ कर एक तिराहा आता है। दाएं हाथ, सेंट जेम्ज गिरजे की बड़ी इमारत है, जिसका जिक्र मुगल काल में दिया गया है। बाएं हाथ, एक खिबाड़ा है, जिसका नाम ग्रेसिया पार्क है।

गिरजे के पीछे फसील के साथ मकान सवा-डेढ़ सौ बरस के बने हुए हैं। पुरानी कचहरी के साथ वाला मकान 1845 ई० में स्मिथ का मकान कहलाता था। इसमें डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का दफ्तर था। इस मकान में कई तहखाने हैं। सेंट जेम्ज के चर्च के पास दिल्ली गजट की इमारत थी, जिसमें दिल्ली गजट अखबार छपता था। यहीं से 'इंडियन पंच' भी निकलता था। इस मकान के सामने जो खुला हुआ मैदान था, वह रेजिडेंसी का बाग था। बाद में यहां गवर्नमेंट कालेज और फिर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड स्कूल बना, अब पोलीटैकनीक स्कूल है। कश्मीरी दरवाजे से मिला हुआ निकलसन रोड के साथ जो मकान है, उसमें बंगाल बैंक हुआ करता था। यहां सेंट स्टीफेन कालेज था और उसके पीछे अहमद अली खां का मकान था। कश्मीरी दरवाजे की उत्तरी और पूर्वी फसील के साथ वाले हिस्से में दिवानी अदालत हुआ करती थी। वहां अब रजिस्ट्रार का दफ्तर और पुलिस तथा फौज के दफ्तर हैं।

कश्मीरी दरवाजा

यह शहर का उत्तरी दरवाजा है। यह शाहजहां के वक्त का बना हुआ है। इतिहास में इस दरवाजे का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि 1857 के गदर में 14 सितम्बर की सुबह अंग्रेजों ने इस दरवाजे के बाहर से शहर पर हमला किया था। उस जमाने में चारदीवारी के साथ खाई थी और दरवाजे के अन्दर जाने के लिए काठ का पुल था। गदर के वक्त शहर के दरवाजे बंद कर दिए गए थे। दरवाजों में काठ के किवाड़ चढ़े हुए थे। फसीलों पर तोपें चढ़ा दी गई थीं और शहर की रक्षा के लिए हिन्दुस्तानी सिपाही मुस्तैदी से काम कर रहे थे। शहर के अन्दर बहादुरशाह का राज्य था। अंग्रेज गदर को दमन करने के लिए सर-तोड़ कोशिश कर रहे थे। युद्ध छिड़े चार महीने हो चुके थे। अब तक अंग्रेजों को हर मुकाम पर मुंह की खानी पड़ी थी। 14 सितम्बर 1857 का प्रातःकाल था। अंग्रेजों की तोपों के गोले चारदीवारी को उड़ाने के लिए बरसने लगे और ऊपर दीवारों पर से आजाद हिन्दी सिपाहियों की गोलियां अंग्रेजी फौज को अपना शिकार बनाने लगीं। गोलों के दाग अभी तक दीवारों पर दिखाई देंगे। भारी युद्ध हुआ। अंग्रेज सेना आगे बढ़ आई और उसने बारूद लगा कर दरवाजा उड़ा दिया और अन्दर घुस आए। गदर की कहानी अब लिखी जा रही है। अंग्रेजों ने इसे बगावत कह कर पुकारा है। मगर यह बगावत नहीं थी, बल्कि देश को स्वतन्त्र करने की पहली जंग थी, जो नब्बे वर्ष तक किसी-न-किसी रूप में चलती रही और अन्त में महात्मा गांधी के नेतृत्व में पूर्ण रूप से सफल हुई। डेढ़ सौ वर्षों की अंग्रेजों की गुलामी से दिल्ली और देश आजाद हुआ।

बाहर की ओर दोनों दरवाज़ों के बीच एक पत्थर लगा हुआ है, जिस पर उन अंग्रेज़ों के नाम लिखे हैं, जो उस दिन की लड़ाई में काम आए और उस दिन की लड़ाई का हाल इस प्रकार लिखा हुआ है :

"14 सितम्बर, 1857 को अंग्रेज़ी फौज ने दिल्ली पर हमला किया। उस वक्त सूर्योदय के बाद एक पार्टी ने एक जबरदस्त गोलाबारी का मुकाबला करते हुए, उस पुल पर से, जो बिल्कुल बरबाद कर दिया गया था, पार उतर कर बारूद के थैले दरवाज़े के सामने जमा कर उस दरवाज़े का दाहिना किवाड़ उड़ा कर आक्रमणकारियों के लिए रास्ता खोल दिया।"

कश्मीरी दरवाज़े का पश्चिमी भाग नसीरगंज कहलाता था, अब उसे कश्मीरी दरवाज़े का छोटा बाज़ार कहते हैं। इस बाज़ार में चंद दुकानों के बाद फख़रुल मस्जिद आती है, फिर दिल्ली नगर निगम के दफ्तर हैं। इस इमारत में पहले हिन्दू कालेज था। यह गदर के ज़माने में जेम्स स्कीनर का रिहायशी मकान हुआ करती थी। ग्रेसिया पार्क की पुश्त पर सेंट स्टीफेन्स कालेज की पुरानी इमारत है, जहां अब पोलीटैकनिक स्कूल है। छोटे बाज़ार में दुकानों का सिलसिला चला गया है, फिर मस्जिद पानीपतियां आती है। आगे जाकर एक बहुत बड़ा मकान आता है। यह गदर के ज़माने में नवाब हामिद अली खां का बहुत बड़ा इमामबाड़ा था, जो शहर में सबसे बड़ा था। यह लखनऊ के हुसैनाबाद के मशहूर इमामबाड़े के तर्ज़ का है। इमारत निहायत पुख्ता और आलीशान बनी हुई है। बड़े कुशादा कुर्सीदार दालान और शयनशी सयदरिया तथा चबूतरे बने हुए हैं। दालानों की छतों में नक्काशी का नफीस काम किया हुआ है। इस इमामबाड़े की इमारत से आगे पुलिस स्टेशन है और फिर हैमिल्टन रोड आ जाती है, जो बाएं हाथ रेलवे के साथ-साथ लोथियन रोड में जा मिलती है और दाएं हाथ रेलवे के साथ-साथ मोरी दरवाज़े से होती हुई काबुली दरवाज़े से गुज़र कर तीस हज़ारी की सड़क म जा मिलती है।

किले से चांदनी चौक होते हुए फतहपुरी तक

चांदनी चौक :—यह बाज़ार लाल किले के लाहौरी दरवाज़े से फतहपुरी की मस्जिद तक चला गया था। यह बहुत चौड़ा बाज़ार था। इसमें हर प्रकार की दुकानें थीं। इसके हिस्सों के अलग-अलग नाम थे। पहला भाग उर्दू बाज़ार कहलाता था। उसके आगे तिरपोलिया और कोतवाली का बाज़ार था। फिर चांदनी चौक और उससे आगे फतहपुरी बाज़ार था। इसकी चौड़ाई चालीस गज़ थी और बीच में नहर बहा करती थी। नहर के दोनों तरफ साएदार वृक्ष लगे हुए थे। दुकानों के अतिरिक्त बड़े-बड़े महल और इमारतें बनी हुई थीं।

बाज़ार के शुरू में बाएं हाथ जैनियों का लाल मन्दिर है, जो **उर्दू-मन्दिर** कहलाता था, और **अप्पा गंगाधर का शिवालय** है, जिनका जिक्र किया जा चुका है। इनके सामने

पत्थर वाले कुएं का बहुत बड़ा खुला मैदान था, जिसमें अब लाजपत राय मार्केट बन गया है। यहां एक ठंडे पानी का पुराना कुआं था, जिसका पानी तमाम शहर में जाता था। मैदान में जलसे हुआ करते थे। 1918 ई० की नेशनल कांग्रेस इसी मैदान में हुई थी, जिसके प्रधान पंडित मदन मोहन मालवीय थे। इस मैदान के साथ एक बहुत बड़ा बाग लौकाटों का हुआ करता था। यह शमरू की बेगम की कोठी थी। कोठी अभी तक मौजूद है। यह बड़ी आलीशान है। इसमें दिल्ली लन्दन बैंक खुला, फिर शिमला एलाइंस बैंक खुला। अब यह भागीरथ पैलेस के नाम से मशहूर है। गदर के जमाने में, इसमें दिल्ली लन्दन बैंक था और इसी कोठी के एक कमरे से बैंक के मैनेजर, उसकी बीवी और लड़कियों ने 11 मई, 1857 को बागियों का मुकाबला किया था, जिसमें सारा खानदान मारा गया था।

शमरू की बेगम

यह बेगम मेरठ जिले के एक मुसलमान की लड़की थी। 1751 ई० में पैदा हुई। इसने एक सैयाह वोलटरीन हारडट से शादी की थी, जो शमरू के नाम से मशहूर था। शमरू ने जो फौज खड़ी की थी, वह उसने 1778 ई० में बादशाह दिल्ली को पेश कर दी और खुद मेरठ के करीब सरधने में रहने लगा था। उसी साल शमरू की आगरे में मृत्यु हो गई, जहां उसकी कब्र मौजूद है। बेगम जायदाद की मालिक बनी। 1781 ई० में वह रोमन कैथोलिक ईसाई बन गई। 1836 ई० में इसका देहान्त हुआ। सरधने में एक बहुत सुन्दर गिरजा इसका बनाया हुआ है। शमरू की बेगम का एक मकान चूड़ीवालान में भी था, जिसका नाम शमरूखाना था। 7 अगस्त, 18 57 को बारूद में आग लगने से वह उड़ गया था। कितने ही बागी उसमें काम आए। शमरू की कोठी के आगे बैपटिस्ट चर्च है और उससे आगे बाएं हाथ बाजार दरीबा कलां है, जिसके दरवाजे को खूनी दरवाजा कहते हैं। खूनी दरवाजा इस कारण नाम पड़ा कि नादिरशाह ने 1739 ई० में दिल्ली को लूटा तो इसी दरवाजे के सामने वाशिंदगान दिल्ली का बड़ा कत्लेआम हुआ था। पहले इस दरवाजे के सामने वाला हिस्सा लाहौरी बाजार या उर्दू बाजार कहलाता था। अब सारे का सारा चांदनी चौक कहलाता है। दरीबे की सड़क बहुत चौड़ी नहीं है। रास्ता सीधा पुराने अस्पताल के पास, उसी जगह जा मिलता है, जिधर से गलियों और पायवालान बाजार में से होकर जामा मस्जिद के उत्तरी दरवाजे के सामने जा निकलते हैं। असल में इस बाजार का नाम दुर्रे बे बहा (बेशकीमत मोती) था, जो बिगड़ कर दरीबा हो गया। इसमें जौहरियों, गोटेवालों, कुतबफरोशों, सादहकारों, इत्रफरोशों, आदि की दुकानें हुआ करती थीं, अब जौहरियों की दुकानें अधिक हैं। इसमें कई गलियां और कूचे हैं। एक रास्ता किनारी बाजार को गया है, जो सीधा नई सड़क को निकल जाता है। दरीबे से आगे चल कर बाएं हाथ के हिस्से को कोतवाली तक फूल की मण्डी

कहते थे। उसके बाद जौहरी बाजार था। चांदनी चौक में फव्वारे के सामने **गुरुद्वारा शीशगंज, कोतवाली** और **सुनहरी मस्जिद** की इमारतें हैं, जिनका विवरण दिया जा चुका है।

ोतवाली चबूतरा

सुनहरी मस्जिद से लगी हुई यह एक क़दीम इमारत है, जो आम तौर से कोतवाली चबूतरा कहलाती है। बादशाही जमाने में भी कोतवाली इसी इमारत में थी। इस इमारत की असली हालत यह थी कि यहां एक चौक था, 80 गज मुरब्बा, और उसमें हौज और उसके दक्षिण में कोतवाली चबूतरा था और उत्तर में तृपोलिया था और रास्ता जाता था। अब न चबूतरा रहा, न तृपोलिया। कहते हैं, यहां किसी जमाने में दरिया बहा करता था और इस मुकाम पर ऐसा भंवर पड़ा करता था कि किश्तियां डूब जाया करती थीं। फिर एक जमाना आया कि यहां घना जंगल हो गया और शेरों का निवास स्थान बन गया। गदर के जमाने में इसी कोतवाली चबूतरे के सामने उन तीन शाहजादों के शवों को लटकाया गया था, जिन्हें गदर के वक्त हडसन ने गोली से खत्म किया था और यहीं बराबर-बराबर फांसियां गाड़ी गई थीं, जिन पर बागियों को लटकाया जाता था। इस तरह फांसी पर लटकने वालों में नवाब अबदुर्रहमान खां झज्जर और राजा नाहर सिंह बल्लभगढ़ भी थे।

फव्वारा लार्ड नार्थब्रुक

कोतवाली के सामने तिराहे पर एक फव्वारा लगा हुआ है। यहां से एक सड़क मलका के बाग के साथ-साथ कौड़िया पुल से होती हुई रेलवे स्टेशन की सड़क से जा मिली है। किसी जमाने में इस फव्वारे की सीढ़ियों के ऊपर खड़े होकर ईसाइयों, मुसलमानों और आर्य समाजियों का धर्मोपदेश हुआ करता था। फव्वारे के दाएं हाथ, रामा थियेटर है, जो 1898 ई० में रामकृष्णदास रायबहादुर ने बनवाया था, जो गदर के बाद दिल्ली के बड़े रईसों में थे। दिल्ली में यह पहला थियेटर था। इससे आगे बढ़ कर पूर्व के कोने में इन्द्रप्रस्थ बंगाली स्कूल है, जो 1899 ई० में खुला। कौड़िया पुल कैसे बना इसका एक किस्सा मशहूर है। तह बाजारी महसूल के रूप में कौड़ियां बहुत आती थीं। हाकिम नवाब शादी खां ने बादशाह से इजाजत लेकर इन कौड़ियों से एक पुल बनवा दिया, जो अब नहीं रहा, मगर बाजार का नाम कौड़िया पुल बाकी है।

कौड़िया पुल के दूसरे सिरे पर बाएं हाथ रेल को सड़क गई है और दाएं कश्मीरी दरवाजे और जमुना के पुल को, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है। दाएं हाथ को घूमते हीं, जहां अब रेलवे के क्वार्टर बने हुए हैं, वहां गदर से पहले कागजी मोहल्ला था।

कोतवाली से आगे चलकर बाएं हाथ हवेली जुगलकिशोर, कटड़ा शहंशाही और फिर बाजार तिराहा आता है। तिराहे को दरीबा खुर्द भी कहते हैं। यह रास्ता अन्दर जाकर बाएं हाथ किनारी बाजार को और दरीबे को चला गया है। दाएं हाथ की सड़क मोती बाजार और फिर सीधी मालीवाड़े होती हुई नई सड़क पर जा निकलती है। चांदनी चौक में तिराहा बाजार के बिल्कुल सामने की तरफ, 'बैंक आफ बंगाल' की बिल्डिंग हुआ करती थी। उससे भी पहले इसमें जनाना मिशनरी अस्पताल था। फिर 'बैंक आफ़ बंगाल' हुआ, बाद में इसे 'सैंट्रल बैंक' ने खरीद लिया। अस्पताल यहां से उठ कर फूंस की सराय चला गया। यहां से आगे घंटाघर तक दाएं-बाएं कई गलियां और कटड़े पड़ते हैं। चांदनी चौक के इस हिस्से में दाएं हाथ जौहरियों और सराफों की दुकानें हैं और बाएं हाथ कपड़े वालों की।

चांदनी चौक में जहां घंटाघर था, वहां गदर से पहले एक अठपहलू हौज था, जिसके चारों तरफ सौ-सौ गज में बाजार था। दरअसल चांदनी चौक यही था। इस चौक के गिर्द आधे हिस्से में अब भी गोल चक्कर में दुकानें बनी हुई हैं। जब से नहर बन्द हो गई और फिर चांदनी चौक की बीच की पटड़ी तोड़ दी गई और उसके दोनों ओर के साएदार वृक्ष काट दिए गए, चौक की वह रौनक न रही। वरना 1912 से पहले यहां सब्जीफरोश, मेवा और फलफरोश और बिसाती बैठते थे और बीच-बीच में प्याऊ बनी हुई थी।

नई सड़क (एजर्टन रोड)

चांदनी चौक से घंटा घर दक्षिण को यह नई सड़क गदर के बाद निकली है, जिसका अंग्रेजी नाम एजर्टन रोड है। यह सीधी सड़क चावड़ी बाजार में शाहबूला के बड़ पर जा निकलती है। दाएं-बाएं इस सड़क पर कई गलियां और कटड़े पड़ते हैं। नीचे दुकानें और ऊपर कमरे बने हैं।

घंटा घर के उत्तरी भाग में मलका का बाग है, जिसे जहांआरा बेगम ने 1650 में बनाया था। इसका और जहांआरा की सराय का हाल ऊपर दिया जा चुका है। इस बाग में घंटा घर की तरफ मलका विक्टोरिया की मूर्ति लगी है। उसकी पुश्त पर 'टाउन हाल' की इमारत है, जिसमें इस वक्त नगर निगम के दफ्तर हैं। टाउन हाल की पुश्त पर कम्पनी बाग का हिस्सा है, जिसमें दिल्ली रेलवे स्टेशन की तरफ बाग में गांधी जी की खड़ी मूर्ति है। इसके साथ वाली सड़क रेलवे के बड़े स्टेशन को चली गई है।

फैज़ नहर

जो नहर चांदनी चौक के बीच में से गुजरती थी, उसका असली नाम फैज नहर था, लेकिन यह आम तौर से सआदत खां की नहर कहलाने लगी। सआदत खां

कौन था, इसका पता नहीं चलता। यह नहर 1291-92 ई० में फीरोजशाह खिलजी के जमाने में मौजा खिजराबाद से सफैदों तक जहां, शाही शिकारगाह थी, खोली गई थी। 1561-62 ई० में शहाबुद्दीन खां सूबेदार दिल्ली ने इसकी मरम्मत करवा कर नहर शहाबुद्दीन नाम रखा। 1638-39 ई० में शाहजहां बादशाह ने फिर इसकी मरम्मत करवाई और सफैदों से लाल किले तक इसको लाया गया। 1820 ई० में अंग्रेजी सरकार ने इसकी मरम्मत करवाई। गदर के बाद इसे बन्द कर दिया गया।

घंटाघर से आगे जा कर दाएं हाथ बाग के साथ काबिल अत्तर का कूचा और बाएं हाथ कूचा रायमान है, जिसके अन्दर-ही-अन्दर कई गलियां चली गई हैं। आगे जा कर दो बड़े मुहल्ले आते हैं। दाएं हाथ कटड़ा नील है, जिसमें कई मन्दिर और मस्जिद हैं। घंटेश्वर महादेव का मन्दिर इसी कटड़े में है। इस मंदिर के शिवलिंग को बहुत प्राचीन बताते हैं अर्थात् उस काल का जब संहिता और पद्मपुराण लिखी गई। ख्याल किया जाता है कि पद्मपुराण म जो कासी का जिक्र आया है वह हो न हो कटड़ा नील ही है और इसीका नाम विद्यापुरा था, जिसका जिक्र हिंदू काल में आया है। इस कटड़े में अधिक आबादी खत्रियों की है। उसके बिलमुकाबिल चांदनी चौक के बाएं हाथ, बल्लीमारान का मुहल्ला है। कहते हैं कि यहां किसी जमाने में दरिया बहता था और बल्लीं लगती थी। यह भी कहते हैं कि यहां किसी जमाने में मल्लाह लोग रहा करते थे। इसी से इस मुहल्ले का नाम बल्लीमारान पड़ गया। इस मुहल्ले में अधिक आबादी मुसलमानों की है। हकीम अजमलखां, जो बहुत मशहूर हकीम और कांग्रेस के नेता हो गए हैं, इसी मुहल्ले में रहते थे। उनके मकान पर कांग्रेस कमेटी की बैठक हुआ करती थी, जिनमें गांधीजी कितनी बार शरीक हुए। यह बहुत लम्बा मुहल्ला है। चावड़ी बाजार से जा मिला है और अन्दर-ही-अन्दर इसमें बहुत-सी गलियां हैं।

आगे चल कर दो बड़े मुहल्ले और आते हैं। कूचा घासीराम, जो दाएं हाथ है, और हवेली हैदरकुली बाएं हाथ है। इसका दरवाजा आखिरी मुगलिया काल का है। हैदरकुली खां मोहम्मद शाह बादशाह के अहद में तोपखाने का कमाण्डर था। कूचा घासीराम में घुसते ही भैरों जी का एक प्राचीन मंदिर है।

चांदनी चौक के आखीर में सामने की तरफ फतहपुरी मस्जिद का दरवाजा है जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है और दाएं हाथ की सड़क सीधी स्टेशन के सामने वाली सड़क क्वीन्स रोड से जा मिलती है और बाएं हाथ घूमकर खारी बावली बाजार को चली गई है। बाएं हाथ की सड़क कटड़ा बड़ियां को होती हुई, लाल कुंए वाली सड़क से जा मिली है, जो हौज काजी को चली गई है। चांदनी चौक के नुक्कड़ पर दाएं हाथ कारोनेशन होटल की बिल्डिंग है। इसका असली नाम मुंशी भवानी-शंकर का मकान व छत्ता है, जिसे नमकहरामी की हवेली भी कहते हैं। मुंशी भवानी-शंकर खत्री थे और मराठों के जमाने में बड़े माने हुए रईस और दौलतमंद थे। पहले

यह ग्वालियर में बख्शी थे। जब मराठों ने दिल्ली पर कब्जा किया तो मुंशी जी को एक बड़ी ज़िम्मेदारी की ख़िदमत पर दिल्ली भिजवा दिया, लेकिन मुंशी जी अंग्रेजों से मिल गए। मराठों ने इन्हें नौकरी से निकाल दिया और इन्हें नमकहराम कहने लगे, इसीलिए इनकी हवेली नमकहरामी की हवेली कहलाने लगी। अंग्रेज़ों ने इनकी पेंशन लगा दी थी।

गिरजा कैम्ब्रिज मिशन

फतहपुरी बाजार की जो सड़क स्टेशन की तरफ़ गई है, उस पर आगे जाकर बाएं हाथ एक गिरजा बना हुआ है। यह 1865 ई० में तामीर हुआ था। यह कैम्ब्रिज मिशन का गिरजा है और इसके साथ बहुत बड़ी कोठी थी, जहां अब क्लाथ मार्केट बन गया है। वहां नवाब सफदरगंज और अवध के नवाबों की कोठियां थीं।

कैम्ब्रिज मिशन

कैम्ब्रिज मिशन 1850 ई० में कायम हुआ और गदर में ख़त्म हो गया। 1858 ई० में फिर आरम्भ हुआ। मिशन ने इस कोठी को 12,000 रु० में नीलाम में ले लिया था, जिसे नवाब बहादुरजंग से लेकर जब्त किया गया था। इस मिशन के नीचे 1859 ई० में पादरी स्कलटन ने कलां मस्जिद की तरफ एक मिशन खोला था। इसी सम्बन्ध में 1864 ई० में एक जनाना शफाखाना खोला गया और 1884 ई० में यह शफाखाना चांदनी चौक में गया, जिसमें बाद में 'बंगाल बैंक' और फिर 'सैंट्रल बैंक' बना। शफाखाने को तीस हज़ारी फूस की सराय पर ले गए। चांदनी चौक में जो कटड़ा शहंशाही था, उसमें सेंट स्टीफेंस स्कूल हुआ करता था। वहां कालेज की क्लासें भी लगने लगीं। 1883 में कालेज कश्मीरी दरवाज़े चला गया जो, सेंट स्टीफेंस कालेज कहलाया।

क्लाथ मार्केट से आगे बाएं हाथ नहर सआदत खां का फाटक है। यह नवाब वज़ीर की हवेली का सदर दरवाज़ा है और मुग़लिया काल का आख़िरी नमूना है। यहां नहर चला करती थी। पक्के घाट बने हुए थे। किश्तियां सामान लाया करती थीं। इस नहर को बन्द करके, उसके ऊपर मकान बना दिए गए हैं।

डफरिन ब्रिज से मोरी दरवाज़ा, फूटा दरवाज़ा

रेलवे स्टेशन के सामने से, जो क्वीन्ज रोड गई है, जिसका हाल बताया जा चुका है, उसमें से नहर सआदत खां के सामने से दाएं हाथ को जो सड़क गई है, वह डफरिन ब्रिज पर से जाती है। पुल पर से उतरते ही एक सड़क सीधी मोरी दरवाज़े चली गई है, बाएं हाथ काबुली दरवाज़े को, और दाएं हाथ हैमिल्टन रोड को। मोरी दरवाज़ा अरसा हुआ तोड़ दिया गया था। काबुली दरवाज़ा भी जब रेल की लाइन पड़ी तो तोड़ दिया गया था और उसका नाम फूटा दरवाज़ा पड़ गया था।

बाज़ार खारी बावली

चांदनी चौक से दाएं हाथ मुड़ कर फतहपुरी बाजार में से जो सड़क बाएं हाथ गई है, वह खारी बावली का बाज़ार कहलाता है। यहां किराने और अनाज की मंडी है। यह बाजार लाहौरी दरवाजा पर खत्म होता है। खारी बावली में फाटक हब्श खां, हब्श खां का बनवाया हुआ है, जो शाहजहां और औरंगज़ेब के जमाने में था। खारी बावली, कूचा नवाब मिरजा में जो कदीम मस्जिद शेरशाह के ज़माने (1539–45 ई०) की बनी हुई है। उसके अहाते की उत्तरी दीवार में मिली हुई यह बावली थी, जो अब ढह गई और दुकानों में दब गई। यह बावली बहुत कदीम और शाहजहांबाद की आबादी से बहुत पहले की है यानी 1545 ई० की। अहमद इस्लाम शाह बिन शेरशाह, ख्वाजा अब्दुल्लाह ने एक कुआ बनवाया था। छः बरस बाद अर्थात् 1551 ई० में उस कुएं को बावली बना दिया गया था। जब शाहजहां ने शहर आबाद किया तो वह बावली भी शहर में आ गई थी।

खारी बावली के बाज़ार से आगे बढ़ कर लाहौरी दरवाजे के दाएं हाथ जो सड़क गई है, वह बर्न बेस्टन रोड या श्रद्धानन्द बाजार कहलाती है। इसी सड़क के एक मकान में स्वामी श्रद्धानंद जी का कत्ल हुआ था। यहां पर श्रद्धानंद बलिदान भवन है। इधर के हिस्से की फसील को तोड़ कर यह बाज़ार बना। इसमें अनाज की मंडी है। सड़क के दोनों तरफ पुख्ता इमारतें हैं। यह सड़क आगे जाकर दाएं हाथ, नहर सआदत खां और डफरिन ब्रिज की सड़क से मिल जाती है और बाएं हाथ तीस हजारी के मैदान वाली सड़क लाहौरी दरवाजे के बाहर वाली सड़क गेस्टन बेस्टन रोड कहलाती है, जो अजमेरी दरवाजे के बाहर वाली सड़क से जा मिली है। इसके बाएं हाथ पक्के मकान हैं और दाएं हाथ रेलवे लाइन गई है। लाहौरी दरवाजे से जो सड़क सीधी सरहिन्दी मस्जिद के पास से होती हुई रेल के पुल पर से गुजरती है, वह सदर बाजार को चली गई है इस सड़क के दाएं हाथ ट्राम्बे का पुराना दफ्तर और शेड है।

क़िले से दिल्ली दरवाज़ा

अब लाल किले से फिर शुरू करें तो ठंडी सड़क के दाईं ओर का रास्ता सीधा दिल्ली दरवाजे चला गया है। इस सड़क पर दाएं हाथ परेड का मैदान है और बाएं हाथ लाल किले का मैदान। आगे जाकर एक चौराहा आता है। दाएं हाथ की सड़क एडवर्ड पार्क के साथ-साथ जामा मस्जिद को चली गई है और बाएं हाथ लाल किले के दिल्ली दरवाज़े को। इसी रास्ते से बादशाह जुम्मे की नमाज़ पढ़ने जामा मस्जिद जाया करता था। लाल किले के दिल्ली दरवाज़े से करीब सौ गज के फासले पर जावेद खां की सुनहरी मस्जिद बनी हुई है, जिसका जिक्र पहले आ चुका है। सुनहरी मस्जिद के पास ही परेड ग्राउण्ड पर जिगबाबाड़ी है। यहां पहले बाग था, अब

सिर्फ कब्र रह गई है। लोग कहते हैं कि यह कब्र बिगवा बेगम मोहम्मद शाह बादशाह की लड़की की है। गदर से पहले यह स्थान बेगम साहब के नाम से बिगवा-बाड़ी कहलाता था। यहां शाही खानदान के लोग रहा करते थे। इसी के पास 'राजघाट का थाना' था।

खास बाजार

जामा मस्जिद के पूर्वी दरवाजे के सामने खास बाजार था, जो बहुत चौड़ा और सीधा था। इस बाजार में सब तरह की दुकानें थीं। खास कर तरकारी बेचने वाले यहां बैठते थे।

खानम का बाजार

खास बाजार में से खानम के बाजार और खान दौरान खां की हवेली को रास्ता जाता था। खानम का बाजार भी एक बहुत बड़ा और बहुत सुन्दर बाजार था, जो किले की फसील के बराबर सरावगियों के मन्दिर तक चला गया था, जहां अब ठंडी सड़क है। यह सारा मैदान भी साफ हो गया। जामा मस्जिद के पूर्वी दरवाजे के नजदीक जो साफ और चटियल मैदान नजर आता है, यह फौजी कामों के लिए साफ कर दिया गया था। इसी में अब एडवर्ड पार्क बना है और परेड ग्राउण्ड है।

सादुल्लाह खां का चौक

सादुल्लाह खां शाहजहां के वजीर थे। उन्हें वजीर आजम के नाम से पुकारा जाता था। उन्हीं के नाम पर यह चौक बनाया गया, जो बहुत सुन्दर था।

हौज लाल डिग्गी

खास बाजार के आगे किले की फसील के नीचे, जिस स्थान पर किसी जमाने में गुलाबी बाग था, 1842-44 ई० में वहां एक हौज था। इसे लार्ड डाल्लन ब्रो ने बनवाया था, जो गवर्नर जनरल था। यह 500′ × 150′ लम्बा-चौड़ा था और 10 गज गहरा। इसमें नहर का पानी आता था। वह नहर अब बन्द हो गई और हौज भी।

एडवर्ड पार्क

ठंडी सड़क पर दाएं हाथ जो बड़ा पार्क है, यह एडवर्ड की याद में 1911 में बनाया गया था।

परदा बाग

दरिया गंज के शुरू में सड़क के दूसरी तरफ पूर्व की ओर जो बाग है, वह गदर के बाद बना है। पहले यह जरनेली या कम्पनी बाग कहलाता था। बाद में इसे जनाना बाग बना कर परदा बाग बना दिया गया।

दरियागंज

लाल किले के दिल्ली दरवाज़े के बराबर से एक सड़क दरियागंज को चली गई है जो अन्दर जाकर अंसारी रोड कहलाती है और वह फसीलों के पास से गुजर कर दिल्ली दरवाज़े पहुंच जाती है। इस सड़क के बीच से जो सड़क मस्जिदघटा को गई है, उस पर दाएं हाथ ज़ीनत उलनिसा बेगम की बनवाई हुई ज़ीनत उल मस्जिद है। दूसरी सड़क परदा बाग से आगे बढ़ कर फैज़ बाजार होती हुई सीधी दिल्ली दरवाज़े को गई है। इसके दाएं हाथ जो सड़क गई है, वह मछलीवालान होती हुई, मटिया महल और जामा मस्जिद के दक्षिणी द्वार के सामने से गुज़र कर जामा मस्जिद के चारों गिर्द घूम गई है। बाएं हाथ की सड़क दरियागंज में अंसारी रोड से जा मिली है। लाल किले के दिल्ली दरवाज़े से जो सड़क शुरू होती है उसके पूर्व की ओर सत्तावन के गदर से पहले एक डाक बंगला था और उसके पश्चिम में बड़ी भारी अकबराबादी मस्जिद, शाहजहां की बेगम की बनाई हुई थी, जिसका हाल ऊपर आ चुका है। जब किले के गिर्द मैदान साफ किया गया तो यह मस्जिद गिरा दी गई। एक सड़क राजघाट दरवाज़े को जाती थी। इस सड़क की अखवाड़ पर कदीम बैप्टिस्ट मिशन का गिरजाघर था और उसके इर्द-गिर्द ईसाइयों का कब्रिस्तान था। उस जगह अब एक पत्थर की सलीब खड़ी है। अभी हाल में राज-घाट की नई सड़क निकाली गई है। इस सड़क के दक्षिण में शहर की फसील के पास बहुत से छोटे-छोटे मकानात गदर से पहले बने हुए थे। एक मकान ट्रांजिट कम्पनी का था, जो घोड़ागाड़ी का ठेकेदार था और चूंकि किश्तियों का पुल उस जमाने में राजघाट दरवाज़े के सामने ही था, घोड़ागाड़ी के ठेकेदार यहां हर वक्त मुसाफिरों के आराम के लिए रहते थे। इनके अतिरिक्त यहां फसील से मिले हुए पादरियों, पेंशन पाने वालों, और दीगर लोगों के मकानात थे, जो गदर में साफ कर दिए गए। छावनी का बाग राजघाट की सड़क की सीधी तरफ था और यहां बंगाल की सफरमैना की पलटन 1852 ई० तक रहा करती थी। बाग के पूर्व में जहां आगरा होटल है, उसमें झज्जर के नवाब रहा करते थे, जिनको फांसी दी गई थी। उसी के पास पलटन का मैस हाउस था। इस मकान में पहले फीरोजपुर के नवाब शमसुद्दीन रहा करते थे और उनके बाद अलीबख्श खां रहने लगे, जिन्होंने दरिया के पेटे में बाग लगवाया था। मैस हाउस और खैराती दरवाज़ा बाहर बेला रोड पर निकल गया है। इससे आगे पलटन का अस्पताल था। इसके पास मकान नं० 5 था। इस मकान के अहाते में बादशाही फौज के बिल आफ आर्म बने हुए थे। यह मकान एक पुराना बारहदरी था, जिसमें राजा किशनगढ़ रहते थे। इसी मकान में गदर के दिन फ्रेजर साहब का कत्ल हुआ था। इसके आगे एक और मकान था, जिसमें बल्लभगढ़ के राजा साहब रहते थे। उनको भी गदर में फांसी दी गई।

फैज़ बाज़ार

यह बाजार दिल्ली दरवाजे से शुरू करके लाल किले के नीचे तक चला गया था। यह एक हजार पचास गज लम्बा और तीस गज चौड़ा था। दोनों ओर शानदार ऊंचे-ऊंचे मकानात थे, बीच में नहर बहती थी। एक बहुत सुन्दर हौज बना हुआ था। गदर के बाद यह सब खत्म हो गया। अब दो तरफा नए मकान बन गए हैं और सड़क को बहुत चौड़ा बना दिया गया है। इसी सड़क पर रौशन उद्दौला की दूसरी सुनहरी मस्जिद है।

दिल्ली दरवाज़ा

यह दरवाजा शहर की फसील का, दक्षिण की ओर का आखिरी दरवाजा है। इसका नाम दिल्ली दरवाजा इसलिए पड़ा, क्योंकि शहर में दाखिल होने का सबसे बड़ा दरवाजा यही था। यह दरवाजा सादा और मामूली पत्थर का बना हुआ है। यह 1838-39 में बना। अभी तक कायम है। फसील, जो दरवाजे के साथ थी, वह तोड़ दी गई।

दरियागंज से मछलीवालान की तरफ जाएं तो बाएं हाथ एक रास्ता पटौदी हाउस को गया है, जिसमें अब आर्यसमाज अनाथालय है। कहते हैं कि शाहजहां जब दिल्ली आए थे तो कलां महल में ठहरे थे और अमले के लिए मस्जिद बनवाई थी। गदर के बाद नवाब साहब ने मस्जिद के पास जमीन लेकर कोठी बनवा ली, जिसमें अब यतीमखाना है।

पटौदी हाउस के सामने बैप्टिस्ट मिशन हाल है। यह 1885 में केवल तीस हजार की लागत में बना था। दक्षिण की तरफ फैज बाजार है। यही मुहल्ला नक्कारखाना है, जो पहले दरवाजा कलां महल के नाम से मशहूर था।

विक्टोरिया ज़नाना अस्पताल

मछलीवालान में जामा मस्जिद को जाते हुए विक्टोरिया जनाना अस्पताल पड़ता है।

चितली कब्र से तुर्कमान दरवाज़े के आगे बुलबुलीखाने तक

इस इलाके में अधिकतर मुसलमान रहते हैं। यहां एक चितली कब्र है। इसी कब्र के नाम से यह मुहल्ला और बाजार मशहूर हैं। कहते हैं, यह मजार सैयद साहब शहीद का है, जो कोई बड़े बुजुर्ग थे। कोई साढ़े छः सौ बरस से, अर्थात् 1391 ई० से, यह मजार यहां है।

चितली कब्र के आगे एक तरफ तुर्कमान दरवाजा है और उसके पास ही तिराहा है। तुर्कमान दरवाजे के पास मीर मोहम्मद साहब की खानकाह और शाह गलाम

अली की पुरानी खानकाह है। दाहिनी ओर भोजला पहाड़ी की गली है, जो बुलबुली-खाने और शाह तुर्कमान की तरफ जा निकलती है। अन्दर-ही-अन्दर और बहुत-सी गलियां चली गई हैं। खानकाह के पास एक मुहल्ले में इस नाम के एक शाहजी रहा करते थे और उनके मकान पर धौंसा बजा करता था, जिससे यह नाम पड़ा।

तुर्कमान दरवाजा

शहर के दक्षिण और पश्चिम की तरफ यह दरवाजा है। शाह तुर्कमान का मजार इस दरवाजे के नजदीक ही है, जिनका जिक्र पठान काल में दिया गया है। उन्हीं के नाम पर इस दरवाजे का नाम पड़ा। यह 1658 ई० में बना था। **कलां मस्जिद**, जिसे काली मस्जिद भी कहते हैं, यहां से नजदीक ही है, जिसका जिक्र ऊपर पठान काल में दिया जा चुका है। इधर ही आगे एक गली में **रजिया बेगम** की कब्र है। इसका हाल भी पठान काल में दिया जा चुका है।

चितली कब्र से सड़क की दो शाखाएं हो गई हैं। एक तुर्कमान दरवाजे को जाती है और दूसरी तिराहा बैरमखां को। चितली कब्र से आगे बढ़ कर दिल्ली दरवाजे तक अमीरखां का बाजार कहलाता है। यह नवाब साहब मोहम्मदशाह के जमाने में बड़े रुतबे वाले थे। आगे जाकर मुहल्ला सुईवालान और बंगश का कमरा आता है।

बंगश का कमरा

यह आलीशान मकान फैज उल्लाह खां बंगश ने बनवाया था, जो जामा मस्जिद के उत्तरी दरवाजे के सामने उस सड़क पर पड़ता है, जो मटिया महल, चितली कब्र और तिराहा बैरम खां होती हुई दिल्ली दरवाजे को निकल गई है। बंगश दरअसल एक पहाड़ का नाम है, जो सरहदी सूबे में कोहाट के पास है। वहां से जो लोग आकर दिल्ली आबाद हुए, उन्होंने बंगश के नाम से शोहरत पाई। बंगश शाहआलम प्रथम के जमाने में आए थे। उनकी ख्याति मोहम्मदशाह के जमाने में बढ़ी।

मुगलिया काल की कई और इमारतों के नाम से यहां के मुहल्लों के नाम हैं। मकान तो टूट-फूट गए, मगर मुहल्लों के नाम बाकी हैं। रंगमहल, मिरजा इलाही बख्श का रंगमहल, चांदनी महल आज भी पुकारे जाते हैं। चांदनी महल मिरजा सुरैया जाह का है, जो मोहम्मदशाह के जमाने में बना और अकबरशाह सानी के बेटे शाहजादा सलीमशाह के कब्जे में था। बाद में इसे सुरैया जाह ने ले लिया। आजकल इसमें दिल्ली की तहसील के दफ्तर हैं। यहीं शाहजादा मिरजा बुलाकी का मकान शीशमहल, जो मोहम्मदशाह के वक्त में बना, कूचा फौलादखां और कूचा चेलान हैं। इस कूचे का असल नाम कूचा चहल था अर्थात् कूचा चालीस। आगे हवेली नवाब मुसतफा खां थी। वह अब नहीं रही। फिर ख्वाजा मीर दर्द की बारहदरी

थी। इससे आगे कलां महल है। यह शाहजहां की बनवाई हुई इमारत है। लाल किला बनवाने से पहले शाहजहां इसी में आकर ठहरे थे। किसी जमाने में यह बहुत बड़ा महल था। गदर के बाद इसको बेच दिया गया। फिर इमली महल नाम की इमारत है। और भी बहुत-सी हवेलियां और महल बादशाही जमाने के इस ओर थे। अब महज उनके नाम सुनने में आते हैं, या उनकी बाबत रिवायतें, वरना गदर के बाद यह सब बरबाद हो गए।

तिराहा बैरम खां

यहां तीन रास्ते मिलते हैं। एक रास्ता जामा मस्जिद से सीधा दिल्ली दरवाजे को चला गया है। बाएं तरफ का रास्ता फैज बाजार को गया है। यह स्थान बैरम खां खानखाना के नाम से मशहूर है, जो हुमायूं बादशाह का निस्बती भाई और अकबर बादशाह का रीजेंट था। यहां ही कूचा चेलान है, जिसमें मौलाना मोहम्मद अली रहा करते थे और 'हमदर्द' तथा 'कामरेड' अखबार निकालते थे। 1924 में गांधी जी इसी मकान में ठहरे थे और उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम' एकता के लिए 21 दिन का उपवास किया था।

इस तिराहे से आगे की गली फूल की मंडी कहलाती है। पहले यहां फूल वालों की बहुत-सी दुकानें थीं। सर सैयद अहमद खां का मकान इसी तरफ था। बाहर निकल कर फैज बाजार वाली सड़क आ जाती है, जो दिल्ली दरवाजे से मिल गई है।

जामा मस्जिद की पुश्त की तरफ से शुरू करके एस्प्लेनेड रोड तक

जामा मस्जिद का जिक्र किया जा चुका है। इसकी पुश्त की तरफ एक खुला चौक है और एक सड़क सीधी चावड़ी बाज़ार को होती हुई हौज काजी चली गई है। जामा मस्जिद के चारों ही तरफ सड़क है। पुश्त की सड़क की तरफ जो बाज़ार है, उसमें जामा मस्जिद के नीचे दुकानें बनी हुई हैं, जिनमें पुराने जमाने से अनाज की मंडी चली आती है। उसके आगे चौड़ी सड़क और चौक है, जिस पर ठेले खड़े रहते हैं और सुबह के वक्त सैकड़ों मजदूरी पेशा लोग रोजगार की तलाश में बैठे रहते हैं। जो रास्ता यहां से चावड़ी बाजार को गया है, उसके दाहिने हाथ एक सिघाड़ा है, जिसमें स्त्रियों के लिए पार्क लगा दिया गया है। बाएं हाथ जो सिघाड़ा है, उस पर भी पार्क बना हुआ है। दोनों सिघाड़ों की पुश्त की तरफ दुकानें हैं। उत्तर-पश्चिम के कोने में इन्द्रप्रस्थ कन्याशाला है। उससे आगे बढ़ कर रहट के कुएं की गली है, जो छीपीवाड़े को चली गई है। रहट का कुआं शाहजहां के समय का है। इसी से जामा मस्जिद के हौज में पानी जाता था। इसके पास पानी के बड़े-बड़े कुंड बने हुए हैं। पहले उनमें पानी जमा होता था, फिर जामा मस्जिद के हौज में पानी चढ़ाया जाता

था। आगे चल कर शीशमहल की पुरानी इमारत है, जिसमें हाथी दांत के काम की दुकानें हैं।

पाएवालों का बाजार

यह जामा मस्जिद के उत्तरी दरवाजे की तरफ पड़ता है। चौड़ा बाजार है। बाएं हाथ दुकानें हैं। दाएं हाथ डफरिन अस्पताल की पुरानी इमारत है, जिसमें अब औषधालय, लड़कियों का स्कूल, समाज शिक्षा केन्द्र आदि कई संस्थाएं चलती हैं। किसी जमाने में इस बाजार में पाए और सन्दूक बनानेवाले बैठते थे, इसलिए इस बाजार का नाम पाएवालान पड़ा। यहां से आगे बढ़ कर बाएं हाथ को बाजार गुलयान पड़ता है, जिसमें अन्दर जाकर कूचा उस्ताद हामिद है। इस गली में उस्ताद हामिद का मकान था, जिसने शाहजहां के अहद में बड़ी-बड़ी इमारतें बनवाईं। वह अपने फन में कामिल था, इसलिए उस्ताद कहलाता था। इस गली में सादहकार आबाद हैं। इससे आगे कूचा उस्ताद हीरा है। उस्ताद हीरा भी शाहजहां के वक्त में हुए, जिन्होंने लाल किले की इमारत बनवाई। इसी ओर से यदि अन्दर चले जाएं तो गली अनार और कूचा सेठ आ जाता है, जिसमें जैनियों का मन्दिर है।

गुलयों के आगे बढ़ कर बाएं हाथ को दरीबा कलां की सड़क आ जाती है और उससे आगे एस्प्लेनेड रोड की सड़क। इसे हाथीवाला कुआं भी कहते हैं। पुराने सिविल अस्पताल के उत्तरी दरवाजे और दरीबे के पूर्वी छोर पर इस नाम का एक बड़ा आलीशान कुआं बना हुआ था। वह सड़क में आ गया, इसलिए बन्द कर दिया गया। यहां से आगे जो सड़क आती है, वह परेड के मैदान के साथ-साथ दाएं हाथ को जामा मस्जिद तक चली जाती है, जिस पर हरेभरे का मजार है। जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है। बाएं हाथ की सड़क चांदनी चौक में जा मिली है। इस सड़क पर चांदनी चौक को जाते हुए बाएं हाथ हिन्दुओं के कई प्राचीन मन्दिर बने हुए हैं। **रामचन्द्र जी, सत्यनारायण जी, दाऊ जी, नरसिंह जी, जगन्नाथ जी, हनुमान जी** और **गोपाल जी** के मन्दिर खास हैं। हरेभरे की दरगाह के पास ही **मौलाना शौकत अली की कब्र** है और उनसे आगे **मौलाना अबुल कलाम आजाद** की। उसके बाद कलीम उल्लाह शाह जहांबादी का मजार आता है।

जामा मस्जिद की पुश्त से चावड़ी बाजार होते हुए हौज काजी तक

यह शाही जमाने की है। चूंकि यह बहुत चौड़ा बाजार है, इसलिए इसका नाम चौड़ा बाजार और बिगड़ कर चावड़ी बाजार पड़ गया। सड़क के दोनों ओर दुकानें और बालाखाने बने हुए हैं। इस बाजार में अधिकतर कागजफरोश, बरतनफरोश, लोहे का काम करने वाले बैठते हैं। इसी सड़क की बाईं तरफ चितली दरवाजा है। इसका असल नाम चहलतन दरवाजा था, क्योंकि यहां चालीस तन शहीद हुए थे, जिनमें से एक बुजुर्ग वह थे, जिनकी चितली कब्र बनी है।

चावड़ी बाज़ार से इधर-उधर कितनी ही गलियां अन्दर की आबादियों को गई हैं। चितली दरवाज़े से आगे रास्ता चूड़ीवालान को और जामा मस्जिद को निकल जाता है। उधर ही छीपीवाड़ा खुर्द और गढैया का मुहल्ला है। दाएं हाथ छत्ता शाह जी है, जो खजूर की मस्जिद होता हुआ किनारी बाज़ार और दरीबे को निकल जाता है। इस ओर पहाड़ वाली गली छोटी और बड़ी, छीपीवाड़ी कलां, धरमपुरा, दरजीवाली गली, चेलपुरी, कटड़ा खुशहाल राय, आदि गलियां पड़ती हैं जहां शाही ज़माने के कितने ही पुराने मकान अभी भी बने हुए दिखाई देते हैं। फिर किनारी बाज़ार आता है, जिसमें नौघरे में जैन मन्दिर का ज़िक्र मुसलिम काल में आ चुका है। धर्मपुरे और खजूर की मस्जिद में भी जैन मन्दिर हैं, जिनका ज़िक्र आ चुका है।

शाहजी का मकान

मुग़लों के अन्तिम ज़माने में फाटक और सारा छत्ता शाहजी का मकान कहलाता था। इनका असल नाम नवाब शादी खां था। यह शाहआलम सानी के ज़माने में बलख से आए थे। जब मराठे दिल्ली पर काबिज़ थे, तो यह मराठों से मिल गए। बादशाह को जो पेंशन मराठे देते थे, वह इन के प्रयत्न से मुकर्रर हुई थी। शाहजी और एक मुंशी भवानीशंकर, दोनों दिल्ली में मराठों के एजेंट थे। नवाब शादी खां नाजिम तहबाज़ारी भी थे। उस ज़माने में सिक्का कौड़ियों का भी चलता था। जब कौड़ियों की बहुत बड़ी संख्या जमा हो गई तो उन्होंने फव्वारे के पास कौड़िया पुल बनवा दिया। पुल का तो पता नहीं, मगर इस नाम की सड़क अलबत्ता मौजूद है, जो रेलवे स्टेशन को बाग के साथ-साथ फव्वारे से हो कर गई है और जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है।

शाह बूला का बड़

शाहजी के छत्ते के आगे चल कर दाएं हाथ एक बड़ का वृक्ष लगा हुआ था शाह बूला नामक फकीर यहां रहते थे, जिनकी यहां कब्र भी थी। 1947 के बलवे में वह गायब हो गई। इसके सामने की तरफ गाड़ियों का अड्डा बना हुआ है और दाहिने हाथ को नई सड़क चली गई है, जो चांदनी चौक में, जहां घंटाघर था, निकलती है। शाहबूला के बड़ के पीछे नाईवाड़े का मोहल्ला है। आगे इसी बाज़ार में हौज़ काज़ी तक दाएं-बाएं कई गलियां चली गई हैं। दाहिनी तरफ मोहल्ला चरखेवालान, बाएं हाथ गली बताशान, गली बाबू महताब राय, गली केदारनाथ, रास्ता बाज़ार चूड़ीवालान, जो मटिया महल, बुलबुलीखाना, जामा मस्जिद और चितली दरवाज़े जा निकलता है, गली मुरगां, हकीम बकावाली गली है, जहां आंखों का इलाज करने-वाले हकीम रहते थे, और आगे चल कर हौज़ काज़ी का चौक आ जाता है, जहां बीच में अब सिंघाड़े पर फव्वारा लग गया है।

काजी के हौज से एक सड़क दाएं हाथ को लाल कुआं होती हुई खारी बावली को चली गई है और बाएं हाथ अजमेरी दरवाजे को। एक काजी के हौज से, जो सड़क अजमेरी दरवाजे गई है। उसके दाएं-बाएं भी बहुत-सी गलियां अन्दर गई हैं, जिनमें मुसलमानों की आबादी अधिक है।

अजमेरी दरवाजा

यह शाहजहां वक्त में 1644–49 ई० में शहर की दक्षिण-पश्चिम की फसील में था। अब फसील तोड़ दी गई है। लेकिन दरवाजा कायम है। दरवाजे के सामने एक घेरे में दिल्ली कांग्रेस के नेता देशबन्धु गुप्ता का बुत लगाया गया है। उसके बाद अरेबिक स्कूल की इमारत है। जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है, जिसका नाम मकबरा तथा मदरसा गयासउद्दीन था। दाएं हाथ की सड़क जी० बी० रोड कहलाती है, जिसमें आगे जाकर श्रद्धानंद बाजार है। इसमें श्रद्धानंद बलिदान भवन है, जहां स्वामी जी का कत्ल हुआ था। और बाएं हाथ रास्ता दिल्ली दरवाजे को और सामने की तरफ से अरेबिक कालेज के पास से, जो अब दिल्ली कालेज कहलाता है, पहाड़गंज के पुल पर से होता हुआ पहाड़गंज को चला गया है। यह रास्ता कदम शरीफ को निकल गया है, जिसे मकबरा कमरखां भी कहते हैं। उधर से ही रास्ता पुरानी और नई ईदगाह को गया है। एक सड़क मिण्टो रोड होती हुई नई दिल्ली को चली गई है।

दरगाह हजरत मोहम्मद बाकी बिल्लाह

यह अकबर बादशाह के जमाने में 1603 में बनी। मजार चूने गच्ची का बना हुआ है। बाकी बिल्लाह की पैदाइश काबुल में हुई थी अकबर के जमाने में ये दिल्ली आकर आबाद हुए। 1603 ई० में चालीस वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हुई। दरगाह शहर की आबादी के अन्दर सदर बाजार में पश्चिम की ओर बनी हुई है। ये नक्शे बन्दियों के पीर माने जाते हैं। ये मुस्लिम सन्तों मे गिने जाते हैं। इनके चौगिरदा हजारों लोग दफन हैं। मुसलमानों का यह एक बड़ा कब्रिस्तान है। इनके मजार के दो चबूतरे हैं। इनकी कब्र पहले चबूतरे पर है। मजार से मिली हुई दाहिनी तरफ एक मस्जिद है।

पुरानी ईदगाह

यह बाकी बिल्लाह की दरगाह के पास सदर में है। यह मुगलिया काल से पहले की बनी मालूम होती है।

नई ईदगाह

पुरानी ईदगाह से आगे बढ़ कर एक टीले पर नई ईदगाह बनी हुई है। इसी में ईद की नमाज पढ़ी जाती है। यह आलमगीर की बनाई हुई है। इसका सहन

550 फुट मुरब्बा है। सहन में 160 सफें हैं। फी सफ़ पांच सौ आदमी आते हैं। गदर के बाद यह ईदगाह भी जब्त हो गई थी। बाद में एक पंजाबी ने इसे छुड़ाया।

शाहजी का तालाब

अजमेरी दरवाज़े के बाहर, जहां अब कमला मार्केट बन गया है, एक बहुत बड़ा पुख्ता तालाब था, जो शाहजी के तालाब के नाम से मशहूर था। इसे भी कादिरयार ने बनवाया था, जो शाह आलम के ज़माने में हुए हैं। कमला मार्केट के पास मैदान में हरिहर उदासीन बड़ा अखाड़ा है।

काज़ी के हौज़ से दाएं हाथ वाली सड़क सरकीवालान और लाल कुआं होती हुई कटड़ा बड़ियां, फतहपुरी और खारी बावली जा निकलती है।

काज़ी का हौज़

सिंघाड़े के दाएं हाथ, जहां सब्ज़ी मार्केट बनी हुई है, वहां काज़ी का हौज़ था, जो हिजरी 1264 में मौतवारउद्दौला ने बनवाया था। यह एक बावली की तरह था। इसमें नहर आती थी। जब नहर बन्द हुई तो हौज़ भी बेकार हो गया और बन्द कर दिया गया।

इस बाज़ार में भी ज़्यादा आबादी मुसलमानों की है। बाज़ार के दाएं-बाएं बहुत-सी गलियां अन्दर चली गई हैं, जो एक मुहल्ले को दूसरे से मिला देती हैं।

काज़ी के हौज़ से आगे चल कर लाल कुआं बाज़ार आता है। यहां जो पटियाला रियासत की हवेली है, वह असल में दरवाज़ा ज़ीनतमहल का है। वह बाहर से तो कुछ मालूम नहीं होता, मगर अन्दर कई महलसराएं बहुत आलीशान बनी हुई हैं। सड़क के किनारे एक दो-मंज़िला कमरा ज़ीनतमहल के कमरे के नाम से पुकारा जाता है। यह महल बहादुरशाह की बेगम का था। यह 1846 ई० में बना। गदर के बाद इसे महाराजा पटियाला को अंग्रेज़ों की मदद करने के इनाम में दे दिया गया था। लाल कुएं से आगे एक सीधा रास्ता गली बताशान होकर खारी बावली के बाज़ार में निकल गया है और दाएं हाथ घूम कर कटड़ा बड़ियां पड़ता है, जो फतहपुरी मस्जिद पर जा निकलता है।

मौजूदा पुरानी दिल्ली का यह संक्षिप्त वृत्तान्त है, जिसे शाहजहां ने तीन सौ वर्ष पहले आबाद किया था और जो दिल्ली की चारदीवारी में बसा हुआ है। चारदीवारी तो करीब-करीब टूट चुकी है। उसके भग्नावशेष बाकी हैं। दरवाज़े और खिड़कियां भी बहुत कुछ टूट चुकी हैं। दिल्ली के बाज़ार और गलियां करीब-करीब वही हैं, जो उस वक्त थे, अलबत्ता मकान वे नहीं रहे। उनमें बहुत बड़ी तब्दीली हो गई है, मगर मकानों के नाम पुराने ज़माने की याद अलबत्ता दिलाते हैं। शाहजहां ने जिस वक्त यह शहर आबाद किया था तो उसने इसे साठ हज़ार की आबादी के लिए

बनाया था। उस वक्त उसको ख्याल न होगा कि इस शहर की आबादी बढ़ते-बढ़ते चारदीवारी को पार करके मीलों दूर का फासला घेर लेगी। उस वक्त मरदुम-शुमारी का रिवाज भी न था। साथ ही दिल्ली में आए दिन दंगे-फसाद और कत्ल होते रहते थे और गारतगरी मची रहती थी। इसलिए भी यहां की आबादी बढ़ने न पाती थी। राजधानी में रहना जहां अनेक प्रकार की उन्नति का ज़रिया था, वहां जान जोखिम से खाली भी नहीं था। चारदीवारी से बाहर रहना तो खतरे से कभी खाली होता ही न था।

शाहजहां की दिल्ली के चारों ओर मीलों दूर तक जहां देखो अब आबादी-ही-आबादी दिखाई देती है। हर वर्ष हजारों की संख्या में नए मकान बनते जा रहे हैं, जो बढ़ती आबादी की रिहायश के लिहाज से गर्म तवे पर पानी की बूंद बन कर रह जाते हैं। अब शहर पनाह के बाहरी स्मारकों को भी देख लेना चाहिए। पहले कश्मीरी दरवाज़े के बाहर से शुरू में यहां से अलीपुर मार्ग शुरू होता है। दाएं हाथ कुदसिया बाग, बाएं हाथ निकलसन पार्क, जो अब तिलक बाग कहलाता है, हैं।

कुदसिया बाग

इस बाग का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। यह निकलसन पार्क के सामने सड़क के दाहिने हाथ है। इसे मोहम्मदशाह की बेगम नवाब कुदसिया ने 1748 ई० में बनवाया था। गदर के ज़माने में इस बाग में अंग्रेज़ों की तोपें लगी हुई थीं और इसे लड़ाई के काम में इस्तेमाल किया गया था। इसके साथ वाली सड़क यमुना के कुदसिया घाट को निकल गई है, यहां लद्दाख बुद्ध विहार और मन्दिर अभी हाल में बना है।

लुडलो कैसल

यह इमारत भी अलीपुर रोड पर कुदसिया बाग से आगे बाएं हाथ है। गदर के ज़माने में इस इमारत में मिस्टर सैमन फ्रेज़र कमिश्नर दिल्ली रहते थे। 14 सितम्बर 1857 को इसी कोठी से अंग्रेज़ों का हमला शुरू हुआ था। गदर के बाद इसमें अंग्रेज़ों की दिल्ली क्लब कायम की गई थी। पिछली लड़ाई के दिनों में इसमें राशनिंग दफ्तर रहा। अब इसमें बच्चों का माडल स्कूल खुल गया है।

मटकाफ हाउस

अलीपुर रोड पर कश्मीरी दरवाज़े से कोई एक मील के अन्तर पर दाएं हाथ को एक सड़क यमुना नदी की ओर गई है, जो मटकाफ हाउस रोड कहलाती है। इस पर उत्तर की ओर आगे जाकर ऊंचाई पर एक बहुत आलीशान कोठी बनी हुई है, जिसे मुगलों के ज़माने में गदर से पहले 1844 ई० में टामस मटकाफ ने अपनी रिहायश के लिए बनवाया था। यह यमुना नदी के किनारे बनी हुई है। इसका अहाता बहुत

लम्बा-चौड़ा है। कोठी की कुर्सी बहुत ऊंची है, जिसके नीचे बहुत से कमरे और तहखाने बने हुए हैं। गदर के दिनों में इसका लड़का जोन टामस दिल्ली का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट था। गदर के वक्त यह कोठी खूब लुटी गई थी और उन दिनों यहां काफी सरगर्मी रही। जब दिल्ली राजधानी बनी तो इसमें कौंसिल आफ स्टेट बैठने लगी। बाद में चीफ़ कमिश्नर इसमें रहने लगा। 1947 में इसमें कस्टोडियन का एक महकमा खुल गया। अब इसमें फौजी महकमा है।

रिज अर्थात पहाड़ी

अलीपुर रोड पर आगे जाकर दाएं हाथ इन्द्रप्रस्थ कालेज है, जिसमें कमाण्डर इन-चीफ़ का दफ्तर हुआ करता था और इसको अलीपुर हाउस पुकारा जाता था। बाएं हाथ कमाण्डर-इन-चीफ़ की कोठी थी, जिसमें अब मलेरिया इन्स्टीट्यूट है। यहां से आगे ढलान आती है। दाएं हाथ एक सड़क बेला रोड और मटकाफ हाउस को चली गई है और सीधी सड़क राजपुर रोड से मिलती हुई ऊपर पहाड़ी पर चली गई है। यह पहाड़ी शहर के उत्तर में है। गदर में अंग्रेजी लश्कर 8 जून, 1857 को यहां पड़ा हुआ था। इसी पहाड़ी पर से किले पर गोला-बारी की गई थी।

फ्लैग स्टाफ

इस पहाड़ी पर चौराहे पर सड़क के बीच एक गोल इमारत बुर्जनुमा बनी हुई है, जिसे फ्लैग स्टाफ कहते हैं। इसके पश्चिम से जो सड़क गई है वह दिल्ली विश्व विद्यालय पहुंचती है, पूर्व की सड़क अलीपुर रोड से मिल जाती है। दक्षिण की सड़क हिन्दू राव अस्पताल को चली गई है और उत्तर की खैबर पास के नजदीक अलीपुर रोड से जा मिली है। बुर्ज के तीन तरफ दरवाजे हैं, जिनमें लोहे का कटहरा लगा हुआ है। इमारत लदाओ की है, जिसके गिर्द 11½ फुट की गुलाम गर्दिश है। पहली मंजिल में छब्बीस और दूसरी मंजिल में चौदह सीढ़ियां हैं। ऊपर का हिस्सा खुला हुआ है। बुर्ज के ऊपर लकड़ी का एक मस्तूल झण्डा चढ़ाने को लगा हुआ है। इस जगह चार फुट ऊंची मुंडेर बतौर कटहरे के बनी हुई है। पहली मंजिल 22 फुट ऊंची है, दूसरी 16 फुट। बुर्ज पर चढ़ कर शहर का दृश्य अच्छी तरह दिखाई देता है। शहर पूरे सब्जे में बसा हुआ मालूम देता है। शहर की बस्ती दूर-दूर तक नजर आती है। यह पहाड़ी एक तरफ अलीपुर रोड से जा मिलती है और दूसरी तरफ फतहगढ़ के पास से गुजर कर सब्जीमंडी पर जा उतरी है।

दिल्ली सेक्रेटेरियट

अलीपुर रोड से दाएं हाथ को आगे बढ़ कर सेक्रेटेरियट की इमारतें हैं, जो दिल्ली के राजधानी बनने के बाद बनाई गई थीं, और इसमें वायसराय के दफ्तर

थे। यहीं असेम्बली बैठा करती थी। जब दफ्तर नई दिल्ली चले गए तो इस इमारत में दूसरे सरकारी दफ्तर खुल गए। 1952 में जब दिल्ली में लोकतन्त्री विधान सभा हुई तो इसमें दिल्ली राज्य के दफ्तर रहे और विधान सभा की बैठकें होती थीं। अब इसमें भारत सरकार और दिल्ली प्रशासन के दफ्तर हैं।

इन इमारतों के आगे दाएं हाथ पुलिस थाना है। उसके सामने की तरफ राजपुर रोड अलीपुर रोड में मिलती है और सड़क आगे बढ़ कर खैबर पास मार्केट के सामने से होती हुई दाएं हाथ को घूम गई है, जो माल रोड कहलाती है। इसके दाएं हाथ की सड़क तीमारपुर की बस्ती को गई है। जिस पर आगे जाकर चंद्रावल के वाटर-वर्क के रास्ते में दाएं हाथ मकबरा शाह आलम फकीर और नजफ़गढ़ नाले का पुराना पुल आता है। मकबरे के पास से एक नई सड़क लोनी को गई है, जो यमुना के बेयर के नये पुल पर होकर जाती है। खैबर पास से जो सड़क मैगजीन रोड को गई है, उस पर आगे जाकर गुरुद्वारा मजनू साहब, मजनू का टीला और विष्णु पद ये तीन स्थान देखने को मिलते हैं।

कारोनेशन दरबार पार्क (1903)

अलीपुर रोड आगे जाकर माल रोड हो जाती है। यह माल रोड आज़ादपुर तक चली गई है और करनाल रोड से जा मिली है। किसी वक्त यहां छावनी हुआ करती थी, जो बाद में पालम चली गई। इसी सड़क पर नजफगढ़ के नाले के साथ एक सड़क दाएं हाथ गई है, जिस पर आगे जाकर वह स्थान है, जहां 1903 में लार्ड करज़न ने बादशाह एडवर्ड की ताजपोशी के अवसर पर दरबार किया था।

1911 के जार्ज पंचम दरबार की यादगार

माल रोड से होकर जो सड़क दाएं हाथ किंग्ज़वे कैम्प को गई है, उस पर बाएं हाथ दिक का जुबली अस्पताल पड़ता है और बाएं हाथ हरिजन कालोनी है। आगे बढ़कर ढाका गांव है, फिर रेडियो कालोनी और आगे रास्ता दरबार चबूतरे को होता हुआ बुराडी गांव को चला गया है। हिन्दू काल में इसका नाम बरसुरारी हुआ करता था। ढाका गांव से आगे एक खुले मैदान में 1911 के दरबार की यादगार बनी हुई है।

माल रोड करनाल रोड से मिल गई है, जिस पर छठे मील पर बाएं हाथ शालीमार गांव का रास्ता आता है। इसी गांव में पुराना शालीमार बाग है।

अब दूसरी तरफ मोरी दरवाजे से चलें तो एक सड़क राजपुर रोड को गई है, जिस पर पुलिस लाइन और अन्य कोठियां हैं। उसके बाएं हाथ पहाड़ी है। दूसरी सड़क फसील के साथ काबुली दरवाजे और तीस हजारी को चली गई है। बीच में मिठाई का पुल पड़ता है वहां से रास्ता तेलीवाड़े होकर सदर बाजार को निकल गया

है। मिठाई का पुल बहुत कदीम है। नादिरशाह के कत्लेआम में इसका जिक्र आता है।

तीस हजारी का मैदान

काबुली दरवाजे के बाहर तीस हजारी का बहुत बड़ा मैदान है, जहां जेबुलनिसा बेगम का मकबरा था। इसका हाल ऊपर लिखा जा चुका है। जब छोटी रेलवे लाइन निकली तो काबुली दरवाजा और यह मकबरा गिरा दिया गया। अब इस मैदान में दीवानी और फौजदारी अदालतों की इमारतें बन गई हैं। इधर से ही सड़क बुलवर्ड रोड होकर सब्जी मंडी चली गई है, जो आगे जाकर घंटाघर से बाएं हाथ मुड़ती है। उस पर रोशनारा बाग है।

सेंट स्टीफन्स जनाना अस्पताल

तीस हजारी के मैदान से लगा हुआ फूस की सराय का जनाना अस्पताल है। यह अस्पताल पहले चांदनी चौक में था, जहां अब सेंट्रल बैंक की इमारत है। यह ईसाई मिशन की तरफ से चलता है।

यादगार गदर—फतहगढ़

अस्पताल के आगे से जो सड़क गई है वह सब्जी मंडी को चली गई है। आगे जाकर चौराहा आता है। सीधा रास्ता सब्जी मंडी को, बाएं हाथ को पुल बंगश और सदर बाजार की ओर दाएं हाथ एक रास्ता राजपुर रोड को और दूसरा ऊपर पहाड़ी पर चला गया है। इस पहाड़ी पर थोड़ा ऊपर जाकर दाएं हाथ एक इमारत बनी हुई है, जिसे अंग्रेजों ने 1857 में दिल्ली की विजय की याद में बनाया था। इसका नाम फतहगढ़ है। इसकी चार मंजिलें हैं। यह लाल पत्थर की अठ-पहलू बनी हुई है। इस स्थान पर अंग्रेजों का गदर के वक्त कैम्प था।

यह गाओदुम और 110 फुट बुलन्द है। इसके अन्दर चक्करदार जीना है, जिसमें 78 सीढ़ियां हैं। गुमटी लदाओ की है, जिस पर पांच फुट ऊंची सलीब चढ़ाई हुई है। ऊपर चारों तरफ रोशनदान हैं। स्तून के गिर्द सात बड़ी-बड़ी संगमरमर की तख्तियां लगा कर उन पर लेख दर्ज किए हुए हैं, जिनमें लश्कर की तफसील, लड़ाइयों का जिक्र और मरने वाले अधिकारियों के नाम लिखे हुए हैं। आठवीं तरफ उत्तर-पश्चिम में दरवाजा है, जिसके अन्दर ऊपर चढ़ने को जीना है। यह स्तून बड़ी कुर्सी देकर कई चबूतरों पर बनाया गया है। पहले चबूतरे की तीन सीढ़ियां हैं, दूसरे की सत्रह, तीसरे की नौ और चौथे की पांच। नीचे का चबूतरा 151 × 75 फुट का है और यह पांच फुट ऊंचा है। दूसरा चबूतरा 3 फुट 1 इंच ऊंचा है, तीसरा 11 फुट, चौथा 6 फुट, पांचवां $2\frac{1}{2}$ फुट ऊंचा है। कुल ऊंचाई 27 फुट 9 इंच है। ऊपर के दो चबूतरों पर लोहे का जंगला लगा हुआ है और नीचे के चबूतरे पर जंजीर पड़ी हुई है।

भैरो जी का मन्दिर

फतहगढ़ के नजदीक ही भैरो जी का मन्दिर है, जिसका जिक्र किया जा चुका है।

इस पहाड़ी पर आगे जाकर कुश्के शिकार की इमारत है, जिसे फीरोजशाह तुगलक ने 1354 ई० में बनाया था। इसका हाल पठान काल में दिया जा चुका है।

अशोक का दूसरा स्तम्भ

यह स्तम्भ सड़क के दाएं हाथ है। इसका हाल भी पठान काल में दिया जा चुका है।

हिन्दू राव का मकान

यह मकान विलियम फ्रेंजर एजेंट गवर्नर जनरल ने 1830 ई० में बनाया था। फ्रेंजर को कत्ल कर दिया गया था। फीरोजपुर झिरके के नवाब शमसुद्दीन पर कत्ल करवाने का मुकदमा चला और 10 अक्तूबर, 1835 को उनको कश्मीरी दरवाजे के बाहर फांसी पर लटका दिया गया। फ्रेजर की मृत्यु के बाद इस मकान को हिन्दु राव ने खरीद लिया, जो एक मराठा सरदार और बीजाबाई का भाई था। कुछ समय तक हिन्दू राव किशन गंज में रहा और इस मकान में उसने अपना चीता-खाना रखा। सदर में उसके नाम का एक बाड़ा भी मशहूर है। हिन्दू राव गदर से पहले ही मर गया था, मगर गदर तक मकान उसके उत्तराधिकारियों के पास ही रहा। गदर के बाद अंग्रेजी सरकार ने इसे जब्त कर लिया और इसमें गोरों के लिए सैनिटोरियम बना दिया गया। फिर इसमें अस्पताल बना दिया गया, जो अब भी जारी है। इसके पास ही फीरोजशाह की बनाई हुई इमारतें और एक बावली भी है। चौबुर्जी भी है, जिसका वर्णन फीरोजशाह तुगलक के काल में दिया जा चुका है।

यहां से आगे एक सड़क बाएं हाथ को सब्जी मंडी को निकल गई है। किसी जमाने में इस तरफ बड़े-बड़े बागात हुआ करते थे, जिनको काट-काट कर आबादियां कायम हो गईं। मिलें और कारखाने खड़े हो गए। इस तरफ से रोशनआरा, शालीमार और महलदार बाग को सड़कें चली गई हैं, जिनका जिक्र ऊपर दिया जा चुका है।

कश्मीरी दरवाजे के बाहर के स्मारक देख कर यदि आप दिल्ली दरवाजे के बाहर से मथुरा रोड होते हुए बदरपुर और फिर वहां से दाएं हाथ को तुगलकाबाद की सड़क से मुड़ कर कुतुबमीनार पर पहुंच जाएं तो रास्ते भर आपको स्मारक-ही-स्मारक देखने को मिलगे, यहां ही तो पुरानी दिल्लियों की यादगारें दबी पड़ी हैं। लीजिए शुरू कीजिए

मथुरा रोड पर पहले दाएं हाथ आप आसफ अली पार्क देखेंगे, जिसमें उनकी मूर्ति खड़ी है और यदि बाएं हाथ की सड़क से चले जाएं तो आप गांधी संग्रहालय और गांधी समाधि पर पहुंच जाएंगे। यदि सीधे मथुरा रोड से जाएं तो दाएं हाथ इरविन अस्पताल आता है। उसके साथ ही पारसियों का श्मशान है। फिर दाएं हाथ एक दरवाजा खड़ा है, जिसके सामने बहादुरशाह के लड़कों का कत्ल हुआ था। दाएं हाथ आजाद मेडीकल कालेज की नई इमारत है, जहां उससे पहले जिला जेल हुआ करती थी और उससे भी पहले वह फरीदखां की सराय थी। इसकी पुश्त पर महंदियां हैं, जो एक कब्रिस्तान है और यहीं से एक सड़क माता सुन्दरी के गुरुद्वारे को चली गई है। कालेज के सामने की तरफ फीरोजशाह कोटला है, जो मुसलमानों की छठी दिल्ली थी। उसके अन्दर जा कर आप कोटले की जामा मस्जिद, कोटला फीरोजशाह और अशोक की लाट देखें। फिर बाहर आकर सड़क हार्डिंग पुल को गई है, जिस पर बाएं हाथ अखबारों के दफ्तर हैं। एक सड़क रेवेन्यू बिल्डिंग, दिल्ली विकास भवन, आदि नई इमारतों को चली गई है, जो रिंग रोड से जा मिली है। हार्डिंग पुल की महराब पार करके सामने ही तिलक पार्क है, जिसके दाहिने हाथ नई दिल्ली का बारह खम्भा मार्ग है। इस पर सप्रू हाउस आ जाता है। हार्डिंग ब्रिज से सीधी सड़क इण्डिया गेट को गई है। बाएं हाथ का रास्ता मथुरा रोड को गया है। उस पर जा कर दाएं हाथ सुप्रीम कोर्ट की नई इमारत आती है और बाएं हाथ प्रदर्शनी का मैदान है। इसे पार करके जो मार्ग बाएं हाथ को गया है, वह पुराने किले की पुश्त पर ले जाता है, जहां किलकारी भैरो और दूधिया भैरो के मन्दिर हैं। मथुरा रोड पर सीधे जाने से दाएं हाथ शेरशाह की दिल्ली का दरवाजा तथा ईसा खां की मस्जिद और मकबरा दिखाई देता है और बाएं हा पुराना किला है, उसमें जाकर मस्जिद किला-मोहाना, शेरमंडल, एक पुरानी बावली और कुन्ती का मन्दिर आप देखेंगे।

पुराने किले से चलकर आगे बाएं हाथ मटका पीर का स्थान है, जो एक ऊंचे टीले पर बना हुआ है। फिर हुमायूं के मकबरे का चौराहा आ जाता है, जिस पर मकबरा नौबत खां की इमारत खड़ी है, जिसे नीली छतरी भी कहते ह। बाएं हाथ घूम कर हुमायूं का मकबरा है, जिसके साथ ही हज्जाम का मकबरा है। उसके बाहरी अहाते में दाएं हाथ ईसा खां का मकबरा और मस्जिद है। हुमायूं के मकबरे से एक दरवाजा अरब की सराय में चला जाता है, जहां अफसर खां का मकबरा और मस्जिद बनी है। हुमायूं के मकबरे की पुश्त पर गुरुद्वारा दमदमा साहब है, जहां जाने के लिए मकबरे की फसील के साथ पक्की सड़क गई है। चौराहे का पश्चिमी मार्ग निजामुद्दीन औलिया की दरगाह को गया है, जहां पहले तो गालिब का मजार आता है। उसके पास ही मकबरा अजीज कुकलताश अथवा चौंसठ खम्भे की इमारत है। दरगाह में घुसने पर अन्दर जा कर पहले मकबरा अमीर खुसरो आता है फिर अन्दर जा कर मकबरा मोहम्मदशाह

रंगीला मकबरा जहांग्रारा, ख्वाजा साहब की दरगाह और उसके साथ लाल मस्जिद, जिसे जमाअतखाना कहते हैं, बावली तथा मकबरा मिरजा जहांगीर, इतने स्थान देखने के हैं। फिर बाहर आकर मकबरा आजम खां, और बस्ती बावली, ये मुकाम और हैं।

वापस मथुरा रोड पर आगे जाएं तो दाएं हाथ खानखाना का मकबरा आता है और बाएं हाथ फाइम खां का मकबरा है, जो हुमायूं के मकबरे की पूर्वी दीवार के बाहर रेल की पटरी के साथ है। इसे नीला बुर्ज भी कहते हैं। फिर बारह पुला आता है। आगे जाकर यदि भोगल से रिंग रोड होकर किलोखड़ी चले जाएं तो गुरुद्वारा बाला साहब आता है। मथुरा रोड पर और आगे जाने से आठ मील पर बाएं हाथ की सड़क ओखले की नहर को गई है, जिस पर सेंट थैरीसा का अस्पताल आता है। फिर जामिया मिलिया इस्लामिया की इमारत है। यहां डाक्टर अंसारी और शफीक़ उलरहमान की कब्रें हैं। ओखले के पास ही यमुना के किनारे खिजराबाद था, जो मुसलमानों की सातवीं दिल्ली थी, जिसे खिजर खां ने बसाया था। उस का मकबरा भी यहीं था, जिसे खिजर की गुमटी कहते थे, मगर अब दोनों का नाम ही बाकी रह गया है। ओखले से वापिस आकर जब आप मथुरा रोड पर आएंगे तो थोड़ा सा आगे चल कर दाएं हाथ ओखला स्टेशन है और इसके इर्द-गिर्द इंडस्ट्रियल एस्टेट है, जो कुछ वर्षों से बनी है। रेलवे क्रास करके और सीधे जाकर यह सड़क बाएं हाथ घूम गई है, जो पहाड़ी पर चढ़कर हिन्दू काल के प्राचीन कालका देवी के मन्दिर पर चली जाती है। इधर से ही एक सड़क कैलाश कालोनी को और चिराग दिल्ली को चली गई है।

कालका मन्दिर के दक्षिण की ओर आनंदमयी माता का आश्रम है और उसी सड़क पर श्री बनारसी दास स्वास्थ्य सदन है। इसका उद्घाटन राष्ट्रपति राजेन्द्र-प्रसाद जी ने 1951 के मार्च में किया था और यहां आम का एक पेड़ लगाया था। यहां एक बहुत बड़ा पुराना तालाब है और एक कुआं है, जिसके पानी से तिल्ली का रोग ठीक हो जाता है। यह स्वास्थ्य सदन लेखक के पिताजी की स्मृति में स्थापित किया गया था।

मथुरा रोड से सीधे जाकर बदरपुर गांव आता है। दाएं हाथ रेलवे पार करके सीधी सड़क कुतुब को चली गई है, जो यहां से पांच मील के करीब है। यहां तुगलका-बाद स्टेशन को बहुत फैलाया जा रहा है और माल गोदाम बनाए जा रहे हैं।

तुगलकाबाद की सड़क पर बाएं हाथ कोई एक मील जाकर सूरजकुंड आता है, जहां हिन्दुओं की दूसरी दिल्ली थी। तुगलकाबाद रोड से आगे बढ़ कर बाएं हाथ आदिलाबाद का किला आता है, जो मुसलमानों की पांचवीं दिल्ली थी। आगे दाएं हाथ तुगलकाबाद का बड़ा भारी किला आता है, जो मुसलमानों की चौथी दिल्ली थी।

फिर मकबरा गयासउद्दीन तुगलक आता है। यहां से करीब दो मील जाकर दाएं हाथ की सड़क चिराग दिल्ली चली गई है और सीधी सड़क कुतुबमीनार को, जिसके सामने ही लालकोट और पृथ्वीराज के किले की दीवारें खड़ी दिखाई देती हैं। कुतुबमीनार पहुंचने से पहले बाहर की ओर बाएं हाथ की सड़क आगे जाकर महरौली रोड में जा मिली है। इस सड़क से जाएं तो दोनों ओर पुराने खंडहरात बहुतायत से नजर आएंगे। बाएं हाथ मकबरा गयासउद्दीन बलबन दिखाई देता है, जो टूट चुका है। उसके आगे कच्चे रास्ते जाकर जमाली कमाली की मस्जिद और मकबरा आता है। थोड़ा आगे जाकर नाजिर खां का बाग है, जिसे अब अशोक विहार कहने लगे हैं। उसके सामने की सड़क के बाएं हाथ किला माउजन के खंडहरात पड़े हैं, जिसे ग्यासपुर या दारुलअमन भी कहते थे। फिर नाजिर बाग के साथ-साथ एक सड़क दादा बाड़ी को चली गई है जो जैनियों का तीर्थ है। इसी रास्ते पर दो बड़ी संगखारा की मस्जिदें नजर आती हैं, जो कहते हैं अकबर शाह सानी के जमाने की हैं।

सड़क आगे जाकर महरौली-गुड़गांव रोड में मिल जाती है। बाएं हाथ का रास्ता गुड़गांव को गया है और दाएं हाथ महरौली कस्बे को। बाएं हाथ की सड़क से जाकर जो मार्ग नजफगढ़ को गया है, उस पर महरौली से साढ़े तीन मील दूर सड़क से बाएं हाथ मलिकपुर कोही को सड़क गई है, जहां कोई आबादी नहीं है। यहां तीन मकबरे हैं (1) मकबरा सुलतानगारी, (2) मकबरा रुकनुद्दीन फीरोजशाह (इसका एक गुम्बद ही बाकी है), (3) मकबरा मइज्जुद्दीन, यह अब टूट गया है। और कोई इमारत नहीं है। पिछले दिनों जब गारी के मकबरे की छत पलटी गई, तो उसमें से आठ लाल पत्थर की शिलाएं निकली थीं, जो मालूम होता है किसी हिन्दू मन्दिर से तोड़ कर लाई गई होंगी और उन्हें छत में अन्दर महरावों में लगा दिया होगा।

इन शिलाओं पर हिन्दू काल की नक्काशी का काम हुआ है। एक पर बैल और घोड़े की लड़ाई दिखाई गई है, कुछ पर केवल फूल खुदे हैं। सुलतान गारी पहला मुस्लिम बादशाह था, जिसका मकबरा हिन्दुस्तान में बना।

वापस आकर जब मेहरौली कस्बे में जाने लगें तो दाएं हाथ झरना मिलेगा और बाएं हाथ एक बहुत बड़ा तालाब, जिसे हौज शमशी कहते हैं, मिलेगा। उसके साथ ही जहाज महल या लाल महल या खास महल की पुरानी इमारत खड़ी है, जो खारे के पत्थर की बनी हुई है। इसका दक्षिणी भाग गिर गया है, बाकी तीन ओर का हिस्सा मौजूद है। तालाब शमशी से जो नहर काटी है, वह झरने की तरफ जा निकली है। झरने में एक छोटी-सी बारहदरी और उसके आगे हौज है। हौज में पानी की चादर गिरती है। बांए हाथ भी एक बारहदरी बनी है। नीचे उतरने को सीढ़ियां बनी हुई हैं, बीच में खुला मैदान है। हौज में पानी नहरों द्वारा आगे निकलता है। यहां फूल वालों की सैर हुआ करती है।

झरने से सीधे मेहरौली की बस्ती से गुजर कर सड़क दाएं हाथ को जाती है, जो ख्वाजा साहब कुतुबुद्दीन की दरगाह को रास्ता गया है। यह एक संत का पवित्र स्थान माना जाता है। गली में जब जाते हैं, तो बाएं हाथ पक्की खार के पत्थर की बावली आती है, जिसकी सात मंजिलें हैं। इसके पानी में गंधक है, जो चमड़ी की बीमारियों के लिए बहुत मुफीद है। लोग आकर इसमें स्नान करते हैं। यह रानी की बावली कहलाती है। इधर से बाएं हाथ राजा की बावली को कच्चा रास्ता गया है। यह भी खारे के पत्थर की पुख्ता बावली है मगर सूखी पड़ी है। सड़क से जाकर दरगाह का सदर द्वार आता है, जिसमें अन्दर जान को लम्बी गली है। दाएं हाथ ख्वाजा साहब का मजार है। मजार की ड्योढ़ी म बाएं हाथ मौलाना मोहम्मद फखरुद्दीन की कब्र है, जो बहादुरशाह के गुरु थ। इसके साथ ही फरुखसियर की मस्जिद है। दाएं हाथ दरगाह में आन का रास्ता है। बड़ सहन में दरगाह है। अन्दर सर ढंक कर जाना होता है। औरतों को अन्दर जाने की मनाही है। दरगाह के दूसरी तरफ संगमरमर की मोती मस्जिद है और उससे लगा हुआ शाह आलम का मकबरा है, जिसमें तीन कब्रें और हैं—शाहआलम सानी की कब्र, अकबर शाह सानी की कब्र और बहादुरशाह जफर की खाली कब्र। दरगाह से बाहर सड़क पर आकर दाएं हाथ ऊधम खां का मकबरा है, जिसे भूल-भूलैयां भी कहते हैं और उससे थोड़ा आगे चल कर योगमाया का मन्दिर, जो हिन्दू काल का माना जाता है। इसकी पुश्त पर अनंगताल है, जो सूख गया है। पृथ्वीराज का किला और लालकोट, जो हिन्दुओं की तीसरी दिल्ली थी, ये सब यहीं बने हुए थे। अब यह टूट-फूट गए हैं मगर इनके खंडहर आस-पास में दूर-दूर फैले हुए हैं।

यहां से आगे मार्ग कुतुब साहब की लाट को चला गया है, जिसमें एक द्वार में होकर प्रवेश करना पड़ता है। लाट का बहुत बड़ा आहाता चारदीवारी से घिरा है। जगह-जगह वृक्ष और घास के मैदान हैं। एक आरामगाह भी बनी हुई है। सैकड़ों दर्शनार्थी रोजाना यहां आते हैं।

कुतुब साहब की लाट के अतिरिक्त यहां आठ स्थान देखने को और हैं। (1) अलाई दरवाजा, मीनार के पास ही है, (2) मकबरा इमाम जामिन, जो इलाई दरवाजे के साथ है, (3) चौंसठ खम्भा, यह भी लाट के नजदीक है, जो हिन्दुओं के पुराने मन्दिर थे, (4) लोहे की लाट, (5) मस्जिद कुव्वे इस्लाम, (6) मकबरा इलतमश (7) अलाउद्दीन खिलजी का मकबरा, (8) अधूरी लाट। इन सब का हाल अपनी-अपनी जगह आ चुका है।

कुतुब साहब से वापस नई दिल्ली को जो मार्ग गया है, उस पर करीब तीन मील आकर अर्चनी गांव आता है, जिसमें बाएं हाथ की बस्ती में निजामउद्दीन औलिया की

मां की कब्र है। इससे आगे बाएं हाथ बेगमपुर गांव पड़ता है, जिसमें खांजहां की बनवाई बेगमपुर मस्जिद है। इस गांव में फीरोजशाह का बनवाया विजय मंडल या जहानुमा की इमारत भी है उसके आगे बाएं हाथ कालो सराय गांव आता है। उसमें भी खांजहां की बनवाई मस्जिद है। इन दोनों गांवों के बीच फरीद बुखारी का मकबरा है। इसी सड़क पर बांए हाथ इंजीनियरिंग कालेज स्थापित हुआ है। आगे जाकर दाएं हाथ ईदगाह और चोर बुर्ज यह दो पुराने स्मारक हैं। यहां मुसलमानों की पांचवीं दिल्ली थी, जो नई दिल्ली कहलाती थी। फिर बाएं हाथ से सड़क मालवीय नगर को जाती है। सीधी सड़क शाहपुर गांव को गई है, जिसमें सीरी या अलाई दिल्ली का शहर है। यह मुसलमानों की तीसरी दिल्ली थी। यह अब टूट-फूट गई है। शाहपुर की सड़क के बाएं हाथ मुड़ कर सड़क से थोड़ी दूर मख्दूम सबजावर की मस्जिद है। इधर से ही आगे चिराग दिल्ली की सड़क पर मकबरा शेख कबीरउद्दीन पड़ता है, जिसे लाल गुम्बद भी कहते हैं। फिर दाएं हाथ सड़क खिड़की गांव को चली गई है, जिसमें खांजहां की बनवाई हुई खिड़की मस्जिद है। उससे आगे कच्चे रास्ते पर सतपुला है। इसी गांव में दरगाह युसुफकत्ताल है। वापस लौट कर फिर चिराग दिल्ली की सड़क पर जाएं तो दाएं हाथ दरगाह सलाउद्दीन आती है, मगर यह बेमारी की हालत में है। इसके बाद चिराग दिल्ली का कस्बा है, जिसकी अब कई हजार की आबादी है और चारों ओर फसील है। फाटक में घुस कर बस्ती आ जाती है। बाजार में होकर जाएं तो आगे चौक है। उसमें दाएं हाथ को हजरत रोशनचिराग दिल्ली की दरगाह है, जिसका बड़ा फाटक तथा ड्योढ़ी है और अन्दर दरगाह है। यहां ही कमालउद्दीन की दरगाह भी है। रोशनचिराग साहब का एक लकड़ी का बना तख्त भी पड़ा है। दरगाह के बाएं हाथ बड़े फाटक में जाकर बहलोल लोदी का मकबरा है। चिराग दिल्ली की सड़क सीधी जाकर कालकाजी कालोनी को चली गई है। उधर से ही रास्ता बड़ी कैलाश कालोनी का है, जो नई दिल्ली की सड़क में जा मिला है। लेडी श्रीराम कालेज के सामने जमरुद-पुर गांव पड़ता है, जिसमें पांच बुर्ज बने हुए हैं। यह आजकल गांव वालों के अनाज ।रखने में इस्तेमाल होते हैं। सड़क पर मकबरा लगरखा पड़ता है, अब टूट गया है चिराग दिल्ली से वापस लौट कर जब हम कुतुब रोड पर आते हैं और नई दिल्ली का रास्ता पकड़ते हैं तो बड़ी दूर जाकर बाएं हाथ की सड़क हौज खास को गई है, जिसे हौज अलाई भी कहते हैं। यह फीरोजशाह तुगलक के काल का है। हौज तो अब भर गया है, किन्तु उसका खंडहर जरूर मौजूद है। उसमें अब खेती होती है मगर हौज पर की इमारतें अब भी मौजूद हैं और यह स्थान कुतुब की ही तरह पिकनिक के लिए बन गया है, सैंकड़ों सैलानी नित्य वहां जाते हैं। हौज के साथ जो इमारतें बनी हुई हैं, उनके नाम हैं—मदरसा फीरोजशाह, मकबरा फीरोजशाह, मकबरा युसुफदीन जमाल और मकबरा अलाउद्दीन खिलजी।

हौज खास से वापस लौट कर फिर कुतुब रोड पर आ जाएं तो आगे जाकर बाएं हाथ सफदरजंग अस्पताल की इमारत और दाएं हाथ मेडिकल इन्स्टीट्यूट की इमारत आती है। इसके पीछे वाली सड़क मोठ की मस्जिद गांव को गई है। वहां ही मोठ की मस्जिद है। उसके बाद इधर-उधर कई सरकारी उपनगर फैले हुए हैं। दाएं हाथ जो सड़क डिफेंस कालोनी को गई है उसके साथ ही कोटला मुबारिकपुर पड़ता है, जो मुसलमानों की आठवीं दिल्ली थी। अब तो यह एक गांव है। इसी में मकबरा मुबारिक शाह और उसकी मस्जिद है। इस गांव से मिलती लोदी कालोनी है। डिफेंस कालोनी में ही कालेखां, छोटेखां,बड़ेखां व भूरेखां के मकबरे हैं, जो तिबुर्जा कहलाते हैं। वापस कुतुब रोड के रास्ते से सफदरजंग का हवाई अड्डा आता है, जिसके सामने सड़क के दाएं हाथ नजफ खां का मकबरा दिखाई देता है। हवाई अड्डे के साथ ही सफदरजंग का आलीशान मकबरा है। साथ में ही मस्जिद है। मकबरे के सामने से लोदी रोड सीधी हुमायूं के मकबरे को गई है। इस सड़क पर थोड़ी दूर जाकर बाएं हाथ बहुत बड़ा आलीशान लोदी बाग आता है, जिसमें सड़क से थोड़ी दूर मकबरा सुल्तान सैयद मोहम्मद शाह है और मस्जिद खैरपुर और दो नामालूम मकबरे आते हैं। इसी बाग के उत्तरी भाग में सिकन्दरशाह लोदी के मकबरे की आलीशान इमारत है और एक लोदी कालीन पुल है। लोदी इस्टेट में इंडिया इन्टर नेशनल केन्द्र है। वापस कुतुब रोड से चल कर एक मार्ग तीस जनवरी मार्ग को गया है, जिस पर बिड़ला भवन में गांधी जी का निधन स्थान है। तुगलक रोड और हेस्टिंग रोड होते हुए विजय चौक में पहुंच जाते हैं। वहां फव्वारे लगे हुए हैं और बाएं हाथ सेक्रेटरिएट की विशाल इमारतें तथा राष्ट्रपति भवन और मुगल बाग है और दाएं हाथ राजपथ की लम्बी सड़क गई है, जो इण्डिया गेट पर पहुंच जाती है। उसके दोनों ओर नहरें और पार्क हैं। इसी मार्ग पर रेल भवन, हवाई भवन, कृषि भवन और उद्योग भवन की इमारतें हैं। इसी राजपथ पर 26 जनवरी को राष्ट्रपति जी राष्ट्रध्वजा की सलामी दिया करते हैं। इण्डिया गेट के पीछे बादशाह जार्ज की मूर्ति है। बाएं हाथ की सड़क पर नेशनल पुरातत्व विभाग की इमारत है, और दाएं हाथ सड़क पर अजायबघर की इमारत है। उससे थोड़ी दूर जाकर विज्ञान भवन आ जाता है। इण्डिया गेट से सीधा रास्ता नेशनल स्टेडियम को निकल जाता है। गेट के साथ ही बच्चों का जापानी पार्क है। विजय चौक से उत्तर को जो सीधा मार्ग गया है वह पार्लियामेंट स्ट्रीट कहलाता है। बाएं हाथ लोक सभा भवन है। यहां ही पण्डित मोती लाल नेहरू की मूर्ति लगी हुई है। इधर से ही पीछे की ओर जो मार्ग गया है उस पर रिकाबगंज का गुरुद्वारा दिखाई देता है, जो सरकारी दफ्तरों के साथ ही है। पार्लियामेंट स्ट्रीट पर आगे जाकर बाएं हाथ रेडियो स्टेशन और आकाशवाणी की इमारतें हैं और दाएं हाथ रिजर्व बैंक और योजना-भवन हैं। फिर आगे अशोक रोड के चौराहे पर सरदार पटेल की मूर्ति है। आगे बढ़ कर नरेन्द्र प्लेस आ जाता है, जिसके बाएं हाथ जन्तर-मन्तर पड़ता है और

दाएं हाथ नई दिल्ली नगरपालिका का कार्यालय है। उसके आगे कनाट प्लेस का बाजार आ जाता है, उसके साथ ही इरविन रोड पर हनुमान जी का मन्दिर है जो सड़क पंचकुइया को गई है उस पर जैन मन्दिर रोड पर खंडेलवाल तथा अग्रवाल जैन मन्दिर हैं तथा आगे नसैया जी, हाडिंग अस्पताल और कालेज आता है। फिर आगे जाकर दाएं हाथ चित्रगुप्त रोड पर रामकृष्ण परमहंस आश्रम तथा मन्दिर और चित्रगुप्त का मन्दिर आता है। पंचकुइया रोड से सीधे जाकर बाएं हाथ इमामबाड़ा और बापू समाज सेवा केन्द्र की इमारतें हैं और फिर रीडिंग रोड पर जाने से दाएं हाथ का रास्ता बालमीकि मन्दिर को गया है, जहां गांधीजी ठहरा करते थे। रीडिंग रोड पर सीधे जाने से दाएं हाथ हिन्दू सभा भवन, बिरला मन्दिर, बुद्ध भगवान का मन्दिर और काली का मन्दिर आते हैं। इधर से ही शंकर रोड को मार्ग चला गया है, जो पहाड़ी पर जाकर बाएं हाथ बुद्धा पार्क पहुंच जाता है। पंचकुइया रोड पर सीधे जाने से एक सड़क पूसा को गई है। बाएं हाथ का मार्ग ऊपर की पहाड़ी पर भली भटियारी के महल को गया है, जिसका असली नाम बू अली बख्त्यारी था इस इमारत के सही काल का पता नहीं है। मुख्य द्वार से प्रवेश करके ड्योढ़ी आती है, फिर दाएं हाथ घूमकर दूसरा द्वार आता है। अन्दर बहुत बड़ा आहाता है, जिसके चौगिरदा चारदीवारी है। चन्द कोठड़ियां बनी हुई हैं। और कुछ नहीं है। और आगे जाकर पूसा रोड पर बाएं हाथ गंगाराम अस्पताल मार्ग है, जिस पर इस नाम का अस्पताल है और उसके साथ ही जानकी देवी महाविद्यालय है। पंचकुइया रोड के दाएं हाथ का मार्ग करोल बाग को गया है। शंकर रोड सीधी पूसा इन्स्टीट्यूट को गई है। पूसा रोड से पटेल नगर रोड पर चले जाएं तो दुग्ध कालोनी आ जाती है। पंचकुइया रोड के मोड़ पर भैरों का मन्दिर दिखाई देता है। आगे करोल बाग वाला रास्ता आता है, जिस पर बाएं हाथ झंडे वाली देवी का मन्दिर है, यह सड़क अजमलखां पार्क पर जा निकलती है। जिसके साथ ही तिब्बिया कालेज है।

इस प्रकार घूमने से अठारह दिल्लियों के सभी प्रमुख स्थान देखने में आ जाते हैं। यह परिक्रमा एक सप्ताह में भली प्रकार लग सकती है। वैसे तो दिल्ली इतना बड़ा नगर है, जिसे देखने में एक नहीं कई सप्ताह चाहिएं, फिर भी कुछ-न-कुछ देखने को बाकी रह ही जाएगा। अभी तो दिल्ली फैलती ही जाती है। जिसने अब से पचास वर्ष पहले की दिल्ली देखी है, वह तो यहां आकर अपने को अजनबी-सा महसूस करेगा। बाहर वाले की तो बात ही क्या, हम यहां के रहने वाले भी अपने को अजनबी महसूस करते हैं। इस प्रकार दिल्ली की जितनी भी खोज की जाए, कम है।

●

अठारह दिल्लियों की सैर

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
	*लाल किला . . .	1636–48	शाहजहां	चांदनी चौक के पूर्वी सिरे पर
1	झंडा चौक	1947	हिंद सरकार	"
2	लाहौरी दरवाजा-प्रवेश द्वार . .	1636–48	शाहजहां	किले के अन्दर
3	बाजार छत्ता लाहौरी दरवाजा . .	"	"	"
4	नक्कारखाना . .	"	"	"
5	दीवाने आम व सिंहासन स्थान . .	"	"	"
6	मुमताजमहल-अजायबघर . .	"	"	"
7	रंग महल अथवा इमतियाज महल नहर बहिश्त	"	"	"
8	संगमरमर का हौज	"	"	"
9	बुर्जतिला या मुसम्मन बुर्ज या खास महल तस्वीह खाना, शयनगृह, बड़ी बैठक . .	"	"	"
10	दीवाने खास व तख्तताऊस का स्थान .	"	"	"
11	हम्माम	"	"	"
12	मोती मस्जिद . . .	1659–60	औरंगजेब	"
13	हीरा महल . . .	1624	बहादुरशाह	"
14	शाहबुर्ज	1636–48	शाहजहां	"

15	सलीमगढ़ का दरवाजा . .	1622	जहांगीर	"
16	भादों	1636–48	शाहजहां	"
17	जलमहल या जफर महल . .	1642	बहादुरशाह	"
18	सावन	1636–48	शाहजहां	"
19	दिल्ली दरवाजा . . .	"	"	"
	***किले से उत्तर कश्मीरी दरवाजे तक**			
20	माधोदास की बगीची . . .	अठारहवीं सदी (अकबरशाह सानी काल)	—	लाल किले के बाहर पैदल रास्ते पर
21	लाजपत राय मार्केट . . .	1960	दिल्ली नगर निगम	सड़क के बाएं हाथ
22	सेंटमैरी कैथोलिक गिरजा . .	1865	मिशनरी	"
23	मोर सराय अब रेलवे क्वार्टर . .	1861–62	हैमिलटन	रेल स्टेशन की सड़क पर बाएं हाथ
24	लोथियन रेल पुल की महराब . .	1864	ब्रिटिश सरकार	पंचक्की ढलान से उतर कर
25	ईसाइयों का सबसे पुराना कब्रिस्तान .	1855 तक	अंग्रेजों द्वारा	मेहराब से निकलकर दाएं हाथ
26	डाकखाना (गदर काल का अंग्रेजों का मेगजीन व तारघर) . . .	1850–57	"	लोथियन पुल से निकल कर दाएं हाथ
	***दाएं हाथ केला घाट मार्ग से**			
27	निगम बोध जमुना घाट व श्मशान भूमि .	हिन्दू काल	—	जमुना के किनारे
28	हनुमान मंदिर . . .	हिन्दू काल	—	दाएं हाथ फसील के साथ

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
29	निगम बोध द्वार	मुगल काल	शाहजहां	हनुमान मंदिर से आगे फसील में
30	लाल किले का सलीमगढ़ पुल	1622	जहांगीर	जमुना पुल को जाते हुए दाएं हाथ लाल किले और सलीमगढ़ के बीच।
31	किला सलीमगढ़ या नूरगढ़	1546	सलीमशाह सूरी	जमुनापुल को जाते हुए दाएं हाथ सड़क के साथ।
32	नीली छतरी	हिन्दू काल	पाण्डव व मरहठे	जमुनापुल को जाते हुए बाएं हाथ सड़क के साथ।
33	जमुना का रेल पुल	1837	ब्रिटिश सरक.	यमुना नदी पर शाहदरे जाते हुए।
	*डाकखाने से सीधे कश्मीरी दरवाजे तक			
34	दाराशिकोह का पुस्तकालय (अब पोलिटेकनिक)	1637	दाराशिकोह	सड़क के दाएं हाथ
35	पुराना सेंट-स्टीफेंस कालेज (अब पालिटेकनिक)	1890	ब्रिटिश काल मिशनरीज	सड़क के बाएं हाथ
36	ग्रैसिया पार्क	1906	उस समय का डिप्टी कमिश्नर	गिरजाघर के सामने का पिछवाड़ा

37	सेंट जेम्स चर्च . . .	1836–39	जेम्स स्कीनर	सड़क के दाएं हाथ
38	कश्मीरी दरवाजा . . .	मुगल काल	शाहजहां	फसील में
39	फखरूल मस्जिद . . .	1728–29	फखरुलनिसा बेगम	कश्मीरी दरवाजे के पास
40	स्कीनर की पुरानी कोठी . . (हिन्दू कालेज की पुरानी इमारत)	1899	करनल स्कीनर	अब वहां नगर निगम के दफ्तर हैं
41	मस्जिद पानी पतियां . . .	1725–26	लुत्फउल्लाह खां सादिक	कश्मीरी गेट छोटा बाजार
	***कश्मीरी दरवाजे के बाहर के स्मारक**			
42	निकलसन पार्क (अब तिलक पार्क) .	1906	ब्रिटिश सरकार	अलीपुर सड़क के बाएं हाथ
43	कुदसिया बाग व मस्जिद . .	1748	कुदसिया बेगम	अलीपुर सड़क पर दाएं हाथ
44	लद्दाख बुद्ध विहार . . .	1963	हिन्द सरकार	कुदसिया बाग के बाहर, यमुना के किनारे रिंग रोड पर।
45	लुडलो कासिल . . . (यहां अब बच्चों का स्कूल है)	इमारत मुगल काल में	नामकरण अंग्रेजों द्वारा	अलीपुर रोड पर बाएं हाथ
46	मटकाफ हाउस . . . (अब यहां फौजी दफ्तर है)	1844	टामस मटकाफ	अलीपुर रोड से मटकाफ रोड के रास्ते जमुना के किनारे।
47	पुरानी सेक्रेटेरियेट . . .	1912–15	ब्रिटिश सरकार	अलीपुर रोड पर दाएं हाथ
48	गुरुद्वारा मजनूं साहब . (नानक साहब की यादगार)	1505	—	खैबर पास से मेगजीन रोड होकर जमुना के किनारे

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
49	मजनूं का टीला . . .	1505	—	गुरुद्वारा मजनूं साहब से आगे
50	विष्णु पद	हिन्दू काल	—	मेगजीन रोड पर चंद्रावल पहाड़ी में।
51	मकबरा शाह आलम फकीर . .	1365–90	—	नजफगढ़ नाले पर तिमारपुर से वाटर वर्क्स जाते हुए।
52	चंद्रावल का जमुना वेयर व पुल .	1963	दिल्ली कारपोरेशन	तिमारपुर रोड से आगे जाकर जमुना पर।
	***वापस माल रोड पर सीधे जाकर किंग्जवे के रास्ते से**			
53	जुबली तपेदिक अस्पताल . . (1911 में यहां रेलवे स्टेशन था)	1935	दिल्ली नगर पालिका	किंग्जवे सड़क पर बाएं हाथ
54	हरिजन कालोनी . . .	1935	गांधीजी द्वारा स्थापित	किंग्जवे सड़क के दाएं हाथ
55	दरबार चबूतरा . . .	1911	ब्रिटिश सरकार	ढाक्का गाओं के पास बुराड़ी सड़क पर
	वापस माल रोड से बादली की सराय होकर			
56	शालामार बाग . . .	1653	शाहजहां	बादली की सराय से शालामार गाओं के पास

***वापस सब्जी मंडी के रास्ते से**

57	रौशनारा बाग . . .	1650	रौशनारा बेगम	सब्जी मंडी घंटा घर से दाएं हाथ की सड़क पर
	*वापस दिल्ली विश्वविद्यालय मार्ग			
58	करजन हाउस . . . (अब विश्वविद्यालय)	1903	ब्रिटिश सरकार लार्ड करजन द्वारा	विश्वविद्यालय मार्ग
59	फ्लैग स्टाफ	ब्रिटिश काल	अंग्रेजों द्वारा	विश्वविद्यालय के सामने रिज पर।
60	चौबुर्जी	1354	फीरोजशाह तुगलक	फ्लैग स्टाफ से दाएं हाथ की सड़क पर
61	पीरगैब	1354	,,	,,
62	हिन्दुराओ का मकान . . (उसमें अब अस्पताल है)	1835	हिन्दुरावों	,,
63	अशोक की लाट नं० 2 . . . (कौशके शिकार या जहांनुमां)	1356	फीरोजशाह तुगलक	,,
64	जीतगढ़ (म्युटिनी मिमोरियल) . .	1857 (गदर के बाद)	ब्रिटिश सरकार	,,
65	भैरों जी का मन्दिर . . .	हिन्दू काल	—	जीतगढ़ के पास
66	नई अदालतें . . .		हिंद सरकार (डा० काटजू द्वारा शिलान्यास)	तीस हजारी मैदान में, बुलवर्ड रोड पर।
67	मोरी दरवाजा . . .	मुगल काल	शाहजहां	डफरिन ब्रिज होकर

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
68	डफरिन ब्रिज . . .	1884–88	ब्रिटिश सरकार	मोरी दरवाजे से आगे जाकर, दाएं हाथ काबुली दरवाजा था । बाएं हाथ मिलटन रोड है
69	नहर सआदतखां . . . (अब बंद हो गई)	मुगल काल	सआदत अली खां	डफरन पुल पार करके
	*डफरिन ब्रिज से दाएं हाथ होकर			
70	श्रद्धानन्द बाजार	ब्रिटिश काल	ब्रिटिश सरकार	
71	श्रद्धानन्द बलिदान भवन . .	1926	आर्य समाज	डफरन पुल पार करके नए बाजार में कमरे पर सड़क के बाएं हाथ ।
72	लाहौरी गेट . . .	मुगल काल	शाहजहां	फतहपुरी बाजार के अन्त पर ।
73	स्जिद सरहंदी . . .	1650	बेगम सरहंदी	लाहौरी दरवाजे पर
74	मस्जिद फतहपुरी . . .	1650	बेगम फतहपुरी	खारी बाओली बाजार में
	चांदनी चौक बाजार			
75	भैरों जी का मन्दिर . .	मुस्लिम काल	—	कूचा घासी राम
76	घण्टाघर	1868	लॉर्डनॉर्थ ब्रुक काल	चांदनी चौक में था, अब टूट गया ।

77	मलका विक्टोरिया का बुत . .	1902	जेम्स स्कीनर	चांदनी चौक में
78	जहांआरा बेगम की सराय . . (अब मलका का बाग)	1650	जहांआरा बेगम	"
79	टाउन हाल	1863–66	ब्रिटिश सरकार	"
80	गांधी जी की मूर्ति . . .	1950	दिल्ली नगर पालिका	बेगम के बाग में स्टेशन की तरफ।
81	रेल का बड़ा स्टेशन . . .	1867	ब्रिटिश सरकार	बाग के बाहर क्वीन्स रोड पर।
	***वापसी चांदनी चौक**			
	चांदनी चौक से तिरहा बाजार होकर :			
82	जैन मंदिर नौ घरा . . .	मुगल काल	जैनियों द्वारा	नौ घरा किनारी बाजार में वैद बाड़े में।
83	जैन मंदिर वैदवाड़ा . . .	"		
84	जैन नया मंदिर धर्मपुरा . .	"		किनारी बाजार होकर धर्मपुरे में।
85	जैन मन्दिर कूचा सेठ . . .	"		खुशहालराय मस्जिद खजूर होकर कूंचा सेठ में।
86	चरन दास की बगीची . .	"	चरनदासियों द्वारा	मोहल्ला दस्सां में
	***वापसी चांदनी चौक**			
87	फव्वारा लार्ड नार्थ बुक . .	1872–74	लार्ड नार्थ बुक	चांदनी चौक, कोतवाली के सामने।

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
88	रामा थियेटर (दिल्ली में पहला थियेटर)		छन्नामल वाले	चांदनी चौक फव्वारे के पास
89	हार्डिंग पुस्तकालय	1914	दिल्ली नगर पालिका	कम्पनी बाग में गांधी ग्राउण्ड के पास।
90	सुनहरी मस्जिद नं० 1	1721	रौशन उद्दौला	चांदनी चौक में कोतवाली क साथ
91	कोतवाली चबूतरा	मुगल काल	—	"
92	गुरुद्वारा शीशगंज (गुरु तेगबहादुर की यादगार)	1675	सिक्खों द्वारा	"
93	खूनी दरवाजा (दरीबा बाजार)	मुगल काल	—	चांदनी चौक में
94	शमरू की बेगम का बाग (अब भागीरथ पैलेस)	1751	बेगम शमरू	"
95	गिरजा बैपटिस मिशन	ब्रिटिश काल	बैपटिस्ट मिशन द्वारा	"
96	शिवाला आपागंगाधर	1761	आपा गंगाधर	"
97	लाल मंदिर (उर्दू मंदिर)	1659	एक जैन सिपाही	"
	***चांदनी चौक से एस्प्लेनेड रोड पर दाएं हाथ**			
98	गोपाल जी, हनुमान जी, जगन्नाथ जी, नरसिंह जी, दाऊ जी, सत्यनारायण जी, रामचन्द्र जी के मन्दिर	मुगल काल	—	एस्प्लेनेड रोड पर

	***लाल किले के दक्षिण में दिल्ली दरवाजे तक**			
99	शेखकलीम उल्लाह् जहांनावादी का मजार	1729	—	परेड के मैदान में
100	ऐडवर्ड पार्क	1911	बादशाह् जार्ज पंचम द्वारा शिलारोपण।	जामा मस्जिद के रास्ते पर।
101	सुनहरी मस्जिद नं० 3 . . .	1751	जाबेद खां	लाल किले के दिल्ली दरवाजे के बाहर ऐडवर्ड पार्क के सामने।
102	जीनत उलमस्जिद . . .	1700	जीनत उलनिसा बेगम	मस्जिद घटे पर अंसारी रोड से।
103	सुनहरी मस्जिद नं० 2 . .	1744–1745	रौशन उद्दौला	फैज बाजार में
104	दिल्ली दरवाजा . .	मुगल काल	शाहजहां	दरियागंज के अन्त में
105	दिगम्बर जैन लाल मंदिर	"	जनियों द्वारा	दिल्ली दरवाजे के बाहर जाकर दाएं हाथ एक गली में।
	***दिल्ली दरवाजे से वापस मछली वालान के रास्ते**			
106	विक्टोरिया जनाना अस्पताल . .	1904	ब्रिटिश सरकार	मछली वालान में
107	जामा मस्जिद . . .	1648	शाहजहां	जामा मस्जिद बाजार
108	हरे भरे शाह् का मजार . .	मुगल काल	—	जामा मस्जिद के पूर्वी द्वार की ओर सड़क के साथ।

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
109	सरमद का मजार . . .	औरंगजेब काल	—	जामा मस्जिद के पूर्वी द्वार की ओर सड़क के साथ
110	मौलाना आजाद की कब्र . .	1958	हिन्द सरकार	ऐडवर्ड पार्क मार्ग पर
	*जामा मस्जिद से मटिया महल होकर			
111	रज़िया बेगम की कब्र . . .	1240	मइज़उद्दीन बहराम शाह	तुर्कमान गेट के अन्दर जाकर ।
112	कलां मस्जिद . . .	1387	खां जहां	"
113	तुर्कमान शाह का मजार . .	1240	—	तुर्कमान दरवाजे के नजदीक
114	तुर्कमान द्वार . . .	मुगल काल	शाहजहां	फसील में
115	हरिहर उदासीन अखाड़ा . .	1888	उदासी पंथियों द्वारा	कमला मार्कट के पास
116	अजमेरी दरवाजा . . .	मुगल काल	शाहजहां	जी० बी० रोड और आसफ-अली रोड के बीच
117	देशबन्धु की मूर्ति . . .	1954	दिल्ली नगर पालिका	अजमेरी दरवाजे के बाहर
118	मकबरा व मदरसा गाजीउद्दीन खां .	1710	गाजीउद्दीनखां	अजमेरी दरवाजे के बाहर जहां अब दिल्ली कालेज है।
	*पुल पहाड़गंज होकर			
119	नई दिल्ली का बड़ा स्टेशन . ..	1924,1954	ब्रिटिश व हिन्द सरकार	पुल उतर कर बाएं हाथ

120	क़दम शरीफ़ अफसरखां का मकबरा दरगाह ख्वाजा बाक़ी बिल्लाह .	1603	अफसरखां	पुल उतर कर दाएं हाथ पहाड़गंज में मोतियाखान के पास।
121	ईदगाह	मुस्लिम काल	—	ईदगाह रोड पर
122	तिब्बिया कालेज . . .	1921	हकीम अजमलखां (उद्घाटन गांधीजी द्वारा)	क़रोल बाग में
123	झंडेवाली देवी का मंदिर . .	मुगल काल	—	देशबन्धु रोड पर पंचकुंई रोड पर।
124	भैरों जी का मन्दिर . . .	मुस्लिम काल	—	पंचकुंई रोड पर
125	बुअली भटियारी का महल . .	1354	बूअलीखां	पहाड़ी पर जाकर पंचकुंई रोड में
126	चित्रगुप्त जी का मन्दिर . .	मुगल काल	—	चित्र गुप्त रोड पर
127	परमहंस रामकृष्ण मिशन व मंदिर .	1945	रामकृष्ण मिशन द्वारा	"
128	बाल्मीकि मंदिर . . . (गांधीजी का 1946 में निवास व प्रार्थना स्थान)	ब्रिटिश काल	हरिजनों द्वारा	रीडिंग रोड पर
129	इमाम बाड़ा . . .	1945	शैया जमाअत	पंचकुंई रोड
130	बापू समाज सेवा केन्द्र . .	1954	फोर्ड ट्राट की सहायता से	पंचकुंई रोड
131	लेडी हार्डिंग जनाना अस्पताल . .	1913	ब्रिटिश सरकार	पंचकुंई रोड पर
132	अग्रवाल व खंडेलवाल जैन मन्दिर .	मुगल काल	जैनियों द्वारा	जैन मन्दिर रोड पर।

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
133	हनुमान मन्दिर . . .	मुस्लिम काल	—	इरविन रोड पर
134	जंतर मंतर . . .	1724	राजा जयसिंह	पार्लियामेंट स्ट्रीट पर
135	नई दिल्ली नगर निगम कार्यालय व टाउन हाल ।	1931–32	ब्रिटिश सरकार	,,
	*यहां से सौंधिया हाउस कर्जन रोड होकर हेली मार्ग			
136	उग्गर सेन की बाओली . .	प्राचीन	राजा उग्गरसेन	हेली रोड पर
137	सप्रू हाउस	1954	इण्डियन कौंसिल आफ वर्ल्ड अफेयर	बाराखम्भा रोड पर
138	माता सुन्दरी गुरुद्वारा . . .	मुगल काल	सिक्खों द्वारा	माता सुन्दरी मार्ग पर
139	इरविन अस्पताल . . .	1930–35	ब्रिटिश सरकार	दिल्ली गेट के बाहर
140	आसफअली की मूर्ति . . .	1954		,,
141	राजघाट (गांधी जी की समाधि) . .	1948	हिंद सरकार	दिल्ली गेट के पूर्व में रिंग रोड पर
141ए	शान्ति वन (श्री `हरू की समाधि) .	1964		,,
142	गांधी स्मारक संग्रहालय . .	1951	गांधी स्मारक निधि	राजघाट के पास
	*वापस मथुरा रोड होकर			
143	आजाद मेडिकल अस्पताल (भूतपूर्व फरीदखां की सराय तथा जेल) . .	1960	हिन्द सरकार	दिल्ली गेट के बाहर

144	फीरोजशाह का कोटला (मुसलमानों की छठीं दिल्ली)	1354–74	फीरोजशाह तुगलक	दिल्ली दरवाज के बाहर मथुरा रोड पर
145	कोटले की जामां मस्जिद फीरोजी	1354	"	कोटले के अंदर
146	बाओली फीरोजशाह	1354	"	"
147	अशोक की लाट नं० 1	1356		
148	बाल भवन	स्वराज्य काल	हिंद सरकार	राउज एवेन्यु लेन पर
149	हार्डिंग पुल (अब तिलक पुल)	ब्रिटिश काल	अंग्रेजों द्वारा	मथुरा रोड पर
150	तिलक पार्क व मूर्ति	1960	हिन्द सरकार	हार्डिंग पुल पार करके
151	सुप्रीम कोर्ट	1958	हिन्द सरकार	मथुरा रोड और तिलक मार्ग पर।
152	पुराना किला (इंद्रप्रस्थ, हिन्दू काल की पहली दिल्ली)	—	—	दिल्ली से दो मील
153	दीनपनाह (पुराने किले में) (मुसलमानों की नवीं दिल्ली)	1533	हुमायूं	दिल्ली से दो मील
154	किलकारी भैरव	हिन्दू काल	—	पुराने किले की पुश्त पर
155	दुधिया भैरव	"		"
156	शेरगढ़ (मुसलमानों की १०वीं दिल्ली)	1540	शेरशाह सूरी	पुराने किले में
157	मस्जिद किला कोहना	1541		"

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
158	शेर मंडल	1541	शेरशाह सूरी	पुराने किले में
159	शेरशाही दिल्ली का दरवाजा . .	1541	”	पुराने किले के सामने
160	खैर उलमनाजिल (मस्जिद) . .	1561	माहमअंगा (अधमखां की मां)	पुराने किले के पश्चिम द्वार के सामने।
161	चिड़िया घर . . .	1960	हिंद सरकार	पुराने किले के साथ
162	हुमायूं का मकबरा . . .	1565	हाजी बेगम (अकबर की मां)	मथुरा रोड पर
163	हज्जाम का मकबरा . . .	”	—	हुमायूं के मकबरे में
164	ईसाखां का मकबरा, मस्जिद . .	1547	ईसाखां	हुमायूं के मकबरे में
165	अरब की सराय (अब इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट)	1560	हाजी बेगम	हुमायूं के मकबरे के साथ
166	मकबरा अफसरखां . . .	1566–67	अफसरखां	अरब की सराय म
167	मकबरा नेबतखां (नीली छतरी) .	1565	नौबतखां	हुमायूं के मकबरे के चौराहे पर।
168	गुरुद्वारा दमदमा साहब (गुरु गोविन्द सिंह की यादगार) . .	मुगल काल	सिक्खों द्वारा	हुमायूं के मकबरे की पुश्त पर
169	मिरजा सादुल्लाह खां गालिब का मजार .	1889	—	निजामउद्दीन औलिया की दरगाह के बाहर।
170	मकबरा अजीज कोकल ताश या चौंसठ खम्भा	1624	अजीज कोकल ताश	गालिब के मजार के पास

171	दरगाह हजरत निजाम उद्दीनऔलिया	1324	जियाउद्दीन व मोहम्मद तुगलक	दिल्ली से पांच मील दूर मथरा रोड पर दाएं हाथ।
172	बाओली हज़रत निज़ामउद्दीन	1321	हज़रत निज़ामउद्दीन	हजरत निज़ामुद्दीन की दरगाह में
173	जमाअत खाना या निज़ामउद्दीन की मस्जिद	1353	फीरोजशाह तुगलक	"
174	मकबरा जहांआरा बेगम	1681	जहांआरा	"
175	मोहम्मदशाह का मकबरा	1748	—	"
176	मकबरा अमीर खुसरो	1325	—	मथुरा रोड से
177	संजार मस्जिद	1372	खाजहां	दरगाह के बाहर
178	मकबरा आजमखां	1566	अजीज कोकल ताराखां	दरगाह के दक्षिण पूर्व में
179	मकबरा खान खाना	1626	खान खाना	बारह पुले को जाते समय
180	मकबरा फाइमखां या नीली बुर्ज	1624	खान खाना	हुमायूं के मकबरे की पूर्वी दीवार के बाहर रेल की पटरी के साथ।
181	बारह पुला	1612	महरबान आगा	ओखले के रास्ते पर
182	किलोखड़ी या नया शहर (मुसलमानों की दूसरी दिल्ली)	1286	कैकं बाद	रिंग रोड पर
183	गुरुद्वारा बाला साहब (गुरु हर किशन जी की यादगार)	मुगल काल	सिक्खों द्वारा	निज़ामुद्दीन स्टेशन के पास

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
184	होली फेमिली अस्पताल . .	1956	कथोलिक मेडिकल मिशन	मथुरा रोड से बाएं ओखले की सड़क पर।
185	जामा मिलिया इस्लामिया . .	1921	कौमी मुसलमानों द्वारा	"
186	ओखले की नहर . . .	1854	अंग्रेजों द्वारा	ओखले की सड़क के अन्त पर
187	ओखला इंडस्ट्रियल स्टेट . .	—	हिन्द सरकार	दिल्ली से आठ मील
188	कालका जी का मन्दिर . .	हिन्दू काल	—	मथुरा रोड पर दिल्ली से आठ मील।
189	श्री बनारसीदास स्वास्थ्य सदन . .	1951	चांदीवाले भाइयों द्वारा (उद्घाटन राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद द्वारा)	कालका मंदिर के पूर्व कालकाजी कालोनी में।
	***वापस मथुरा रोड से बदरपुर होकर मेहरौली जाते हुए**			
190	अनंगपुर अथवा अडंगपुर सूरज कुंड (हिन्दुओं की दूसरी दिल्ली) . .	686	अनंग पाल प्रथम	तुगलकाबाद की मेहरौली सड़क से बाएं हाथ सड़क गई है।
191	किला आदिलाबाद . . .	1327	मोहम्मद तुगलक	मेहरौली रोड पर
192	मकबरा गयासउद्दीन तुगलक . .	1321–23	मोहम्मद आदिल तुगलक-शाह	"

193	किला तुगलकाबाद	1321–23	गयासउद्दीन तुगलक	मेहरौली रोड पर
194	लाल कोट	1100–1193	अनंगपाल व पृथ्वीराज	कुतुब की लाट के बाहर
	(हिन्दुओं की तीसरी दिल्ली)			
195	कुतुब मीनार	1200	कुतुबुद्दीन ऐबक	दिल्ली से 12 मील
196	मस्जिद कुवते इस्लाम	1193–98	"	कुतुब मीनार के साथ
197	लोहे की लाट व चौसठ खम्भा	हिन्दू काल	—	कुतुब मीनार के साथ
198	अलाइ दरवाजा	1310	अलाउद्दीन खिलजी	"
199	मकबरा इमाम जामिन	1488	इमाम जामिन	अलाई दरवाजे के पास
200	अलाई मीनार या अधूरी लाट	1311	अलाउद्दीन खिलजी	कुतुबमीनार के उत्तर में
201	मकबरा अल्तमश	1236	रजिया बेगम	मस्जिद कुवते इस्लाम के पास।
202	मकबरा अलाउद्दीन	1315–16	कुतुबुद्दीन मुबारकशाह	कुतुबमीनार के पश्चिम में
203	किला मर्गजन	1267	गयासउद्दीन बलबन	कुतुबमीनार के पास बाहर की सड़क पर खण्डर है।
204	जमाली कमाली का मकबरा या मस्जिद	1528	जमालखां	कुतुब की बाहर की सड़क पर।
205	नाजिर का बाग (अब अशोक विहार)	1748	नाजिर रोजअफजूं	कुतुबमीनार की सड़क पर दाएं हाथ कच्चे रास्ते पर।

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
206	दादा की बाड़ी	मुगल काल	जैनियों द्वारा	अशोक बिहार के पास जैनियों का मन्दिर।
	*आगे जाकर तिराहा आता है, बाएं हाथ गुड़गांव मार्ग, दाएं हाथ कस्बे में			
207	मकबरा सुलतानगारी (भारत में पहला मकबरा)	1231	अल्तमश	मलिकपुर गाओं में बाएं हाथ के रास्ते नजफ़गढ़ रोड पर मेहरोली से तीन मील।
208	मकबरा रुकनुद्दीन फीरोजशाह *वापस मेहरोली कस्बे को	1238–40	रजिया बेगम	
209	हौज शमशी	1229	शमशुद्दीन अल्तमश	मेहरोली कस्बे में
210	झरना	1700	जीनत उलनिसा बेगम	हौज शमशी के सामने सड़क के साथ।
211	जहाज महल या लाल महल या शीश महल	1700	,,	हौज शमशी के साथ
212	ऊधमखां का मकबरा या भूलभुलैयां	1561	अकबर	योगमाया के मंदिर के साथ
213	योगमाया का मंदिर	हिन्दू काल	—	सड़क के बाएं हाथ
214	अनंगताल	हिन्दू काल	अनंगपाल द्वितीय	योगमाया के मंदिर की पुश्त पर।
215	रानी व राजा की बाएं (बाओली)	1516	दौलतखां	दरगाह हजरत कुतुबद्दीन के रास्ते पर

216	दरगाह हजरत कुतुबुद्दीन . .	1235	शमसुद्दीन अल्तमश	सड़क के दाएं हाथ अंदर जाकर
217	मोती मस्जिद . . .	1709	शाह आलम	दरगाह में
218	शाह आलम बहादुरशाह का मकबरा .	1712	जहांदार शाह	दरगाह में
219	शाह आलम सानी की कब्र . .	1806	शाही खानदान	,,
220	अकबर शाह सानी की कब्र . .	1837	,,	दरगाह में
221	बहादुरशाह की खाली कब्र . .	मुगल काल	बहादुरशाह	,,
222	फर्रुख सियर की मस्जिद . .	,,	फर्रुख सियर	,,
223	बहादुर शाह के महल . . .	,,	बहादुरशाह	दरगाह के बाहर
	*महरौली से वापस नई दिल्ली		—	
224	बेगमपुर की मस्जिद . . .	1387	खांजहां	बेगमपुर गाओं में महरौली से लौटते हुए दाएं हाथ
225	विजय मण्डल या जहांनुमां . .	1355	फीरोजशाह तुगलक	महरौली रोड पर बेगमपुर मस्जिद के पास।
226	मस्जिद कालो सराय . . .	1387	खांजहां	कालो सराय गाओं में बेगमपुर से 1 मील आगे।
227	इंजीनियरिंग कालेज . . . (शिलान्यास ड्यूक आफ एडिनबरा द्वारा)	1961	हिन्द सरकार	सड़क के बाएं हाथ
228	जहांपनाह . . . . (मुसलमानों की पांचवीं दिल्ली)	1327	मोहम्मद तुगलक	अब टूट गई, महरौली सड़क पर।
229	ईदगाह	पठान काल	नामालूम	सड़क से दाएं हाथ

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
230	चोर बुर्ज	पठान काल	नामालूम	सड़क के दाएं हाथ
231	सीरी	1303	अलाउद्दीन खिलजी	शाहपुर गावों में फसील है
	(मुसलमानों की तीसरी दिल्ली)			
232	मस्जिद मखदूम सबजावर . .	1400	मखदूम सबजावर	सीरी से 370 गज पश्चिम में सड़क पर।
233	लाल गुम्बद (मकबरा शेख कबीर उद्दीन) .	1330	मोहम्मद तुगलक	मालवीयनगर की सड़क पर बाएं हाथ।
234	खिड़की मस्जिद . . .	1387	खाजहां	मालवीय नगर की सड़क के दाएं हाथ खिड़की गाओं में
235	सतपुला	1326	मोहम्मद तुगलक	खिड़की गाओं से आगे कच्चे मार्ग पर।
236	दरगाह रोशन चिराग दिल्ली . .	1359	फीरोजशाह तुगलक	चिराग दिल्ली म मालवीय नगर रोड पर।
237	मकबरा बहलोल लोदी . .	1488	सिकन्दर लोदी	दरगाह म
	*वापस मेहरौली रोड से नई दिल्ली को			
238	हौज खास या हौज अलाई . .	1295	अलाउद्दीन खिलजी	मेहरौली रोड से बाएं हाथ सड़क गई है।
239	मदरसा फीरोजशाह . . .	1352	फीरोजशाह तुगलक	हौज खास पर

240	मकबरा फीरोजशाह	1389	नासिरउद्दीन तुगलक	"
241	मकबरा यूसुफ बिन जमाल	पठान काल		"
242	मकबरा अलाउद्दीन खिलजी	पठान काल	—	"
243	सफदरजंग अस्पताल	1954	हिन्द सरकार	मेहरौली रोड पर
	(1942 में अमरीकनों ने इसका प्रारंभ किया)			
244	मेडिकल इंस्टीट्यूट	1956	"	"
245	मस्जिद मोठ	1488	वजीरमियां मोइयां	मेडिकल इंस्टीट्यूट की पुश्त पर गाओं में।
246	कोटला मुबारिक पुर	1432	मुबारिक शाह सानी	लोदी कालोनी के पास,
	(मुसलमानों की आठवीं दिल्ली)			
247	मकबरा व मस्जिद मुबारिक शाह	1433	मोहम्मद शाह	कोटला गाओं में
248	तिबुर्जा, मकबरे छोटे खां, बड़े खां, भूरे खां,	1494		कोटला कालोनी में
249	सफदरजंग का हवाई अड्डा	ब्रिटिश काल	ब्रिटिश सरकार	सफदरजंग के मकबरे के पास
250	मकबरा नजफखां	1781	नजफखां	हवाई अड्डे के सामने सड़क के दाएं हाथ।
251	सफदर जंग का मकबरा	1753	शुजाउद्दौला	मेहरौली रोड पर
252	मकबरा सुलतान मोहम्मद शाह	1445	अलाउद्दीन आलमशाह	लोदी बाग में
253	मस्जिद खेरपुर व शीश गुंबद	1423	नामालूम	"
254	मकबरा व बाग सिकंदर	1527	इब्राहिम लोदी	"

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
255	इंडिया इंटर नेशनल केन्द्र (शिलान्यास जापान के बादशाह द्वारा)	1958	रॉक फेलर ट्रस्ट	मोदी इस्टेट के पास
256	लाल बंगला	1779	—	गोल्फ क्लब व वेल्सले रोड पर।
257	विजय चौक	1912 के बाद	ब्रिटिश सरकार	राजपथ के अन्त पर
	*बाएं हाथ			
258	सरकारी दफ्तर	"	"	नई दिल्ली
259	राष्ट्रपति भवन	"	"	"
260	मुगल बाग	"	"	"
	*दाएं हाथ			
261	रेल भवन	1959–60	हिन्द सरकार	राज पथ
262	वायु भवन	"	"	"
263	कृषि भवन	1956	"	"
264	उद्योग भवन	"	"	"
265	26 जनवरी समाधी स्थान	1950	"	"
266	इंडिया गेट	1933	ब्रिटिश सरकार	"
267	जार्ज की मूर्ति	1912 के बाद	"	"
268	बच्चों का पार्क	स्वराज्य काल	नई दिल्ली नगर पालिका	"

269	नेशनल पुरातत्व विभाग . . .	1933	ब्रिटिश सरकार	जनपथ
270	अजायब घर . . .	1956-57	हिन्द सरकार	"
271	विज्ञान भवन . . .	1956	"	
272	नेशनल स्टेडियम . . . (शुरु ब्रिटिश सरकार द्वारा)	1950-51	हिन्द सरकार	
	*विजय चौक से सीधे			
273	लोक सभा भवन . . .	1912 के बाद	ब्रिटिश सरकार	पार्लियामेन्ट स्ट्रीट
274	पं० मोतीलाल की मूर्ति . .	1963	हिन्द सरकार	"
275	गुरुद्वारा रकाब गंज . . .	इमारत मुगल काल में	गुरुद्वारा सिक्खों द्वारा	रकाबगंज रोड सरकारी दफ्तर के पास
276	रेडियो स्टेशन . . .	1945	ब्रिटिश सरकार	पार्लियामेन्ट स्ट्रीट
277	रिजर्व बैंक . . .	1961-62	हिन्द सरकार	"
278	योजना भवन . . .	"	"	"
279	सरदार पटेल की मूर्ति . .	1964	"	अशोक रोड का चौराहा
	*बाएं हाथ अशोक रोड से			
280	विलिंगडन अस्पताल . . .	1932	ब्रिटिश सरकार	ताल कटोरा रोड
280अ	गुरुद्वारा बंगला साहब . . .	मुगल काल	सिक्खों द्वारा	बंगला साहब रोड
281	ताल कटोरा बाग . . .	"	—	"
282	काली बाड़ी मन्दिर . . .	ब्रिटिश काल	बंगालियों द्वारा	
283	बुद्ध भगवान का मन्दिर . .	1939	सेठ जुगल किशोर बिड़ला	रीडिंग रोड

	नाम स्मारक	स्थापना काल	नाम निर्माता	स्थान जहां विद्यमान है
284	लक्ष्मी नारायण का मन्दिर . .	1939	सेठ जुगल किशोर बिड़ला	रीडिंग रोड
	*रिज पर जाकर			
285	जानकी देवी महाविद्यालय . .	1962	बनारसीदास चांदीवाला ट्रस्ट द्वारा (उद्घाटन श्री नेहरू द्वारा)	गंगा राम अस्पताल मार्ग पर
286	भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था . .	1936	ब्रिटिश सरकार	शंकर रोड से आगे जाकर
287	दुग्ध डेयरी तथा नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी		हिन्द सरकार	पटेल नगर में
288	तिहाड़ जेल . . .	1958	—	जेल रोड, नारायण मार्ग पर
	*वापिस रिज से छावनी			
289	बुद्ध जयन्ती पार्क . . .	1961-62	हिन्द सरकार	पहाड़ी पर
290	राजपूताना राइफिल मंदिर . .		राजपूताना चौकियों द्वारा	छावनी में
291	चाणक्यपुरी . . .		हिन्द सरकार	सरदार पटेल रोड पर
292	अशोक होटल . . .	1955-56	हिन्द सरकार	चाणक्यपुरी में
293	नेहरू संग्रहालय . . . (भूतपूर्व प्रधान मन्त्री का निवास स्थान)	1964	—	तीन मूर्ति मार्ग
294	गांधीजी की निधन भूमि . .	1948	बिरलाजी का मकान	30 जनवरी मार्ग
295	पालम हवाई अड्डा . . .	(शुरु किया ब्रिटिश	हिन्द सरकार ने 1939 के बाद)	पालम जाते हुए